Most respectfully Dedicated

To

The Hon'ble C. E A W. Oldham Esq. I C. S.

Commissioner of Patna

In Appreciation Of

HIS GREAT LOVE OF THE HINDI LANGUAGE AND LITERATURE

By

His Most Obedient Servant And Loyal Subject

RAM RAN VIJAYA SINHA

K V Press Bankipore.

विषय सूची।

चित्र सूची।

म० कु० बाबू रामदीन सिंह—मालिक खड्गविलास प्रेस

सूचना।

पूज्यपाद पिता महाराजकुमार बाबू रामदीन सिंह जी ने क्षत्रिय जाति के कीर्त्ति स्वरूप महात्मा कर्नेल जेम्स टॉड कृत इतिहास राजस्थान का हिन्दी भाषा में यथार्थ अनुवाद और उस में नवीन शोध के अनुसार स्थान स्थान पर टिप्पण देकर प्रकाशित करने का संकल्प कर के कार्य प्रारंभ कर दिया था। पंडित रामगरीब चौबे कृत अनुवाद को यथा संभव मूल अंग्रेज़ी ग्रन्थ से मिलान करा देने और टिप्पण करने के लिये प्रसिद्ध प्राचीनशोधक पंडित गौरीशंकर हीराचंद जी ओझा से प्रार्थना की थी, जिस को उन्हों ने सहर्ष स्वीकार किया। परन्तु शोक है कि पिता जी का इसी बीच में १६०३ ई० की १३ मई बुधवार को देहान्त हो गया। और इस कार्य की पूर्त्ति के लिये उन्हों ने अपने देहान्त के पूर्व जो इच्छा प्रगट की उस को पूर्ण करना मैं ने अपना कर्त्तव्य समझ उक्त ग्रन्थ को मासिक पत्रिका के रूप से प्रकाशित करना आरंभ कर दिया; परन्तु कईएक कारणों से यथा समय नियमित रूप से प्रकाशित न हो सका, उस के केवल १२ ही अंक आज तक निकलने पाये। अतएव अब मासिक अङ्क में निकालना बन्द कर के यथेष्ट मैटर के एकत्र होने पर खण्ड खण्ड कर के प्रकाशित करना निश्चय किया गया। तदनुसार यह इतिहास राजस्थान के प्रथमभाग (Vol I) के प्रारंभिक अंश का प्रथम खण्ड निकाला जाता है, जिस में राजपूत जाति का प्राचीन इतिहास मुख्य विषय है। और उस पर स्थान स्थान पर जो टिप्पण दिये गये हैं वे कैसे बहुमूल्य और निरन्तर अन्वेषण का फल है, पाठक स्वयं विचार करें।

महात्मा कर्नेल टॉड का भांक्षिप्त जीवनचरित्र जिस को

स्व० पू० बाबू रामदीन सिंह— मालिक खड्गविलास प्रेस

टॉडराजस्थान

सम्पादक—पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

टिप्पणकर्त्ता की भूमिका

१

भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही इतिहास लिखने की प्रथा न होने के कारण सन् ईस्वी की उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ काल तक प्रसिद्ध राजपूत जाति एवम् राजपूताने का इतिहास जानने के लिये कुछ भी योग्य साधन न था. राजपूत जाति के परमहितैषी कर्नल जेम्स टॉड महोदय ने जब से राजपूताने में अपना कदम रक्खा तब से ही उन के चित्त में वीर राजपूत जाति के इतिहास के अभाव को दूर करने का विचार उत्पन्न हुआ, जिस को २५ वर्ष के सतत श्रम से उन्हों ने पूर्ण कर राजपूतों की कीर्त्ति के जय स्तम्भ रूप "राजस्थान के इतिहास" को प्रगट किया, जिस से उन की विद्वत्ता, तथा उन के ऐतिहासिक ज्ञान की बहुत कुछ प्रशंसा यूरोप, अमेरिका, और हिन्दुस्तान के साक्षरवर्ग में हुई, और उस के साथ ही राजपूतों की उज्ज्वल कीर्त्ति, जो भारतभूमि में ही सीमाबद्ध हो रही थी, भूमंडल में फैल गई. केवल विद्यानुराग तथा राजपूत जाति के साथ के अपने सद्भाव के कारण उन्हों ने इस पुस्तक के निर्माण करने में जो महान श्रम किया, उस के लिये उन की जितनी प्रशंसा की जावे थोड़ी है. उन्होंने अपना यह अपूर्व ग्रन्थ ऐसे समय में लिखा था, जब कि कुछ भी सामग्री कहीं से तय्यार मिलने की सम्भावना ही नहीं थी. ऐसी दशा में इस अपूर्व ग्रन्थ के वास्ते सारी सामग्री उन्हों ने अपने ही श्रम से एकत्र की, और इस में जितने शिलालेख, दानपत्र आदि का उल्लेख मिला है उन सब के प्रथम शोधक भी वे ही थे.

इस " राजस्थान के इतिहास " के प्रसिद्ध होने के बाद सरकार अंग्रेज़ी की उदार सहायता तथा अनेक यूरोपियन और देशी विद्वानों के श्रम से बहुत कुछ ऐतिहासिक सामग्री

उपलब्ध हुई है, जिस से टॉडसाहिब के इस पुस्तक में कई स्थलों पर परिवर्त्तन करने की आवश्यकता अवश्य रहती है, तिस पर भी उन का यह ग्रन्थ अब तक राजपूत जाति तथा राजपूताना के इतिहास के लिये प्रमाण रूप माना जाता है, और आज तक राजपूताना के इतिहास सम्बन्धी अनेक छोटे बड़े ग्रन्थ, हिन्दी, उर्दू, गुजराती, मराठी, बंगला, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं में प्रगट हुए हैं, वे बहुधा टॉड साहिब के "राजस्थान के इतिहास" की छाया रूप हैं।

के अनुसार विशेष वृत्तान्त लिखना आवश्यक समझा गया वहां उस को संक्षेप से लिखा है। मैं जहां जहां टॉड साहिब के उल्लेख से सहमत न हो सका वहां पर मैं ने स्पष्ट तौर से अपनी राय प्रगट की है। सातवें प्रकरण में "छत्तीस राजवंशों" का वृत्तान्त है। उक्त प्रकरण पर मैं ने विशेष रूप से टिप्पण किये हैं, और बहुधा प्रत्येक प्राचीन राजवंश की वंशावली, तथा यत्किंचित ऐतिहासिक वृत्तान्त भी केवल इसी अभिप्राय से दिया है कि, हिन्दी भाषा में प्राचीन इतिहास संबन्धी पुस्तकों का अब तक अभाव सा ही है; ऐसी दशा में वह इतिहासप्रेमियों को प्राचीन इतिहास के विस्तीर्ण क्षेत्र में प्रवेश कराने के लिये पथदर्शकता का काम दे सके।

मेरे टिप्पणों में कुछ तो त्वरा के कारण, और कुछ लेखक दोष से कहीं कहीं अशुद्धियां रह गई हैं, जिस के लिये मैं पाठकों से क्षमा चाहता हूं, और उन से यह भी प्रार्थना है कि यदि इस पुस्तक से इतिहासप्रेमियों को, और हिन्दीभाषा के अनुरागियों को कुछ भी लाभ हो तो उस के यश के भागी वे कर्नेल टॉड साहिब को समझें।

गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा.
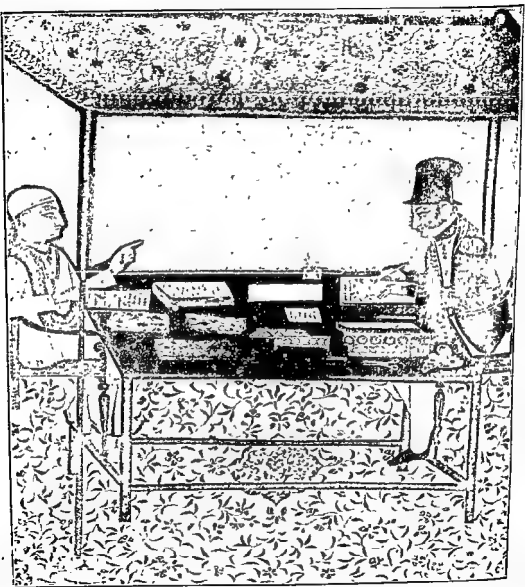
ग्रन्थकर्त्ता—कर्नल जेम्स टॉड और उन के गुरु यती ज्ञानचन्द्र.

कर्नल जेम्स टॉड

का

जीवन चरित्र।

'कर्नल टॉड कुलीन बिन क्षत्रिय यश क्षय होत'

(फार्बस जीवन चरित्र)

क्षत्रियों के सच्चे मित्र और उनकी वीरता के उज्ज्वल यश को भूमंडल पर फैलानेवाले कर्नल जेम्स टॉड, स्कॉटलैंड के निवासी मिस्टर जेम्स टॉड के दूसरे पुत्र और हेन्री टॉड के पौत्र थे। उन का जन्म तारीख़ २० मार्च सन् १७८२ ई० को इंगलैंड के इस्लिंगटन् नामक स्थान में हुआ था। उन के पूर्व पुरुषों में से जॉन टॉड नामक व्यक्ति ने स्कॉटलैण्ड के बादशाह रॉबर्ट दि ब्रूस (१) के बाल बच्चों को इंगलैण्ड की क़ैद

(१) इंगलैंड के बादशाह प्रथम ऐडवर्ड ने राबर्ट दि ब्रूस का राज छीन कर उस के संबंधी, बालबच्चों और कई सहायकों को इंगलेण्ड में ला कर क़ैद कर दिया, उस समय उस (राबर्ट दि ब्रूस) को बड़ी२ आपत्तियां उठानी पड़ीं, परन्तु

से छुड़ाया । इस अमूल्य सेवा के बदले में बादशाह की तरफ़ से उस को 'नाइट बैरोनेट' का पद, और लोमड़ी (२) का चिन्ह धारण करने का सन्मान मिला था। उन की माता मिस् हेरी हिट्‌ली मिस्टर ऐराड्रू हिटली की पुत्री थी, जो लंकेशायर से अमेरिका के न्यूयार्क नगर में जा बसा था।

टॉड साहिब का विचार प्रथम व्योपार के काम में लगने का था, परन्तु पीछे से वह विचार पलट गया, और उन के मामा मि० पेट्रिक् हिट्‌ली ने, जो बंगाल के सिवीलियन् थे, उन को ईस्ट इंडिया कंपनी के उच्च पद के सैनिक उम्मेदवारों में भरती करा दिया, जिस से वे सन् १७९८ ई० में वूलविच् नगर की राजकीय सैनिक पाठशाला में दाखिल हुए, और सन् १७९९ के मार्च महीने में १७ वर्ष की अवस्था में बंगाल को भेजे गये, जहां ता० ९ जन्वरी सन् १८०० ई० को दूसरे नंबर की यूरोपियन रजमट में उन को पद मिला। उस समय यह सुन कर कि लॉर्ड वेलेस्ली मोलका पर सेना भेजनेवाले हैं, उन्हों ने उस सेना में शरीक होने

उस ने अपने साहस को न छोड़ा। अन्त में बादशाह ऐडवर्ड का देहान्त होने पर बड़ी वीरता से लड़ कर उस ने अपना राज पीछा ले लिया, और सन् १३२८ ई० में उन का देहान्त हुआ।

(२) स्कॉटलैण्ड की भाषा में लोमड़ी का नाम टोड होने ही से यह वंश टॉड नाम से प्रसिद्ध हुआ।

के वास्ते उक्त लॉर्ड साहिब की सेवा में एक निवेदन-पत्र भेजा, वह स्वीकृत हो कर उन की बदली उस मुहिम में जानेवाली जलसेना में हो गई। वह सेना तो किसी कारण से न भेजी गई, परन्तु उस प्रसंग में उन को कुछ समय तक मॉर्निंगटन् नामक जहाज़ पर जल-सेना संबंधी काम करना पड़ा, जिस से स्थल और जल-सैन्य संबंधी दोनों ही कामों का उन को अनुभव हो गया। ता० २६ मई सन् १८०० ई० को १४ नंबर की देशी पैदल सेना में लेफ्टनेण्ट नियत हो कर थोड़े ही दिनों में अपने उत्तम स्वभाव से उक्त सेना के तमाम अधिकारियों के प्रीतिपात्र बन गये। उस समय से ही उन की तीव्र बुद्धि उन के होनहार होने का परिचय देने लग गई थी। फिर कलकत्ते से हरिद्वार और वहां से देहली में बदल दिये गये।

इंजिनियरी के काम में कुशल होने के कारण सन् १८०१ ई० में गवर्मेण्ट ने देहली के पास पुरानी नहर की पैमाइश करने का काम टॉड साहिब के सुपुर्द किया था, जिस को उन्हों ने बड़ी योग्यता के साथ पूर्ण किया। सन् १८०५ ई० में मिस्टर ग्रीम मर्सर गवर्मेण्ट की तरफ़ से राज-दूत और रज़िडेंट नियत होकर दौलतराव संधिया के दर्बार में जाने वाले थे। हिन्दुस्तान के भिन्न भिन्न प्रदेश और वहां के राजाओं के दर्बार का वैभव आदि देखने की उत्कण्ठा होने से टॉड साहिब ने उन के

साथ चलने की इच्छा प्रगट की, क्योंकि वे (मि० मर्सर) उन की सराहनीय स्वतंत्र प्रकृति से भले प्रकार परिचित थे, इस लिये उन्हों ने गवर्मेंएट की आज्ञा ले कर टॉड साहिब को अपने साथ रहने वाली सर्कारी सेना का अधिकारी नियत कर दिया। यहीं से उन की भावी असाधारण कीर्त्ति का प्रारम्भ हुआ।

उस समय यूरोपियन विद्वानों को राजपूताना और उस के आस पास के प्रदेशों का भूगोलसम्बन्धी ज्ञान बहुत ही कम था, और उन के बनाये हुए नक़्शों में उन प्रदेशों के मुख्य मुख्य स्थान भी केवल अंदाज़ से दर्ज किये हुए थे, यहां तक कि प्रसिद्ध चित्तौरगढ़, जो उदयपुर से उत्तर-पूर्व में है, उन नक़्शों में उत्तर-पश्चिम में दर्ज था, और राजपूताना के पश्चिमी और मध्य विभाग के राज्य तो बहुधा सब ही छोड़ दिये गये थे, थोड़े समय पूर्व ऐसा अनुमान करते थे, कि राजपूताना की नदियां दक्षिण की तरफ़ बहती हुई नर्मदा से जा मिलती हैं। इस भूल को तो हिन्दुस्तान के भूगोल के प्रथम प्रसिद्ध शोधक रेनल साहिब ने शुद्ध किया, परन्तु शेष अपूर्णता ज्यों की त्यों बनी रही।

उस समय सेंधिया का मकाम मेवाड़ में होने से मिस्टर मर्सर को आगरे से जयपुर की दक्षिणी सीमा में हो कर उदयपुर पहुंचना था। सन् १७६१ ई० में

गवर्मेंएट का राजदूत कर्नल पामर पहिले जिस मार्ग से गया था उस का एक उत्तम नक्शा डॉक्टर हंटर का बनाया हुआ मिस्टर मर्सर के पास था। उस में उस मार्ग का कुछ अंश नाप कर खगोल निरीक्षा से आगरा, नर्वर, दतिया, झांसी, भोपाल, सारंगपुर, उज्जैन, बूंदी, कोटा, रामपुरा और बयाना के स्थान नियत किये हुए थे। टॉड साहिब बड़े साहसी और अपने अमूल्य समय को सदा किसी न किसी उपयोगी काम में व्यतीत करने वाले थे, इस वास्ते उन्हों ने आगरे से उदयपुर के लिये प्रस्थान करने के दिन से ही पैमाइश की सामग्री संभाली, और डॉक्टर हंटर के नियत किये हुए स्थलों को आधार भूत मान कर वे पैमाइश करते हुए सन् १८०६ ई० के जून महीने में उक्त राजदूत के साथ उदयपुर पहुंचे। आगरे से उदयपुर तक चलते चलते केवल अपने विद्यानुराग से जो काम उन्हों ने किया उस के विषय में मि० मर्सर ने लिखा है, कि "लेफ्टनेएट टॉड ने अपने शरीर की अस्वस्थता और पैमाइश की सामग्री उत्तम न होने पर भी मार्ग की पैमाइश का काम पूर्ण परिश्रम के साथ ऐसा अच्छा किया है, कि उत्तम रीति से पैमाइश होने पर भी उस में सुधार शायद ही हो सके"। उदयपुर तक पैमाइश कर लेने के बाद टॉड साहिब की इच्छा हुई कि राजपूताना और

उस के आस पास के प्रदेशों का एक उत्तम नक्शा नाप के साथ तैयार किया जावे, अतएव जहां जहां उक्त राजदूत के साथ उन का जाना या ठहरना होता वे अपना बहुत सा समय इस उपयोगी काम में लगाते, और साथ ही साथ उन प्रदेशों के इतिहास, जनश्रुति, और शिलालेख आदि का भी यथासाध्य संग्रह करते जाते थे। उन के अचल कीर्त्ति रूप "राजस्थान नामक" पुस्तक की सामग्री का भी इसी साल से संग्रह होने लगा।

सेंधिया की सेना के साथ साथ टॉड साहिब भी उदयपुर से चित्तौरगढ़ के मार्ग मालवे में होते हुए बुंदेलखंड की सीमा पर कमलासा में पहुंचे। इस ७०० मील की यात्रा में कर्नल पामर के मार्ग से उन का दो बार गुज़रना हुआ, और अपने नियत किये हुए स्थल डॉक्टर हंटर के दिये हुए स्थलों के मुताबिक पाने पर उन को बड़ा हर्ष हुआ, और उन का उत्साह अधिक बढ़ा। सन् १८०७ ई० में सेंधिया की सेना ने राहटगढ़ पर घेरा डाला, उस समय टॉड साहिब थोड़े से सिपाही साथ ले कर बेतवा नदी के किनारों के पास होते हुए चंबल तक के अज्ञात स्थलों में पहुंचे, और वहां से पश्चिम की ओर कोटा तक चढ़े। फिर दक्षिण को बहने वाली सब नदियों का मार्ग मालूम कर चंबल के साथ काली सिंध, पार्वती, बनास आदि मुख्य मुख्य

नदियों के संगम का पता लगाते हुए आगरे जा पहुंचे। वह समय आज के जैसा अमन का न था, किन्तु उन दिनों लूटमार का बाज़ार गर्म था। टॉड साहिब को अक्सर आधी रात के वक्त अपने डेरे डंडे उठाकर कूच करना पड़ता था, कई बार वे लूटे भी गये, और कई घटना ऐसी हुई जो अद्भुत कहानियों को याद दिलाती हैं। आगरे से लौटने पर उन्हों ने सेंधिया की सेना को राहटगढ़ ही में पाया, और देखा कि अभी बहुत दिनों तक उस का पड़ाव वहीं रहेगा, तो वे अपने उद्योग की सीमा को बढ़ाने की इच्छा से पश्चिम की तरफ़ भरतपुर, कठूमर और सेंतरी होते हुए जयपुर पहुंचे, और वहां से टोंक, इन्दरगढ़, गूगल, छपरा, राघूगढ़, अरोन, कुरवा और भोरासा के मार्ग से सागर में जा निकले, और वहां से पीछे राहटगढ़ आकर सेंधिया की सेना से मिल गये।

सन् १८१२ ई० में दौलतराव सेंधिया घूमता घूमता ग्वालियर पहुंचा, तब तक टॉड साहिब भी उस के साथ रह कर पैमाइश करते रहे। सन् १८१०—११ ई० में उन्हों ने पैमाइश करनेवालों को दो दलों में बांट कर जहां वे खुद न जा सके वहां उन को भेज दिया, अर्थात् एक टुकड़ी को सिंध की ओर और दूसरी को सतलज नदी के दक्षिणी रेगिस्तान में रवाना किया। पहिली टुकड़ी शेख अब्दुल् बरकत के मातहत उदयपुर

से गुजरात, सौराष्ट्र, कच्छ, लखपत और सिंध हैदराबाद होती हुई पश्चिम की तरफ़ सिन्धु नदी पारकर ठट्टा में पहुंची, और उस नदी के दाहिनी किनारे किनारे सीवान् तक चली गई; फिर सिन्धु नदी उतर कर उस के बांये किनारे होती हुई खैरपुर पहुंची। वहां से वेखर के टापू में हो कर उमरसुमरा के रेगिस्तान से जयसलमेर, मारवाड़, और जयपुर के इलाकों को तै करती हुई नरवर के मक़ाम टॉड साहिब से आ मिली। यद्यपि यह सफ़र जान जोखम का था, तथापि शेख अब्दुल् कुछ पढ़ा लिखा होने के अतिरिक्त निर्भय प्रकृति वाला होने से उस को सफलता के साथ पूरा कर सका। दूसरा दल एक बड़े योग्य पुरुष मदारीलाल की मातहती में भेजा गया था, जो भूगोल सम्बन्धी शोध में कुशल होने के अतिरिक्त बड़ा उत्साही, जानकार और धैर्यवंत था। सतलज के दक्षिणी रेतीले प्रदेश तथा क़रीब क़रीब राजपूताना के सब विभागों में वह फिरा।

मदारीलाल के काम पर तो टॉड साहिब को पूर्ण विश्वास था, परन्तु दूसरों की की हुई पैमाइश पर खुद जांच किये बिना वे कभी भरोसा नहीं करते थे। राजपूताना और उस के आसपास के प्रदेशों का इतिहास, भिन्न भिन्न नगरों के बीच का अंतर व मार्ग, वहां के रीत और रवाज आदि जानने के लिये

वहां के निवासियों में से योग्य और वाक़िफ़कार मनुष्यों को प्रीति या पारितोषिक के साथ किसी ढव से वे अपने पास बुला लेते थे। सन् १८१२ से १८१७ ई० तक वे गवालियर में रहे, तब भी सिंध, थाट, उमरसुमरा के रण व राजपूताना के प्रत्येक भाग से वाक़फ़ियत रखने वाले मनुष्य बहुधा उन के पास रहा करते थे, ऐसे ही क़ासिद और चिठ्ठी पहुंचानेवाले हकीरों से भी रास्तों व शहरों की दूरी का हाल वे हर वक़्त दरयाफ़्त करते रहते थे, और भिन्न२ देशों के कोसों का शुद्ध माप जान लेने के बाद उन लोगों की बतलाई हुई दूरी का यंत्र द्वारा नापी हुई दूरी के साथ मिलान कर लेते थे।

इस प्रकार थोड़े अरसे में इस विस्तीर्ण प्रदेश के अनेक मार्गों की रेखा खींच कर इतने नक़्शे उन्हों ने तय्यार किये, कि उन की ११ जिल्दें बन गईं। फिर सीमा पर के व बीच के कई स्थल क़ाइम कर एक पूर्ण नक़्शा तैयार कर लिया। अपने १० वर्ष के असाधारण श्रम से तय्यार किया हुआ यह नक़्शा सन् १८१५ ई० में उन्हों ने हिन्दुस्तान के गवर्नर जनरल मार्किस ऑफ़ हेस्टिंग्ज़ को भेंट किया, जिन्हों ने उन के महान् श्रम की बड़ी प्रशंसा की, और उस नक़्शे की एक नक़्ल करवा कर अपने हस्ताक्षर सहित टॉड साहिब को इस अभिप्राय से दी, कि यदि आगे को कोई यह दावा करे, कि उक्त नक़्शा मैं ने

'राजस्थान' नामी पुस्तक की पहिली जिल्द छपवाई, तो उस के प्रारंभ में वह नक्शा और अपने संग्रह किये हुए राजस्थान के भूगोल संबंधी वृत्तांत का सारांश लिखा।

सन् १८१० ई० में मि० मर्सर की जगह मि० रिचर्ड स्ट्रैची सेंधिया दर्बार के रज़िडण्ट नियत हुए, जिन के साथ टॉड साहिब की पहिले ही से पहिचान थी। सन् १८१३ ई० के अक्टोबर में टॉड साहिब को कप्तान का पद मिला, और सन् १८१५ के अक्टोबर में वे उक्त रज़िडण्ट के दूसरे असिस्टेंट नियत हो गये और यहीं से उन का पोलिटिकल् विभाग में प्रवेश हुआ।

उस वक्त राजपूताना में मरहटों का ज़ोर बढ़ा हुआ था, और साथ ही यहां के रईसों व उन के मातहत सर्दारों में भी परस्पर फूट फैली हुई थी; इसी से इस देश में मरहटों का पैर आसानी से जम गया। जब किसी रईस ने अपने को अपने प्रतिपक्षी से निर्बल पाया, चट उस ने मरहटों को मदद पर बुलाया, और वे मनमाना धन उस से उस मदद के एवज़ लेने लगे; परन्तु धीरे धीरे उन का उपद्रव यहां तक बढ़ा कि, देश की दुर्दशा होने लगी, हुल्कर व सेंधिया की लूट से मुल्क वीरान होता चला, और राजा व प्रजा का सुख जाता रहा। राजपूताना में पैर रखते ही उस देश की ऐसी दुर्दशा देख टॉड साहिब के चित्त में बड़ा खेद

उत्पन्न हुआ, और उन्हों ने यह संकल्प कर लिया, कि इस देश को गवर्मेंट की संरक्षा में ला कर मरहटों के उत्पात से इस का यथासाध्य उद्धार करना चाहिये; परन्तु ईश्वर को तो यह मंजूर था, कि यह देश कुछ समय तक ऐसे ही आपत्तिग्रस्त रहे। सन् १८०७ से १८१३ ई० तक लॉर्ड मिण्टो हिन्दुस्तान के गवर्नर जेनरल रहे, उन्हों ने देशी राज्यों के मामलों में हस्ताक्षेप न करने की नीति धारण की, जिस से मरहटों का उपद्रव विशेष बढ़ा, पिंडारों ने भी खूब धूम मचाई, और राजपूताना लुटेरों का घर बन गया। ऐसे समय में प्रजा के धन जीवन का रक्षक एक परमात्मा ही था, लोग अपने घर बार छोड़ छोड़ कर भागने लगे और कई जगह रास्तों में घास ऊग गया। इस अवस्था का यथार्थ ज्ञान तो टॉड साहिब के 'राजस्थान' पुस्तक के पढ़ने से होगा, परन्तु उन के इस एक फ़िकरे से ही उस दशा का दिग्दर्शन हो सक्ता है, कि "जहां जहां मरहटों का पड़ाव होता वहां नाश अवश्य होता था। यह उन की प्रकृति में था। बड़ी समृद्धि वाले स्थान के नष्ट होने को २४ घंटे बस थे। जले हुए गांव व उजड़ी हुई खेतियों से उन के पयान के मार्ग का पता महीनों तक लग सक्ता था"।

राजपूताना के एक बड़े विभाग की ही यह दुर्दशा नहीं हुई, किन्तु मरहटों की मदद से पिंडारों

ने गवर्मेंएट के इलाक़ों पर भी छापा मारना शुरू किया। इस से सर्कारी प्रजा भी दुःखी होने लगी। यह देख कर सन् १८१७ ई० में मार्किस ऑफ़ हेस्टिंग्ज़ ने पिंडारों को नष्ट करने का दृढ़ संकल्प कर लिया, और उन पर चारों ओर से सेना भेजी। उस समय टॉड साहिब के नक़्शे ने बड़ी सहायता दी। सन् १८१४–१५ ई० में उन्हों ने पिण्डारों की उत्पत्ति, उन्नति और उन की वर्तमान स्थिति पर एक निबंध लिख कर गवर्मेंएट के पास भेजा, और थोड़े दिनों पीछे अपना तय्यार किया हुआ राजपूताना व उस के आसपास के प्रदेशों का उपरोक्त नक़्शा, वहां के आवश्यकीय वृत्तान्त, और पिंडारों की लड़ाई संबंधी अपने प्रस्ताव के साथ सर्कार में भेज दिया, और उन्हीं की योजना के अनुसार उस लड़ाई का प्रबंध हुआ। गवर्मेंएट ने उस नक़्शे आदि के लिये टॉड साहिब को हार्दिक धन्यवाद दिया।

पिंडारों की लड़ाई में शरीक होने को टॉडसाहिब ने भी एक निवेदनपत्र गवर्मेंएट में भेजा, जिस को सर्कार ने प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार किया; क्योंकि उस समय प्रस्तुत युद्ध संबंधी प्रदेशों का पूर्ण ज्ञान रखने वाला उन के समान दूसरा कोई पुरुष नहीं था। लॉर्ड हेस्टिंग्ज़ ने पहिले तो टॉड साहिब को मेजर जनरल सर ऑक्टरलोनी के आधीन सेना में नियत करने का

कैर, सर आर० डॉन्किन् और कर्नल ऐडम्स के पास भेजीं। यद्यपि उस समय उन के प्रस्ताव के अनुसार कार्यवाही न हुई, तथापि पीछे से मालूम हुआ कि टॉड साहिब के प्रस्ताव सही थे; क्योंकि उन के अनुमान के अनुसार ही शत्रुओं के कूच और मक़ाम हुए थे। उस योजना के लिये भी मार्क्किस आफ़ हेस्टिंग्ज़ ने उन को धन्यवाद दिया। इस युद्ध में टॉडसाहिब ने अपने व्यय से शत्रुओं की ख़बर मिलने का ऐसा उत्तम प्रबंध किया था, कि प्रति दिन दस बीस जगह से लिखित ख़बरें उन के पास पहुंच जातीं, जिनका सारांश प्रत्येक अफ़सर के पास भेज देने से उन को शत्रुओं का सब हाल मालूम रहता था। युद्ध समाप्त होने पर लॉर्ड हेस्टिंग्ज़ ने टॉड साहिब की प्रशंसा करते समय यह जतला दिया कि इस युद्ध में विजय प्राप्त होने का एक मुख्य कारण टॉड साहिब की सहायता थी, और यह भी प्रकट किया कि युद्ध में भाग लेने वाले सब जनरलों ने मुक्त कंठ से यह क़बूल किया है, कि इस युद्ध की कार्यवाही में टॉड साहिब की पथदर्शकता ने अमूल्य काम दिया।

यशवंतराव हुल्कर के मरने पर उस का बालक पुत्र गद्दी पर बिठलाया गया, और राज्य का काम यशवंतराव की विधवा रानी तुलसी बाई अपने प्रधान की सलाह से करने लगी। उस ने गवर्मेण्ट की रक्षा में

आने की इच्छा प्रगट की, जिस पर गवर्मेंट ने उस मामले को टॉड साहिब के सुपुर्द किया। सन् १८१७ ई० में इस विषय पर बातचीत हो रही थी, कि इतने में पेशवा और भोंसले ने गवर्मेंट के साथ की संधि तोड़ दी, और पेशवा ने हुल्कर के दर्बार में भी दूत भेज कर यह उद्योग रचा कि किसी ढब से हुल्कर भी हमारे शरीक हो जावे। इन कार्यवाहियों से टॉड साहिब को हुल्कर की तरफ़ से सन्देह उत्पन्न हुआ, जिस से गवर्मेंट की मंज़ूरी मंगवाये बिना अपनी ही ज़िम्मेवरी पर तुलसीबाई को कहला भेजा कि "यदि हुल्कर दर्बार को गवर्मेंट के साथ सच्ची दोस्ती हो तो २६ घंटे के भीतर पेशवा का दूत यहां से निकाल दिया

तुलसी बाई को मार डाला, और गवर्मेंएट को हुल्कर की सेना से बड़ी लड़ाई करनी पड़ी, उस प्रसंग पर भी लॉर्ड हेस्टिंग्ज़ ने टॉड साहिब की राय से प्रसन्नता और सर मालकम की कार्यवाही से अप्रसन्नता प्रकट की।

कोटा के महाराव उम्मेद सिंह जी का मुसाहिब झाला ज़ालिम सिंह टॉड साहिब का मित्र था, और पिंडारों व मरहटों के साथ के युद्ध में उस ने कोटे की सेना से गवर्मेंएट की सहायता की थी, इस वास्ते हुल्कर के साथ लड़ाई समाप्त होने पर टॉड साहिब ने गवर्मेंएट से सिफ़ारिश की, कि हुल्कर के ४ पर्गने डीग, पंच पहाड़, आहोर, और गंगराड़ ज़ालिम सिंह को मिलने चाहियें। वह सिफ़ारिश लॉर्ड हेस्टिंग्ज़ ने मंज़ूर की, और वे चारों पर्गने कोटा राज्य को दे दिये।

पिंडारों और मरहटों का उपद्रव मिटने पर गवर्मेंट ने राजपूताना के राज्यों से संधि करना आरंभ किया, और टॉड साहिब को उदयपुर, जोधपुर, कोटा, बूंदी और जयसलमेर के राज्यों का पोलिटिकल एजएट नियत किया। सन् १८१८ ई० के फ़र्वरी महीने में वे उदयपुर आये, जो उन का सदर मक़ाम नियत हुआ था। उस समय उन्हों ने मेवाड़ की दशा पहिले (सन् १८०६ ई०) से अधिक बुरी पाई। भीलाड़े में, जहां ६००० घरों की

वस्ती थी वहां एक भी मनुष्य उन के नज़र न आया, बहुत से लोग मरहटों के दुःख से मेवाड़ छोड़ कर मालवा, हाड़ोती आदि स्थानों में चले गये थे, राज्य की आय बहुत घट गई थी, सर्दारों ने खालिसे के बहुत से गांव दबा लिये थे, और राज्य प्रबंध शिथिल हो रहा था। ऐसे समय में मेवाड़ राज्य का मरहटों के दुःख से छूटना और गवर्नमेण्ट के प्रतिनिधि का वहां पर आना मानो सूखते हुए खेत के लिये वृष्टि सा हो गया। महाराणा भीमसिंह जी ने आदर पूर्वक राम-प्यारी की बाड़ी में टॉड साहिब को ठहराया, और अपने सब सर्दार उमरावों को बुला कर एक दिन बड़ा दर्बार किया, जिस में उक्त साहिब ने खड़े हो कर कहा कि—"महाराणा साहिब, जो सर्दार आप की आज्ञा से प्रतिकूल चलते हों उन को बतला दीजिये, गवर्नमेण्ट उन को पूरा पूरा दंड देने के लिये तय्यार है"। महाराणा ने बड़ी बुद्धिमानी के साथ अपने बड़प्पन के योग्य यही उत्तर दिया कि—"इस समय से पहिले का अपराध तो हम ने सब का क्षमा किया, परन्तु अब कोई ऐसा करेगा तो उस की सूचना साहिब को दी जावेगी।" महाराणा के ऐसे उत्तर का सर्दारों पर बहुत कुछ प्रभाव हुआ। उन दिनों में गवर्नमेण्ट के विजय और गौरव की बातें सुन कर सब लोगों के चित्त में यह बात जम गई थी, कि अंग्रेज़

लोग जादूगर हैं, वे बड़ी भारी सेना को जेब में छिपा कर ले जाते और युद्ध समय काग़ज़ के सिपाहियों से काम लेते हैं, इन निर्मूल बातों का प्रभाव यह हुआ, कि असभ्य लुटेरों के दल अंग्रेज़ों का नाम सुनते ही कांपने लगे, और देश में जहां तहां शांति फैलने लगी। टॉड साहिब अपने उत्तम स्वभाव के कारण थोड़े ही दिनों में महाराणा भीमसिंह जी के पूर्ण विश्वासपात्र और मुख्य सलाहकार हो गये थे। महाराणा ने भी उन की राय से इश्तिहार जारी कर मालवा, हाड़ौती आदि की तरफ़ गई हुई अपनी प्रजा को पीछी बुला ली, दाण (सायर) का नया प्रबंध किया, व्यौपारियों को कुछ काल के वास्ते महसूल मुआफ़कर फिर आगे के लिये पहिले की अपेक्षा घटा दिया, मातहत सर्दारों ने जो गांव खालिसे के दबा लिये थे वे उन से छुड़ा लिये, देश में शांति रहने से राज्य की आय एकदम बढ़ गई, तीन बरस के भीतर उदयपुर नगर की आबादी तिगुनी हो गई, ऊजड़ गांव फिर बसे, बाहिर से व्यौपारी आ कर टिकने लगे, और थोड़े ही समय में राज्य की दशा और की और हो गई। उदयपुर राज्य का यह उदय टॉड साहिब की सम्मति से हुआ।

सन् १८१६ ई० के अक्तूबर में टॉड साहिब जोधपुर को रवाना हुए, और नाथद्वारा, कुंभलगढ़, घाणेराव,

नाडोल आदि में होते हुए वहां पहुंच गये। नाडोल में उन्हों ने राव लाखण सी * के समय के दो शिला लेख वि० संवत १०२४ और १०३९ के तलाश किये, जिन के संवत् अजमेर व नाडोल के चौहानों, जालौर के सोनगरों और सिरोही के देवड़ों का प्राचीन इतिहास लिखने वालों के वास्ते बड़े उपयोगी हैं। इन लेखों के अतिरिक्त वहां से दो ताम्रपत्र, जिन में से एक वि० सं० १२१८ का आल्हणदेव † के समय का था, कई उपयोगी प्राचीन हस्त लिखित पुस्तकें और कितने ही अश्वनंदी ‡ शैली के सिक्के संग्रह किये।

---

* राव लाखण सी साम्हर के चौहान राजा वाक्पति राजा का दूसरा पुत्र और सिंहराज का छोटा भाई था, जिस ने नाडोल में अपना स्वतन्त्र राज्य जमाया था।

† आल्हणदेव नाडोल का चौहान राजा था।

‡ जिन सिक्कों के एक तरफ़ सवार और दूसरी तरफ़ नंदी बना है वे 'अश्व नंदी' नाम से प्रसिद्ध है। चौहान राजा सोमेश्वर और पृथ्वीराज के अतिरिक्त सामन्तदेव, खल्लपतिदेव, भीमदेव, सल्लक्षणपालदेव, महीपालदेव, मदनपालदेव, अनंगपालदेव, कल्हणदेव, चाहडदेव, पीपलदेव आदि हिन्दू राजाओं के और मुहम्मद बिन साम (शहाबुद्दीन गोरी), शमसुद्दीन अल्तमश, जलालुद्दीन, नासिरुद्दीन कुबाच, रुकनुद्दीन फ़ीरोजशाह, मुइज़ुद्दीन बहरामशाह, अलाउद्दीन मसऊदशाह, आदि मुसल्मान बादशाहों या हाकिमों के अश्वनंदी शैली के सिक्के मिले हैं, जिनके दोनों ओर नागरी लिपि में लेख लिखे हुए हैं। टॉड साहिब इस शैली के सिक्के नाडोल के चौहान राजाओं के बतलाते हैं, परन्तु अब तक नाडोल के राजाओं का एक भी सिक्का नहीं मिला, और न टॉड साहिब के संग्रह में पाया गया।

जोधपुर पहुंचने पर महाराज मानसिंह जी ने उन का बहुत सन्मान किया, और विजयविलास, सूर्यप्रकाश, तथा मारवाड़ की ख्यात आदि जोधपुर राज्य के इतिहास संबंधी ६ पुस्तक उन को दिये, जिन के एवज़ उन्हों ने पीछे से फ़ार्सी की तारीख फिरिश्ता और खुलासे उत्तवारीख़ की नक़लें कराकर महाराज के पास भेज दीं। जोधपुर से वे पड़िहार राजपूतों की प्राचीन राजधानी मंडोर देखने गये। फिर पुष्कर, अजमेर आदि प्राचीन स्थल देखते हुए दिसंबर में पीछे उदयपुर आ गये। पुष्कर और अजमेर में उन्हों ने कई एक प्राचीन सिक्के एकत्र किये थे।

सन् १८२० ई० के जन्वरी मास में उन्हों ने कोटे की तरफ़ प्रस्थान किया, और ४ मास वहां रह कर बूंदी होते हुए अक्तूबर में पीछे उदयपुर पहुंचे। उस समय कोटे में भयानक रूप से ज्वर की बीमारी फैल रही थी। टॉड साहिब के साथियों में से बहुत से वहां बीमार हो गये, और उन को भी ज्वर आने लगा तथा तिल्ली बढ़ गई। मार्ग में जहाज़पुर के मक़ाम उन को मक्की की रोटी खाने की इच्छा हुई, उस के दो निवाले भी नहीं लिये थे, कि उन का सिर घूमने लगा, जीभ भारी हो गई, और कंठ रुंध गया, तो भी उन का धैर्य वैसा ही बना रहा। डॉक्टर डंकन् ने आ कर तत्क्षण औषधि

पिलाई, जिस से ज़ोर ज़ोर से वमन हुआ और प्रकृति कुछ ठीक हो गई। इस बीमारी का कारण डॉक्टर ने रोटी में विष होना अनुमान किया था, परन्तु उन को उस की बात पर विश्वास न हुआ। जहाज़पुर से चल कर वे मांडलगढ़ आये, जहां उन की तिल्ली बढ़ी हुई देख कर उन के किसी देशी मित्र ने यह राय दी, कि अगर आप तिल्ली पर जोंकें लगवा दें तो उस का घटना संभव है। इस पर उन्हों ने क़रीब ६० जोंकें तत्क्षण मंगवा कर वहां पर लगा दीं, जो उन का रुधिर पी रही थीं, उस समय भी आप चारपाई पर लेटे हुए ब्राह्मण और पटेलों से वहां का हाल दर्याफ़्त करते, और लिखते जाते थे।

उदयपुर लौटने पर डॉक्टर डंकन् ने उन के शरीर की निर्बलता देख उन्हें विलायत जाने की सलाह दी, और स्पष्ट कह दिया, कि यदि आप ६ मास फिर इस देश में रह गये तो अवश्य मर जाओगे। अपनी नैरोग्यता के लिये कुछ समय बाद स्वदेश जाना उन्हों ने भी निश्चय कर लिया था, कि इतने में उन के मित्र बूंदी के राव राजा विशन सिंह जी का महामारी से अचानचक देहान्त हो गया, जो मरते वक़्त यह कह गये थे, कि मेरा बालक पुत्र और बूंदी का राज्य टॉड साहिब के भरोसे है। यह ख़बर सुनते ही टॉड साहिब ने सब काम छोड़ कर एक बार बूंदी जाना ठान लिया, और

ता० २४ जुलाई के दिन बरसते हुए पानी में उदयपुर से रवाना हो ता० ३० को बूंदी पहुंचे। मातमपुर्सी के लिये सीधे महलों में गये, और राव राजा रामसिंह जी आदि को धैर्य बंधा कर अपने डेरे पर आये। सफ़र के वस्त्र उतारने भी न पाये थे, कि रामसिंह जी की माता ने देशी भोजन एक ब्राह्मण के साथ बड़ी पवित्रता से भेजा, जिस से उन्हों ने अपनी क्षुधा शांत की। फिर श्रावण शुक्ल ३ संवत् १८७८ वि० को बड़ी धूम धाम से राव राजा रामसिंह जी के राज्य तिलक का उत्सव हुआ, जिस में टॉड साहिब भी शरीक थे। राव राजा की माता ने टॉड साहिब के पास राखी भेज उन को अपना भाई बनाया। फिर कुछ दिन बूंदी में रहने के बाद उन्हों ने कोटे की तरफ़ पयान किया।

महाराव गुमान सिंह जी के राज्य में झाला ज़ालिम सिंह कोटे का मुसाहिब नियत हुआ था। महाराव उम्मेद सिंह जी के समय में उस का अधिकार यहां तक बढ़ा, कि महाराव नाम मात्र के राजा रह गये थे। इस के सिवा गवर्मेंट और महाराव के बीच जो अहदनामा ता० २५ दिसंबर सन् १८१७ ई० को देहली में हुआ, उस में ता० २० फ़र्वरी सन् १८१८ ई० को इस आशय की एक शर्त ज़ालिम सिंह के अनुकूल और चढ़ाई गई, कि "दोनों पक्षवाले (गवर्मेंट और महाराव)

स्वीकार करते हैं, कि महाराव उम्मेद सिंह के बाद कोटे का राज्य उन के बड़े बेटे महाराज कुमार किशोर सिंह और उन के वारिसों को क्रमशः सदा के लिये मिलेगा, और राज्य के कामों का कुल प्रबंध राज राणा ज़ालिम सिंह और उन के पीछे उन के बड़े कुंवर माधव सिंह और उन के वारिसों के आधीन क्रमशः सदा के लिये रहेगा।" यह शर्त कोटा राज्य के लिये हानिकारक और झालावाड़ के नवीन राज्य की जड़ रूप हुई। इस के मुख्य कारण टॉड साहिब समझे जाते हैं। क्योंकि ज़ालिम सिंह के साथ उन की गाढ़ी मैत्री होने से वे सदा उस का उदय चाहते थे, परंतु पिंडारों और मरहटों का उपद्रव मिटाने में जो सहायता ज़ालिम सिंह की तरफ़ से गवर्मेंण्ट को मिली उस सेवा का यह प्रत्यक्ष फल था। महाराव उम्मेद सिंह जी के पीछे उन के पुत्र महाराव किशोर सिंह जी कोटा राज्य के मालिक हुए। उन को ज़ालिम सिंह का दबाव नापसंद होने से दोनों में परस्पर विरोध बढ़ने लगा। महाराव ने टॉड साहिब को लिखा, कि—" जब गवर्मेंण्ट ने हम को राज्य का मालिक किया है, तो राज्य का सब अधिकार भी हमारे ही हाथ में रहना चाहिये।" परन्तु गवर्मेंण्ट ने अहदनामे के विरुद्ध ज़ालिम सिंहसे अधिकार छीनना न चाहा, इस से विरोध की आग विशेष भड़की, जिस को बुझाने के लिये टॉड साहिब को कोटे जाना पड़ा।

वहां जाकर उन्हों ने महाराव से कहा, कि पृथ्वी सिंह * और गोवर्द्धनदास को निकाल दीजिये, जो इस विरोध के भड़कानेवाले हैं; परन्तु महाराव ने इस को स्वीकार न किया। टॉड साहिब और उन दोनों के बीच महाराव के सन्मुख ही यहां तक बोलचाल बढ़ी कि उन दोनों ने तलवारों पर हाथ डाल दिये। इस पर टॉड साहिब ने उन दोनों को गिरिफ्तार करना चाहा, तो बखेड़ा और भी बढ़ गया, और ज़ालिम सिंह ने महाराव के क़िले पर गोलन्दाज़ी शुरू कर दी।

महाराव अपने प्राण की रक्षा के लिये क़िला छोड़ कर बूंदी चले गये, और कुछ दिन वहां ठहरकर बृंदाबन गये, वहां से हाड़ौती की तरफ़ लौटते हुए मार्ग में क़रीब २००० हाड़ा राजपूत उन से जा मिले। महाराव ने टॉड साहिब को पत्र लिख आठ शर्तें स्वीकार होने पर सफ़ाई करना चाहा, परन्तु साहिब ने उन शर्तों को स्वीकार न किया। ज़ालिमसिंह के कारण महाराव की यह दशा देख लोग उस की निंदा करने लगे, और ७००० हाड़ों ने अपने मालिक के वास्ते प्राण अर्पण करने की प्रतिज्ञा कर ली। ज़ालिमसिंह के पास कोटे की सारी फ़ौज और तोपख़ाना था, और

---

* पृथ्वीसिंह महाराव किशोरसिंह जी का भाई, और गोवर्द्धनदास भी था ज़ालिमसिंह की ख़वास का पुत्र था।

स्वीकार करते हैं, कि महाराव उम्मेद सिंह के बाद कोटे का राज्य उन के बड़े बेटे महाराज कुमार किशोर सिंह और उन के वारिसों को क्रमशः सदा के लिये मिलेगा, और राज्य के कामों का कुल प्रबंध राज राणा ज़ालिम सिंह और उन के पीछे उन के बड़े कुंवर माधव सिंह और उन के वारिसों के आधीन क्रमशः सदा के लिये रहेगा।" यह शर्त कोटा राज्य के लिये हानिकारक और झालावाड़ के नवीन राज्य की जड़ रूप हुई। इस के मुख्य कारण टॉड साहिब समझे जाते हैं। क्योंकि ज़ालिम सिंह के साथ उन की गाढ़ी मैत्री होने से वे सदा उस का उदय चाहते थे, परंतु पिंडारों और मरहटों का उपद्रव मिटाने में जो सहायता ज़ालिम सिंह की तरफ़ से गवर्मेंट को मिली उस सेवा का यह प्रत्यक्ष फल था। महाराव उम्मेद सिंह जी के पीछे उन के पुत्र महाराव किशोर सिंह जी कोटा राज्य के मालिक हुए। उन को ज़ालिम सिंह का दबाव नापसंद होने से दोनों में परस्पर विरोध बढ़ने लगा। महाराव ने टॉड साहिब को लिखा, कि—"जब गवर्मेंट ने हम को राज्य का मालिक किया है, तो राज्य का सब अधिकार भी हमारे ही हाथ में रहना चाहिये।" परन्तु गवर्मेंट ने अहदनामे के विरुद्ध ज़ालिम सिंह से अधिकार छीनना न चाहा, इस से विरोध की आग विशेष भड़की, जिस को बुझाने के लिये टॉड साहिब को कोटे जाना पड़ा

का राजा दुर्गगण * के समय का था। यहां से अनेक उत्तमोत्तम खुदाई के काम की देवमूर्त्तियां वे अपने साथ ले गये। इस वेर उन्हों ने कोटे से थोड़ी दूर कंसवा (कण्वाश्रम) के मंदिर में लगे हुए ब्राह्मण राजा शिवगण के समय के वि० सं० ७९५ † के लेख का पता लगाया, जो उन के गुरु से यथार्थ पढ़ा नहीं गया। फिर कोटे बूंदी होते हुए बीजोल्यां पहुंचे, जहां पर उन्हों ने राजपूताना के प्राचीन इतिहास के लिये एक बड़े ही उपयोगी लेख, अर्थात् चौहान राजा सोमेश्वर के समय के वि० सं० १२२६ के एक बड़े लेख ‡ का पता लगाया, जो

* उक्त लेख का सारांश टॉडसाहिब ने अपने 'राजस्थान' की मद्रास की छपी हुई दूसरी जिल्द के ६७२वें पृष्ठ में दिया है, जिस में पांडव भजन के विरोधी नामक राक्षस के साथ लड़ने की जो वृत्तान्त लिखा है वह कपोल कल्पित है। उक्त लेख का फोटो देखा गया, तो उस में कहीं उस का उल्लेख नहीं मिला। उस का संवत् ७४८ नहीं, किन्तु ७४६ है। ऐसेही नाम आदि बहुधा अशुद्ध दिये हैं, जिस से पाया जाता है कि टॉडसाहिब के गुरु उस लेख को ठीक२ नहीं पढ़ सके।

† टॉड साहिब ने इस लेख का संवत् ५९७ दिया है, जो सर्वथा अशुद्ध है। ऐसे ही यह लेख जाटों का नहीं, किन्तु ब्राह्मण राजा का है। इस का अनुवाद जो टॉड साहिब ने अपने 'राजस्थान' की पहिली जिल्द के शेष संग्रह नं० १ में छापा है वह बिल्कुल अशुद्ध है।

‡ यदि उस लेख का शुद्ध भाषान्तर टॉड साहिब को मिल जाता, तो अवश्य वे चौहानों का प्राचीन इतिहास बड़ी शुद्धता से लिख सके, परन्तु उस के अभाव से वे चौहानों का प्राचीन इतिहास लिखने में उस लेख का परमावश्यकीय वृत्तान्त उद्धृत न कर सके, इतना ही नहीं, किन्तु उस में चौहान राजा वाक्पतिराज के नाम का प्राकृत रूप 'बप्पयराज' देख बप्पयराज को मेवाड़ का 'बापा रावल' मान लिया, और पिछले चौहान राजाओं के नाम बापारावल के वंशजों के न होने

गवर्मेंट ने भी अपनी सेना व तोपख़ाना उस के सहायतार्थ भेजदिया था। ता० १ अक्तूबर को लड़ाई शुरू हुई, जिस में टॉड साहिब भी शामिल थे, ज़ालिमसिंह के साथ ४० तोपें थीं, और महाराव के साथी हाड़ा राजपूतों के पास एक भी तोप न थी, तोभी हाड़े ऐसी वीरता से लड़कर काम आये, कि टॉड साहिब ने भी उन की वीरता की बड़ी प्रशंसा अपने रचे हुए ग्रंथ 'राजस्थान' में की है, वहां से हार खाकर महाराव नाथद्वारे में जा रहे। अंत में टॉड साहिब ने बीच में पड़कर इस विरोध को इस शर्त पर मिटाना चाहा, कि 'महाराव का वार्षिक ख़र्च १५४०००) रुपया नियत किया जावे, और महाराव के खानगी कामों में मुसाहिब, और उस के राज्य संबंधी कामों में महाराव हस्तक्षेप न करें'। यह शर्त स्वीकार करने पर टॉड साहिब ने ता० १६ दिसम्बर के दिन महाराव को पीछा कोटे की गद्दी पर बिठलाया।

कोटे से चल कर टॉड साहिब बाडोली आये, जहां के प्राचीन टूटे फूटे मंदिरों में खुदाई का उत्तम काम देख उस के चित्र लेने की इच्छा से कुछ दिन वहां ठहरगये, और वि० सं० ६८१ का एक शिलालेख भी उन को वहां से मिला। बाडोली से भानपुरा हो कर मालवे में धूमनार की गुफा आदि प्राचीन स्थल देखते हुए झालरापाटन आये, जहां चंद्रावती नगरी के खंडहरों में कई प्राचीन शिलालेख उन को मिले, जिन में सब से पुराना वि० सं० ७४६

का राजा दुर्गगण * के समय का था। यहां से अनेक उत्तमोत्तम खुदाई के काम की देवमूर्त्तियां वे अपने साथ ले गये। इस वेर उन्हों ने कोटे से थोड़ी दूर कंसवा (कण्वाश्रम) के मंदिर में लगे हुए ब्राह्मण राजा शिवगण के समय के वि॰ सं॰ ७९५ † के लेख का पता लगाया, जो उन के गुरु से यथार्थ पढ़ा नहीं गया। फिर कोटे बूंदी होते हुए बीजोल्यां पहुंचे, जहां पर उन्हों ने राजपूताना के प्राचीन इतिहास के लिये एक बड़े ही उपयोगी लेख, अर्थात् चौहान राजा सोमेश्वर के समय के वि॰ सं॰ १२२६ के एक बड़े लेख ‡ का पता लगाया, जो

* उक्त लेख का सारांश टॉडसाहिब ने अपने 'राजस्थान' की मद्रास की छपी हुई दूसरी जिल्द के ६७२वें पृष्ठ में दिया है, जिस में पाण्डव अर्जुन के विरोधी नामक राक्षस के साथ लड़ने की जो वृत्तान्त लिखा है वह कपोल कल्पित है। उक्त लेख का फोटो देखा गया, तो उस में कहीं उस का उल्लेख नहीं मिला। उस का संवत् ७४८ नहीं, किन्तु ७४६ है। ऐसेही नाम आदि बहुधा अशुद्ध दिये हैं, जिस से पाया जाता है कि टॉडसाहिब के गुरु उस लेख को ठीकर नहीं पढ सके।

† टॉड साहिब ने इस लेख का संवत् ५९७ दिया है, जो सर्वथा अशुद्ध है। ऐसे ही यह लेख जाटों का नहीं, किन्तु ब्राह्मण राजा का है। इस का अनुवाद जो टॉड साहिब ने अपने 'राजस्थान' की पहिली जिल्द के शेष संग्रह नं॰ १ में छापा है वह बिल्कुल अशुद्ध है।

‡ यदि उस लेख का शुद्ध भाषान्तर टॉड साहिब को मिल जाता, तो अवश्य वे चौहानों का प्राचीन इतिहास बड़ी शुद्धता से लिख सके, परन्तु उस के अभाव से वे चौहानों का प्राचीन इतिहास लिखने में उक्त लेख का परमावश्यकीय वृत्तान्त उद्धृत न कर सके, इतना ही नहीं, किन्तु उस में चौहान राजा वाक्पतिराज के नाम का प्राकृत रूप 'वप्पयराज' देख वप्पयराज को मेवाड़ का 'बापा रावल' मान लिया, और पिछले चौहान राजाओं के नाम बापारावल के वंशजों के न होने

एक चट्टान पर खुदा हुआ है। वहां से मेनाल नगर के खंडहर देखतेहुए ता० २४ फ़र्वरी सन् १८२२ ई०को बेगूं पहुंचे। टॉड साहिब उस वक़ हाथी पर सवार थे। बेगूं का दर्वाज़ा (रावत् काली मेघ[†] का बनाया हुआ) इतना ऊंचा न था, कि हौदे सहित हाथी आसानी से भीतर जा सके, इसवास्ते महावत ने दर्वाज़े में हाथी ले जाना ठीक न समझा, परन्तु उन्हों ने पहिले एक हाथी को भीतर गया हुआ देख कर महावत की बात पर ध्यान न दे उसे हाथी को भीतर ले जाने की आज्ञा दी। खाई और दर्वाज़े के बीच के पुल पर जाते ही हाथी भड़क गया। महावत ने उस को रोकने का बहुत कुछ प्रयत्न किया, परन्तु वह दर्वाज़े की तरफ़ ही दौड़ा। टॉड साहिब ने भी समय सूचकता से अपने बचावँ का भरसक प्रयत्न

से अनुमान किया, कि ये चौहान राजा मेवाड के आधीन रहे होंगे। उक्त लेख पर से और भी कई ऐसी ही निराधार कल्पना की है, जिन का कारण उस का यथार्थ अनुवाद न होना ही मानना पडता है।

† रावत् मेघ (कालो मेघ) सलूंबर के रावतखेंगार के दूसरे पुत्र गोविंददास का बेटा था। महाराणा अमरसिंह जी के समय उस ने बादशाह जहांगीर की सेना से लड़कर ऊंटाला के पास महावतखां को परास्त किया, और शक्तावतों से बेगूं का इलाक़ा छीन लिया, जो महाराणा ने चौहान राव बल्लु (बेदला वालों के पूर्वज) को दे दिया। इस से अप्रसन्न हो कर वह बादशाह जहांगीर के पास चला गया। काले रंग की पोशाक पहिनने के कारण बादशाह ने उस को कालो मेघ का खिताब, और सन् १६१६ ई० में मालपुरे का पर्गना जागीर में दिया। तीन बरस पीछे महाराणा ने अपने कुंवर करण सिंह को भेज काली मेघ को पीछा अपने पास बुलालिया, और बेगूं का इलाक़ा उस को जागीर में दिया।

किया, परंतु हौदे के टूटते ही वे पुल पर गिर पड़े। वहां से बेहोशी की हालत में उठा कर उन को तंबू में ले गये। दो दिन पीछे प्रकृति-ठीक होने पर जब वे रावत जी से मिलने गये तब उस दर्वाज़े को गिराया हुआ देख कर बड़े दुःखी हुए, क्योंकि किसी प्रसिद्ध पुरुष की याद-गार का नष्ट होना उन को असह्य था। फिर वहां से चित्तौड़ होते हुए ता० ८ मार्च को उदयपुर पहुंचे।

टॉड साहिब को स्वदेश छोड़े २२ वर्ष होचुके थे, जिन में से १८ वर्ष तक पृथक् पृथक् उहदों पर उन का राज-पूतों के साथ बराबर संबंध बना रहा। अपनी सरल प्रकृति और सौजन्यता से वे जहां जहां रहे वहां वहां सर्वप्रिय बनगये थे, और उन को भी राजपूताना और वहां के निवासियों के साथ ऐसा स्नेह हो गया था, कि वे चाहते थे कि मैं अपनी शेष आयु यहीं व्यतीत कर के राज-पूतों की इस वीर भूमि को ही अपने अस्थि अर्पण कर दूं; परंतु इस देश को छोड़ने में दो कारण थे। एक तो यह कि कार्य की अधिकता से शारीरिक आरोग्यता में अधिक विक्षेप पड़जाने से डॉक्टर की सम्मति के अनुसार उन को अपना स्वास्थ्य ठीक करने के वास्ते स्वदेश जाना आवश्यक था; और दूसरा कारण यह भी कहते हैं, कि देशी राजाओं के साथ अधिक मेल मिलाप रखने से गवर्मेंएट को उन की प्रामाणिकता के विषय में सन्देह होने लग गया था, जिस से अप्रसन्न

होकर उन्हों ने गवर्मेंएट की सेवा छोड़ देने का संकल्प करलिया।

राजपूताना में पैर रक्खा उसी दिन से टॉड साहिब ने अपना समय प्रथम भूगोल संबंधी शोधों में लगाया, और अपने साहस व निज के व्यय से भूगोल संबंधी जो सेवा गवर्मेंएट और विद्वान् वर्ग की उन्हों ने की उस का वर्णन तो ऊपर होचुका है, तत्पश्चात् वे राजपूताना के इतिहास का उद्धार करने की इच्छा से ऐतिहासिक शोध में प्रवृत्त हुए। इस काम में उन को यहां तक अभिरुचि थी, कि जहां जहां जाते वहां वहां के वृद्ध और जानकार पुरुषों को बुला कर उन से इतिहास संबंधी क्षत्रियों की वीरता, और भिन्न भिन्न जातियों की रीत भांत, या धर्म संबंधी वृत्तान्त पूछते। प्रत्येक प्राचीन मंदिर, महल आदि स्थानों के बनवानेवालों का यथा साध्य पता लगाते, और लड़ाइयों में मरे हुए पुरुषों के चबूतरे जहां देखते उन पर के लेख पढ़ा कर या लोगों से पूछकर उनका हाल एकत्र करते। अपने गुरु जती ज्ञानचंद्र को, जो उन के वास्ते संस्कृत लेखों को पढ़ते और उन का अनुवाद करते थे, और एक दो पंडितों को सदा साथ रखते थे। जहां ठहरते वहां के सब स्थल वे स्वयं देखते, और उन का हाल पूछकर टिप्पण करलेते थे। दूर दूर के स्थलों में प्राचीन लेखों का पता लगाने के लिये अपने गुरु और पंडितों को भेज देते, और किसी

विशेष उपयोगी प्राचीन लेख की खबर लगती तो आप भी वहां जा कर उस को देख लेते थे। यदि उठाने के लायक़ होता, तो उसे ऊंट पर डालकर अपने साथ लिवा लेते थे, ऐसेही स्थल स्थल पर चारण भाटों को अपने पास बुलाते, उन से क्षत्रियों की वीरता की बातें, गीत, दोहे आदि बड़े प्रेम से सुनते, उनमें से जो विशेष उपयोगी होते उन को लिखवा लेते और उन का सन्मान करते थे। जैसे वे इतिहास के प्रेमी थे वैसे ही उनके एक संबंधी कप्तान वॉग़, जो उन के साथ रहने वाली गवर्मेंएट की सेना के अधिकारी थे, चित्रविद्या में बड़े निपुण थे। वे उन के वास्ते प्राचीन मंदिर, महल, क़िले, मूर्ति आदि उत्तमोत्तम भारतीय शिल्प के कामों के चित्र बड़ी दक्षता से बनादेते थे। टॉड साहिब के 'राजस्थान' के पहली बार छपे हुए पुस्तक में, जो उत्तमोत्तम चित्र पाये जाते हैं, उनमें से अधिकतर उन्हीं कप्तान वॉग़ के क़लम की यादगार हैं, कप्तान वॉग़ के अतिरिक्त घासी नामक देशी चित्रकार भी उन के साथ रहता था। शिल्प के कई अच्छे अच्छे कामों के चित्र उस ने तय्यार किये उन में से भी कितने एक 'राजस्थान' में छपे हैं। इसी तरह राजाओं और प्रतिष्ठित पुरुषों के चित्र, हिन्दी, संस्कृत, अरबी, फ़ार्सी आदि भाषाओं में लिखे हुए ऐतिहासिक और अन्य विषय के ग्रन्थ, प्राचीन ताम्रपत्र, और सिक्कों का संग्रह करते

थे। प्राचीन सिक्कों के वास्ते मथुरा आदि शहरों में उन के एजएट नियत थे, जो ग्रीक, शक आदि प्राचीन राजवंशियों के सिक्के एकत्र कर उन के पास पहुंचाया करते थे। जैन मंदिरों, राजाओं और प्रतिष्ठित पंडितों के प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों के संग्रह वे बड़ी रुचि से देखते, और उनमें से अपने उपयोगी पुस्तक ले लेते, या उन की नक्ल करवा लेते थे, उन की गुणग्राहकता के कारण ऐसी सामग्री सदा उन के पास पहुंचती रहती थी। महाराणा भीमसिंहजी ने इतिहास संबंधी सामग्री एकत्र करने में टॉड साहिब को बड़ी सहायता दी, और अपने यहां के सरस्वती भंडार में से पुराण, महाभारत, रामायण पृथ्वीराज रासा आदि अनेक ऐतिहासिक पुस्तक निकलवाकर आज के पंडितों द्वारा उनमें से सूर्य और चंद्रवंशी राजाओं की वंशावली आदि तय्यार करवा दी। इस अमूल्य सहायता की यादगार में टॉड साहिब ने अपने ग्रंथ 'राजस्थान' की पहिली जिल्द के शुरू में उक्त महाराणा की सवारी का मनोहर चित्र देकर उन के साथ अपनी दृढ़ मैत्री का परिचय दिया है।

इस प्रकार अपने सतत श्रम से टॉड साहिब ने स्वदेश जाने के पूर्व पुराण, रामायण, महाभारत, राजपूताना और बाहिर के अनेक राज्यों और राजवंशियों की ख्यातें; पृथ्वीराज रासा, खुम्माण रासा, हमीर रासा, रतनरासा आदि अनेक रासे; और विजयविलास

सूर्यप्रकाश, जगत विलास, जय विलास, राज प्रकाश, राज प्रशस्ति, नवसाहसांक चरित, कुमारपाल चरित्र, मानचरित्र, हमीर काव्य, राजावली, दोनों * राज तरंगिणी, जयपुर महाराज जयसिंहजी के आश्रय से बना हुआ 'जयसिंह कल्पद्रुम†' नामक पुस्तक, और उन की तय्यार करवाई हुई राजवंशों की वंशावली आदि कईएक इतिहास संबंधी पुस्तकों का संग्रह कर लिया था। महाकवि चन्द बरदाई कृत पृथ्वीराज रासा के, जो उन को बड़ा ही प्रिय था, ३०००० छन्दों का अंग्रेज़ी अनुवाद करलिया। उपरोक्त पुस्तकों के अतिरिक्त काव्य, नाटक, व्याकरण, कोश, ज्योतिष, शिल्प, माहात्म्य और जैन धर्म संबंधी अनेक पुस्तक और अरबी व फ़ार्सी भाषा की कई हस्त लिखित ऐतिहासिक किताबों का भी उत्तम संग्रह किया था। ऐसे ही अनेक प्राचीन स्थलों, राजाओं, और प्रसिद्ध पुरुषों के चित्र, चित्तौरगढ़, मेनाल बीजोल्यां, भैंसरोड़गढ़, बाडोली, मांडलगढ़, कुंभलगढ़, आइतपुर, अहाड़, नाडोल, कंसवा, आदि अनेक स्थलों के शिला लेखों

*कल्हण, जोनराज, श्रीवर और प्राज्यभट्ट, इन चार पंडितों का रचा हुआ "राज तरंगिणी" नामक कश्मीर का इतिहास प्रसिद्ध ही है। 'राज तरंगिणी' नाम का दूसरा पुस्तक जैन पण्डित विद्याधर का बनाया हुआ है।

† 'जयसिंह कल्पद्रुम' रत्नाकर पंडित का रचा हुआ है, जिस में कछवाहों का कुछ इतिहास भी है।

और ताम्रपत्रों की प्रतियां या असल ही लेख, अनेक प्राचीन मूर्तियां और २०००० के क़रीब प्राचीन सिक्के इकट्ठे किये। राजपूताना में रहकर उन्हों ने यही समृद्धि बटोरी, और इसी को अपना जीवन सर्वस्व समझते थे।

स्वदेश जाने के लिये प्रस्थान का दिन नियत कर १५ दिन पहिले वे अपनी इस अमूल्य समृद्धि को लिये डबोक के बंगले * से उदयपुर आये, और सहेलियों की बाड़ी में ठहरे। वहां अपना सामान बंद करा रहे थे, उस वक़ महाराणा भीमसिंह जी उन से रुख़सती मुलाक़ात के लिये गये, तो टॉड साहिब को खातियों के बीच में बैठे हुए देख कर उन को भी हंसी आ गई। उस वक़ महाराणा ने अपने साथ के सर्दारों से कहा, कि "टॉड साहिब ने पांच बरस तक मेवाड़ की सेवा की और उसे तबाही से बचाया, परंतु चलते वक़ उस भूमि की एक चुटकी मिट्टी भी साथ नहीं ले जाते हैं"। टॉड साहिब की ऐतिहासिक सामग्री इतनी चढ़ गई थी, कि विलायत पहुंचने पर उन्हें ७२ पौंड उस के महसूल के देने पड़े।

---

* टॉड साहिब उदयपुर आये। उन दिनों रामप्यारी की बाडी में रहते थे, परन्तु पीछे से महाराणा भीमसिंहजी ने उन के वास्ते उदयपुर से ६ कोस डबोक गांव के निकट के रमणीय स्थान में एक सुंदर बंगला बनवा दिया था, जहां पर वे रहा करते थे। वहां से 'उदयसागर' तालाब और शिकार के लिये जंगल निकट होने से ही टॉड साहिब ने उस स्थान को पसन्द किया था।

ता० १ जून सन् १८२२ ई० को उन्हों ने स्वदेश के लिये उदयपुर से प्रस्थान किया, इस से पूर्व ही अपने ग्रंथ 'राजस्थान' का ढांचा तय्यार कर लिया था। राजपूतों के इतिहास से पूर्ण परिचित होने पर मेवाड़ के महाराणाओं का गौरव उन के हृदय पर अच्छी तरह से अंकित हो गया था, जिस से वे उन का इतिहास सविस्तर लिखना चाहते थे। उन का राज्य प्रथम सौराष्ट्र (काठियावाड़) में रहा जिस की राजधानी वल्लभीपुर से वे मेवाड़ में आये हैं। इस वास्ते टॉड साहिब ने सौराष्ट्र की यात्रा कर वहां के शोध द्वारा उन का कुछ अधिक वृत्तान्त जानने की आकांक्षा से उधर होते हुए विलायत जाना निश्चय किया।

उदयपुर से गोगूंदा, बीजापुर आदि स्थानों में होते हुए वे ता० ६ जून को सिरोही पहुंचे। वहां के राव शिवसिंह जी ने उन का बहुत कुछ आतिथ्य किया। सिरोही राज्य की स्वतन्त्रता की रक्षा टॉड साहिब ही ने की थी। जब कि जोधपुर महाराज मान सिंह जी ने गवर्मेण्ट के साथ अहदनामा हो जाने पर सिरोही राज्य को जोधपुर की आधीनता में लाने का उद्योग किया, और उस के लिये गवर्मेण्ट से पत्र व्यवहार कर यह बतलाना चाहा, कि सिरोही का राज पहिले ही से जोधपुर के आधीन है, इसलिये

अब भी उसी प्रकार रहना चाहिये। इस विषय में उन्हों ने अपनी तरफ़ से कई प्रमाण और तहरीरें भी पेश कीं। यह काम टॉड साहिब के द्वारा होता था, क्योंकि जोधपुर के पोलिटिकल एजण्ट वे ही थे, परन्तु उन की निष्पक्षपात वृत्ति यहां तक थी, कि उन्हों ने पूरे सुबूत के विना जोधपुर का दावा स्वीकार करना न चाहा। जोधपुर के वकील ने यह समझाने की कोशिश की, कि महाराज अभय सिंह जी के समय से ही सिरोही वाले जोधपुर की चाकरी करते और खिराज देते हैं; परन्तु टॉड साहिब जैसे इतिहासवेत्ता के आगे सत्य बात कैसे छिप सक्ती थी? उन्हों ने उत्तर दिया, कि "जोधपुर के महाराजाओं की मातहती में सिरोही की सेना लड़ी है, और गुजरात की लड़ाइयों में अभय सिंह जी के साथ रहकर देवड़ों ने असाधारण वीरता दिखलाई है, यह बात सत्य है; परंतु जोधपुर के इतिहास से ही पायाजाता है, कि उस समय अभयसिंह जी जोधपुर के महाराज नहीं, किन्तु बादशाही फ़ौज के सेनापति थे, और सिरोही की सेना भी बादशाही झंडे के नीचे रह कर लड़ी थी।" ऐसे ही सिरोही से ख़िराज लेने के प्रमाण भी निर्मूल सिद्ध कर दिये; जिस पर जोधपुर की तरफ़ से सिरोही के राव उदयभान जी के हस्ताक्षर की एक तहरीर पेश की गई, जिस में उक्त राव जी ने कितनी

एक शर्तों पर जोधपुर की मातहती स्वीकार कर ली थी। यदि इस समय कोई दूसरा अंग्रेज़ होता तो, जोधपुर का दावा सच्चा समझ लेता, परंतु टॉड साहिब को तो उस तहरीर के लिखे जाने का हाल भली भांति मालूम था, अतएव उन्हों ने स्पष्ट कह दिया कि " यह तहरीर राव उदयभान जी को गंगा जी जाते हुए मार्ग में से कैद कर जोधपुर वालों ने जबरन् लिखवा ली है, इसलिये देवड़े सर्दार इस को रद्दी काग़ज़ के बराबर समझते हैं। " इस प्रकार जोधपुरवालों के सब प्रमाणों को निर्मूल बतला कर उन का दावा ख़ारिज कर दिया। इस पर महाराज मान सिंह जी टॉड साहिब से बहुत अप्रसन्न हुए, परंतु केवल सत्य के पक्षपाती होने से साहिब ने उक्त महाराज की प्रसन्नता वा अप्रसन्नता का कुछ भी संकोच न किया।

सिरोही से वे आबू गये, जहां उन से पहिले कोई यूरोपियन नहीं पहुंचा था। वहां उन को कई शिला लेख मिले, जिन में से मुख्य वि० सं० १२६५ * का परमार राजा धारावर्ष के समय का था। देलवाड़ा गांव में

* यह लेख आबू पर्वत पर ओरिया गांव के पास कनखल तीर्थ के शिव मन्दिर में लगा हुआ है।

विमलशाह * और वस्तुपाल तेजपाल † के बनवाये हुए मन्दिरों की नक्क़ाशी का काम देख कर वे बहुत ही प्रसन्न हुए, और उस की उत्तमता के विषय में जो कुछ उन्हों ने लिखा है वह इस देश की प्राचीन शिल्प विद्या का महत्त्व प्रकट करता है। इन मन्दिरों की नक्क़ाशी टॉड साहिब के चित्त में कहां तक चढ़ी उस का अनुभा इस बात से हो जायगा, कि उन के विलायत पहुंचने पीछे मिसेज़ विलियम हंटर ब्लैर नाम की एक मेम, जो हिन्दुस्तान की यात्रा कर के गई थी, उस ने अपना तय्यार किया हुआ वस्तुपाल के मंदिर का चित्र टॉड साहिब को दिया, जिस से उन को इतना हर्ष हुआ, और उस मेम साहिबा की इतनी क़दर की, कि उन्हों ने अपना 'ट्रैवल्स इन् वेस्टर्न

---

* विमलशाह प्राग्वाट (पोरवाड) जाति का महाजन था, जिस को गुजरात के चौलुक्य राजा भीमदेव प्रथम ने परमारों से आबू का क़िला छीन वहां का दण्डनायक नियत किया था। विमलशाह ने वि॰ सं॰ १०८८ में आबू पर देलवाड़ा गांव में करोड़ों रुपयों की लागत का आदिनाथ का मन्दिर बनवाया।

† वस्तुपाल और उस का छोटा भाई तेजपाल पोरवाड महाजन अश्वराज (आसराज) के पुत्र और गुजरात के धोलका प्रदेश के राणा वीरधवल और वीसल के प्रधान थे। जैन धर्मस्थानों के निमित्त उन के समान द्रव्य व्यय करने वाला दूसरा कोई पुरुष नहीं हुआ। तेजपाल ने कई करोड़ रुपया व्यय कर आबू पर्वत पर अपने पुत्र लूण सिंह के निमित्त 'लूणवसही' नामक नेमिनाथ का मन्दिर बनवाया, जो वि॰ सं॰ १२८७ में समाप्त हुआ था। यह मन्दिर वस्तुपाल, तेजपाल के बनवाये हुए धर्मस्थानों में सर्वोत्तम माना जाता है।

इंडिया ' नामी पुस्तक उसी मैम को अर्पण कर दिया, और उसे कहा कि, तुम आबू गईं इतना ही नहीं किन्तु आबू को इंगलैंड में ले आई हो और वही चित्र अपने उक्त पुस्तक के प्रारंभ में दिया है।

आबू से परमार राजाओं की प्रसिद्ध राजधानी चन्द्रावती * नगरी के खंडहरों को देखते हुए पालनपुर, सिद्धपुर, अनहिलवाड़ा, अहमदाबाद, बड़ौदा आदि स्थानों में हो कर खंभात पहुंचे। वहां से समुद्र मार्ग सौराष्ट्र के दक्षिणी तट पर घोघा के बंदर पर उतरे। जहां से सौराष्ट्र के गोहिलों की वर्तमान मुख्य राजधानी भावनगर की समृद्धि देख सीहोर होते हुए वल्लभीपुर पहुंचे। वह शहर करीब ९ फुट मिट्टी के नीचे दटा हुआ होने से उन को अत्यन्त खेद हुआ। वहां से जैनों के प्रसिद्ध तीर्थ शत्रुंजय होते हुए देवपाटन (सोमनाथ) गये। उस समय सोमनाथ के प्राचीन वैभव का नाम निशान भी न था, किन्तु प्राचीन मंदिर का मस्जिद के आकार में कुछ अंश टूटी फूटी दशा में शेष रह गया था। वहां से एक कोस वेरावल स्थान के एक छोटे से मंदिर में गुजरात के राजा अर्जुनदेव

---

* राजपूताना में चन्द्रावती नाम के दो प्राचीन नगर हैं, जिन में से एक आबू की तलहटी में है, जहां पर पहिले परमार और चौहान (देवड़ा) राजाओं की राजधानी थी। दूसरा झालरापाटन के पास है। परन्तु इस समय दोनों के खण्डहर मात्र पाये जाते हैं, जहां पर कई प्राचीन टूटे फूटे मन्दिर अब तक विद्यमान हैं।

के समय का एक बड़ा ही उपयोगी लेख उन्हें मिला, जिस में हिजूरी सन् ६६२, विक्रम संवत् १३२०, वल्लभी संवत् ९४५ और सिंह संवत् १५१ दिये हुए थे। इस लेख के मिलने से उन्हों ने अपने सौराष्ट्र की यात्रा के श्रम को सफल समझा, और वल्लभी व सिंह संवत् के प्रथम शोधक और निर्णय कर्त्ता वेही ठहरे। सोमनाथ से घूमते घूमते जूनागढ़ पहुंचे, जहां पर 'कोडिया खापरा' की प्रसिद्ध प्राचीन बौद्ध गुफाओं के और गिरनार के मार्ग के पास एक बड़े चट्टान पर अशोक की धर्माज्ञाओं के पास क्षत्रप * वंश के राजा

* संस्कृत शब्दों की रचना के अनुसार 'क्षत्रप' शब्द का अर्थ 'क्षत्रिय जाति का रक्षण कर्त्ता' होता है (क्षत्रं पातीति क्षत्रपः), परन्तु वास्तव में यह शब्द संस्कृत का नहीं, किन्तु ईरान की भाषा के 'सत्रप' शब्द का संस्कृत शैली का रूप है। ईरान में जिलों के हाकिमों को 'सत्रप' कहते थे, इस वास्ते सिकन्दर बादशाह ने ईरान आदि देशों को विजय कर वहां के भिन्न भिन्न विभागों पर जो शासनकर्ता नियत किये वे वहां की प्रणाली के अनुसार 'सट्रप' ('त' के अभाव से 'ट') कहलाने लगे। उसी समय से यूनान के साहित्य में 'सट्रप' शब्द का प्रवेश हुआ। फिर वहां से इङ्गलैण्ड आदि देशों में भी उस शब्द का उसी अर्थ में प्रचार हुआ। हिन्दुस्तान में ग्रीक (यूनानी) और शक राजाओं का अधिकार होने पर उन की तरफ़ से नियत होनेवाले भिन्न २ प्रदेशों के शासनकर्ता भी 'सत्रप' कहलाते रहे। इस प्रकार उक्त शब्द का इस देश में प्रवेश होने पर यहां के विद्वानों ने उस को 'क्षत्रप' बना कर संस्कृत शब्दों की पंक्ति में रख दिया, जैसे कि मुसल्मानों के राज्य के समय में उन के खिताब 'अमीर' को 'हम्मीर' और 'सुल्तान' को 'सुरत्राण' बना कर संस्कृत साहित्य में स्थान दिया गया। शकों का मुख्य राज शिथिल होने पर उन के शक जाति के क्षत्रप स्वतंत्र हो गये। इन क्षत्रपों ने स्वतंत्र

रुद्रदामा * के, और गुप्त राजा स्कन्द गुप्त † के प्राचीन लेख उन्हों ने देखे, परन्तु उस समय उन को पढ़ानेवाला कोई न था इसलिये उन के आशय को न जान सकने से टॉड साहिब को बड़ा खेद हुआ। गिरनार पर्वत पर जैन और हिन्दुओं के मन्दिर, और चूड़ासमा (यादव) राजाओं के महल आदि देख जेठवों की प्राचीन राजधानी गूंमली आदि स्थानों में होते हुए द्वारिका गये, जहां से बेट हो कर समुद्र मार्ग कच्छ राज्य के मुख्य बन्दर मांडवी में उतरे। वहां से भुज में जाड़ेजों के राज्य की समृद्धि देख, पीछे मांडवी आकर जहाज पर चढ़े, और ता० १४ जनवरी सन् १८२३ को बंबई पहुंच गये। इस यात्रा में भी उन्हों ने

राज्य कायम करने पर भी इस देश के 'महाराजाधिराज' 'परम भट्टारक' 'परमेश्वर' आदि खिताब धारण नहीं किये, किन्तु ऐसी दशा में अपने तईं 'महा क्षत्रप' लिखते रहे। उन के लेख और सिक्कों के अतिरिक्त 'क्षत्रप' शब्द संस्कृत के साहित्य भर में कहीं नहीं मिलता। तक्षशिला (पञ्जाब में), और मथुरा के क्षत्रपों के राज्य तो शीघ्रही अस्त हो गये थे, परन्तु मालवा, गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, और राजपूताना के बड़े विभाग पर विक्रम संवत् की दूसरी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लगा कर पांचवीं शताब्दी के मध्य तक शक जाति के क्षत्रपों का राज्य रहा था, जिस की समाप्ति गुप्त वंश के राजा चन्द्रगुप्त दूसरे ने, जिस का प्रसिद्ध नाम विक्रमादित्य था, शक संवत् ३२० (वि० सं० ४५५) के क़रीब की। उसी समय से शकों का राज्य हिन्दुस्तान से उठ गया।

* क्षत्रप राजा रुद्रदामा का लेख शक संवत् ७२ (वि० सं० २०७) से कुछ पीछे का है।

† स्कन्दगुप्त का लेख गुप्त संवत् १३८ (वि० सं० ५१४) का है।

कई प्राचीन लेख, सिक्के, ऐतिहासिक पुस्तक आदि संग्रह किये थे। इस यात्रा का सविस्तर वृतान्त उन्हों ने अपने "ट्रैवल्स इन् वेस्टर्न इण्डिया" (पश्चिमी हिन्दुस्तान की यात्रा) नामक बड़े पुस्तक में लिखा है, जो हर एक विद्यानुरागी और इतिहास प्रेमी के पढ़ने योग्य है। तीन सप्ताह के क़रीब बंबई में रह कर टॉड साहिब ने स्वदेश को प्रस्थान किया। जहां तक जहाज़ पर से उन को भारत भूमि का तट दीखता रहा, वे इस देश में फिर आने और राजपूतों में रह कर उन के भलाई करने के विचार में लीन हुए एक टक किनारे की ओर देखते रहे।

टॉड साहिब के इंग्लैण्ड में पहुंचने से थोड़े ही दिन पूर्व (सन् १८२३ ई० के मार्च महीने में) लंडन नगर में 'रॉयल एशियाटिक सोसाइटी' नामक सभा स्थापन हुई थी। विद्यानुराग से वे भी जाते ही उक्त सभा के सभासद हो गये, और थोड़े ही दिनों में उस के पुस्तकालयाध्यक्ष (लाइब्रेरियन्) बनाये गये, और जहां तक उन का शरीर नैरोग्य रहा वे उस पद पर बने रहे। सन् १८२४ में उन्हों ने हांसीहिसार के क़िले से मिले हुए चौहान राजा पृथ्वीराज * के समय के

* यह लेख शहाबुद्दीन गोरी से लड़नेवाले प्रसिद्ध पृथ्वीराज के समय का नहीं, किन्तु अर्णोराज (आनाजी, आनल देव) के बड़े पुत्र जगदेव के बेटे पृथ्वीराज के समय का है, जिन को पृथ्वीराज, पृथ्वीदेव, या पृथ्वीभट भी लिखते

वि० सं०१२२४ माघ शुदी ७ के लेख पर उक्त सभा के सामने एक निबंध पढ़ा, जिस से विद्वान् वर्ग में उन की बड़ी प्रशंसा हुई; क्योंकि उस समय तक यूरोपवाले राजपूतों के इतिहास से बिल्कुल अपरिचित थे। चौहानों के प्राचीन इतिहास की पूरी सामग्री पास न होने से उक्त लेख के पृथ्वीराज को टॉड साहिब ने शहाबुद्दीन गौरी से लड़नेवाले प्रसिद्ध पृथ्वीराज मान लिया, और उन की यह भूल अब तक यूरोपियन और देशी शोधकों में बराबर चली जाती है। उसी वर्ष के जून महीने में उज्जैन से मिले हुए परमार राजाओं के तीन * ताम्रपत्र और मधुकर गढ़ से मिला हुआ

थे, और जो अर्णोराज के दूसरे बेटे वीसलदेव (विग्रहराज चौथे) के बालकपुत्र अमर गांगेय से राज्य छीन अजमेर के राज्य सिंहासन पर बैठे थे। वे विक्रम संवत् १२२० या १२२१ से १२२६ के प्रारंभ तक राज्य करते रहे। उन के पीछे अर्णोराज (आनाजी) के तीसरे पुत्र सोमेश्वर को राज्य मिला। सोमेश्वर के समय के विक्रम संवत् १२२६, १२२८, १२२९, और १२३४ के लेख मिल चुके हैं, उन का देहान्त संवत् १२३६ में हुआ, और उसी वर्ष उन के पुत्र प्रसिद्ध पृथ्वीराज का बाल्यावस्था में राज्याभिषेक हुआ था, ऐसा चौहान राजाओं के लेख आदि से निर्णय होता है, और गुजरात के जैन ग्रन्थकारों ने भी प्रसिद्ध पृथ्वीराज के राज पाने का संवत् १२३६ दिया है, अतएव हांसी के किले के लेख को शहाबुद्दीन के प्रतिपक्षी पृथ्वीराज के समय का मानना भ्रम है।

* इन में से एक परमार राजा यशोवर्मदेव का विक्रम संवत् ११९२ का, दूसरा जयवर्मदेव का (केवल पहिला पत्रा मिला, जिस से संवत् का निश्चय नहीं हुआ), और तीसरा महाकुमार लक्ष्मी वर्मदेव का विक्रम संवत् १२०० श्रावण शुक्ल १५ का था।

उसी वंश का एक शिला लेख * उन्हों ने उक्त सभा को भेंट किया, और उन के आशय पर एक निबंध पढ़ा, जिस से मालवे के परमार राजाओं का बहुत कुछ प्राचीन इतिहास प्रसिद्धि में आगया।

टॉड साहिब ता० १ मई सन् १८२४ को मेजर, और ता० २ जून सन् १८२६ को लेफ्टनेण्ट कर्नल हुए। अपनी ३ बरस की छुट्टी समाप्त होने पर उन्हों ने अपने पूर्व संकल्प के अनुसार ता० २८ जून सन् १८२५ को गवर्मेण्ट की सेवा का परित्याग किया। उन के राजपूत मित्र उन के लौटने की सदा प्रतीक्षा करते थे, परन्तु शरीर नीरोग न रहने के कारण टॉड साहिब को हिन्दुस्तान में लौट आने का विचार छोड़ना पड़ा।

यहां से जो २०००० के क़रीब प्राचीन सिक्के वे अपने साथ ले गये थे उन में से कितने एक ग्रीक, शक, और हिन्दू राजाओं के सिक्कों † के विषय में

* मधुकर गढ़ का शिला लेख परमार राजा नरवर्मदेव के समय का विक्रम संवत् ११६४ पौष शुक्ल १५ का है, जिस में सिन्धु राज से लगा कर नरवर्मदेव तक के मालवा के राजाओं की नामावली दी है।

† टॉड साहिब के संग्रह में से बहुत से ग्रीक, शक, और तुरुष्क राजाओं के सिक्कों पर एक ओर प्राचीन ग्रीक लिपि में ग्रीक भाषा के, और दूसरी तरफ़ फ़ारसी की नाईं उलटी लिखी जानेवाली गान्धार (खरोष्टी) लिपि में संस्कृत मिश्रित प्राकृत भाषा के लेख थे, परन्तु उस समय गान्धार लिपि की वर्णमाला का ज्ञान न होने से उस लिपि के लेखों का पढ़ा जाना असम्भव था, इसलिये टॉड साहिब ने अपना निबन्ध केवल ग्रीक लेखों के आधार पर लिखा था।

एक निवंध लिख कर उन्हों ने रॉयल एशियाटिक सोसाइटी में पढ़ा, जिस की गणना सर्वोत्तम निवन्धों में हुई। उस निबंध से यूरोप भर के साक्षर वर्ग में उन की विद्वत्ता की बड़ी प्रशंसा हुई, और वही निबंध हिन्दुस्तान में रहनेवाले यूरोपियन विद्वानों में प्राचीन सिक्के एकत्र करने का शौक बढ़ाने का कारण हुआ, जिस से इस देश के प्राचीन इतिहास संबंधी कई नवीन बातें मालूम हुईं, और होती जाती हैं, उन्हीं सिक्कों में से ग्रीक और शक राजाओं के सिक्कों पर फ्रेंच विद्वान् ए० डब्ल्यु० वान शीगल ने भी एक निबंध तय्यार कर पैरिस नगर की एशियाटिक सोसाइटी की सभा में पढ़ा।

ता० १६ नवंबर सन् १८२६ को उन्हों ने ४४ वर्ष की अवस्था में लंडन नगर के डॉक्टर क्लटर बक की पुत्री से विवाह किया, और थोड़े ही दिनों पीछे वे दोनों अपने स्वास्थ्य को सुधारने की इच्छा से यूरोप के देशों की सैर के लिये रवाना हुए। इस यात्रा में टॉड साहिब सेंधिया के प्रसिद्ध फ्रेंच जनरल काउंट डी बोइनी से मिले थे, जिस की तय्यार की हुई सेना ने सन् १७६० ई० में मेड़ते * की लड़ाई में कई हज़ार

* यह लड़ाई जोधपुर के महाराज विजय सिंह जी और माधवराव सेन्धिया के बीच हुई थी, जिस में ४००० राठोड़ बड़ी वीरता से लड़कर काम आये। यह विजय माधवराव को अपने फरांसीसी जनरल डी बोइनी की तय्यार की

राठौड़ों का नाश किया था। दो दिन तक वे उक्त जनरल के यहां मेहमान रह कर फिर कुछ दिन मिलान नगर में रहे। उस समय श्वास की बीमारी से तक्लीफ़ होने पर भी "बाल्टिक समुद्र के तट पर बसनेवाली सू, सुडि, सुश्रोनिस, आसि, यूट, जट और गॉथ आदि यूरोप की प्राचीन क़ौमों का मूल स्थान एशिया था" इस विषय पर फ्रेंच भाषा में एक निबंध लिख कर टॉड साहिब ने पेरिस नगर की एशियाटिक सोसाइटी में भेजा, जो सन् १८२७ ई० के मई मास के 'जर्नल एशियाटिक' में छपा है। सन् १८२८ ई० में "मेवाड़ के त्योहार" और "इलोरा की गुफाओं की कितनीएक मूर्त्तियों पर विचार", ये दो निबंध रॉयल एशियाटिक सोसाइटी में पढ़े।

स्कॉटलैण्ड के मोण्ट्रोज़ नगर के पास एक स्थान में खोदते समय एक मुद्रिका निकल आई थी, जो काउण्टेस ऑफ़ कैसिली ने कर्नल फ़िट्ज़ क्लैरन्स (अर्ल ऑफ़ मन्स्टर) को बतलाई। उन्हों ने उस को हिन्दू शैली की समझ कर टॉड साहिब के पास भेज लिखा कि आप हिन्दुस्तान के इतिहास और प्राचीन विषयों के बड़े ज्ञाता हैं, अतएव इस मुद्रिका संबंधी अपने विचार को सोसाइटी में प्रकट कीजिये। टॉड साहिब ने

हुई मरहटी सेना से प्राप्त हुई थी, जिस को यूरोप की रीति पर युद्ध विद्या सिखलाई गई थी।

उस मुद्रिका को देख निश्चय किया, कि दो नंदी के ऊपर जलाधारी सहित शिव लिंग, और उस के आस पास सर्प लिपटा हुआ होने से अवश्य वह किसी शिव-भक्त की होगी। सन् १८३० ई० में उक्त मुद्रिका के विषय में, और "यूनान के हर्क्युलिस और हिन्दुस्तान के बलदेव की ऐक्यता" पर निबंध पढ़े।

सन् १८२६ ई० में उन्हों ने राजपूतों की कीर्ति के जयस्तम्भ रूप अपने "राजस्थान" नामक बड़े ग्रन्थ की पहिली जिल्द निज व्यय से छपवा कर प्रतापी बृटिश राज्य के सार्वभौम श्रीमान् चतुर्थ ज्यार्ज को, और सन् १८३२ ई० में उस की दूसरी जिल्द श्रीमान् चतुर्थ विलियम को अर्पण की। इस पुस्तक के प्रकट होने से यूरोप, अमेरिका और हिन्दुस्तान के साक्षर वर्ग में उन की बहुतही प्रशंसा हुई, और साथ ही राजपूत वीरों की कीर्ति, जो हिन्दुस्तान में सीमा बद्ध हो रही थी, सर्व भूमण्डल में फैल गई। उक्त पुस्तक के प्रकट होने के पूर्व राजपूताना के इतिहास का कोई ग्रन्थ नहीं बना था, और अब तक भी राजपूताना के इतिहास सम्बन्धी जो कई छोटे बड़े पुस्तक हिन्दी, उर्दू, गुजराती, मराठी, बंगला, अंग्रेजी, आदि भाषाओं में प्रकट हुए हैं वे बहुधा टॉड साहिब के 'राजस्थान' के छाया रूप हैं, जो अब तक एक प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। इस समय गवर्मेण्ट की बड़ी सहायता, तथा देशी

और विदेशी विद्वान् शोधकों के श्रम से भारतवर्ष के हर एक विभाग के प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास संबंधी सामग्री बहुत कुछ प्रसिद्धि में आ चुकी है, जिस से अब इतिहास लिखनेवाले थोड़े से श्रम से बहुत कुछ सहायता प्राप्त कर सके हैं; परन्तु टॉड साहिब ने तो अपना अपूर्व ग्रन्थ ऐसे समय में लिखा था, कि जब कुछ भी सामग्री कहीं से तय्यार मिलने की सम्भावनाही नहीं थी। उस समय तक केवल १५ जिल्दें 'एशियाटिक रिसर्चेज' की छपी थीं, जिन में राजपूताना के इतिहास में उपयोगी होने योग्य केवल तीन लेख देहली की प्रसिद्ध फीरोज़शाह की लाट पर खुदे हुए चौहान राजा आन्नलदेव (आनाजी, अर्णोराज) के द्वितीय पुत्र वीसलदेव * के छपे थे, वे भी शुद्ध पढ़े न

* चौहान वंश में चाहमान से लगा कर प्रसिद्ध पृथ्वीराज तक विग्रहराज नाम के ४ राजा हुए, और चारोंही वीसलदेव कहलाते थे। पृथ्वीराज रासे में केवल एकही 'वीसलदेव' का होना लिखा है, जिस को प्रामाणिक मान टॉड साहिब ने उक्त लाट पर के लेखों को पृथ्वीराज रासावाले वीसलदेव का होना अनुमान किया है। परन्तु उक्त लेखों का संवत् १२२० रासावाले वीसलदेव के समय से नहीं मिलता था, इस वास्ते उन्हों ने यह कल्पना की कि कदाचित् उक्त लेखों के संवत् में अशुद्धि हुई हो, और सही संवत् १२२० हो। वे लेख प्रथम पंडित राधाकान्त शर्मा ने पढ़े, उस वक्त तीसरे लेख के दूसरे श्लोक में से "ब्रूते सम्प्रति चाहमानतिलक" को गलती से "प्रतिवाहमानतिलकः" पढ़ लिया, और उन के पढ़ने के अनुसार उस का अंग्रेजी अनुवाद जो 'एशियाटिक रिसर्चेज' की प्रथम जिल्द में सर विलियम जॉन्स ने छापा, उस में भी वैसाही छप गया। टॉड साहिब ने उन लेखों के अंग्रेजी अनुवाद के आधार पर लिखते समय 'प्रतिव' शब्द से 'पृथ्वीराज' ग्रहण कर

जाने से उलटे राह भुलाने वाले हुए। ऐसी दशा में उस अपूर्व ग्रंथ के वास्ते सारी सामग्री उन्हों ने अपने ही श्रम से एकत्र की, और उस में जितने लेख दान-पत्र आदि से सार उद्धृत किया गया है, उन सब के प्रथम शोधक भी टॉड साहिब ही थे। आज तक कोई भी यूरोपियन, अथवा देशी शोधक ऐसा भाग्यशाली नही हुआ, कि ऐतिहासिक सामग्री संग्रह करने में उन की बराबरी कर सके। इस वास्ते उन के श्रम की जितनी प्रशंसा की जावे, थोड़ी है।

राजपूताना में रहने के सबब वे यहां की भाषा से भली भांति परिचित हो गये थे, परन्तु संस्कृत का ज्ञान न होने से संस्कृत पुस्तक, लेख, और ताम्रपत्रों का सारांश तय्यार करने में उन को अपने गुरु यति ज्ञानचन्द्र परे भरोसा रखना पड़ता था। ज्ञानचन्द्र

यह लिख दिया, कि उस का पहिला श्लोक वीसलदेव और दूसरा पृथ्वीराज के विषय का होना चाहिये, और उसी अनुमान के आधार से उन्हों ने संवत् १०७८ से ११४२ तक वीसलदेव का विद्यमान होना मान उन का देहली के तवर राजा जयपाल, गुजरात के सोलंकी राजा दुर्लभ, और भीम, धार के परमार भोज, और उदयादित्य, और मेवाड के रावल पद्मसिंह, और तेज सिंह का समकालीन होना लिख दिया, परन्तु उक्त लेखों के संवत् को ११२० मानना और उन में से एक लेख के दूसरे श्लोक में पृथ्वीराज का वर्णन है, ऐसा अनुमान करना भ्रम है, क्योंकि उन में से दो लेखों में संवत् १२२० दिया है (एक मे संवत् नहीं है), और बहुत स्पष्ट है। उन में देहली आदि उत्तर के देशों को विजय करनेवाले महाप्रतापी चौहान राजा वीसलदेव चौथे (आनलदेव के पुत्र) का वर्णन है, और पृथ्वीराज का नाम कहीं नहीं है।

भाषा कविता के प्रेमी और ज्ञाता थे, परन्तु प्राचीन लेखों को भली भांति नहीं पढ़ सकते थे। ऐसे ही उन को संस्कृत का ज्ञान भी साधारण ही था, इसलिये टॉड साहिब की संग्रह की हुई सामग्री में से संस्कृत पुस्तक, लेख आदि का वे अधिक उपयोग न कर सके, और जो लेख आदि ज्ञानचन्द्रजी ने पढ़े उन में बहुत सी अशुद्धियां रह गई, वे 'राजस्थान' में ज्यों की त्यों दर्ज हैं। 'राजस्थान' की पहिली जिल्द के अन्त में ७ लेखों का अनुवाद छपा है, उन में से ४ लेख * उपलब्ध हो चुके हैं, जिन से पाया जाता है कि जितने अधिक पुराने वे लेख हैं उतनी ही अधिक अशुद्धियां उन के पढ़ने में हुई हैं। उन में से कंसवा का लेख जो अधिक पुराना है, ठीक पढ़ा न जाने से उस में कहीं जाटों का नाम निशान न होने पर भी टॉड साहिब ने उस को जाटों † का ठहरा दिया। ऐसेही उस के तेरहवें

* कोटा नगर से कुछ दूर कंसवा (कण्वाश्रम) के मन्दिर में लगा हुआ ब्राह्मण राजा शिव गण के समय का मालव (विक्रम) संवत् ७९५ का (टॉड साहिब ने संवत् ५९७ दिया है वह अशुद्ध है) लेख, चित्तौड़ के क़िले पर के समिद्धेश्वर नामक शिव मन्दिर (ब्रह्मा का नहीं) में लगा हुआ गुजरात के चौलुक्य (सोलंकी) राजा कुमारपाल के समय का वि० सं० १२०७ का लेख, पट्टन सोमनाथ के निकट वेरावल स्थान के एक छोटे से मन्दिर में लगा हुआ गुजरात के चौलुक्य राजा अर्जुनदेव के समय का वि० सं० १३२० का लेख, और नाडोल के चौहान राजा आल्हण देव के समय के सं० १२१८ के ताम्रपत्र का फोटो मेरे देखने में आया है।

† उक्त लेख के दूसरे श्लोक के अन्त में "पांतु भंभोर्जटा वः" और तीसरे

श्लोक में " देगिणीनाम तस्यासी धर्मपत्नी द्विजोद्भवा " खुदा है, जिस में से " द्विजोद्भवा " को " यदूद्भवा " पढ़ जाटों का यादवों के साथ विवाह होना अनुमान कर जाटों की राजपूतों में गणना कर ली। यह बड़ी भारी भूल उक्त लेख का शुद्ध भाषान्तर न मिलने से हुई। ऐसी ही और भी बहुत सी अशुद्धियां उक्त पुस्तक में लेख आदि के शुद्ध भाषान्तर के अभाव से हुई हैं। संस्कृत का ज्ञान न होने से उन्हों ने कई शब्दों के मनमाने अर्थ * किये हैं, कई प्रसिद्ध स्थानों के प्राचीन नाम † कल्पित धरे हैं, राजपूतों और मध्य एशिया व यूरोप की प्राचीन कौमों के रीत रवाज आदि का मिलान करने में खींच ताण की है, दृष्टि दोष से अथवा नक्ल करने में भूल हो जाने से भी कई अशुद्धियां ‡

श्लोक के अन्त में " शंभोर्जटा पांतु वः " है। 'जटा' को 'जट' पढ कर टॉड साहिब ने उक्त लेख को जाटों का ठहराया हो, ऐसा अनुमान होता है, क्योंकि उस लेख में 'जटा' शब्द के सिवाय कहीं 'जाटों' का नाम या उस से मिलता हुआ कोई शब्द नहीं है।

* 'ग्रीस' का अर्थ पर्वत, 'ककुत्स्थ' का कुशसम्बन्धी, 'द्वारिका नाथ' का ईश्वर का द्वार, 'अभदेव' का अभयदाता, 'हस्पति' का अर्थ ढेल का मालिक आदि।

† 'मंडोर' (मांडव्यपुर) के वास्ते मंदोदरी, 'जालोर' (जावालिपुर) के वास्ते जालीन्द्र, 'नरवर' (नलपुर) के वास्ते निषिद आदि।

‡ 'भरत' (शकुन्तला का पुत्र) को शकुन्तला का पति लिखा है, 'दुष्यन्त' को शकुन्तला का पिता, गुजरात के चौलुक्य राजा कुमारपाल का चौहान होना, और चौलुक्य (सोलंकी) खानदान में गोद जाना, मालवा के पर॥र

उस ग्रन्थ में रह गई हैं, कई स्थलों पर अनिश्चित दंतकथाओं को प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना मान लिया है, और कई और और अशुद्धियां भी पाई जाती हैं, तिस पर भी उन का पुस्तक अपूर्व है, और उस में राजपूतों के साथ उन का सद्भाव यहां तक प्रकट होता है, कि यदि कोई अपरिचित पुरुष कर्त्ता का नाम देखे विना उस को पढ़ जावे, तो अवश्य उसे यही अनुमान होगा, कि वह पुस्तक किसी राजपूत का लिखा हुआ है। उस की उत्तम लेखन शैली भी पाठकों को मुग्ध कर देती है।

इंग्लैण्ड में रहने के समय टॉड साहिब का स्वास्थ्य ठीक न रहने पर भी वे अपना समय विद्यानुराग में ही व्यतीत करते रहे। "राजस्थान" छप जाने के पीछे उन्हों ने चंद बरदाई के पृथ्वीराज रासे का अंग्रेजी अनुवाद छपवाने के इरादे से नमूने के तौर उक्त महाकाव्य के ५० वें 'संयोगता नेम' प्रस्ताव को कविताबद्ध अंग्रेज़ी अनुवाद कर यूरोपियन विद्वान हिन्दी

राजा भोज (सिन्धुराज के पुत्र) को मुंज (सिन्धुराज का बड़ा भाई) का पुत्र, कार्तिक स्वामी को सात मुख वाला, राधिका को नन्द गोप की पुत्री आदि।

(गुजरात के चौलुक्य (सोलंकी) राजा सिद्धराज जयसिंह के पुत्र न होने से उस के पीछे कुमारपाल गुजरात के राज्य सिंहासन पर बिठलाया गया, जो सिद्धराज जयसिंह के चचा हरपाल के पुत्र त्रिभुवनपाल का बेटा था, अतएव उस को चौहान लिखना भूल है।)

काव्य का यथार्थ भाव और उस की उत्तमता को समझ सकें, ऐसी आवश्यकीय टिप्पणी सहित छपवा कर अपने मित्रों में वितरण किया, जो उन को बहुत ही प्रिय हुआ, और 'एशियाटिक जर्नल' की २५ वीं जिल्द में वह दूसरी बार छापा गया। यह काम भी बहुत समय और व्यय का था, तो भी उस को पूर्ण करने को वे कटिबद्ध थे, परन्तु अचानक मृत्यु हो जाने से टॉड साहिब का वह कार्य अपूर्ण ही रह गया।

सन् १८३४ ई० के शीतःकाल में रोम नगर में रह कर "पश्चिमी हिन्दुस्तान की यात्रा" (Travels in 'Western India) नामक अपने दूसरे पुस्तक का बहुत अंश लिख लिया, और सन् १८३५ ई० के सितंबर मास में वहां से लौट कर अपनी माता से मिलने के निमित्त हैम्पशायर को गये, जहां पर उक्त पुस्तक को उन्हों ने समाप्त किया। फिर लंडन नगर के 'रिजेंट पार्क' नामक मुहल्ले में एक मकान खरीद लिया था, जहां रह कर अपने नवीन ग्रंथ * को छपवाने की इच्छा से ता० १४ नवंबर को वे लंडन नगर में आये। उस समय उन का स्वास्थ्य अच्छा था, परन्तु दोही दिन के पीछे ता० १६ नवंबर सन् १८३५ ई० को लॉम्बर्ड

---

* टॉड साहिब का नवीन ग्रन्थ "ट्रेवल्स इन वेस्टर्न इण्डिया" (पश्चिमी हिन्दुस्तान की यात्रा) उन के देहान्त के पीछे सन् १८३९ ई० में छपा।

स्ट्रीट के साहूकार मेसर्स राबर्ट ऐराड कम्पनी के यहां अपने लेन देन का हिसाब कर रहे थे कि वहीं एका-एक मिरगी की बीमारी का आक्रमण हुआ, जिस से २७ घंटे मूर्छित रहने के उपरान्त ता० १७ नवंबर को ५३ वर्ष की अवस्था में अपनी स्त्री, दो बालक पुत्र और एक पुत्री को छोड़ कर इस असार संसार से प्रयाण कर गये।

उन का क़द मध्यम दरजे से कुछ बड़ा था। शरीर के वे हृष्ट पुष्ट और बलवान्, सदा प्रसन्न चित्त रहनेवाले और चेहरे से प्रभावशाली दीख पड़ते थे। हिन्दुस्तान और राजपूताना संबंधी शास्त्रीय विषयों पर वादानुवाद करते समय उन की मुखमुद्रा पर अपूर्व उल्लास झलक आता था। वे शोधक वर्ग के अग्रणी, बहुश्रुत, यूरोप और एशिया खंड के इतिहास के बड़े ही प्रेमी, और असाधारण वेत्ता, विद्यारसिक, वीरता की क़दर करने-वाले और क्षत्रिय प्रकृति के निरभिमानी पुरुष थे। स्वभाव उन का बहुत ही सरल था। देशियों के साथ इतनी प्रीति का बर्त्ताव करते और हिल मिल कर रहते थे, कि थोड़े ही समय में राजा से रंक तक के दिल उन्हों ने अपनी तरफ़ खींच लिये थे। जहां जहां वे जाते या ठहरते वहां वहां पर लोगों की भीड़ लग जाती थी, और वे भी उन के बीच में बैठ कर बड़े प्रेम के साथ सब से बात चीत करते थे। मुसाफ़िरी में

अगुओं के तौर पर साथ रहनेवाले भील, मीणे, मेर वगैरा लोग रात्रि में अग्नि जला कर बैठे हुए शीत निवारण करते तो आप भी उन के पास जा बैठते, और उन के रीत रवाज आदि की बातें उन से पूछते रहते। मार्ग में किसी दीन दुखियारे को देखते तो उस के सुख दुःख का वृत्तान्त पूछ कर उस की सहायता करते थे। उन का अधिक रहना मेवाड़ में हुआ, जहां वे इतने लोकप्रिय हो गये थे, कि जब वे किसी गांव में जाते तो लोगों के झुंड के झुंड उन की पेशवाई को आते, और कई गांवों में तो देशी रवाज के अनुसार गीत गाती हुई ग्रामीण स्त्रियां उन को आकर कलश बंधाती थीं। टॉड साहिब को भी लोगों के इस प्रेमपूर्ण सन्मान से इतनी प्रसन्नता थी, कि इस का वर्णन उन्हों ने कई जगह आदर के साथ किया है। पादरी हेबर साहिब टॉड साहिब के विलायत जाने के दो वर्ष पीछे राजपूताने में आये। वे लिखते हैं, कि "यहां के लोग टॉड साहिब को बहुत याद करते, और उन के लौटने के समाचार मुझे पूछते थे। जब मैं उन को यह कहता, कि अब टॉड साहिब के इस देश में आने की संभावना नहीं है, तो यह सुन कर लोगों को बहुत खेद होता था।"

टॉड साहिब को अपनी प्रसिद्धि की कुछ भी तृष्णा न थी। पिंडारों के साथ लड़ाई में जो असबाब लूट

का हाथ लगा उस के मूल्य से कोटा से ६ मील पूर्व चन्द्रभागा नदी पर पुल बनवाना निश्चय किया गया। लोगों ने चाहा, कि उस का नाम 'टॉड साहिब का पुल' रक्खा जावे, परन्तु उन्हों ने इस बात को स्वीकार न कर उस का नाम 'हेस्टिंग्ज़ ब्रिज' रक्खा। नव्वाब जमशेद खां * के जुल्म से भीलवाड़ा ऊजड़ हो गया था, परन्तु टॉड साहिब ने मेवाड़ में आने के पीछे महाराणा भीमसिंह जी से सिफ़ारिश कर वहां फिर बसनेवाले व्यापारियों को कुछ समय तक वाणिज्य के पदार्थों का महसूल छुड़वाकर उन की हर तरह से तसल्ली करवा दी, और उस शहर को पीछा बसवाया। जब उन का दुबारा वहां जाना हुआ, तो वहां के लोगों ने उन का बड़ा सन्मान किया और चाहा कि भीलवाड़े का नाम टॉडगंज रक्खा जावे; परन्तु उन्हों ने इस को स्वी न कर यही उत्तर दिया, कि इस नगर का पुनरुद्धार केवल महाराणा साहिब के अनुग्रह से हुआ है। सन् १८१८ ई० में जब अजमेर पर सर्कार अंग्रेज़ी का अधिकार हुआ, तो सर्कार की तरफ़ से मि० वाइल्डर उस प्रान्त का प्रबन्ध और लुटेरों का नाश करने को नियत किये गये। उस अवसर पर मेवाड़ व मारवाड़ के राज्यों ने भी अजमेर मेरवाड़ा

* जमशेद खां टोंक का राज्य क़ाइम करनेवाले नव्वाब अमीर खां का अफ़सर और दामाद था।

के अपने अपने इलाकों में प्रबंध रख सर्कार अंग्रेज़ी को भी सहायता देना स्वी किया था। इसी काम के लिये मेवाड़ की तरफ़ से टॉड साहिब ने जाकर मेवाड़ के मेरवाड़ा प्रदेश में एक गढ़ बनवा कर वहां फ़ौज रक्खी थी। पीछे से उस गढ़ का नाम टाट गढ़ (टॉड गढ़) पड़ कर वह उन का एक चिरस्थायी स्मारक चिन्ह हो गया।

इस बात से पाठकों को आश्चर्य होगा, कि ऐसे शोधक राजनीतिज्ञ, और वीर पुरुष को गवर्मेंएट की तरफ़ से कोई ख़िताब क्यों न मिला? परन्तु उस समय आज के जैसा ख़िताबों का सिलसिला ही न था, और टॉड साहिब की अधिक प्रसिद्धि उन के अपूर्व पुस्तकों के छपने पर हुई जिस के पूर्व ही उन्हों ने गवर्मेंएट की सेवा छोड़ दी थी, तोभी समय समय पर उन की सेवा की बहुत कुछ प्रशंसा गवर्नर जनरल हिन्द और हिन्दुस्तान का प्रबन्ध करनेवाली ' कोर्ट ऑफ़ डाइरेक्टर्स ' नामक सभा ने की, इतना ही नहीं, किन्तु हिन्दुस्तान के प्रबंध संबंधी विचार के समय पश्चिमी हिन्दुस्तान का अपूर्व अनुभव होने से उन की सम्मति पार्लामेंएट ने मांगी, जिस पर उन्हों ने एक उत्तम निबंध लिख भेजा, जो पार्लामेंट की कमीटी की रिपोर्ट के शेषसंग्रह में छपा है।

देशियों के रीति रवाज और धर्म सम्बन्धी विचारों के विरुद्ध वे कभी कोई काम नहीं करते थे। धर्म स्थानों

में जब कभी उन का टिकना होता तो सदा वहां के लोगों को प्रसन्न रखने की चेष्टा करते थे। जब नाथद्वारा और कांकड़ोली गये तो वहां के मन्दिरों के मुखिये उन के वास्ते ठाकुर जी का प्रसाद ले आये, जिस को उन्हों ने बड़ी प्रसन्नता से खा कर वहां पर जीवहिंसा न की, इतनाही नहीं, किन्तु आगे भी कई यूरोपियन वहां पर हिंसा न करे, इस विषय के पर्वाने लिख कर दे गये। नाथद्वारा से आगे जाने पर उन के भोजन के वास्ते परिन्द मारे गये थे, जिन के पंख उन्हों ने इस अभिप्राय से रेत में गड़वा दिये, कि उन को देख किसी धर्मनिष्ठ हिन्दू यात्री का दिल न दुखने पावे। ऐसे ही एक दिन कोटे के पास तालाब में मच्छी पकड़ रहे थे, उस समय किसी आदमी ने जाकर कहा कि यहां पर मच्छी मारने की मनाई है, यह सुनते ही उन्हों ने अपना हाथ खींच लिया।

राजपूतों के वीरतादि सद्गुणों की योग्य प्रशंसा करने पर भी अधिक विवाह करने, अफ़ीम के बुरे फंदे में पड़ कर आलस्य में डूब जाने आदि उन के दुर्गुणों की बुराई बतला कर उन से बचने का उन को उपदेश किया करते थे।

पाठकगण! इस तरह काल रूपी विकराल चक्र ने टॉड साहिब जैसे पुरुषार्थी, विद्यानुरागी और सर्वप्रिय पुरुष के जीवन का तागा तोड़ दिया, और उन की संग्रह की हुई इतिहास संबंधी सर्व सामग्री रॉयल एशि-

याटिक सोसाइटी के भेट हुई। यदि ऐसे महापुरुष का सविस्तर जीवनचरित्र लिखा जावे, तो एक बड़ा पुस्तक भरे, तथापि इन थोड़े से पृष्ठों में उन के जीवन के मुख्य मुख्य कार्य, जो मैंने संक्षेप से बतलाये हैं उन से स्पष्ट है, कि १७ वर्ष की किशोर अवस्था ही से उन्हों ने संसार रूपी विषम समुद्र में प्रवेश कर उस की तरल तरंगों के अनेक धक्के सहने पर भी पूर्ण साहस और अथक परिश्रम के साथ ३६ वर्ष के अल्पकाल में ही अपने कर्तव्य रूप नौका को किस तरह पार पहुंचाया। जीवन के प्रत्येक विभाग में यश और प्रतिष्ठा ने उन का साथ दिया, जल और स्थल दोनों प्रकार की सैनिक शिक्षा में पूर्ण अनुभव प्राप्त किया, और सिन्ध, राजपूताना, व मध्य हिन्दुस्तान के प्रदेशों को छान छान कर उन के सही नक्शे तय्यार कर उन्हों ने स्वदेश की बड़ी सेवा की, और अपने पीछे आने-वाले अपने देशी बांधवों के वास्ते मानों उन विभागों के द्वार खोल कर उन में प्रवेश होने के मार्ग सुगम बना दिये। रणखेत में भी उन्हों ने असाधारण बुद्धि और वीरता प्रकट की और साथही राजनैतिक व देश-प्रबंध के कार्यों में वह चातुर्य बतलाया, कि उन की नीति जाल के फंदे में फंस कर देश के शत्रुओं का स्वयं नाश हो गया। टॉड साहिब का समय आज के समय से बहुत भिन्न था, तिस पर भी मनुष्यमात्र के

वास्ते दया और प्रीति के शुद्ध आचरण से वे इतर देशवासियों के परम प्रिय हो गये थे। युद्ध वृति के धारण करनेवाले वीर क्षत्रिय वर्ग के तो वे बड़े ही शुभचिन्तक थे। भारत के क्षत्रियों के पुरुषार्थ और कीर्ति को जो पहिले अंधकार में पड़े थे, उन्हें अपने महान् श्रम से प्रकाश में लाकर उन के यश का प्रवाह संसार भर में फैला दिया। इस देश के राजपूतों का, जहां तक बन सका, शुद्ध इतिहास लिखनेवाले पहिले पुरुष टॉड साहिब ही थे। उन्हों ने अपने इस महान् उद्योग से भारतवासियों ही को स्वदेश के इतिहास का ज्ञान संपादन करने में सहायता न दी, वरन यूरोप देशवासियों की रुचि भी इधर आकर्षित कर आगे के लिये इस अपूर्ण भंडार को पूर्ण करने का मार्ग खोल दिया। इस अवस्था में टॉड साहिब यदि भारत संबंधी इतिहास के पिता कहे जावें तो अनुचित नहीं है।

राजभक्त, देशभक्त, और प्रसिद्ध पुरुषों के स्मारक चिन्ह उन की प्रतिमा स्थापन करने आदि से रक्खे जाते हैं। यद्यपि टॉड साहिब के जैसे न्यायशील, विद्वान्, बुद्धिमान् और क्षत्रियों के परम हितैषी महाशय का ऐसा कोई स्मारक चिन्ह न होने से सर्व साधारण मनुष्यों को उन का स्मरण दिलाने का कोई साधन नहीं रहा, तथापि उन का 'राजस्थान' जैसा अपूर्व ग्रंथ ही उन के नाम को अमर करने का अचल साधन है।
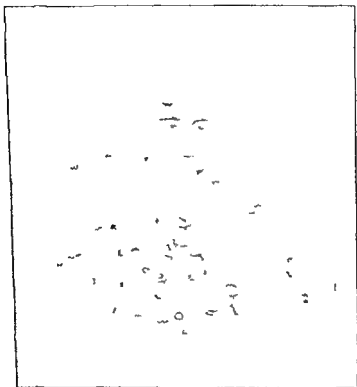
इंगलिस्तान के राजा श्रीयुत चतुर्थ जार्ज
(१८२०–१८३० ईस्वी)

अत्यन्त कृपालु श्रीमान् महाराजा

चतुर्थ ज्यार्ज[1]

की सेवा में

राजन्,

श्रीमान् ने जो कृपा करके मुझ को अपने श्रम का फल [यह पुस्तक] श्री चरणकमलों में अर्पण करने की अनुज्ञा प्रदान की वह मुझ को इस बात की अनुमति देती है कि, श्रीमानों का ध्यान इस पुस्तक के आशय की ओर अनुरंजित करूं, जिस की पूर्त्ति के लिये निरन्तर उद्योग करना मैं ने अपना सर्वोपरि कर्तव्य मान लिया है।

राजपूत राजागण, जो सौभाग्यवश बृटिश सैन्य की विजय के कारण न्यायरहित अत्याचार के पंजे से मुक्त हो गये हैं। वे अब श्रीमानों के विस्तीर्ण राज्य के अत्यन्त ही दूरस्थ कर देने वाले [रईस] हैं; और जिन के प्रेमी तथा इतिहास रचयिता [मुझ] को कदाचित् यह आशा रखने की इजाज़त

---

(१) यह बादशाह तृतीय ज्यार्ज के ज्येष्ठ पुत्र थे, और अपने पिता की वृद्धावस्था में युवराज नियुक्त होकर राज्यकार्य्य करने लग गये थे। सन् १८२० ई० ता २९ जनवरी को यह अपने पिता का देहान्त होने पर इङ्गलिस्तान के राज्यसिंहासन पर चतुर्थ ज्यार्ज (GEORGE THE FOURTH) के नाम से बैठे, और सन् १८३० ई० ता० २६ जून को स्वर्गवासी हुए—

(प्रकाशक)

दीजावेगी कि, इस प्राचीन और प्रभावशाली जाति के वे निश्वास जो वे अपनी पूर्व स्वाधीनता प्राप्त करने के विषय में लेते हैं, और जिस का प्रदान करना हमारी सर्वोत्कृष्ट राजनीति के उपयुक्त होगा, श्री मानों के ध्यान देने के अयोग्य न समझे जावेंगे।

अत्यन्त ही राजभक्ति और स्वामिभक्ति के साथ मैं हस्ताक्षर द्वारा [उक्त लेख को] स्वीकृत करता हूं,

श्रीमानों का

अत्यन्तही शुभचिन्तक प्रजा और दास
जेम्स टॉड [James Tod]

बर्ड हर्स्ट क्रॉयडन², [Bird Hurst, Croydon]
२० जून सन् १८२६ ई०

---

(२) यह इंगलिस्तान के सरे (Surrey) प्रान्त का एक नगर है, जो राजधानी लन्दन (London) से दश मील दक्षिण में है—(प्रकाशक).

भूमिका।

भारतवर्ष की ऐतिहासिक टेवो की वंध्यता [इतिहास के अभाव] पर यूरोप से बहुत कुछ निराशा हुई है. जब सर विलियम जोन्स साहिब पहिले पहिल संस्कृत साहित्य की वृहत् खानियों की खोज में लगे तो अनेक आशायें की गई थीं, कि संसार के इतिहास को इस साधनद्वारा बहुत कुछ प्राप्ति होगी, परन्तु उस समय जो दृढ़ आशायें की गई थीं अब तक पूर्ण न हुईं, और जैसा प्रायः हुआ करता है, उत्साह के स्थान में उदासीनता और विरक्तता व्याप गई. इस बात को अब लोग प्रायः स्वयंसिद्धि को नाईं मानते हैं, कि भारतवर्ष का कोई जातीय इतिहास नहीं है; जिस के उत्तर में हम एक फ़रांसीसी ओरियन्टलिस्ट (Orientalist) के कथन को यहां रख सकते हैं, जिस ने बड़ी चतुराई से पूछा है कि अबुलफ़ज़ल ने हिन्दुओं के प्राचीन इतिहास के लिये सामग्री कहां से प्राप्त की थी? * वास्तव मे मिस्टर विलसन ने काश्मीर † की 'राजतरङ्गिणी'

* मेलेन्जेज एशियाटिकस (Melanges Asiatiques) में मिस्टर एबल् रेमुसेट (M. Abel Remusat) इस विषय पर अनेक विरुद्ध और कठोर आलोचना करते हैं, जो बिना किसी उद्देश्य के हमारे देशी भाइयों के निरुत्साह की एक उचित समालोचना के सदृश है। रॉयल एशियाटिक सोसाइटी का समाज, विशेषत उस का वह विभाग, जिस में प्राचीन पूर्वीय पुस्तकों का अंग्रेज़ी अनुवाद किया जाता है, अब भी उस आक्षेप का प्रतिनिवारण कर सकता है .

† एशियाटिक रिसर्चज, भाग १५.

नामक इतिहास का अनुवाद करके इस अविचार को बहुत कुछ घटाया है, जिस से स्पष्ट सिद्ध होता है, कि इतिहास लिखने की नियमबद्ध परिपाटी भारतवर्ष में अविदित न थी, और ऐसा निश्चय करने के लिये सन्तोषदायक प्रमाण मिलते हैं, कि किसी समय में इतिहास की पुस्तकें वर्त्तमान समय की अपेक्षा अधिक उपलब्ध थीं, और यदि विशेष यत्न किया जावे तो और भी प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त हो सके. यद्यपि कोलब्रुक, विल्किन्स, विल्सन, और हमारे देश के अन्य पण्डितों के परिश्रम ने फ्रांस और जर्मनी * के बहुत से विद्वानों के उत्साह से सहित होकर भारतवर्ष के विद्याभण्डार के कुछ गुप्त विषयों को यूरोपवालों पर प्रगट कर दिया है, तथापि कोई यह दावा नहीं कर सकता, कि हम भारतवर्षीय ऐतिहासिक विज्ञान के द्वार तक पहुँचने के अतिरिक्त और कुछ अधिक कर सके हैं; और इसी कारण इस विज्ञान के परिमाण वा गुण के विषय में हम लोग निश्चित सम्मति देने के योग्य नहीं हैं. भारतवर्ष के अनेक भागों मे बड़े बड़े पुस्तकालय, जो मुसल्मानों के विध्वंस से बच गये हैं, अब तक विद्यमान हैं. जैसे कि जैसलमेर और पट्टन के ग्रन्थभण्डार तीक्ष्ण दृष्टिवाले अल्ला के अनुसन्धान से भी बचे रहे, जिस ने इन दोनों राज्यों को विजय कर लिया था, और जो उन पुस्तकालयों

---

* जब कि श्लेजल (Schlegel) जैसे प्रसिद्ध लेखकों के उत्साह के साथ तीक्ष्णबुद्धि और पूर्ण पाण्डित्य का मेल हुआ, तो फिर हम लोग पूर्वीय साहित्य के पठन पाठन से क्या क्या नये आविष्कारों की आशा नहीं कर सकते हैं ?

के साथ वैसाही निर्दयता का वर्त्ताव करता जैसा कि उमर ने इस्कन्दरिया के पुस्तकालय के साथ किया था. बहुत से दूसरे छोटे छोटे पुस्तकालय मध्य और पश्चिमीय भारत में अभी तक ऐसे वर्त्तमान हैं, जिन में सहस्रों ग्रन्थ मौजूद हैं. उन में से कितने एक तो राजा महाराजाओं की स्वतन्त्र सम्पत्ति हैं, और कितनेएक जैन धर्मावलम्बियों के हैं*.

---

* जैनों के इन हस्तलिखित पुस्तकों की कई एक प्रतियां पांच से आठ शताब्दि पीछे की लिखी हुई, जो मुझे जैसलमेर से प्राप्त हुईं, वे मैंने रॉयल एशियाटिक सोसाइटी को भेट की थीं. इन ग्रन्थों में, जो पट्टन और जैसलमेर के पुस्तकालयों में पाये गये, अधिकतर अत्यन्त ही प्राचीन समय के हैं, और वे ऐसे अक्षरों में लिखे हुए हैं, जो उन के स्वामियों के पढने में बिल्कुल नहीं आते, अथवा केवल उन के प्रधान धर्म्माचार्य्य और उस के शिष्य पुस्तकालयाध्यक्ष ही उन्हें पढ सकते है. इन में एक ग्रन्थ तान्त्रिकविद्या का होने के कारण ऐसा पवित्र समझा जाता है, कि मरुस्थल की उपर्युक्त राजधानी जैसलमेर के चिन्तामणिमन्दिर [illegible] सदा संकलद्वारा लटकाया रहता है, और केवल या तो उस का बंधना पलटे जाने के समय, अथवा नये प्रधान आचार्य्य की नियुक्ति के समय उतारा जाता है. जनश्रुति तो उसे आचार्य्य सोमादित्य सूरी का बनाया हुआ बताती है, जो विगत काल का एक यति पुरुष था, और मुसल्मानों के सिन्धुनदी पार करने से पूर्व हुआ था, और जिस का धर्मविषयक अधिकार उसनदी के उस पार बहुत दूर तक फैला हुआ था. उस का करामाती वस्त्र भी अब तक वहां वर्त्तमान है, और जब नया आचार्य्य गद्दी पर बैठता है, तब वह काम [illegible] लाया जाता है. निस्सन्देह ये अक्षर गोल शिर वाले पालीलिपि के है; और यदि हम लोग विद्वान, परिश्रमी, और शील-वान मॉसीर ई० बर्नूफ़ (Mons. E. Burnouf) साहिब को उन के निपुण सहयोगी डॉक्टर लेसन (Dr Lessën) सहित उस मन्दिर में भेज सकते तो हम उस दुर्बोध्य ग्रन्थ का कुछ तात्पर्य समझ सकते, और उन के नेत्रों को कुछ भी हानि नहीं पहुंचती. जैसी कि एक जैन आर्य्या को पहुंची थी, जब कि उस ने अन्तिम बार उस ग्रन्थ के आशयको समझने की धार्मिक चेष्टा कीथी.

यदि हम महमूद ग़ज़नवी के आक्रमण समय से ले कर भारतवर्ष के राज्यविषयक परिवर्त्तनों और बखेड़ों पर विचार करें, और उस के क्रमानुयाइयों में से बहुतों के धर्म संबन्धी पक्षपात से भरे हुए कट्टरपने पर ध्यान देवें, तो अवश्य हम को इस देश में जातीय ऐतिहासिक ग्रन्थों की न्यूनता का कारण विदित हो जायगा, और हमलोग इस असंगत विचार को अपने हृदय में स्थान न देंगे, कि हिन्दू उस कला से, जिस को अन्य देश वाले आदि काल से उन्नति देते चले आते हैं, अनभिज्ञ थे. क्या यह कभी ध्यान में आ सकता है, कि हिन्दुओं कैसी बड़ी ही सभ्य जाति के लोग, जिन में सद्विद्याओं का पूर्णरूप से प्रचार था, और जिन्हों ने कलाओं अर्थात् शिल्प, कविता, और सङ्गीत शास्त्र आदि का केवल स्वयम् ही ज्ञान प्राप्त नहीं किया था, किन्तु औरों को भी सिखाते थे, और प्रत्येक के लिये बड़े ही उत्त-मोत्तम और यथार्थ नियम बनाये थे, क्या वे अपनी ऐतिहा-सिक घटनाओं, और अपने राजा महाराजाओं के चाल-चलन, व्यवहार, तथा उन के राज्यशासन के कार्यों को लिखने की साधारण रीति को कुछ भी न जानते रहे हों? जहां पर कि प्रज्ञा के ऐसे चिन्ह उपस्थित हैं, वहां पर हम लोग कठिनता से यह विश्वास कर सकते हैं, कि उन घट-नाओं के लेखबद्ध करने वाले योग्य पुरुषों का, जिन को समकालीन ऐतिहासिक लोग लिखने के योग्य बतलाते हैं, अभाव रहा हो. हस्तिनापुर, इन्द्रप्रस्थ, अनहिलवाड़ा, और सोमनाथ जैसे नगर; चित्तौड़ और दिल्ली के विजयस्तम्भ;

आबू और गिरनार के मन्दिर; और एलिफैण्टा और इलोरा के गुफा-मन्दिर; ये सब इसी विषय के प्रमाण होने से हम लोग यह कभी नहीं सोच सकते, कि उस समय में जब कि ये काम बनाये गये थे, इतिहास लेखक कोई नहीं था. तिस पर भी महाभारत (महान् युद्ध) के समय से ले कर सिकन्दर की चढ़ाई तक, और उस महत् घटना से लेकर महमूद ग़ज़नवी के समय तक का कुछ भी देशीय हिन्दू ऐतिहासिक सच्चा हाल (सिवाय उस के जिस का कथन ऊपर हो चुका है) ज्ञात नहीं हुआ. दिल्ली के अन्तिम हिन्दू महाराजा के वीरतामय इतिहास में, जो उन॰के भाट चन्द ने लिखा है, हम लोगों को ऐसे चिन्ह दीख पड़ते हैं, जिन से यह विदित होता है, कि उस के जैसे ऐतिहासिक ग्रन्थ, महमूद और शहाबुद्दीन के बीच के समय (सन् १०००–११९३ ई॰) के पहिले उपलब्ध थे; परन्तु अब उन का लोप हो गया.

आठ सौ वर्ष पर्य्यन्त ऐसे विजेताओं की अत्यन्त दुःखदाई आधीनता में रहने के उपरान्त, जो हिन्दुओं के साहित्य की प्रधान भाषा [संस्कृत] के विषय में कुछ भी नहीं जानते थे ; और जब क़रीब क़रीब प्रत्येक राजधानी कई २ वार असभ्य, कट्टर और अत्यन्त क्रुद्ध शत्रुओं से लूटी और वर्बाद की जा चुकी थी, कदापि यह आशा नहीं की जा सकती, कि देश के साहित्य को अन्य उपयोगी वस्तुओं के साथ साथ बड़ी भारी हानि न पहुंची हो. रजवाड़ा के इतिहास की अपूर्ण दशा पर मेरी समालोचना का

यदि हम महमूद गज़नवी के आक्रमण समय से ले कर भारतवर्ष के राज्यविषयक परिवर्त्तनों और बखेड़ों पर विचार करें, और उस के क्रमानुयाइयों में से बहुतों की धर्म संबन्धी पक्षपात से भरे हुए कट्टरपने पर ध्यान देवें, तो अवश्य हम को इस देश में जातीय ऐतिहासिक ग्रन्थों की न्यूनता का कारण विदित हो जायगा, और हमलोग इस असंगत विचार को अपने हृदय में स्थान न देंगे, कि हिन्दू उस कला से, जिस को अन्य देश वाले आदि काल से उन्नति देते चले आते हैं, अनभिज्ञ थे. क्या यह कभी ध्यान में आ सकता है, कि हिन्दुओं जैसी बड़ी ही सभ्य जाति के लोग, जिन में सद्विद्याओं का पूर्णरूप से प्रचार था, और जिन्हों ने कलाओं अर्थात् शिल्प, कविता, और सङ्गीत शास्त्र आदि का केवल स्वयम् ही ज्ञान प्राप्त नहीं किया था, किन्तु औरों को भी सिखाते थे, और प्रत्येक के लिये बड़े ही उत्तमोत्तम और यथार्थ नियम बनाये थे, क्या वे अपनी ऐतिहासिक घटनाओं, और अपने राजा महाराजाओं की चाल-चलन, व्यवहार, तथा उन की राज्यशासन के कार्यों को लिखने की साधारण रीति को कुछ भी न जानते रहे हों? जहां पर कि प्रज्ञा के ऐसे चिन्ह उपस्थित हैं, वहां पर हम लोग कठिनता से यह विश्वास कर सकते हैं, कि उन घटनाओं के लेखबद्ध करने वाले योग्य पुरुषों का, जिन को समकालीन ऐतिहासिक लोग लिखने के योग्य बतलाते हैं, अभाव रहा हो. हस्तिनापुर, इन्द्रप्रस्थ, अनहिलवाडा, और सोमनाथ जैसे नगर; चित्तौड़ और दिल्ली के विजयस्तम्भ;

आबू और गिरनार के मन्दिर; और एलिफेण्टा और इलोरा के गुफा-मन्दिर; ये सब इसी विषय के प्रमाण होने से हम लोग यह कभी नहीं सोच सकते; कि उस समय में जब कि ये काम बनाये गये थे, इतिहास लेखक कोई नहीं था. तिस पर भी महाभारत (महान् युद्ध) के समय से ले कर सिकन्दर की चढ़ाई तक, और उक्त महत् घटना से लेकर महमूद ग़ज़नवी के समय तक का कुछ भी देशीय हिन्दू ऐतिहासिक सही हाल (सिवाय उस के जिस का कथन ऊपर हो चुका है) ज्ञात नहीं हुआ. दिल्ली के अन्तिम हिन्दू महाराजा के वीरतामय इतिहास में, जो उन० के भाट चन्द ने लिखा है, हम लोगों को ऐसे चिन्ह दीख पड़ते हैं, जिन से यह विदित होता है, कि उस के जैसे ऐतिहासिक ग्रन्थ, महमूद और शहाबुद्दीन के बीच के समय (सन् १०००–११९३ ई०) के पहिले उपलब्ध थे; परन्तु अब उन का लोप हो गया.

आठ सौ वर्ष पर्य्यन्त ऐसे विजेताओं की अत्यन्त दुःखदाई आधीनता में रहने के उपरान्त, जो हिन्दुओं के साहित्य की प्रधान भाषा [संस्कृत] के विषय में कुछ भी नहीं जानते थे ; और जब क़रीब क़रीब प्रत्येक राजधानी कई २ बार असभ्य, कट्टर और अत्यन्त क्रुद्ध शत्रुओं से लूटी और बर्बाद की जा चुकी थी, कदापि यह आशा नहीं की जा सकती, कि देश के साहित्य को अन्य उपयोगी वस्तुओं के साथ साथ बड़ी भारी हानि न पहुंची हो. रजवाड़ा के इतिहास की अपूर्ण दशा पर मेरी समालोचना

यदि हम महमूद गज़नवी के आक्रमण समय से ले कर भारतवर्ष के राज्यविषयक परिवर्त्तनों और बखेड़ों पर विचार करें, और उस के क्रमानुयाइयों में से बहुतों के धर्म संबन्धी पक्षपात से भरे हुए कट्टरपने पर ध्यान देवें, तो अवश्य हम को इस देश में जातीय ऐतिहासिक ग्रन्थों की न्यूनता का कारण विदित हो जायगा, और हमलोग इस असंगत विचार को अपने हृदय में स्थान न देंगे, कि हिन्दू उस कला से, जिस को अन्य देश वाले आदि काल से उन्नति देते चले आते हैं, अनभिज्ञ थे. क्या यह कभी ध्यान में आ सकता है, कि हिन्दुओं जैसी बड़ी ही सभ्य जाति के लोग, जिन में सद्विद्याओं का पूर्णरूप से प्रचार था, और जिन्हों ने कलाओं अर्थात् शिल्प, कविता, और सङ्गीत शास्त्र आदि का केवल स्वयम् ही ज्ञान प्राप्त नहीं किया था, किन्तु औरों को भी सिखाते थे, और प्रत्येक के लिये बड़े ही उत्तमोत्तम और यथार्थ नियम बनाये थे, क्या वे अपनी ऐतिहासिक घटनाओं, और अपने राजा महाराजाओं के चाल-चलन, व्यवहार, तथा उन के राज्यशासन के कार्यों को लिखने की साधारण रीति को कुछ भी न जानते रहे हों? जहां पर कि प्रज्ञा के ऐसे चिन्ह उपस्थित हैं, वहां पर हम लोग कठिनता से यह विश्वास कर सकते हैं, कि उन घटनाओं के लिखबद्ध करने वाले योग्य पुरुषों का, जिन को समकालीन ऐतिहासिक लोग लिखने के योग्य बतलाते हैं, अभाव रहा हो. हस्तिनापुर, इन्द्रप्रस्थ, अनहिलवाडा, और सोमनाथ जैसे नगर; चित्तौड़ और दिल्ली के विजयस्तम्भ;

तक वैसे ही अनघड़, अव्यवस्थित, और गुप्त थे, जैसे कि प्राचीन राजपूतों के.

नियमबद्ध और वास्तविक ऐतिहासिक लेखों का अभाव रहने पर भी दूसरे कई देशीय ग्रन्थ ऐसे हैं (जिन के लिये कहा जा सकता है, कि बहुतायत से हैं), कि जो यदि किसी चतुर और दृढ़ प्रतिज्ञ इतिहासशोधक के हाथ में पड़ें, तो भारतवर्ष के इतिहास के लिये कुछ थोड़ी सामग्री न होंगे. इन ग्रन्थों में सब से प्रथम पुराण और राजाओं के वंश वर्णन हैं, जो धर्मसम्बन्धी गाथाओं, रूपकों और असम्भव वृत्तान्तों के साथ मिल जाने से प्रायः अस्पष्ट हो गये हैं, तथापि उन में बहुत सी सत्य बातें ऐसी हैं, जो इतिहासवेत्ता को उस के ऐतिहासिक शोध में पथ दर्शक का काम दे सकती हैं. ह्यूमसाहिब ने सैक्सन सप्तराज्य के इतिहासों और इतिहास लेखकों के विषय में जो वचन कहे हैं वे राजपूतों के सप्तराज्यों* के विषय में यथार्थरूप से घट सकते हैं; अर्थात् "उन में नामों की बहुतायत है, परन्तु घटनाओं का अत्यन्त ही अभाव है; अथवा वे विना किसी कार्य्य और कारण के आपस में इस प्रकार से गुथे हुए हैं, कि परम विद्वान और वाक्यविशारद लेखक भी उन को पाठकों के लिये रुचिकर वा शिक्षाप्रद बनाने से अवश्यमेव निराश हो जायगा. ईसाई साधु (जिन के बदले राजपूतों के सम्बन्ध में "ब्राह्मण" समझना चाहिये), जो

* मेवाड़, मारवाड़, आम्बेर, बीकानेर, जैसलमेर, कोटा और बूंदी.

यथार्थ उत्तर निम्नोक्त वचनों में कई बेर मिला है :—"जब कि हमारे राजा महाराजा, उन को राजधानियां छूट जाने पर एक दुर्ग से दूसरे दुर्ग को खदेड़े जाते थे, और प्रायः उन को पहाड़ों की खोहों में निवास करना पड़ता था, जहां बहुधा यह भी शङ्का रहती थी, कि कहीं सामने की परोसी थाली भी न छोड़नी पड़े, क्या वह ऐसा समय था, कि ऐतिहासिक घटनायें लेखबद्ध करने का विचार किया जाता ?"

जो लोग कि हिन्दुओं जैसे लोगों से ठीक उसी प्रकार के ग्रन्थों की आकांक्षा करते हैं, जैसे कि रोम और यूनान की ऐतिहासिक पुस्तकें हैं, वे भारतवासियों के उन गुणों की उपेक्षा करने में बड़ी भारी भूल करते हैं, जो उन को अन्य देशवासियों से विलग करते हैं, और जो उन के प्रत्येक विद्यासम्बन्धी ग्रन्थों को पश्चिमीय जनों के उक्त ग्रन्थों से अत्यन्त ही विलक्षण बनाते हैं. उन के दर्शन शास्त्र, उन की कविता, और उन के शिल्प शास्त्र से उन की स्वतन्त्र रचना के गुण प्रगट होते हैं ; और यही बात उन के इतिहास में भी होने की आशा की जा सकती है ; क्योंकि उस की रचना भी उपर्युक्त विद्याओं के समान उन के धर्म से घनिष्ट सम्बन्ध रखती है. इस के साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जब तक इङ्गलैण्ड और फ्रान्सके साहित्य की शैली यूरोप के प्राचीन साहित्य के ग्रन्थों के पठन पाठन से ठीक नहीं की गई थी, तब तक इन दोनों देशों का इतिहास ही क्या वरन यूरोप की सम्पूर्ण सभ्य जातियों के इतिहास अभी

तक वैसे ही अनघड़, अव्यवस्थित, और पुष्ट थे, जैसे कि प्राचीन राजपूतों के.

नियमबद्ध और वास्तविक ऐतिहासिक लेखों का अभाव रहने पर भी दूसरे कई देशीय ग्रन्थ ऐसे हैं (जिन के लिये कहा जा सकता है, कि बहुतायत से हैं), कि जो यदि किसी चतुर और दृढ़ प्रतिज्ञ इतिहासशोधक के हाथ में पड़ें, तो भारतवर्ष के इतिहास के लिये कुछ थोड़ी सामग्री न होगी. इन ग्रन्थों में सब से प्रथम पुराण और राजाओं के वंश वर्णन हैं, जो धर्म्मसम्बन्धी कथाओं, रूपकों और असम्भव वृत्तान्तों के साथ मिल जाने से प्रायः अस्पष्ट हो गये हैं, तथापि उन में बहुत सी सत्य बातें ऐसी हैं, जो इतिहासवेत्ता को उस के ऐतिहासिक शोध में पथ दर्शक का काम दे सकती हैं. ह्यूमसाहिब ने सेक्सन सम्राज्य के इतिहासों और इतिहास लेखकों के विषय में जो वचन कहे हैं वे राजपूतों के सम्राज्यों * के विषय में यथार्थरूप से घट सकते हैं; अर्थात् "उन में नामों की बहुतायत है, परन्तु घटनाओं का अत्यन्त ही अभाव है; अथवा वे बिना किसी कार्य्य और कारण के आपस में इस प्रकार से गुथे हुए हैं, कि परम विद्वान और वाक्यविशारद लेखक भी उन को पाठकों के लिये रुचिकर वा शिक्षाप्रद बनाने में अवश्य-मेव निराश हो जायगा. ईसाई साधु (जिन के बदले राजपूतों के सम्बन्ध में "ब्राह्मण" समझना चाहिये), जो

* मेवाड़, मारवाड़, आम्बेर, बीकानेर, जैसलमेर, कोटा और बूंदी.

सांसारिक व्यवहारों से अलग रहते थे, लौकिक व्यवहारों को पारलौकिक से न्यून समझते थे, और उन में एक प्रकार की शीघ्र विश्वासकता और आश्चर्य्यजनक घटनाओं से प्रेम और प्रपञ्च करने का स्वभाव पड़ गया था."

भारतवर्ष के युद्धसम्बन्धी काव्य इतिहास का दूसरा साधन हैं. भाटों को मनुष्य जाति के आदि इतिहास रचने वाले समझना चाहिये. जब तक कि कवियों का ध्यान कल्पित कथाओं की ओर आकर्षित न होने लगा था, या यों कहिये कि, जब तक इतिहास का क्षेत्र ऐसी श्रेणी के लेखकों से समुन्नत न हुआ था, जिन्हों ने इसे साहित्य का एक प्रथक विभाग बना लिया, तब तक इस में सन्देह नहीं कि भाट लोग वास्तविक घटनाओं को लिखने और विद्यमान पुरुषों की ख्याति को अजर अमर करने में लगे हुए थे. भारत में व्यास जी के समय से, जो जॉर्ज के समकालीन थे, कवियों में केलियोपी (Calliope) की पूजा मेवाड़ के वर्त्तमान ख्याति लेखक बेनीदास के समय तक होती चली आती है. कवि लोग पश्चिमीय भारत के मुख्य इतिहास लेखक हैं, यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि उन के अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं है; और वहां उन की कमी भी नहीं है, हां केवल इतनी कसर है, कि वे एक प्रकार की अपनी खास बोली बोलते हैं, जिस का समझने योग्य साधु भाषा में अनुवाद किये जाने की आवश्यकता है. परन्तु उन की वाग्वाहुल्यता और अस्पष्टता की पूर्ति उन की स्वतंत्र लेखिनी से हो जाती है; राजपूत राजाओं की

कठोरता का प्रभाव कवियों के काव्य पर नहीं पड़ता, जिस की धारा वैसीय वही चली जाती है, हां छन्द भुजङ्ग की नियम की वेड़ी उसे रोकती है, जो इतिहास लेखक की स्वतन्त्रता की अवरोध के लिये कम नहीं समझनी चाहिये. इस के प्रतिकूल राजा और कवि के मध्य एक प्रकार का समझौता वा स्वार्थ रहता है, अर्थात् कवि खाली प्रशंसा के बदले में पुष्कल धन प्राप्त कर लेता है, जिस से भी ऐतिहासिक काव्यों की सचाई मे कुछ दोष आ जाता है. यह "सुख्याति" का सौदा, जैसा कि भाटों के कहने की रीति है, राजस्थान के कविराजों और इतिहास लिखकों के हाथ मे उस समय तक बराबर होता रहेगा, जब तक कि समाज मे पूर्ण शिक्षित और स्वतन्त्र लोगों की एक ऐसी श्रेणी प्रगट न हो जो साहित्य विषयक व्यवसाय के लिये सर्व्वसाधारण जनों में सम्मानित होने के व्यतिरिक्त कोई दूसरा पारितोषिक न चाहेगी.

परन्तु तोभी ये इतिहास लेखक लोग कभी कभी ऐसी सत्य बातें कहने का साहस कर बैठते हैं, जो उन के स्वामियों को अत्यन्तही अप्रिय लगती हैं. जब उन का हृदय दुःखित होता है, वा अनीति देखकर सात्विकता के कारण उन का क्रोध बढ़जाता है, तो फिर वे इस बात का भय नहीं करते कि परिणाम क्या होगा; और जो व्यक्ति उन को क्रोध दिलाता है, उस को बुराई होती है. अनेक हठी पुरुषों को उन की निन्दोपहासक काव्यों की फटकार ने सदा के

लिये उपहास का पात्र बना दिया है, जो यदि उन को क्रुद्ध न करते तो अपकीर्त्ति का धब्बा उन के नाम पर न लगता. राजपूतलोग कवियों की विषमयी वाणी से शत्रुओं के शस्त्र की अपेक्षा भी अधिक डरते हैं.

राजपूतों के दर्बारों में सार्व्वजनिक व्यवहार सम्बन्धी बातों में से कोई भी भेद की बात गुप्त न रहने से, जिन में प्रत्येक व्यक्ति सर्दारों से लेकर नगर के द्वारपालों तक स्वार्थ लेता है, घटनाओं का उल्लेख करनेवाला बड़ाही लाभ उठाता है. जब कि देश की अव्यवस्थित दशा के समय उन विषयों का गुप्त रखना जो बड़ेही गम्भीर थे, आवश्यक जान पड़ा, और किसी ने उदयपुर के राणा से निवेदन किया, कि इन का गुप्त रखना आवश्यक है, तो उन्होंने यह उत्तर दिया कि—"यह चौमुखी राज* है; एकलिङ्ग जी इस के स्वामी हैं, मैं उन का प्रतिनिधि हूं; उन्हीं में मेरा विश्वास है, और मैं अपने बाल बच्चों [प्रजा] से कोई बात नहीं छिपाता" प्रत्येक प्रकार की सार्व्वजनिक ऐक्यता होने पर भी इस प्रकार के गुप्त भेदों का प्रगट होना देश के शत्रुओं का सामना करने में न्यूनता होने का एक कारण समझा जा सकता है; परन्तु इस से राज्यशासन में एक प्रकार का पैतृक भाव हो जाता है, और लोगों के हृदय में यदि पूर्ण राजभक्ति और देशभक्ति प्रगट न हो तोभी तद्वत् भाव हृदय में उपस्थित होही जाता है.

एक बड़ी भारी न्यूनता इन कवियों के लिखे इतिहासों

---

* अर्थात् चार मुखवाली इष्टदेव [एकलिङ्ग] की मूर्ति का राज्य.

में यह है, कि उन में प्रायः उन के वीर योद्धाओं की वीरता और रंग-रणभूमि, अर्थात् युद्धक्षेत्र के ही वृत्तान्त होते हैं. वीर जाति के विनोदार्थ लिखे जाने के कारण ग्रन्थकर्त्ता लोग उन में राज्यव्यवस्था सम्बन्धी व्यवहारों, कलाकौशल, और शांतिमय जीवन यात्रा के विषय में कुछ भी नहीं लिखते; प्रेम और युद्ध ही उन के प्रिय विषय होते हैं. चन्द, जो भारत के नामी कवियों में से अन्तिम कवि था, अपने ग्रन्थ की भूमिका में लिखता है, कि "मैं राज्यशासन के नियम, व्याकरण और वाक्य योजना के सूत्र, देशी तथा विदेशी राजदूतों की व्यवहार सम्बन्धी बातें लिखूंगा;" और वह अपना संकल्प उस ग्रन्थ में अनेक स्थलों पर उपाख्यानों के मिस इन विषयों की व्याख्या देकर पूरा करता है.

इस के अतिरिक्त कविलोग राज्यशासन की प्रत्येक कार्य्यवाही के गुप्त स्रोतों से अभिज्ञ होने पर भी परस्पर के झगड़ों बखेड़ों, एवम् दर्बार की ओछी ओछी निन्दित बातों में ऐसे अधिक लिप्त हो जाते हैं, कि वे राज्यकार्य्यों के विषय में यथार्थ मत प्रगट करने के योग्य नहीं समझे जाते.

इन सब दोषों के होने पर भी देशी भाटों के ग्रन्थों से बहुत सी काम की बातें प्राप्त होती हैं, जैसे वास्तविक घटनायें, धर्मसम्बन्धी विचार, और व्यवहारप्रणाली; जिन में से बहुत सी, अनपेक्षित लिखी जाने के कारण, ऐसी हैं कि उन के ऐतिहासिक प्रमाण होने में बहुत ही कम सन्देह है. चन्द ने अपने रचे हुए पृथ्वीराज के वीरता विषयक इतिहास में बहुत सी ऐतिहासिक और भौगोलिक बातों

का वर्णन अपने महाराजा की लड़ाइयों के वृत्तान्त में दिया है, जिन लड़ाइयों को उस ने स्वयम् अपनी आंखों से देखा था, क्योंकि वह महाराजा का मित्र, राजदूत और एल्‌ची था; और अन्त में अत्यन्तही शोकपूरित काम उस ने यह किया, कि वह महाराजा को अप्रतिष्ठा से बचाने के लिये-उन के मरने में भी सहायक हुआ था. मेवाड़ के [महाराणा] बड़े-अमरसिंह ने, जो साहित्य के सहायक, शूरवीर, और नीतिज्ञ थे, चन्द के रचे हुए कवितावद्ध इतिहासों को एकत्र किया था.

एक प्रकार के दूसरे ऐतिहासिक लेख मन्दिरों के दान, भेट, तथा उन के गिरने टूटने, और पुनरुद्धार के विषय में पाये जाते हैं, जो ब्राह्मण लोग लिख रखते हैं; इन में प्रसंगवशात् इतिहास और वंशावलियों का वर्णन भी मिलता है. तीर्थ और धर्मस्थानों के माहात्म्यों में धर्मक्रियाओं और शास्त्रविधानों तथा स्थानीय रीत रवाजों के साथ धर्म से सम्बन्ध न रखनेवाली घटनायें मिली हुई हैं. जैनियों के विवादों से भी बहुत सी ऐतिहासिक बातें प्राप्त होती हैं, जो विशेष कर गुजरात और नेहरवाला के सम्बन्ध में चालुक्य वंश के समय की हैं. जैन की पुस्तकों को यदि विचार पूर्वक ध्यान देकर जांचा जाय, जिन में वे सब विद्या संबंधी बातें लिखी हैं, जिन को प्राचीन जैन मतावलम्बी जानते थे, तो हिन्दुओं के इतिहास की बहुत सी त्रुटि पूर्ण हो सकती है. भारत के प्रतिपक्षी मतावलम्बियों का पक्षपात निस्सन्देह इतिहास को शुद्धता का वैरी था; और-जिस आधार पर

ब्राह्मणों ने अपनी प्रधानता [अन्य जातियों पर] जमाई वह देशवासियों का अज्ञान ही था. ऐसा जान पड़ता है, कि भारतवर्ष में और उसी प्रकार मिस्र में भी प्राचीन काल में धर्माचारियों और राजाओं के मध्य एक प्रकार का एका था, इस प्रयोजन से कि वे मिलकर देश भर के सर्वसाधारण लोगों को अज्ञान के अन्धकार और अपनी आधीनता में बना रक्खें.

ये भिन्न भिन्न लेख अर्थात् ऐतिहासिक और भौगोलिक वृत्तान्त मिश्रित पुस्तक जिन का उपस्थित होना मुझे मालूम है; रासे अथवा राजाओं के छन्दोबद्ध वृत्तान्त, जो बहुतायत से पाये जाते हैं; स्थानिक पुराण, धर्मसम्बन्धी टिप्पणियां, और वे दोहे, * जो जनश्रुति में चले आते हैं; और ऐसे प्रमाण, जिन की सर्वतोभाव सत्यता में थोड़ाही सन्देह है, जैसे शिलालेख, सिक्के, और ताम्र पत्र, जिन में अधिकार की सनदें लिखी रहती हैं, और जिन से राज्यप्रबन्ध सम्बन्धी बहुत सी मुख्य मुख्य बातें झलकती हैं; ये सब, जैसा कि मैं कह चुका हूं, इतिहास लेखक के लिये कुछ कम सामग्री नहीं हैं, जो इन के सिवाय उन समकालीन वृत्तान्तों से भी सहा-

---

* इन में से कई एक में उन बादशाहों के नाम मिलते हैं जिन्हों ने महमूद गजनवी और शाहाबुद्दीन के बीच के समय में हिन्दुस्तान पर चढ़ाई की थी, और जिन के नाम मुसल्मान इतिहास लेखक फ़िरिश्ता ने नहीं दिये हैं. इन्हीं के द्वारा हम को अजमेर की चढ़ाई, और यादव राजाओं की राजधानी बयाना की विजय का पता लगा

बता लेवे, जो प्राचीन मूर्त्तिपूजकों और पीछे के मुसलमान लेखकों के ग्रन्थों से पुष्ट किये जा सकते हैं.

जब से इस मनोहर देश के साथ मेरा राजकीय सम्बन्ध हुआ, तभी से मैं इस के प्राचीन ऐतिहासिक लेखों को एकत्र करने और खोजने में लगा था, इस अभिप्राय से, कि एक ऐसी जाति के विषय में जिस का वृत्तान्त यूरोपियन लोगों को अब तक कुछ भी ज्ञात नहीं है, कुछ जानकारी प्राप्त हो, और जिस का राजकीय संबन्ध इङ्गलिस्तान के साथ मुझ को इस प्रकार बढ़ना प्रतीत हुआ, कि जिस से दोनों पक्ष वालों को लाभ हो. पाठकों को यह बात नीरस लगेगी, यदि मैं इस विषय को उन्हें स्पष्टतया बताने लगूँ, कि मैं राजपूतों के इतिहास का छिन्न भिन्न बचा खुचा अवशेष भाग किस रीति से एकत्र कर के इस रूप में उन के आगे धरने को समर्थ हुआ हूँ, जिस रूप में कि वे उसे अब देखते हैं. मैं ने अपना कार्य्य पुराणों में दी हुई पूजनीय वंशावली से प्रारम्भ किया; फिर महाभारत, और चन्द की कविता को (जो उस के समय का पूरा इतिहास है,) जांचा; तत्पश्चात् जैसलमेर, मारवाड़, और मेवाड़ के बड़े बड़े ऐतिहासिक काव्यों * को; और इस के उपरान्त रोचियों तथा

* मारवाड के ऐतिहासिक काव्यों में 'विजयविलास', 'सूर्य्यप्रकाश', और ख्याति अथवा आख्यायिकाओं के अतिरिक्त भिन्न भिन्न राजाओं के राज्य चरित्रों का कुछ अंश था. मेवाड के इतिहास विषय में 'खुमाणरासा' नाम का एक नया ग्रन्थ है, जो पुरानी सामग्रियों से बना है, जिन का अब पता नहीं लगता, और इस में महमूद के चित्तौड पर चढ़ाई करने के समय से वर्णन

कोटा और बूंदी के हाड़ा राजाओं के इतिहासों आदि को देखा, जिन को उन के भाटों ने लिखा है. आम्बेर या जयपुर के महाराजा जयसिंह ने (जो अर्वाचीन हिन्दू राजाओं में सब से अधिक विद्या की उन्नति चाहने वाले थे) अपनी जाति का इतिहास बनाने के लिये बहुत सी सामग्री एकत्र की थी, उस में का एक भाग मेरे हाथ लगा था; मुझे इस बात का विश्वास है, कि वहां पर और भी बहुत-सी सामग्री प्रस्तुत थी, जो उन के विषयी क्रमानुयायी स्वर्गवासी महाराजा ने अपना राज्य एक वेश्या को बांट देने के समय राज्य के पुस्तकालय के बटवाड़े में उस को देदी थी, जो [पुस्तकालय] राजस्थान भर में सब से उत्तम संग्रह था. तैमूर के वंश के कतिपय प्रसिद्ध बादशाहों की नाईं जयसिंह भी दिनचर्या की पुस्तक रखते थे, जिस का नाम 'कल्पद्रुम'[११] था इस में वे प्रत्येक घटना का विवरण लिखते थे. ऐसे मनुष्य के हाथ का और ऐसे उत्तम समय का लिखा हुआ ग्रन्थ प्राप्त होना इतिहास के लिये बहुमूल्य होगा. दतिया के महाराजा से मैंने उन के उस पूर्वज की

दिया है, जो इस्लाम धर्म के अत्यन्त ही प्राचीन काल में सिन्ध-निवासी किसी कासिम का बेटा था, ऐसा समझा जाता है; और 'जगत्विलास', 'राजप्रकाश', तथा 'जयविलास' काव्य भी है, जो उन राजाओं के समय में बने थे, जिन के नामों से वे प्रसिद्ध हैं, परन्तु इन काव्यों में साधारणतः पुराने ऐतिहासिक वृत्तान्त संक्षेप से लिखे गये हैं. इन के अतिरिक्त जयपुर के राज्यवंश के इतिहास का कुछ अंश वहां के दफ़्तरों से प्राप्त हुआ; और 'मान चरित्र', अर्थात् राजा मान का इतिहास है.

दिनचर्य्या की पुस्तक की एक नकल प्राप्त की थी, जिन्हों ने औरङ्गज़ेब की सेना के बड़े बड़े सहायक राजाओं के मध्य बड़ी प्रशंसा के साथ काम दिया था, और जिस में से स्कॉट ने अपने दक्खन के इतिहास में बहुत सा उद्धृत किया था.

दश वर्ष तक मैं एक विद्वान जैन की सहायता से उन प्रत्येक ग्रंथों का सार निकालने में लगा रहा, जिन से राजपूतों के इतिहास की कोई भी बात या घटना प्राप्त हो सकती थी, वा जिन से उन के चाल चलन और व्यवहार के विषय में किसी प्रकार का ज्ञान प्राप्त हो सकता था. मेरा जैन सहायक इस प्रकार के सब ग्रंथों का सारांश निकाल निकाल कर इन जातियों की सरल बोली में (जो संस्कृत से निकली हैं) अनुवाद करता जाता था, जिन में मैं, दीर्घ काल पर्य्यन्त उन के साथ रहने से, सुगमता पूर्वक बात चीत कर सकता था. मैंने बहुत कुछ व्यय और [प्रतिदिन] घण्टों तक कठिन परिश्रम करके, जिस के लिये केवल साधारण उत्साह ही सक्षम नहीं था, उन का केवल इतिहास ही प्राप्त करने का यत्न नहीं किया, किन्तु उन के धर्म्म संबंधी और साधारण विचारों, और उन के स्वाभाविक व्यवहारों को उन के सर्दारों तथा उन के इतिहासवेत्ता कवियों के साथ रहकर, और उन की लोक प्रसिद्ध आख्यायिकाओं और रूपकमय कविताओं को ध्यान से सुन कर प्राप्त किया. ज्यों ज्यों मेरे शोध की सीमा बढ़ती जाती त्यों त्यों मैं इन विषयों में अधिक ज्ञान प्राप्त करता, परन्तु मेरी रुग्नावस्था ने मुझे इस दुखदायक, किन्तु परिश्रमी

कार्य को छोड़ंगे, और अपनी जन्मभूमि को पुनः लौट जाने के लिये बाध्य किया, ठीक उस समय में जब कि मैं हिन्दुओं की मिनर्वा देवी की ड्याढ़ी में प्रवेश करने की आज्ञा प्राप्त कर चुका था; परन्तु तो भी मैं अपने साथ वहां से थोड़ी सी प्राचीन पुस्तकादि लाई, जिन की जांच का काम अब दूसरों पर छोड़ता हूं. प्राचीन संस्कृत और भाषा की हस्तलिखित ग्रन्थों का बड़ा संग्रह, जो मैं इङ्गलैण्ड को लाया था, वह मैंने रॉयल एशियाटिक सोसाइटी को भेट कर दिया, जिस के पुस्तकालय में वह रक्खा हुआ है. उन में से बहुतों की जांच अभी तक नहीं हुई है, परन्तु जांच होने पर संभव है, कि उन में से भारत के प्राचीन इतिहास की और भी नई बातें प्राप्त हों. मैं केवल इतने ही यश का भागी हूं, कि मैंने यूरोपियन विद्वानों को उन से परिचित कर दिया; परन्तु मैं आशा करता हूं, कि इस से अन्य लोगों को इसी प्रकार के यत्न करने का उत्साह होगा.

यूरोपियन लोगों को जो थोड़ा सा ठीक ठीक वृत्तान्त इन राजपूत राज्यों का अब तक ज्ञात हुआ है, उस से उन लोगों को भारत के इस विभाग के महत्व का, अन्य राज्यों की अपेक्षा, कुछ मिथ्या भ्रम उत्पन्न हो गया है. यदि यह भी मान लिया जाय, कि कवियों ने अतिशयोक्ति के साथ वर्णन किया है, तो भी इस में सन्देह नहीं कि राजपूत राज्यों का वैभव उक्त देश के प्राचीन इतिहास के समय में अवश्य बढ़ा चढ़ा रहा होगा. उत्तरीय भारत अत्यन्त ही प्राचीन काल से धनवान था; इस का वह भाग, जो सिन्धु

नदी के दोनों किनारों पर है, दाराँ को सब से अधिक धनवान् सूबेदारी थी. इस में बहुत सी विचित्र घटनायें हुई हैं, जो इतिहास के लिये सामग्री उपस्थित करती हैं. राजस्थान में कोई छोटा सा राज्य भी ऐसा नहीं है, कि जिस में थर्मोपिली (Thermopylæ) जैसी रणभूमि न हो, और न कोई ऐसा नगर होगा, कि जहां लियोनिडास (Leonidas) जैसा वीर पुरुष उत्पन्न न हुआ हो. परन्तु कालान्तर के पर्दे ने उन घटनाओं को, जिन्हें इतिहासवेत्ता की जादू भरी लेखिनी अनन्त प्रशंसा का पात्र बनाती, छिपा दिया है. सोमनाथ की तुलना डेल्फ़स (Delphos) से की जाती; हिन्द की लूट का माल लोबीयन सम्राट की समृद्धि के बराबर ठहरता; और यदि पाण्डवों का सेना समुदाय जर्कसीज़ (Xerxes) की सेना से मिलाया जाता तो उस की सेना उस के सामने कुछ भी नहीं जचती. परन्तु हिन्दुओं के यहां या तो हेरोडॉटस (Herodotus) और ज़ेनोफ़न (Xenophon) जैसे इतिहास लेखक हुए ही नहीं, अथवा हुए तो अभाग्य वश उन के ग्रंथ लुप्त हो गये.

यदि इतिहास का यह प्रभाव हो, कि उस से लोगों के चित्त में सहानुभूति उत्पन्न हो, तो इन देशों का इतिहास लोगों के चित्त को आकर्षित करने के लिये अत्यन्त ही मनोरंजक होगा. एक वीर जाति का लगातार कई पीढ़ियों तक स्वाधीनता के लिये लड़ाई झगड़े करते रहना, अपने बाप दादों के धर्म की रक्षा के लिये अपनी प्रिय से

प्रिय वस्तु की भी हानि सहना, और प्राण दे कर भी शौर्य्य पूर्वक अपने सत्वों और जातीय स्वतन्त्रता को, किसी भी प्रकार के लोभ लालच में न आ कर, बचाना ; ये सब मिल कर एक ऐसा चित्र बनाते हैं, कि जिस का ध्यान करने से हमारे रोमांच खड़े हो जाते हैं. यदि मैं उस उत्साह युक्त आनन्द का एक अंश भी, जो मुझे उन स्थानों के मध्य, जहां पर ये घटनायें हुई थीं, खड़े हो कर विगत काल की आख्यायिकाओं के सुनने से प्राप्त हुआ है, अपने पाठकों के हृदय में उत्पन्न कर सकूं, तो मैं उस उदासीनता पर विजय प्राप्त करने में हताश् न हूंगा, जिस के कारण भारत के विषय में मेरे देशवासी अधिक ज्ञान प्राप्त करने का कुछ भी उद्योग नहीं करते हैं ; और न मुझ को इस बात की शंका है, कि यूरोपियन लोग उन नामों को सुन कर, जो हिन्दुओं के लिये कर्णप्रिय और सार्थक, और उन के लिये कर्णकटु और निरर्थक हैं, घबरावेंगे ; क्योंकि यह स्मरण रखना चाहिये, कि प्राय: सभी पूर्वी नाम किसी न किसी शारीरिक वा मानसिक गुण के बोधक होते हैं. प्राचीन नगरों के खण्डहरों के मध्य बैठ कर मैंने उन के विध्वंस विषय की जनश्रुतियों को ध्यान दे कर सुना है, अथवा उन के बीर रक्षकों की वीरता का बखान उन के सन्तानों के मुख से, उन स्मारक चिन्हों के निकट खड़े हो कर, जो उन के स्मरणार्थ बनाये गये हैं, सुना है. मैंने दक्षणीय गॉथ (Goths) लोगों (अर्थात् मरहटों) के साथ रह कर, जब कि वे इस देश को नष्ट कर रहे थे, उन बहुत से स्थानों में

निवास और भ्रमण किया है, जहां पर कि युद्ध हुए हैं, अथवा कोई आपस की लड़ाई हुई है, वा विदेशी शत्रुओं ने आ कर आक्रमण किया है, इस अभिप्राय से कि युद्ध में हताहत लोगों के गंवारू स्मारकों पर से उन के नामों और उन के इतिहास का कुछ अंश पढूं. ऐसी कहानियां और लेख उन के इतिहास और चाल चलन की अनेक बातें बताते हैं. किसी विजय स्तम्भ वा किसी मन्दिर के बनने, अथवा उस के जीर्णोद्धार के विषय की कविता भी विगत काल के विषय में हम लोगों के ज्ञान की कुछ वृद्धि कर सकती है.

उन राज्यवंशों की प्राचीनता के विषय में, जो इस समय मध्य और पश्चिमीय भारत पर शासन करते हैं, हमें केवल दो घराने ऐसे मिलते हैं, जिन की उत्पत्ति ऐतिहासिक सम्भावना की सीमा के बाहिर है; शेष राज्यों की वर्तमान संस्थापना मुसल्मानों की युद्ध सम्बन्धी उन्नति के साथही साथ होने से, उन के इतिहासों की पुष्टता उन के विजय करने वालों [मुसल्मानों] के इतिहासों से होती है. मेवाड़, जैसलमेर और मरुस्थल के कई एक छोटे छोटे राज्यों को छोड़ कर वर्तमान काल के सभी राज्यवंश वास्तव में मुसल्मानों की चढ़ाइयों के पीछे अपने अपने वर्तमान स्थानों पर जमे हैं; और दूसरे, जो बड़े बड़े थे, जैसे परमार और सोलंकी, जो धार और अनहलवाड़ा में राज्य करते थे, कई शताब्दी हुई, लुप्त हो गये.

मैं ने राजस्थान और प्राचीन यूरोप की वीर जातियों

का एक ही स्रोत से निकलना मानने और सिद्ध करने में ज़ोर दिया है. मैंने भारत में उस प्रकार की जागीरदारी का तरीक़ा होने के प्रमाण में, जैसा कि प्राचीन काल में यूरोप में प्रचलित था, और जिस के बचे कुचे चिन्ह अब तक हमारी जाति के शासन नियमों में पाये जाते हैं, बहुत कुछ लिखा है. मैं जानता हूं, कि इस प्रकार के अनुमानों की सत्यता पर सन्देह किया जाता है, और कभी कभी लोग उन का उपहास भी करते हैं. इन विषयों पर जो मैंने अपने विचार प्रगट किये हैं, और जिन का हवाला इस ग्रन्थ के पृष्ठों में कई जगह दिया है, उन के विषय में मैंने कोई हठधर्मी वा पक्षपात नहीं किया है. अब संसार ऐसा बुद्धिमान हो गया है, कि ऐसे ग्रन्थकार के लेखों से विचलित नहीं हो सकता, जो अनुमान मात्र का प्रमाण देते हैं, चाहे वे कैसे ही चतुर क्यों न हों. परन्तु प्रायः ऐसा प्रतीत होता है, कि समय के साथ साथ बहुत से मिथ्या विचारांश प्रगट होने से हम उलटे भूल में पड़ते हैं, और पूर्वीय और पश्चिमीय देश वासियों की उत्पत्ति एक-ही वंश से होने में सन्देह करने लगे हैं. तो भी मैं अपने प्रमाणों को सर्वसाधारण के निष्पक्षपात न्याय के आगे धरता हूं. दोनों जातियों में समान रूप से पाई जानेवाली बातें जो बतलाई गई हैं, वे यद्यपि विवाद रहित नहीं हैं, तो भी ऐसी विचित्र और ध्यान देने योग्य हैं, कि जिन के पढ़ने का श्रम निष्फल न होगा, किन्तु वे पाठकों को इस विषय में अधिक शोध करने की इच्छा दिलावेंगी ;.

और आशा की जाती है, कि तब वे लोग ग्रन्थकार के उस उद्योग की प्रशंसा करेंगे, जो उस ने इस विषय को विस्मृत कथाओं और अपूर्ण लेखों, को टिमटिमाती हुई ज्योति के सहारे से, अन्धकार मय प्राचीन स्रोतों में प्रवेश कर के प्रकाश में लाने के अर्थ किया है.

मैं जानता हूं, कि इस ग्रन्थ में बहुत सी बातें ऐसी हैं, जो सर्व साधारण जनों को क्षमा करनी पड़ेंगी ; और मुझे विश्वास है, कि इन त्रुटियों के मार्जन के लिये मुझ को और कोई अधिक प्रबल प्रमाण उपस्थित न करना होगा, सिवाय उस के, जो मैं पहिले प्रगट कर चुका हूं, कि मेरा स्वास्थ्य बिगड़ गया था, जिस के कारण मेरे लिये अपने इस बृहत् संग्रह रूप पुस्तक को वर्त्तमान अपूर्ण स्थिति में प्रगट करना भी बहुत ही कठिन, किन्तु भयानक व्यवसाय हो गया था, मुझ को यह भी कहना उचित है, कि मैंने इस विषय को इतिहास की कठिन लेखप्रणाली में सङ्गठित करना कभी नहीं चाहा था, जिस से कि वे बहुत सी बातें, जो राजनीतिज्ञों और जिज्ञासु विद्यार्थियों को लाभदायक होतीं, छूट जातीं मैं इस ग्रन्थ को ऐतिहासिक सामग्री के एक पुष्कल संग्रह की नाईं भविष्य काल के इतिहास लिखने वालों को भेट करता हूं ; और मुझे इस बात की उतनी चिन्ता नहीं है, कि मैंने पुस्तक को बहुत बढ़ा दिया, किन्तु इस बात का भय है, कि वे बहुत सी बातें, जो लाभदायक हो सकें, रह न गई हों.

मैं इस भूमिका को, अपने मित्र और सम्बन्धी मेजर वॉग के लिये अपनी कृतज्ञता प्रगट किये बिना समाप्त नहीं कर सकता, जिन्हों ने बड़ी दक्षता के साथ कारीगरी के उन सुन्दर कामों के चित्र तय्यार कर के, जो इस पुस्तक को सुशोभित करते हैं, संसार को आभारी किया है.

पण्डित गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा कृत टिप्पण।

(१) अलाउद्दीन खिल्जी

(२) खलीफ़ा उमर के सेनापति अम्रइब्नुल्आस ने ई० सन् ६४० में मिश्र के प्रसिद्ध नगर अलेग्ज़ेण्ड्रिया (Alexandria) अर्थात् इस्कन्दरिया को विजय करने के समय वहां के प्राचीन पुस्तकालय को, जिस में कई राजाओं की एकत्र की हुई लाखों पुस्तकें थीं, खलीफ़ा की आज्ञा से जलाकर नष्ट कर दिया था. यद्यपि इस विषय में कोई कोई यूरोपियन विद्वान् सन्देह करते हैं; परन्तु मुसल्मानों के इतिहास से इस के सत्य होने में कोई सन्देह नहीं पाया जाता. 'नासिखुत्तवारीख़' में इस का हाल याहिया नामो विद्वान् के वृत्तान्त में विस्तार से दिया है, जिस ने अम्रइब्नुल्आस को इस पुस्तकालय पर हस्ताक्षेप न करने की प्रार्थना की थी, और अम्र ने उस के कहने पर खलीफ़ा उमर को लिखा था; परन्तु खलीफ़ा ने यही उत्तर दिया, कि यदि इन किताबों में जो कुछ लिखा है वह कुर्आन के अनुसार है तब तो हम को इन अनेक भाषाओं के असंख्य अनुवादों की कुछ आवश्यकता नहीं, कुर्आनही बस है, और यदि उन का आशय कुर्आन से विरुद्ध है तो बहुत बुरा है; इस लिये सब को नष्ट कर दो. खलीफ़ा की यह आज्ञा पाने पर अम्र ने उन पुस्तकों को इस्कन्दरिया के हम्मामों में भेज कर पानी गरम करने के लिये ईंधन की जगह जलवा दिया इन पुस्तकों का संग्रह इतना बड़ा था, कि ६ महीने तक उन से जल गरम होता रहा.

(३) जब कि रोमन लोग इङ्गलैण्ड को छोड़ कर चले गये तो उन के पीछे ऐङ्गलो सैक्सन (Anglo Saxon) जाति ने उक्त देश पर आक्रमण कर के वहां अपने सात राज्य क़ाइम किये थे, जो ई० सन् ४५७ से ८२७ तक रहे. ये राज्य सैक्सन हेप्टार्की (Saxon Heptarchy) के नाम से अंग्रेजी के इतिहासों में प्रसिद्ध हैं.

(४) ईसाई धर्म्म पुस्तकों में जाब (Job) एक प्रसिद्ध ईश्वरभक्त माना गया है, जो ईसा से बहुत पहिले हुआ था.

(५) प्राचीन काल में यूनान देश में वीररसात्मक काव्य की अधिष्ठात्री देवी का नाम कॅलिओपी था, जिस को हमारे यहां की सरस्वती देवी समझना चाहिये.

(६) वेनीदास अथवा वेनीदान उदयपुर के महाराणाओं का पुस्तैनी बड़वा अर्थात् ख्याति लिखने वाला था, जो महाराणा भीमसिंह जी के समय में विद्यमान था. टाड साहिब ने उस से मेवाड़ के महाराणाओं की वंशावली आदि ऐतिहासिक वृत्तान्त दर्याफ़ किये थे.

(७) 'पृथ्वीराज रासा' के पर्व जो जगह जगह बिखरे हुए थे.

(८) गुजरात की राजधानी 'अनहिलवाड़ा' (पाटन) को मुसल्मान लेखक 'अनहलवारा' या 'नहरवाला' और संस्कृत लेखक 'अणहिलपुर' या 'अणहिल पाटक' कर के लिखते हैं.

(९) महाराजा जगत्सिंह जी.

(१०) रसकपूर.

(११) जयपुर के महाराजा जयसिंह जी के समय में यह पुस्तक रत्नाकर पण्डित ने रची थी. इस के प्रारम्भ में जयपुर के राजाओं का कुछ इतिहास है, बाकी करीब करीब सारी पुस्तक में वर्ष भर के व्रतों का निर्णय आदि दिया है. टॉड साहिब ने जैसा लिखा है वैसी ऐतिहासिक दिनचर्या की पुस्तक यह नहीं है.

(१२) मिनर्वा (Minerva) रोमन लोगों की एक पुरातन देवी का नाम है, जो बुद्धि तथा कला कौशलादि की अधिष्ठात्री मानी जाती थी. हिन्दू मिनर्वा का मतलब हमारे यहां की सरस्वती देवी से है, और उस की थोड़ी से अभिप्राय विद्याभण्डार है.

(१३) ईरान के बादशाह दारा (प्रथम) ने, जो सन् ईसवी से पूर्व ५२१ में राज्यसिंहासन पर बैठा था, सन् ईसवी से लग भग ५०० वर्ष पूर्व हिन्दुस्तान पर आक्रमण कर के पंजाब का पश्चिमी प्रदेश अपने आधीन कर लिया था. इस के साम्राज्य के २० सूबों में से हिन्दुस्तान का यह सूबा ही अधिक धनवान् था, जहां का खिराज केवल सुवर्ण में पहुंचता था, और सब सूबों का चांदी

में आता था. सन् ईसवी से पूर्व ४९० में इस ने यूनान पर चढाई की थी, परन्तु वहां से पराजित हो कर लौटना पडा. सन् ई० से पूर्व ४८५ में इस का देहान्त हुआ था.

(१४) उत्तरी और पश्चिमी यूनान के बीच की एक प्रसिद्ध तंग घाटी और रणभूमि का नाम है.

(१५) जब कि ई० सन् से पूर्व ४८० में ईरान के बादशाह ज़र्कसीज़ ने बडे सैन्य दल के साथ यूनान देश पर आक्रमण किया, उस समय उस देश में भी हिन्दुस्तान की नाईं अनेक छोटे छोटे स्वतन्त्र राज्य थे, जिन्हों ने मिलकर अपने में से स्पार्टा के वीर राजा लियोनिडास को थर्मोपिली की घाटी में ८००० सैन्य सहित ईरानियों का सामना करने को भेजा. ईरानियों ने कई बार उस घाटी को विजय करने का यत्न किया, परन्तु प्रत्येक बार बडे संहार के साथ हार कर पीछा लौटना पडा. अन्त में एक विश्वासघाती पुरुष की सहायता से ईरानी लोग पीछे से पहाड पर चढ आये. लियोनिडास को अपनी सेना में से बहुत से लोगों का ईरानियों के पक्ष में मिल जाने का सन्देह होने से उस ने केवल अपने १००० विश्वासपात्र वीरों को पास रख, बाकी सेना को निकाल दिया, और आप बडी वीरता के साथ लडकर मारा गया. कहते हैं, कि उस की सेना में से केवल एक आदमी जीवित बचा था.

(१६) यूनान के डेल्फ़ी नगर का प्रसिद्ध ऐपोलो (Apollo) अर्थात् सूर्य्य का मन्दिर. यह मन्दिर यूनान देश के सब देवमन्दिरों में अधिक प्रसिद्ध और धनवान् था.

(१७) अंग्रेज़ी की मूल पुस्तक में लीडिया (Lydia) के स्थान में लीबिया (Lybia) छपा हो ऐसा प्रतीत होता है. यहां पर लीबियन सम्राट का मतलब लीडिया के बादशाह क्रोसस (Crœsus) से है जो अपनी समृद्धि के लिये प्रसिद्ध था और सन् ईसवी के पूर्व ५६० व ५४६ के मध्य में वहां राज्य करता था. लीडिया एशियामाइनर (Asia minor) के एक विभाग का प्राचीन नाम था.

(१८) यह ईरान के बादशाह दारा (प्रथम) का पुत्र था. इस ने सन् ई० से पूर्व ४८५—४६५ तक राज्य किया, और ई० सन् से पूर्व ४८० के वसन्त ऋतु में अपनी जल और स्थल सम्बन्धी सेना के २६४१४६० सैनिकों को साथ लेकर यूनान देश पर आक्रमण किया, जहां बड़ी कठिनता से थर्मोपिली के युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् यह एथिन्स नगर पर बढ़ा था, परन्तु सालेमिस के युद्ध में उस की जल सेना के हार जाने से उसे स्वदेश को लौटना पड़ा था. वह अपनी अंगरक्षक सेना के सेनापति के हाथ से मारा गया था.

(१९) यह यूनान का एक प्रसिद्ध इतिहास लेखक था, जो सन् ई० से पूर्व ४८४ में जन्मा, और सन् ई० से पूर्व ४२४ के लगभग मरा था. इसकी लिखी हुई इतिहास की बड़ी पुस्तक प्राचीन समय के ऐतिहासिक ग्रन्थों में बड़ी ही प्रामाणिक मानी जाती है

(२०) यह एक प्रसिद्ध सेनापति, तत्वज्ञानी और इतिहास लेखक, तथा हकीम सुक्रात का मित्र और शिष्य था इस का जन्म सन् ई० से पूर्व ४४४ में यूनान की राजधानी एथिन्स में, और देहान्त सन् ई० से पूर्व ३५९ में हुआ था.

(२१) ये जर्मन देश की एक वीर जाति के लोग थे, जो आदि काल में यूरोप में बाल्टिक सागर के तट पर निवास करते थे ईसवी सन् की पांचवी शताब्दी के प्रारम्भ में इन के एक दलने इटली राज्य पर आक्रमण कर के वहां की राजधानी रोम नगर को विजय किया, और उसे खूब लूटा था, फिर स्पेन देश पर चढ़ाई कर के वहां अपना एक राज्य कायम किया था, जो दो शताब्दी से अधिक समय तक उन के अधिकार में रहा इसी अन्तर में उन के दूसरे दलने अपना अधिकार कुस्तुन्तुनिया नगर के द्वारों तक जा जमाया था.

राजस्थान वा राजपूताने का भूगोल.

—०—

राजस्थान* भारत के उस भाग का समुदायसूचक और शुद्ध नाम है, जो (राजपूत) राजाओं का निवास स्थान है. इन देशों [राज्यों] की प्रचलित भाषा में उस को रजवाड़ा कहते हैं; परन्तु जो लोग विशेष सभ्य हैं वे उसे रायथान कहते हैं; राजपूताना इस का अपभ्रंश है, और यही साधारण नाम अंग्रेज़ों मे राजपूत राज्यों के लिये प्रसिद्ध है.

मुसल्मान विजेता शहाबुद्दीन से पहिले राजस्थान नामक देश का विस्तार कितना था वह अब नहीं जाना जा सकता (संभव है कि उस समय वह गंगा जमुना के परे हिमालय की तलहटी तक भी पहुंचा हो). इस समय तो हम उस की वही सीमा मानेंगे जिस के अन्तर्गत अब भी एक विस्तीर्ण प्रदेश है, और उस मे भिन्न भिन्न जातियां बसती हैं, जिन का हाल जानने योग्य है.

धार और अणहिलवाड़ा पट्टन के नष्ट होने पर मांडू और अहमदाबाद की छोटी छोटी बादशाहतें (जो मालवा और गुजरात की राजधानियां थी) स्थापित होने के पूर्व राजस्थान शब्द से शायद वही प्रदेश माना जाता था, जो इस पुस्तक के प्रारंभ मे दिये हुए नक़्शे में दर्ज है; अर्थात् पश्चिम मे सिन्धुनदी का कछार; पूर्व मे बुंदेलखण्ड†;

---

* राज्य (राज), स्थान (थान)।

† आश्चर्य का स्थान है, कि [छोटी] सिन्धु नदी इस प्रदेश की

उत्तर मे (सतलज नदी के दक्षिण का) वह मरुस्थल जिसे जंगल देश कहते हैं ; और दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत.

इस प्रदेश मे अनुमान आठ अक्षांस, और नौ रेखांश आते हैं ; अर्थात् यह २२° से ३०° उत्तर अक्षांस, और ६९° से ७८° पूर्व देशान्तर तक फैला हुआ है, जिस का क्षेत्रफल ३५०००० वर्गमील है.

यद्यपि ऐसा विचार किया गया है, कि इस विस्तृत देश मे जितने राज्य हैं उन सबों का इतिहास उन की गत और वर्तमान दशा सहित लिखा जावे, तथापि मध्य के राज्यों पर अधिक ध्यान दिया जावेगा, विशेषकर मेवाड़ पर, जिस का विस्तार पूर्वक वर्णन करने से दूसरे राज्यों के लिये वह आदर्श रूप हो जायगा, और फिर उन का वैसा विशेष वर्णन करने की आवश्यकता न रहेगी।

जिस क्रम से उन राज्यो का वर्णन होगा वह यह है:—

(१) मेवाड़ वा उदयपुर.
(२) मारवाड़ वा जोधपुर.
(३) बीकानेर और कृष्णगढ़.
(४) कोटा } वा हाड़ौती.
(५) बूंदी }
(६) आंबेर वा जयपुर, उस की आधीन और स्वाधीन शाखाओं सहित.
(७) जैसलमेर.

पूर्वी और बड़ी सिंधु इस की पश्चिमी सीमा है. छोटी सिंधु के पूर्व के हिन्दू राजा शुद्धवंश के नहीं है, और उन की गणना राजस्थान वा रजवाड़ा में नहीं है.

(८) हिन्दुस्तान का मरुस्थल, जो सिन्धुनदी के कछार तक चला गया है.

इस ग्रन्थ का मुख्य अभिप्राय तो उक्त देश के भूगोल ही से है, ऐतिहासिक और देशावस्था विषयक वृत्तांत प्रसंगवशात् पीछे से दिये गये हैं. वास्तव में पहिले पहिल यह इच्छा थी, कि यह ग्रन्थ यथार्थ में भूगोल सम्बन्धी ही हो, परन्तु कई कारण ऐसे आ पड़े कि जिस से इच्छित वृत्तान्त का लिखना असंभव हो गया, यहां तक कि जो वृहत् सामग्री ग्रन्थकार को उपलब्ध थी उस से जैसा सही नक्शा * बनाया जा सकता था वह भी न बन सका. इस से ग्रन्थकार को ही शोक है, साधारण पाठकों की उतनी हानि नहीं है, जिन को भौगोलिक वृत्तान्त, चाहे वे कैसे ही उपयोगी हों, प्रायः शुष्क और नीरस लगते हैं.

यह भी विचार था, कि इस नक्शे और प्राचीन भूगोल के उन बचे कुचे वृत्तान्तों का, जो पुराणों और हिन्दुओं के अन्य प्रामाणिक ग्रन्थों से चुने जा सकते हैं, आपस में मिलान किया जावे ; परन्तु यह कार्य भविष्य पर छोड़ दिया जाता है. यदि ग्रन्थकर्त्ता को फिर से अपना श्रम आरंभ करने का अवसर मिलेगा, तो जो कसर कि इस समय के जल्दी जल्दी में और साधारण प्रकार से तय्यार किये हुए ढांचे में रह गई है वह उस समय पूरी हो जायगी.

---

* यह प्रसिद्ध कारीगर मिस्टर वाकर (Walker) का बनाया हुआ था, जो ईस्ट इंडिया कम्पनी की सेवा में था. मुझे भरोसा है कि आयन्दा वह मेरे संग्रह का पूर्ण उपयोग कर सकेगा.

जब कि मरहटों के साथ का युद्ध समाप्त होने पर सन् १८०६ ई० में ग्रन्थकर्त्ता उस राजदूत के साथ नियत किया गया, जो सेंधिया के दर्बार में भेजा गया था, तब से इस परिश्रमी शोध का प्रारंभ हुआ, और उसी अरसे में यह सामग्री एकत्र की गई थी. इस सर्दार [सेंधिया] की सेना उन दिनों मेवाड़ में थी, जो देश उस समय [यूरोपियन लोगों को] यहां तक अज्ञात था, कि उस की दोनों राजधानियां उदयपुर और चित्तौड अच्छे से अच्छे नक्शे में भी ठीक उलटे स्थानों पर हो गई थीं ; अर्थात् चित्तौड उदयपुर के पूर्व और ईशान के बीच होने के बदले अग्नि कोण में दर्ज था ; जो इस बात का प्रमाण है, कि उस समय [उन को राजपूताना के भूगोल का] बहुत कम ज्ञान था. और दूसरी बातों के विषय में तो प्रायः कुछ भी नहीं लिखा था. सन् १८०६ ई० से पहिले के बने हुए नक्शों में राजस्थान के करीब करीब तमाम पश्चिमी और मध्यवर्ती राज्य नहीं मिलेंगे. थोडे ही समय पहिले लोग यह समझते थे, कि [राजपूताने की] सारी नदियां दक्षिण की ओर बह कर नर्मदा में जा मिलती हैं, इस भ्रम को हिन्दुस्तान की भूगोल विद्या के प्रथम संशोधक प्रसिद्ध रैनल (Rennell) साहिब ने शुद्ध किया था.

ग्रन्थकर्त्ता ने इस अपूर्णता की पूर्त्ति की ; और सन् १८१५ ई० में पहिले पहिल राजस्थान का भूगोल एकत्रित रूप [नक्शा] में तय्यार कर के [पिंडारों के साथ की] सर्व साधारण लडाई प्रारंभ होने के थोडे ही समय पहिले

मार्किस ऑफ़ हेस्टिंग्ज़ (Marquis of Hastings) को भेट किया गया, जो उक्त प्रसिद्ध सेनापति की उस युद्ध योजना का थोड़ा बहुत आधार भूत हो जाने से [मेरा] दस वर्ष का परिश्रम पूर्ण रूप से सफल हो गया. ग्रन्थकर्त्ता यहां पर यह भी लिखना अपना कर्तव्य समझता है, कि उस समय से पीछे के जितने नक़्शे बने हैं उन सब में भारत के मध्य और पश्चिमीय प्रदेश अंकित किये जाने का आधार उसी के परिश्रम पर निर्भर है. *

---

* जब सन् १८१७ की लड़ाई शुरू हुई तो मेरे नक़्शे की छोटे मान पर तय्यार की हुई प्रतियां युद्धक्षेत्र के समस्त सैनिक विभागों को भेजी गई, और बहुत से सैनिक कर्मचारियों को भी मिलीं. उसी की हाथ से तय्यार की हुई नक़लें यूरोप में पहुंचीं, और उसी के अनुसार हिन्दुस्तान के हरएक नये नक़्शे में वे विभाग दर्ज किये गये. वास्तव में एक नक़्शा इस प्रकार का मिला, जिस से यह प्रतीत हो कि उस का बनाने वाला ही उस की सामग्री एकत्र करने वाला है. इस से मार्किस ऑफ़ हेस्टिंग्ज़ की वह भविष्यद्वाणी पूरी हो गई, जिस ने यह बात पहिले से जान ली थी, कि ऐसी चीज़ें किसी मनुष्य की निज सम्पत्ति रहना असंभव हैं, "और दूसरे लोगों का उन के मालिक बन बैठने का भय है", और इस इच्छा से कि उस का कर्त्ता अपने परिश्रम से पूरा लाभ उठावे, उस ने यह प्रकट कर दिया, कि उस का सर्कार से प्रति फल मिलने का दावा आगे के लिये मुल्तवी न रक्खा जावे.

इस से यह न समझ लिया जावे, कि उस की उक्त आलोचना से ग्रन्थकर्त्ता को आश्चर्य हुआ, जब कि वह अपने प्रति प्रथम शोधक होने का दावा करता है तो भी विद्योन्नति की बाधा चाहने वालों में वह अन्तिम पुरुष है.

"क्योंकि स्पर्द्धा का द्वार हजारों के लिये खुला हुआ है."

उक्त दूत दल का रास्ता आगरे से जयपुर की दक्षिणी सीमा में हो कर उदयपुर को था. इस मार्ग का कुछ अंश डॉक्टर डब्ल्यु० हंटर (Dr. W. Hunter) ने नापा था, और खगोल निरीक्षा से जो चिन्ह नियत किये थे उन्हीं को मैंने अपनी पैमाइश में आधार रूप माना. सेंधिया के दर्बार में भेजे हुए रेजिडेन्ट* राजदूत के पास डॉक्टर हण्टर का बनाया हुआ उस रास्ते का उपयोगी नक्शा मौजूद था, जिस से हो कर सन् १७९१ ई० में राजदूत कर्नल पामर (Colonel Palmer) गया था ; जो कि वह [नक्शा] उत्तम और बहुत सही था, इस लिये मैंने अपनी पिछली पैमाइश उसी के आधार पर की. उस में मध्य भारत के सब सीमान्त स्थान अंकित थे, अर्थात् आगरा, नर्वर, दतिया, झांसी, भोपाल, सारंगपुर, उज्जैन, जो हिन्दुओं का प्रथम याम्योत्तर-वृत्त (Meridian) है ; और वहां से लौटते हुए कोटा, बूंदी, रामपुरा (टौंक) व बयाना से ले कर आगरा तक दर्ज थे. ये सब स्थान खगोल निरीक्षा द्वारा यथावकाश न्यूनाधिक शुद्धता के साथ नियत किये गये थे.

रामपुरा तकही हण्टर का नक्शा मेरा पथदर्शक हुआ; और इस स्थान से उदयपुर तक नई पैमाइश प्रारंभ हुई, जहां सन् १८०६ ई० के जून में हम पहुंचे. उस समय जो उस [उदयपुर] का स्थान अत्यन्त ही अपूर्ण यन्त्रोंद्वारा नियत

---

* मेरे माननीय मित्र (मेविसबंक निवासी) ग्रीम मर्सर महाशय (Greem Mercer of Mœvisbank) जिन्हों ने मेरे उद्योग को उत्तेजित किया.

किया गया था उस के रेखांश में केवल एक काला का परि-वर्त्तन हुआ है, यद्यपि उस के अचांस में अनुमान पांच काला का अंतर पड़ा.

फिर उदयपुर से वह सेना, जिस के साथ हम थे, प्रसिद्ध चित्तौड़ के निकट होती हुई मालवा के मध्य मे हो कर विन्ध्याचल से निकली हुई सारी बड़ी बड़ी नदियों को लांघ कर बुंदेलखण्ड की सीमा पर खिमलासा में पहुंची, जहां हम कुछ काल तक ठहरे. इस सात सौ मील की यात्रा में मुझे पहिले राजदूत के मार्ग को दो वार लांघना पड़ा, और मैं अपने पहिले पहिल नियत किये हुए स्थानों को बहुधा उस [हण्टर] के स्थित किये हुए स्थानों से मिलता हुआ पा कर बड़ा प्रसन्न हुआ.

सन् १८०७ ई० जब उक्त सेना ने राहतगढ़ पर घेरा डाला तो मैंने विचार किया, कि मैं उस समय से, जिस को मरहटे इस कार्य मे खोते हैं, लाभ उठाऊं, और अपने अभीष्ट कार्य में प्रवृत्त हूं. अतः मैंने थोड़े से सिपाही अपनी रचा के लिये साथ ले कर यह इरादा किया, कि बेत्वा के किनारे २ चंदेरी तक के अज्ञात स्थलों मे हो कर गुजरूं, और उसी रेखा मे कोटे की तरफ़ पश्चिम को बढ़ कर एक वार फिर उन सब नदियों के मार्ग का पता लगाऊं, जो दचिण की तरफ़ से बहती हैं, और [उन में से] बड़ी बड़ी मुख्य नदियों (कालीसिन्ध, पार्वती, और बनास) के चम्बल के साथ के संगम स्थानों का पता लगाऊं; और यह काम पूरा कर के आगरे की तरफ़ बढूं. इस काम

को मैंने ऐसे समय में पूरा किया, जो वर्त्तमान समय से बहुत ही भिन्न था. मुझ को प्रायः आधी आधी रात के समय अपने डेरे उखेड़ कर कूच करना पड़ा, और कई बार लुटेरों के हाथ में भी पड़ गया.* इस मार्ग में मुख्य २ स्थान खिमलासा, रजवाड़ा, वेत्वा के किनारे पर कोटड़ा, खुनियाधाना †, बड़ोरनगर ‡, आशावाद, वारा +, पलायता §, बड़ोदा, शिवपुर, पाली ¶, रणथंभोर, करौली, श्रीमथुरा, और आगरा थे.

जब मैं लौट कर पीछा मरहटों के लश्कर में आया, तो मैंने फ़िर भी अपने शोध का विस्तार बढ़ाने का इरादा किया, और पश्चिम की ओर भरतपुर, कठूंमर, सैंथो होता हुआ जयपुर, टौंक, बून्दरगढ़, गूगल, छपरा, राघोगढ़, आरोन, कुवाई, और भौंरासा के रास्ते से सागर पहुंचा. यह यात्रा एक हज़ार मील से भी अधिक की थी. मैं ने [मरहटों के] लश्कर को क़रीब क़रीब उसी जगह पाया, जहां मैं उस को छोड़ गया था.

मैं इस भ्रमण करने वाले सेंधिया के दर्बार के साथ रह

---

* इन यात्राओं में कई घटना ऐसी हुई, जो अद्भुत कहानियों को याद दिलाती हैं, परन्तु यहां उन के लिये स्थान नहीं है,

† पूर्वी उच्च समभूमि पर.

‡ सिन्धु नदी पर.

+ पार्वती नदी पर.

§ काली सिन्ध पर.

¶ चम्बल नदी के मार्ग, और पार नदी के संगम पर.

कर सन् १८१२ ई० तक, जब कि उक्त दर्बार एक स्थान पर जम गया, इस प्रदेश में जगह जगह घूमता और बराबर पैमाइश करता रहा. फिर उसी समय मैंने उन देशों का ज्ञान प्राप्त करने की तज्वीज की, जिन में मैं स्वयं नहीं जा सका था.

सन् १८१०-११ ई० मे मैंने [पैमाइश करने वालों के] दो दल, एक सिन्धु की तरफ, और दूसरा सतलज के दक्षिणी मरुस्थल को रवाना किया. पहिला दल शेख अबुल् बरकत की आधोनता में पश्चिम की ओर रवाना हुआ, जो उदयपुर के रास्ते से गुजरात, सौराष्ट्र और कच्छ, लखपत और हैदराबाद (सिन्ध सर्कार की राजधानी) में होता हुआ सिन्धु नदी को पार कर ठट्ठा तक पहुंचा. फिर उस के दाहिने किनारे किनारे सेवान तक बढ़ा; वहां से सिन्धु नदी को दोबारा लांघ कर उस के बाएं किनारे किनारे खैरपुर तक चला गया, जो सिन्ध के तीन सूबेदारों में से एक के रहने की जगह है; और भक्खर * के टापू

* शेख नमूने के तौर पर सिलीसियस (Siliceous) जाति के चटान के टुकड़े और सेवान के बहुत प्राचीन क़िले की ईंट का एक टुकड़ा, और वहा के खण्डों में से कुछ जला हुआ अन्न लाया, जिस के विषय में वहा के लोगों की यह दन्तकथा है, कि यह [अन्न] विक्रमादित्य के भाई राजा भर्तृहरी के समय का रक्खा हुआ है. यह असंभव नहीं, कि सिकन्दर के भयानक हमले के कारण वह अन्न वहां रक्खा गया हो, और आग से जलाया गया हो. कप्तान पौटिंजर (Captain Pottinger) का अनुमान है, कि स्यात् सेवान मुसीकेनर्स (Musicanus) की राजधानी हो.

में (जो सिकन्दर के समय सोगँडो लोगों की राजधानी थी) पहुंचने बाद उमरसुमरा के रेगिस्तान के रास्ते से लौट कर जैसलमेर, मारवाड़, और जयपुर होता हुआ नर्वर के मक़ाम पर मुझ से आ मिला. यह एक जान जोखिम का व्यवसाय था; परन्तु शेख़ निडर और साहसी पुरुष था; इस के अतिरिक्त वह कुछ पढ़ा लिखा भी था. उसकी दिनचर्य्या की पुस्तक में भूगोल विषयक आगामी शोध, तथा देशावस्था और उन भिन्न भिन्न जातियों के आचार संबन्धी बहुत से संकेत व निर्देश थे, कि जिन के मध्य में होकर उस ने यात्रा की थी.

दूसरा दल एक बड़े ही योग्य पुरुष मदारीलाल की आधीनता में रवाना हुआ था, जो इन भूगोल विषयक अनुसंधान के उद्योगों और उस से प्राप्त होनेवाले अन्य ज्ञान में बड़ा ही निपुण हो गया था. इस विस्तीर्ण प्रदेश में, जिस का वर्णन पाठकों के सामने है, कोई भी प्रान्त, जो चाहे किसी कारण से प्रसिद्ध हो, ऐसा नहीं है, जहां यह साहसी पुरुष न पहुंचा हो. ऐसी कठिन और जोखिम की यात्राओं के लिये इस से बढ़ कर योग्यतावाला पुरुष कदापि नहीं मिलेगा. वह बड़ा उत्साही, उद्योगी, चित्ताकर्षी, और प्रायः पूरा जानकार था; इस से वह जहां तहां अपना रास्ता निकाल लेता था, यदि उस समय दूसरे लोग होते तो मर जाते.*

---

* अन्त में उस की आरोग्यता बिगड़ गई, और हिम्मत हार कर वह एकाएक मर गया. मुझे विश्वास है, कि उस को ज़हर दिया गया,

इन दूर दूर के प्रदेशों से अच्छे अच्छे जानकार देशी लोग समझाने बुझाने और पारितोषिक देने से मेरे पास आ जाते थे; और मैं ग्वालियर स्थान पर मरहटों के लश्कर में सन् १८१२ से १८१७ ई० तक रहा, तब तक सिन्धु की पाछार, थाट वा उमरसुमरा के मरुस्थल, अथवा राजस्थान की किसी भी रियासत के रहनेवाले को हरवक़ अपने पास बुला सकता था.

जिस शुद्धता के साथ क़ासिद और अन्य सर्वसाधारण चिट्ठी पहुंचानेवाले उन देशों में, जहां डाक बहुत कम चलती है, किसी लम्बे मार्ग के मुख्य मुख्य स्थानों और उन के सही सही अन्तर का ब्यवरेवार वर्णन कर सकते हैं उस पर यूरोप निवासी विरले ही विश्वास करेंगे.

मुझे यह कहने में कुछ भी सन्देह नहीं है, कि यदि एक देश के नापे हुए कोस का सही अन्दाज़ मालूम हो जावे, तो बहुत ही शुद्धता के साथ उस की रेखा सम धरातल पर खेंची जा सकती है. मैंने ऐसा कहते हुए सुना है, कि प्राचीन हिन्दू राज्यों में एक नगर से दूसरे नगर तक की सड़कों का माप लिया जाता था. और आबूमाहात्म्य* में एक ऐसे यंत्र का ज़िक्र आया है जो इस काम में लाया

मदारी की तरह उत्साही फचा भी इसी काम में मरा. पूर्वी देशों में जिन लोगों ने भूगोल का शोध उत्साह के साथ किया वे सब इसी तरह से मरे.

* यह एक उत्तम और प्राचीन ग्रन्थ है, जो मैंने रॉयल एशियाटिक सोसाइटी को भेट किया है.

जाता था. वास्तव में मार्ग मापक यंत्र (Perambulator) से नापी हुई रेखाओं और टेशियों के अनुमान कियेहुए अन्तर का आपस में बहुत ही ठीक रीति से मिलना इस बात का सब से अच्छा प्रमाण है कि, टेशियों के अनुमान कियेहुए अन्तर भी किसी निश्चित नियम से निकाले गये हैं, केवल अन्दाज से ही नहीं.

मैं केवल मदारी लाल के दल के सिवाय अपने दलों में से किसी एक ही की पैमाइश पर सन्तुष्ट नहीं होता था, किन्तु सदैव एक दल की जानकारी को उसी स्थल को जानेवाले दूसरे दल की हिदायत का आधार बनाता था. और इस प्रकार प्राप्त की हुई विशेष जानकारी तथा काम की बातों से तथा उन देशी लोगों की सहायता से, जिनको प्रत्येक दल अपने अपने साथ लाते, हर एक स्थान की पूरी पूरी जांच परताल करके सन्तुष्ट होता था.

इस प्रकार थोड़े से वर्षों में मैंने कई जिल्दें इस प्रदेश के भीतर के रास्तों की रेखाओं से भरदी, और बहुत से सीमान्त तथा मध्यस्थ स्थानों को दर्ज करके, जिन की स्थिति निश्चित हो चुकी थी, उन से एक साधारण नकशा बना लिया, जिस में सारी मालूमात दर्ज करदी गई. मैं विशेषकर पश्चिमी राज्यों का जिक्र करता हूं, क्योंकि मध्य देश वा उस देश की पैमाइश और नपती प्रत्येक ओर से, जो या तो पश्चिम में ऊंचे अर्वली से अथवा दक्षिण में विंध्याचल से निकलने वाली चम्बल और उस की सहायक नदियों से सींचा जाता है, मैंने स्वयं ऐसी ठीक शुद्धता के साथ की है, कि

जब तक त्रिकोणमिति के अनुसार बड़ी पैमाइश प्रायद्वीप [दक्षिण] से आगे बढ़कर सारे हिन्दुस्तान भर में न हो जाये तब तक वह प्रत्येक राजनैतिक अथवा सैनिक प्रयोजन के लिये उपयुक्त हो. इन देशों में सतलज तक उत्तर में और सिन्धु नदी तक पश्चिम में विस्तृत समान भूमि है, जहां भौगोलिक विषयों का एक साथ समावेश करना उन स्थानों की अपेक्षा सरल है, जहां पहाड़ी भूमि बीच में आ गई है.

इन भिन्न भिन्न रेखाओं को उपर्युक्त नक्शे में दर्ज करके मैंने उस की शुद्धता को नई रीति की पैमाइश से अर्थात् त्रिकोणमिति द्वारा जांचने और ठीक करने का संकल्प किया.

मेरे कर्मचारी गण फिर से अपना काम उन स्थानों से जारी करने के लिये भेजे गये, जिन से वे अब भली भांति परिचित हो गये थे. उन्हों ने उन स्थानों से कार्य आरंभ किया, जिन की स्थिति नियत करदी गई थी (और मेरे अनुभव ने मुझे उन को ऐसे बहुत से स्थान बताने के योग्य कर दिया था), और उन में से प्रत्येक को उन्हों ने केन्द्र मानकर २० मील के अन्तर तक के प्रत्येक नगर को जाने-वाले मार्गों को दर्ज कर लिया. जो स्थान चुने गये वे प्रायः ऐसे थे जो क़रीब क़रीब समत्रिबाहु त्रिकोण बनाते थे; और यद्यपि उन मालूमात को क्रम पूर्वक जमाना बड़ा कठिन हुआ, तथापि वह रीति [जिस से काम लिया गया] ऐसी थी कि अकस्मात् देखने वाले को भी अपनी अशुद्धता

आपको बता देवें; क्योंकि ये रेखा प्रत्येक दिशा में एक दूसरी को काटती, और इसी से आपस में शुद्ध करती थीं. ऐसे साधनों से मैंने उन अज्ञात देशों में अपना काम किया, और उस नतीजे का कुछ अंश पाठकों के सामने उपस्थित है. मैं कुछ अंश ही कहता हूं, किसलिये कि मेरा स्वास्थ्य मुझे अपनी इच्छा के विरुद्ध उस बहुत से भाग को छोड़ देने के लिये वाध्य करता है, जो, उन १० जिल्दों में से, जो कि इन देशों में सर्वत्र यात्रा करने के समय तय्यार की गई थीं, दर्ज किया जा सकता.

सन् १८१५ ई० में मैंने, जैसा कि ऊपर कहा गया है, एक नक्शे का ढांचा, जिस में इस प्रकार से प्राप्त की हुई कुल जानकारी दर्ज थी, गवर्नर जेनरल हिन्द को भेट किया, जो कुछ समय पीछे लड़ाई के वक्त बहुत ही उपयोगी हुआ. पुनः युद्ध आरंभ होने के ठीक थोड़े ही समय पहिले मैंने एक दूसरा नक्शा मालवा के बड़े भाग का बना कर भेट किया, जिस के अनुसार पिंडारों के युद्ध में सैनिक कार्य-वाही करना उपयुक्त समझा गया. इस छोटे से नक्शे में मुख्य२ विषय विंध्याचल का साधारण स्थान, उस में से निक-लने वाली प्रत्येक नदी का मूल और मार्ग, तथा पर्वत श्रेणी की घाटियां थीं, जिन का जानना अत्यन्त ही आवश्यक था. इसी प्रकार उस में इस विभाग के कई एक देशों की सीमा भी बतलाई गई थी, और वह पीछे पेश्वा के राज्य को छिन्न भिन्न करने में विशेष लाभदायक हुआ.

इस नक्शे के बनाने में मुझे डॉक्टर हण्टर के और मेरे, दोनों के नियत किये हुए अनेक स्थानों से काम लेना पड़ा; और यह देख कर मुझे प्रसन्नता होती है, कि यद्यपि इस स्थान में उस समय से अब तक कई बार पैमाइश हो कर अनेक रेखा दर्ज की गई हैं, तो भी केवल साधारण तौर से ही नहीं, किन्तु प्रायः ख़ास मेरी निश्चित की हुई बातें उन नक्शों में क़ाइम रक्खी गई हैं, जो उस समय के पीछे बने हैं. जो कि इस विभाग की पैमाइश हो कर कई नई रेखा नक्शों में बढ़ाई गईं, और भूगोल के एक विद्वान तथा उत्साही पुरुष ने कई नये स्थान नियत किये हैं इसलिये मैं ख़ुशीसे भूगोल के इस नवीन सुधार का कुछ अंश इस के साथ दिये हुए अपने नक्शे में दर्ज करता हूं.*

सन् १८१७ से सन् १८२२ ई० तक मैंने कई पैमाइशी रेखा बनाईं; और यहां पर मैं अपने सम्बन्धी† के लिये अपनी कृतज्ञता प्रगट करता हूं, कि केवल उसी की सहायता से मेरे भूगोल संबन्धी परिश्रम के इस भाग में सुधार हुआ. इस अफ़सर ने एक वृत्ताकार पैमाइश की, जिस में मेवाड़

---

* परन्तु इस में मालवा तक ही दर्ज है, जिस का भूगोल कप्तान डैंजरफ़ील्ड (Dangerfield) के श्रमद्वारा बहुत ही कुछ सुधारा और बढ़ाया गया है ; और यद्यपि मेरी सामग्री इस सारे प्रदेश को भर सकती थी, परन्तु मैं केवल उन मुख्य मुख्य स्थानों को ही दर्ज करता हूं, जो इस को राजस्थान से मिलाते हैं.

† कप्तान पी० टी० वॉघ (P. T. Waugh), दसवीं रजमट लाइट केवलरी, बंगाल.

के क़रीब क़रीब सीमान्त स्थान राजधानी से लेकर चित्तौड़, मांडलगढ़, जहाजपुर, राजमहल, और पीछे लौटते समय भिणाय, बदनौर व देवगढ़ से लेकर उस स्थान तक जहां से वह रवाना हुआ था, आगये है. इन सीमान्त स्थानों के आधार से वह बहुत से मध्यस्थ स्थान भी क़ायम कर सका, जिस के लिये मेवाड़ अपनी पृथक् पृथक् स्थित पहाड़ियों के कारण बहुत उपयोगी है.

सन् १८२० ई० में मैंने अर्वली को लांघ कर एक उपयोगी यात्रा की जिस में कुम्भलमेर व पाली होता हुआ मारवाड़ की राजधानी जोधपुर, और वहां से मेड़ते होकर लूनी नदी की मार्ग का पता लगाता हुआ उस के मूल तक अजमेर पहुंचा; और चौहान राजाओं व मुग़ल बादशाहों के इस प्रसिद्ध निवास स्थान से चल कर भिणाय व बनेड़ा के रास्ते मेवाड़ के मध्य भागों में होता हुआ राजधानी [उदयपुर] को लौट आया।

मुझ को यह जान कर बड़ा ही सन्तोष हुआ, कि मेरे निश्चित कियेहुए जोधपुर के स्थान में जो पश्चिम और उत्तर के भौगोलिक स्थलों के क़ायम करने में मुख्य स्थान के तौर पर उपयोग में लाया गया है, केवल ३ कला का अन्तर अक्षांश में और इस से कुछ ही अधिक रेखांश में पड़ा, जिस से बीकानेर का जो स्थान मैंने नियत किया था वह मिस्टर एल्फ़िन्स्टन (Mr. Elphinstone) के नियत कियेहुए स्थान से बराबर आ मिला, जो उस ने अपने काबुल में एल्ची के तौर भेजे जाने के वृत्तान्त में दिया है.

उदयपुर, जोधपुर और अजमेर आदि, जिन के स्थान मैंने निरीक्षण द्वारा नियत किये थे, तथा एग्टर साहिब के क़ाइम किये हुए बिन्दुओं के सिवा मैंने उस उत्साही यात्री* के दिये हुए थोड़े से स्थानों से भी काम लिया, जिस ने "ख़ुरासान की यात्रा" नाम का ग्रन्थ निर्माण किया है, और जो दिल्ली से नागपुर और जोधपुर होकर उदयपुर को गया था.

गुजरात†, सौराष्ट्र प्रायद्वीप, और कच्छ देश का स्थूल रूप, जो ख़ासकर सम्बन्ध दिखाने के लिये ही दर्ज किया गया है, वह संपूर्णतः प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता मृत जेनरल रेनाल्ड (General Reynolds) के शोध विषयक पुस्तक से लिया गया है. इन दोनों ने एक ही भूखंड के बड़े भाग का शोध किया था; और मेरी साक्षी उस के उन देशों के शोध की उत्तमता के विषय में वाजिब है, जिन में वह स्वयं कभी नहीं गया था, और इस से यह सिद्ध होता है, कि उद्योग और ऐसी सामग्री का प्रयोग करने से जिस का वर्णन मैं कर चुका हूं, क्या क्या हो सकता है.

मैं इन प्रदेशों की आकृति का वर्णन शीघ्रता से करके

---

* मिस्टर जे. बी. फ्रेज़र (Mr. J. B. Fraser).

† मेरी अन्तिम यात्रा उदयपुर से इन देशों में हो कर सिन्धुनदी के मुहानों के मध्यवर्ती प्रदेश की ओर सन् १८२२-२३ ई० में हुई; परन्तु इस में भौगोलिक शोध की अपेक्षा ऐतिहासिक और पुरावृत्त संबन्धी शोध की तरफ़ दृष्टि विशेष रक्खी गई थी. यह यात्रा मेरी तमाम यात्राओं से अधिक लाभकारी हुई.

इस निबन्ध को समाप्त करूंगा. इन के सूक्ष्म और स्थानीय वृत्तान्त प्रत्येक प्रदेश के पृथक् पृथक् ऐतिहासिक भागों में उचित रीति से लिखे जावेंगे.

राजस्थान की आकृति बहुत ही भिन्न भिन्न प्रकार की है. यदि मैं अपने पाठक को अलग खड़े हुए आबू पहाड़ के सब से ऊंचे शिखर पर जिसे "गुरु शिखर" कहते हैं, बिठलाऊं, और इस विस्तीर्ण भाग पर, जो पश्चिम में सिन्धु नद के नील वर्ण जल से लेकर पूर्व में बेत से ढकी हुई बेत्वा* तक विस्तृत है, उस की दृष्टि डलाऊं, तो इस स्थान पर से, जो हिन्दुस्तान में सब से ऊंचा है, और जहां से अर्वली की श्रेणी १५०० फ़ीट नीची है, उस की दृष्टि मेदपाट† (मेवाड़ का संस्कृत नाम) के मैदानों पर पड़ेगी, जिन की मुख्य नदियां अर्वली के मूल से निकल कर बेड़च और बनास में जा मिलती हैं, और पठार‡ या मध्यहिन्द की उच्च-सम-भूमि उन को चम्बल के साथ मिलने से रोक देती है.

---

* इस का संस्कृत नाम 'वेत्रवती' है. 'वेत' संस्कृत में साधारण बेत को कहते हैं. विल्फ़र्ड (Wilford) साहिब का कथन है, कि वेल्श (Welsh) भाषा में भी बेत के लिये यही शब्द है.

† शब्दार्थ से मध्य=बीच, [पाट]=चौड़ाई.

‡ पट=मध्य, अर=पहाड़. यद्यपि 'अर' का अर्थ किसी संस्कृत कोष में 'पहाड़' नहीं पाया जाता, तथापि यह आरंभिक धातु जान पड़ता है, जिस का अर्थ ऐसा है, जैसे अर्बुद्ध [अर्बुद]=बुद्ध का पहाड़, अर्वली [अर्वली]=वल का पहाड़. इरानी भाषा में भी 'अर' का अर्थ पहाड़ है, जैसे 'अराराट'. यही शब्द यूनानी भाषा में 'ओरोस'

प्रसिद्ध चित्तौड़ के निकट इस उच्च-सम-भूमि पर चढ़ कर ठीक पूर्वी रेखा से दृष्टि को कुछ हटाने के पश्चात् रतनगढ़ व सींगोली होकर कोटा को जानेवाले उस मार्ग पर कि वही एक सीधा रास्ता है, निगाह डाली जावे तो द्रष्टा को उस [उच्च भूमि] के क्रम से तीन मैदान दिखाई देंगे, जो मानो रूसी तातार के मैदानों के छोटे छोटे नमूने हैं ; और जब यहां पर से वह चम्बल के आर पार एक दृष्टि डाल कर हाड़ोती को उस की पूर्वी सीमा तक देखेगा, जो शाहाबाद के क़िले से रक्षित है, और वहां से एकाएक इस उच्च-सम-भूमि से नीचे उतर कर सिन्धु नदी [छोटी सिंधु] के सतह तक दृष्टि डालेगा, और फिर भी पूर्व ही की ओर आगे को निगाह बढ़ाता चला जावेगा, तो अन्त में उस की निगाह उस मञ्चाकृति पहाड़ तक जा कर रुक जावेगी, जो बुंदेलखण्ड की पश्चिमी सीमा है.

इस को अधिक स्पष्ट करने के लिये मैं आबू से लेकर बेत्वा* पर के कोटड़ा तक के ऊपर वर्णन किये हुए देश की उंचाई निचाई का एक चित्र देता हूं. यह चित्र आबू से चम्बल तक वातमापक यंत्र (Barometer) द्वारा की हुई पैमाइश का, और चम्बल से बेत्वा तक मेरी साधारण

है। संस्कृत में जो पहाड़ के लिये साधारण शब्द 'गिरि' है वह इसी अर्थ का बोधक इब्रानी भाषा में भी है."

* बेत्वा नदी उस मञ्चाकार भूमि के नीचे, जिस का हवाला अभी दिया गया है, पूर्व की ओर बहती है.

निरीक्षाओं* का फल स्वरूप है. इस का परिणाम यह है, कि कोटड़ा स्थान पर बेल्वा समुद्र के सतह से एक हजार फ़ीट ऊंची, और उदयपुर नगर तथा उस की पर्वतान्तर्गत समान भूमि से एक हजार फ़ीट नीची है, जिस [उदयपुर] की ऊंचाई पुनः आबू के मूल की ऊंचाई के समान, अर्थात् समुद्र के सतह से दो हज़ार फ़ीट है. यह रेखा जिस की साधारण दिशा उष्ण कटिबन्ध से थोड़ी ही दूर है, लंबाई में अनुमान ६ भौगोलिक अंश है; तथापि यह छोटासा देश अपने निवासियों, एवम् भूमि सम्बन्धी गुप्त वा प्रगट उपज [खनिज पदार्थ और वनस्पति], दोनों के नाना भेदों से परिपूर्ण है.

अब हम को अपने उच्च स्थान से (जिस का उल्लेख अब तक पूर्व ही को है) उपर्युक्त रेखा के दक्षिण और उत्तर दोनों ओर दृष्टि डालनी चाहिये, जो मध्य देश† अर्थात् राजस्थान की मध्य भूमि को करीब करीब दो समान भागों में

---

* मैं इन देशों से भली भांति परिचित हूं, और निश्चास के साथ कहता हूं, कि जब वैसी ही पैमाइश बेल्वा से कोटा तक की जावेगी तो इन नतीजों में बहुत ही थोड़ी अशुद्धता निकलेगी, और वह अशुद्धता इस बात में होगी, कि कोटा थोड़ा सा अधिक ऊंचा, और बेल्वा के चढाव की भूमि कुछ अधिक नीची दर्ज की हुई मालूम होगी.

† ' मध्य भारत ' नाम का प्रयोग मैंने ' मध्य और पश्चिमीय भारत के नक़्शे ' का नाम रखने में किया, जो सन् १८१५ ई० में मार्क्विस ऑफ हेस्टिंग्ज़ को भेंट किया था; और तभी से यह नाम प्रचलित होगया.

विभक्त करती है. मध्य देश से वह देश समझना चाहिये, जो चम्बल और उस की सहायक नदियों के मार्ग द्वारा उस की जमुना के संगम तक सर्वोत्तम प्रकार से सीमाबद्ध किया गया है; और इसी तरह ऊंचे अर्वली* के परे के पश्चिमी प्रदेश को पश्चिमी राजस्थान कहना बहुतही ठीक है.

यदि दक्षिण की तरफ़ देखें तो विन्ध्याचल की दूर तक फैली हुई श्रेणी पर जाकर दृष्टि रुक जावेगी, जो हिन्दुस्तान और दक्खन की स्वाभाविक स्पष्ट सीमा है. यद्यपि आबू के 'गुरु शिखर' पर के उच्च स्थान पर खड़े हो कर देखने से विन्ध्याचल हम को एक थोड़ी उंचाईवाली पहाड़ी श्रेणी सा दिखाई देता है, जिस का कारण यह है, कि हमारा यह स्थान उस का महत्व देखने के लिये बिल्कुल ठीक नहीं है, परन्तु यदि दक्षिण की ओर से देखा जावे तो स्पष्ट देखाई देगा; यद्यपि इस उतार भर में कई विषम उंचाइयां ऐसी दिखाई देंगी, जो एकाएक उतार के वैसे ही विषम स्थलों से सैकड़ों फीट ऊंची हैं.

ख़ास अर्वली की बाबत यह कहा जा सकता है, कि वह विन्ध्याचल से मिला हुआ है, और उस के मिलने का स्थान चांपानेर की तरफ़ है; और इसी प्रकार यह कहना भी ठीक है, कि अर्वली वहीं से विन्ध्याचल से निकल कर फैला है. यद्यपि उस की उंचाई उत्तर की अपेक्षा यहां

---

* स्मरण रहे कि अर्वली का यद्यपि मञ्चाकार रूप घना नहीं रहता तथापि उस की शाखा उत्तर में देहली तक चली जाती है.

पर बहुत ही कम है, परन्तु दक्षिण भर में वह लूणावाड़ा, डूंगरपुर, और ईडर से लेकर झम्बाभवानी और उदयपुर तक विशाल रूप धारण करता है. *

आबू से मालवा की उच्च-सम-भूमि पर दृष्टि डालने से हम को उस के काली मिट्टी के मैदान [माल] विन्ध्याचल की सब से ऊंची चोटियों से निकल कर उत्तर कख़ को बहनेवाली अनेक धाराओं से कटे हुए दिखाई देते हैं. इन में से कई एक धारा तो घुमाव खाती हुई घाटियों में जाती वा टीलों पर से गिरती हैं, और दूसरी, सब रुकावटों को तोड़ कर मध्य की उच्च सम-भूमि में बलपूर्वक अपना मार्ग निकालती हुई चम्बल में जा मिलती हैं.

इस प्रकार दक्षिण की ओर देखने के पश्चात् हम को इस रेखा के उत्तर की तरफ़ निगाह करना, और ऊंचे अर्वली† पर कुछ देर तक दृष्टि को ठहराना चाहिये; फिर उस के एक खण्ड को राजधानी उदयपुर से लेकर, जो हमारे आबू पर के स्थान की रेखा में है, ओगणा, पानड़वा, और मेरपुर में होतेहुए सिरोही के पासवाले पश्चिमी उतार तक

---

* वे लोग, जिन्हों ने बड़ौदा से मालवा की ओर यात्रा की है, और धरातल की ऊंचाई निचाई पर ध्यान दिया है, विन्ध्य और अर्वली के इस सम्बन्ध को स्वीकरेंगे.

† 'बलवानों की रक्षा का स्थान' यह नाम सार्थक है, क्यों-कि इस ने अत्यन्त प्राचीन राजवंश को, जो उस के पूर्व वा पश्चिम में शासन करता है, अर्थात् भारत के प्राचीन सूर्यवंशियों को, जो मेवाड़ के राजा हैं, शरण दी थी.

देखना चाहिये, जो अनुमान ६० मील तक सीधी रेखा में चला-गया है, और जहां उदयपुर की तरफ़ के चढ़ाव से लेकर मा-रवाड़ के उतार तक पहाड़ियों पर पहाड़ियां और पर्वतों पर पर्वत उठे हुए दिखाई देते हैं. सिरोही की सीमा तक इस सारे प्रदेश में यहां की खास प्राचीन जातियों के लोग [भील आदि] बसे हुए हैं, जो अपनी प्रारंभिक और क़रीब क़रीब जंगलियों की सी स्वतंत्र दशा में रहते हैं. न तो वे किसी राजा महाराना के आधीन हैं, न कोई कर देते हैं, किन्तु प्रजातंत्र प्रणाली की सादी दशा में रहते हैं;[१४] और उन के मुखिया, जिन की उपाधि 'रावत्'[१५] है, परंपरा से एकही वंश के होते हैं. ओगणा का रावत् पांच हज़ार धनुषधा-रियों को एकत्र कर सकता है, और कई एक दूसरे भी काम पड़ने पर ऐसे बहुत से आदमी एकट्ठे कर सकते हैं. वादियों में चराई के वा बचाव* के स्थानों के निकट उन के घर छोटी छोटी जंगली वस्तियों में विखरे हुए होते हैं.

---

* इन के अद्भुत स्थानों में होकर जाने की मेरी इच्छा थी, और इस विषय में मैंने इन जंगलों के स्वामियों से वातचीत की तो उन्हों ने इक़रार किया कि हम आप की सत्कार पूर्वक सहायता करेंगे. मुझे भी इस में कुछ सन्देह न रहा, क्योंकि जंगली लोगों में सभ्य जातियों की अपेक्षा अपने वचन का प्रतिपालन और आतिथ्य के गुण अधिक पाये जाते हैं. कई वर्ष पहिले मेरे दल के एक आदमी [मदारी] को इस प्रदेश में हो कर जाने की आज्ञा मिली थी. इन ऊंची वादियों के एक घाटे में पहाड़ का स्वामी मर गया था, और आदमी सब वाहिर गये हुए थे. उस की विधवा स्त्री अकेली झोंपड़े में थी.

अब पाठक को कुम्भलमेर* के क़िले की चोटी पर पहुंच कर वहां से उस पर्वतश्रेणी को देखना चाहिये, जो उत्तर की तरफ़ अजमेर तक चली गई है, जहां थोड़ी ही दूरी पर उस का महाकार रूप लुप्त हो जाता है, और ऊंचे ऊंचे करारेदार टीले बनकर उस की अनेक शाखा शेखावाटी के ठिकानों और अलवर में चली गई हैं, वहां से वह [श्रेणी] उंचाई में कम होते होते दिल्ली के पास समाप्त हो जाती है.

कुम्भलमेर से अजमेर तक का सारा प्रदेश मेरवाड़ा कहलाता है, और वहां 'मेर' नाम की पहाड़ी जाति बसी है, जिस अद्भुत जाति की रीति भांति और इतिहास आगे लिखा जावेगा. इस पहाड़ी श्रेणी की औसत चौड़ाई ६ से १५ मील तक है, और उस की वादियों तथा टेकरियों पर डेढ़ सौ से अधिक गांव तथा खेड़े अलग अलग बसे हुए हैं, जहां जल और चारा बहुतायत से हैं, और उन की तमाम

मदारी ने अपना हाल उस से कहा, और रास्ते के लिये अपनी रक्षा का प्रबन्ध कराना चाहा, जिस पर उस भीलनी ने अपने मृत पति के तरकश में से एक तीर निकाल कर उस को दे दिया, जिस को वह हाथ में लिये चला, और उस [तीर] ने वही काम दिया जो यूरोप खण्ड में मुसाफिरों को मुहर छापवाला, लम्बा चौड़ा पर्वाना काम देता है.

* मेर [मेरु] का अर्थ संस्कृत में "पहाड़" है, अतएव कुमल वा कुम्भ मेर का अर्थ "कुम्भा [राणा] की पहाड़ी वा पहाड़" है, जिस राजा का चरित्र [आगे] वर्णन किया गया है. इसी प्रकार अजमेर "अजय की पहाड़ी" अर्थात् "जय न होने वाली पहाड़ी" है.

भीतरी आवश्यकताओं के अनुसार खेती वाड़ी भी यथेष्ट हो जाती है, यद्यपि ऊंचे स्थानों पर अत्यन्त ही श्रम से होती है, जैसे कि स्विट्ज़रलैण्ड (Switzerland) में और राइन (Rhine) नदी पर अंगूर की खेती.

इस सम्मिलित पर्वत श्रेणी के आर पार गाड़ी के मार्ग का कोई भी चिन्ह दिखाई नहीं देता, इसलिये इस का 'आड़ा' अर्थात् 'रोकनेवाला' नाम इस के लिये बहुत ही सार्थक है; क्योंकि वर्तमान काल की युद्धकला के सब से प्रबल अंग तोपखाने को भी पश्चिम* की तरफ़ के असाध्य उतार से बचने के लिये इस श्रेणी के उत्तर से मोड़कर ले जाना पड़ेगा.

यदि इस पर्वत श्रेणी पर निगाह दौड़ावें तो इस के शिखरों पर कई क़िले दोनों ओर की घाटियों की रक्षा करते हुए दिखाई देते हैं, और बहुत से नाले ढालुओं में होकर निकले हुए पर्वत शृंगों में अपना टेढ़ा बांका मार्ग ढूंढते

---

* उतार के इस स्थल पर सेमर के रहनेवाले मेरे एक राजपूत मित्र ने इस का ठीक २ हाल मुझ से कहा, कि थोड़े दिनों पहिले सिरोही के पहाड़ी लुटेरे मेरे ठिकाने पर हमला कर के मेरी गायों को ले गये. वे इस लूट को लेकर बहुत ही समीपवाले विकट रास्ते से चले. यद्यपि हमारी पहाड़ में रहनेवाली गौवें ऐसे स्थानों में कूदती फिरती हैं, परन्तु प्रतीत होता है, कि उस समय वहां वे कुछ रुक गईं. उन मीनों में से एक ने इस कठिनाई को तुरन्त ही मिटा दिया, अर्थात् उस ने तत्क्षण कटार निकाल कर एक गऊ को वहीं वध करके पहाड़ से नीचे लुढ़का दिया, उस लाश को देखकर दूसरी गौवें उसी के पीछे नीचे उतरगईं.

हुए नीचे को उतरते हैं. बेड़च, कोटेसरी, खारी, डाई. ये सब नदियां पूर्व में बनास नदी से जा मिलती हैं, और पश्चिम में इन से भी अधिक नदियां, जो गोड़वाड़ के उपजाऊ प्रान्त को उरबरा बनाती हैं, खारे जलवाली लूनीनदी से मिल कर मरुभूमि की वास्तविक सीमा क़ाइम करती हैं. इन में से मुख्य नदियां सूकड़ी और बांडी हैं; और अन्य नदियां, जो साल भर तक बराबर नहीं बहतीं, वे अपने जलप्रवाह के लिये वर्षा पर ही निर्भर रहती हैं, जिन को रेल अर्थात् शीघ्रगामी पहाड़ी बहाव कहते हैं, जो अपने साथ बहुत सी खाद मिट्टी नीचे की पथरीली भूमि को उपजाऊ बनाने के लिये ले जाता है.

कुम्भलमेर की इस ऊंचाई से इस चटान के बेतर्तीब समूह का दृश्य चाहे कैसा ही बड़ा दिखाई दे, परन्तु उस का पूर्ण महत्व तो मारवाड़ के मैदानों से ही अधिक स्पष्ट दिखाई देता है; जहां उस के भिन्न भिन्न शिखर अनेक रूप में एक दूसरे पर उठे हुए नज़र आते हैं, वा सघन वन से आच्छादित और विषम उतारवाले अंधकार मय ऊंचे नीचे एकान्त स्थानों को क्रूर दृष्टि से देखते हैं.

विचार करने पर मेरे चित्त में आता है, कि अर्वली को हिन्दुस्तान के ऐप्पीनाइन (Appenines), अर्थात् प्रायद्वीप के मलबार किनारे के घाटों से सम्बन्ध रखनेवाला प्रगट करूं. नर्बदा या तापी का मार्ग उस के संकीर्ण मध्य भाग में होने से इस कल्पना को मिथ्या नहीं करता, जो

उन की अन्तरंग दशा और बनावट का मिलान करने से विशेष दृढ़ हो सकती है.

अर्वली का सामान्य रूप उस की प्रारंभिक बनावट है, ग्रेनाइट (Granite) पाषाण बड़े भारी ठोस व गहरे नील वर्ण स्लेट (Slate) पत्थर पर पड़ा हुआ नाना प्रकार के कोण बनाता है (जिस का साधारण ढाल पूर्व की ओर है). यह स्लेट पाषाण ऊपरस्थित ग्रेनाइट पत्थर के सतह वा मूल से विरल ही ऊंचा पाया जाता है. भीतरी घाटियों में कई प्रकार के क्वार्ट्ज (Quartz) और प्रत्येक रंग के शिस्ट (Schistus), जाति के स्लेट पत्थर बहुतायत से हैं, जो घरों और मन्दिरों की छतों का विचित्र दृश्य प्रगट करते हैं, जब कि उन पर सूर्य की किरणें पड़ती हैं. बीच बीच में नीस (Gneis) और साईनाइट (Syenite) जाति के चटान भी दिखाई देते हैं, और अजमेर के पश्चिम तरफ़ अनेक दिशाओं मे फैलनेवाली श्रेणियों की चोटियां गुलाबी रंग×के कांच जैसे क्वार्ट्ज जाति के पाषाण के बड़े बड़े समूहों से नेत्रों को चकाचौंध दिलाती हैं.

अर्वली और उस से सम्बन्ध रखनेवाली पहाड़ियों में खनिज और धातु सम्बन्धी पदार्थ बहुत हैं, और जैसा कि मेवाड़ के इतिहास मे वर्णन किया गया है, केवल धातुओं की आमदनी से ही यह [मेवाड़ का] घराना अपने से अधिक शक्तिमान बादशाहों का मुकाबला दीर्घ काल पर्यन्त करता रहा, और उस ने ऐसी बड़ी इमारतें बनवाईं जिन

के बनवाने में पश्चिम की सब से प्रबल बादशाहतें भी अपना गौरव समझती हैं.

इन खानों पर राजाओं का स्वत्व रहता है, अर्थात् इन को पैदावार उन की निज आय में वृद्धि करनेवाली है. 'आण-दाण-खान'[२०] यह तीन शब्दों से मिलकर बनी हुई एक आलंकारिक कहावत है, जिस में राजस्थान के राजाओं के मुख्य स्वत्व, अर्थात् प्रजा की उत्कट राजभक्ति, व्यापार सम्बन्धी कर, और खानों के स्वत्व, संयुक्त रूप से प्रगट हैं. मेवाड़ में किसी समय रांगे की खानें बहुत उपजाऊ थीं, और ऐसा कहाजाता है कि उन में से बहुत सी चांदी निकलती थी; परन्तु खान खोदनेवालों की जाति के नष्ट हो जाने, और मुगलों के शासनकाल में राजनैतिक कारणों से धन के ऐसे द्वार बन्द कर दिये गये. इसी तरह बहुत उत्तम प्रकार का तांबा भी बहुतायत से निकलता है, और उसी के पैसे बनाये जाते हैं; और सलूंबर का सर्दार भी अपनी जागीर की खानों से [तांबा निकलवाकर] राज्य की आज्ञा से पैसा बनवाता है. सुरमा पश्चिमी सीमा पर मिलता है. तामड़ा नीलमणि, बिल्लौर, लहसनिया, और हलकी जाति के पन्ने भी मेवाड़ में पाये जाते हैं; और यद्यपि मैं ने इन का कोई बहुमूल्य नमूना नहीं देखा तथापि [महा]राणा ने प्राय. मुझ से कहा, कि जनश्रुति से पाया जाता है, कि हमारे देश की पहाड़ियों में प्रत्येक प्रकार के खनिज द्रव्य हैं.

अब हम अपने अर्वली पर के ऊंचे स्थान को छोड़ कर पठार वा मध्य हिन्द की उच्च-सम-भूमि का दौरा करते हैं, जिस की आकृति इस मनोहर प्रदेश की अपेक्षा कुछ कम उपयोगी नहीं है. इस की रचना सर्वथा निश्चित प्रकार की है, और यह दक्षिण की तरफ़ विंध्याचल से और पश्चिम की तरफ़ अर्वलो से भिन्न है, अर्थात् उस में ठीक सीधे तह पर तह पिछली रचना के वा ट्रैप जाति के पाषाण के हैं.

इस उच्च-सम-भूमि की परिधि नक़्शे में भली भांति दिखलाई गई है; यद्यपि इस का धरातल अत्यन्त ही असमान रूप से वर्णित है, और यह अपने आकार को मंसाकार रूप तथा समुदायक श्रेणियों में बराबर बदलता चला गया है.

मांडलगढ़ से दौरा प्रारंभ करके हम को दक्षिण की ओर बढ़ना चाहिये, और चित्तौड़ को पार्श्वभाग में छोड़ कर (जो दोनों उच्च-सम-भूमि से पृथक, अलग अलग खड़े हुए चटानों पर हैं) वहां से जावद, दांतोली, रामपुरा,* भाणपुरा, और मुकन्दरा की घाटी† होकर गागरौन (जहां काली सिन्धु अपने सामने आये हुए मंसाकार पर्वत में से बलपूर्वक मार्ग निकाल कर इकलेरा ‡ को जाती है) और सिरगवास तक (जहां पर पार्वती नदी कम उंचाई का

---

* इस के निकट चम्बल पहिले पहिल पठार में प्रवेश करती है.

† यहां पर पहाड़ों के बीच में यह प्रसिद्ध घाटी है.

‡ यहां पर नेवज नदी पर्वतश्रेणी को तोड़ती है.

मौका पाकर मालवा से हाड़ौती में जाती है), और वहां से राघो गढ़, शाहाबाद, गाज़ीगढ़, तथा गसवानी होकर जादूवाटी तक बढ़ना चाहिये, जहां यह उच्च-सम भूमि पूर्व में चम्बल पर समाप्त होती है. फिर यदि टौरे के उसी प्रारंभिक स्थान मांडलगढ़ से चलें तो थोड़ी ही दूर चलकर उस का बहुत सा मञ्चाकार रूप लुप्त हो जाता है, और उस की बड़ी बड़ी कतारें, जो कहीं कहीं फिर भी पूर्व रूप में दिखाई देती हैं-जैसी कि बूंदी के ज़िले में—डबलाना, इन्द्रगढ़, * और लाखेड़ी * होती हुई रणथंभोर और करौली तक चली जाकर धौलपुर बाड़ी के निकट समाप्त हो जाती हैं.

इस उच्च-सम-भूमि की उंचाई और विषमता इस को पश्चिम से पूर्व की-ओर, अर्थात् मैदानों से लेकर चम्बल के सतह तक पार करने से बहुत अच्छी तरह दिखाई देती है, जहां यह बड़ी नदी कोटा और पाली के घाट की बीचवाली थोड़ी सी समान भूमि को छोड़ कर चटानी रुकावटों में होकर ज़ोर से बहती हुई नज़र आती है.

रणथंभोर के पास यह उच्च-सम-भूमि ऊंची ऊंची कतारों के रूप में बदल जाती है, जिन की श्वेत चोटियां धूप में चमकती हैं ; इस की आकृति विषम, परन्तु शिखररहित है ; और यद्यपि यह पहाड़ो समूह से अलग है तथापि पहाड़ की स्वाभाविक बनावट इस में मौजूद है. यहां

---

* दोनों प्रसिद्ध घाटियां, जहां पर पर्वतश्रेणियां बड़ी पेचदार हैं.

जुदी २ सात श्रेणियों (सातपड़ा) से कम नहीं हैं, जिन सबों में हो कर बनास नदी चम्बल से मिलने के लिये अपना मार्ग बनाती है. रणथंभोर के परे, और करौली से ले कर उस नदी तक संपूर्ण मार्ग एक विषम महाकार भूमि है, जिस की चोटी के-किनारे पर उतगिर, मण्डरायल, और यूण का अधिक प्रसिद्ध क़िला है ; परन्तु पूर्वी पार्श्व के पूर्व में एक दूसरा ढालू मैदान और है, जिस की बाबत कहा जा सकता है, कि वह लाटोती स्थान पर सिन्धु के सोते के पास से प्रारंभ होता है, और चन्देरी, खनियादाना, नर्वर तथा ग्वालियर होता हुआ देवगढ़ के निकट गोण्ड के मैदानों में समाप्त होता है. इस दूसरे मैदान का उतार बुंदेलखण्ड और बेत्वा की बादी में चला गया है.

यद्यपि यह उच्च प्रदेश मध्यहिन्द के धरातल में प्रसिद्ध है, परन्तु इस की चोटी विन्ध्याचल के शिखर की सामान्य उंचाई से कुछ ही अधिक ऊंची, और उदयपुर की वादी तथा अर्वली के मूल की बराबरी पर है. इस लिये इन दोनों श्रेणियों का ढलाव अथवा उतार उक्त उच्च-सम-भूमि की जड़ों तक बड़ा और विषम है, जिस का अत्यन्त ही स्पष्ट और साधारण प्रमाण इन नदियों के मार्ग हैं. पृथ्वी पर ऐसे थोड़े ही विभाग होंगे, जहां प्रत्येक रुकावट को तोड़ देनेवाला जल के बहाव का वेग इस कठोर पर्वत में हो कर बहनेवाली नदियों के चटानी मार्गों की अपेक्षा अधिक प्रबल दिखाई देता हो. यहां पर चार नदियां बल-पूर्वक बहती हैं, जिन में से एक अर्थात् चम्बल, राइन या

क़रीब क़रीब रोन[२१] (Rhone) नदी की बराबरी वाली है. इन चारो ने पहाड़ी को जल की सतह से ले कर चोटी तक, जो तीन सौ फ़ीट से छः सौ फ़ीट तक की सीधी उंचाई पर है, काट डाला है, जिस से चटान ऐसा दीखता है मानो मनुष्य के हाथ से टांकी द्वारा काटा गया हो. यहां भूस्तरविद्या जाननेवाला प्रकृति की पुस्तक को स्पष्ट अक्षरों में पढ़ सकता है. इस स्थान के अतिरिक्त उस को तथा पुरातत्ववेत्ता, और प्रकृति के उस प्रेमी को, जो उसे अत्यन्त ही विषम दशा में देखना चाहता है, थोड़े ही विशेष मनोहर स्थान (रामपुरा से कोटा तक) मिलेंगे.

इस विस्तृत उच्च-सम-भूमि का धरातल बहुत ही भिन्न भिन्न प्रकार का है. कोटा के पास आगे को निकले हुए चटान पर कई एक स्थानों में तो वनस्पति का चिन्ह मात्र भी दिखाई नहीं देता ; परन्तु जहां वह तिरछा कोण बनाता हुआ पार नदी के किनारों तक पहुंचता है वहां वह भारतवर्ष की सब से अधिक उर्वरा और उपजाऊ भूमियों में से एक है; और उस में ब्रिटिश इंडिया के प्रत्येक स्थान से भी अधिक अच्छी कृषि होती है. उस के कगारेदार पार्श्व भागों में अत्यन्त ही विचित्र दरें (जैसा कि हिंगलाज के निकट नागराण का झरना) और गहरे गहरे खाल हैं, जहां से छोटी छोटी नदियां निकलती हैं, और जहां कारीगरों* का बहुत सा

---

* मैंने इन में से थोड़े से अपने देशवासियों को भेंट करने के लिये बचाये हैं.

संग्रह मन्दिरों तथा प्राचीन मकानों में अब तक मौजूद है, जो याची के श्रम को सफल करता है.

यह मध्यस्थ उंचाई, जैसा कि पहिले वर्णन हो चुका है, पिछली रचना की है, जिस को ट्रैप (Trap) कहते हैं. जहां पर चम्बल ने इस को नग्न कर दिया है वहां इस का रंग सर्वत्र दूध जैसा श्वेत है. यह वड़ा कठोर और मिलवां दानेदार है, और यद्यपि कठोरता के कारण स्यात् टांकी उस पर बड़ी ही कठिनता से चले, तथापि प्रसिद्ध वाड़ौली के पत्थर की खुदाई के काम शिल्पकार के लिये उस का उपयोगी होना सिद्ध करते हैं. पश्चिम की तरफ़ भी उस का रंग सर्वत्र श्वेत है. कोटा के निकट प्रायः श्वेत और वेजनी मिला हुआ, और शाहाबाद के आसपास लाल और भूरा रंग मिला हुआ है. जब इस के पूर्वी ढलाव पर जल वायु का असर पड़ता है, तो वह बिखरा और खरदरा धरातल कंकरीला सा (Gritstone) होने का प्रायः भ्रम दिलाता है.

यह बनावट खनिज धातुओं के लिये अनुकूल नहीं है. यहां केवल सीसा और लोहा ही मिलता है, परन्तु ये बिना शोधी हुई दशा में बहुतायत से मिलते हैं, विशेष कर के लोहा. कहते हैं कि ग्वालियर प्रान्त में काले सुरमे (Galena) की बहुमूल्य खाने हैं, जिन में से मैंने नमूने मंगाये थे, परन्तु ये खाने भी बन्द हैं. देशी लोग अपने खनिज द्रव्यों को निकालने से डरते हैं; और यद्यपि उन के यहां सीसा, रांगा, और तांबा बहुतायत से हैं, तथापि

वे अपने रसोई के वर्तन बनाने की सामग्री तक के लिये भी क़रीव क़रीव यूरोप के ही ऋणी हैं।

छोटी छोटी पहाड़ी श्रेणियों का वर्णन करना छोड़ कर अब मैं पाठकों का ध्यान केवल एक उपयोगी फल की ओर दिलाऊंगा जो रजवाड़े की धरातल की आकृति के इस निरीक्षण से निकलता है.

मध्यहिन्द में स्पष्ट रूप से दिखाई देनेवाले दो ढलाव वा उतार हैं; जिन में मुख्य वह है, जो पूर्व से पश्चिम को, अर्थात् बड़े प्राकार रूप अर्वली से (जो रेती के वहाव को उन मध्यस्थ मैदानों में जाने से रोकता है, जो चम्बल तथा उस की सौ शाखाओं से कटे हुए हैं) बेत्वा तक चला गया है; और दूसरा ढलाव दक्षिण से उत्तर को मध्यहिन्द के दक्षिणी पुश्ते रूप विन्ध्याचल से जमुना तक है .

हम अपनी व्याख्या को बढ़ाकर यह भी कह सकते हैं, कि जमुना के बहाव का रास्ता उस बहुत बड़ी वादी के मध्यस्थ दरे को बतलाता है, जिस का उत्तरी ढाल हिमालय और दक्षिणी विन्ध्याचल के मूल से है. यद्यपि मेरे पास बहुत से साधन हैं, परन्तु मेरा विचार यह नहीं है, कि विस्तीर्ण नर्वदा के नाना रूप धारण करनेवाले मार्ग का वर्णन करूं, क्योंकि जिस समय हम उच्चप्रधान विन्ध्याचल* के शिखर पर नर्वदा के कछार में उतरने के लिये चढ़ते हैं तो वहां

* सूर्य को उस के उत्तरी मार्ग में आगे बढ़ने से रोकने के कारण से ही इस का नाम ' विन्ध्य ' अर्थात् रोकनेवाला है.

पर राजस्थान और राजपूतों का संबन्ध हम से छूट जाता है, और हम इस देश की खास प्राचीन जातियों से जा मिलते हैं, जो इस भूमि के प्रथम स्वामी हैं. इन का वर्णन मैं दूसरों के लिये छोड़ता हूं, और अपना वर्णन चम्बल से प्रारंभ कर के उसी पर समाप्त करूंगा, जो मध्यहिन्द की नदियों में प्रधान नदी है.

चम्बल के सोते विन्ध्याचल की एक अति ऊंचे स्थान पर पहाड़ियों के समुदाय के बीच में हैं, जिन का स्थानीय नाम जनपावा है. उसी पहाड़ी समुदाय से उन के तीन बराबरीवाले सोते, अर्थात् चम्बल, चम्बेला, और गम्भीर निकलते हैं; और कम से कम दूसरी नौ नदियां दक्षिणी पार्श्व भाग से निकलती हैं, जो अपने जल को नर्मदा में ले जाती हैं.

सिपरा [चिप्रा] नदी पीपलोदा से, छोटी सिन्धु* देवास से, और दूसरी छोटी छोटी नदियां उज्जैन के पास होकर सब की सब चम्बल में भिन्न भिन्न स्थानों पर, उस के इस उच्च-सम-भूमि में प्रवेश करने से पहिले, जा मिलती हैं.

---

* यह भारत की चौथी सिन्धु है. पहिली तो सिन्धु [Indus] फिर यह छोटी सिन्धु, फिर काली सिन्धु, और पुनः वह सिन्धु जिस का निकास लाटोती की निकट सिरोंज के ऊपरवाली पश्चिमी उच्च-सम-भूमि पर है[२३].

सिन् एक सीथियन शब्द नदी के लिये है (जो अब प्रचलित नहीं है). इसी अर्थ में हिन्दुओं ने भी इस शब्द का प्रयोग किया है.

काली सिन्धु वागड़ी से और उस की छोटी शाखा सोडविया राघोगढ़ से, नेवज (वा जामनोरी) मोरसूंकडी और मागडदा से, और पार्वती ग्रामलखेडा की घाटी से निकलती है, जिस की विशेष पूर्वी शाखा टौनतपुर से निकल कर फरहर स्थान पर उस के साथ मिलजाती हैं. इन सब के निकासस्थान विंध्याचल की चोटी पर हैं, जहां से ये उच्च सम भूमि में अपना मार्ग निकाल कर ऊंचे स्थानों* पर से गिरती हुई अन्त में नूनेरा और पाली के घाटों पर, जाकर चम्बल में समा जाती हैं. ये सब उस में दाहिनी ओर से मिलती हैं.

बांई ओर से बनास नदी उस के जल को बढ़ाती है, जो अर्वली से निकली हुई बारहों मास बहनेवाली छोटी छोटी नदियों एवं उदयपुर के झीलों से निकलनेवाली बेड़च नदी का जल लेकर इस में आ मिलती है. यह [बनास] नदी मेवाड, जयपुर की दक्षिणी सीमा और करौली की उच्च भूमि को सींचने के उपरान्त रामेश्वर के पवित्र संगम† पर [चम्बल से] मिलने के लिये दक्षिण की ओर मुडती है. कई छोटी छोटी नदियां इस [चम्बल] में गिरती हैं (जो

---

* गागरोन के पास की चटानों में कालीसिन्धु का और छपरा (गूगल) के पास पार्वती का जलप्रपात बहुत ही कुछ देखने योग्य है. छपरा में दो वार ठहरने पर भी पार्वती का जलप्रपात मैंने नहीं देखा, जिस को वहा से पांच मील दूर बतलाते हैं.

† संगम दो वा अधिक नदियों के मिलने के स्थान को कहते हैं, जो महादेव के लिये पवित्र गिना जाता है.

अलग अलग वर्णन करने योग्य नहीं हैं), और हज़ार चक्कर खाने के पश्चात् यह इटावा और कालपी के मध्य पवित्र त्रिवेणी* स्थान, अर्थात् तीन नदियों के संगम पर जमुना से जा मिलती है.

छोटे छोटे सर्पाकार घुमावों की गणना को छोड़ कर चम्बल नदी के मार्ग की लंबाई पांच सौ मील से ऊपर है; और इस के किनारों पर हिन्दुस्तान में इस समय बसनेवाली क़रीब क़रीब प्रत्येक जाति के नमूने पाये जा सकते हैं. सींधिया, चन्द्रावत, सीसोदिया, हाडा, गौड़, जादूं, सीकरवाल, गूजर†, जाट‡, तंवर, चौहान, भदौरिया, कछवाहा, सेंगर, बुंदेला, ये प्रत्येक न्यूनाधिक परिमाण में बड़े रईस से लेकर छोटे छोटे स्वतन्त्र गिरोहों तक चम्बल और कुंवारी नदी के मध्य बसे हुए हैं.

इस प्रकार राजस्थान के मध्यभाग वा उस भाग का चित्र खींचने के पश्चात् जो अर्वली के पूर्व ओर है, मैं अपने पाठक को थल के टीबे, अर्थात् मरु भूमि की रेतीली पहाड़ियों पर लेजाकर, सामान्य ‡ रूप से सिंधु की कछार तक उस [अर्वली] के पश्चिमी विभाग का वर्णन करूंगा.

पाठक को पुनः आबू पर के स्थान परही खड़ा रहना

---

* जमुना, चम्बल, और सिन्धु.

† केवल ये जातियां राजपूत नहीं हैं.

‡ मैं उन नगरों के नाम यहां दुबारा नहीं लिखता हूं. जो भिन्न भिन्न राज्यों के विभाग बतलाते हैं, क्योंकि वे प्रत्येक राज्य की सीमायिक रेखा पर स्पष्ट रूप से लिखे गये हैं.

चाहिये, जिस से उस को थल* की कठिन यात्रा न करनी पड़े. इस शुष्क मरुस्थल में अत्यन्त ही मनोहर वस्तु खारे जलवाली लूनी नदी है, जो अपनी अनेक शाखाओं सहित जोधपुर राज्य के सर्वोत्तम भाग को उपजाऊ बनाने के लिये अर्वली से निकलती, और सदा अपना स्थान बदलनेवाले बालू के उस विस्तृत मैदान की सीमा को स्पष्टता से अंकित करती है, जिसे हिन्दुओं के भूगोल में मरुस्थली कहते हैं, और जिस का अपभ्रंश मारवाड़ है.

लूनी नदी के मार्ग की लंबाई उस के निकासस्थान पुष्कर और अजमेर के पवित्र झीलों तथा पर्बतसर से निकलने-वाली उस की अधिक दूरवर्ती शाखा से लेकर उस के मुहाने तक जो पश्चिमीयविस्तीर्ण खारे दलदल अर्थात् रण में है, ३०० मील से अधिक है.

सिकन्दर के इतिहास लेखकों ने जो 'एरिनस' शब्द लिखा है वह हम को 'रण' वा 'रिण'+ का अपभ्रंश प्रतीत होता है, जिस का प्रयोग अब तक उस विस्तीर्ण दलदल के लिये किया जाता है, जो लूनी नदी तथा धाट के दक्षिणी मरुस्थल से बह कर आनेवाली वैसे ही जल से पूर्ण खारी नदियों के बहाव की मिट्टी आदि से बना है.

---

* मरुस्थल के रेतीले टीबों के लिये 'थल' एक साधारण नाम है.

+ प्रायः संभव है कि यह 'अरण्य' वा मरुस्थल का अपभ्रंश है; इसलिये वर्तमान तरीके की अपेक्षा यूनानियों के लिखने का तरीक़ा ज़ियादा सही है.

यह [रण] डेढ़ सौ मील लम्बा है, और उस की अधिक से अधिक चौड़ाई भुज से वलियारी तक सत्तर मील के क़रीब है, उसी रास्ते से मुसाफ़िर इस को पार करते हैं, क्योंकि वहां पर इस खारे भूमध्य दलदल में उन के ठहरने के लिये एक विलग रम्य भूमि है. उषाकाल में उस [रण] के धोखा देनेवाले सतह पर, जो भयानक चोर बालू से परिपूरित है, लवण की एक विस्तीर्ण उज्ज्वल पपड़ी के अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई नहीं देता, और वर्षा ऋतु में वहां मैला और खारा दलदल हो जाता है, जो बहुतसी जगह ऊंट की छाती तक गहरा होता है. 'खारीकावा' नामी छोटे रम्य स्थान में इस उपयोगी जानवर [ऊंट] के लिये चारा, और प्रत्येक किनारे की ओर यात्रा करनेवाले मुसाफ़िर को विश्राम मिलता है.

इसी विस्तीर्ण खारे दलदल के शुष्क किनारों * पर मरीचिका नामी भ्रमात्मक दृश्य अपना विलक्षण रूप दिखाता है, जो थके हुए यात्री के अतिरिक्त सब के लिये मनोरंजक है, क्योंकि वह पंक्तिबद्ध बुर्जों, शान्तिमय बस्ती,† वा सघन कुंज में स्वर्ग समान आराम करने का स्थान देख-

---

* यहां पर जंगली गधे (गोरख़र) घूमते फिरते हैं. वे अरबों के पूर्वज उज़ के समय में जैसे जंगली थे वैसेही अब भी हैं. "इस का घर जंगल और ऊसर स्थानों में (अथवा इब्रानियों के कथनानुसार खारी भूमि में) होता है; वह नगर की भीड़भाड़ से घृणा करता, और हांकनेवाले की चिल्लाहट पर कुछ भी ध्यान नहीं देता है" जॉब (Job) की पुस्तक ३४ । ६।७.

† पुरा.

कर उस की ओर व्यर्थ वार वार जाता है, परन्तु ज्यों ज्यों वह आगे बढ़ता है त्यों त्यों वह [दृश्य] पीछे को हटता जाता है, यहां तक कि सूर्य अपने तेज से इन मेघाच्छन्न बुर्जों को नष्ट करके उस की भागदौड़ की निष्फलता को प्रगट कर देता है.

ऐसे अद्भुत दृश्य मरुस्थल में प्रायः दिखाई देते हैं, विशेषतः उन स्थानों पर जहां ये लवण की विस्तृत पपड़ियां जमी रहती हैं, परन्तु कई एक कारणों से वे भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं. बहुत सी दशाओं में यह प्रबलता पूर्वक आकार बढ़ानेवाली और प्रतिबिंब डालनेवाली वस्तु एक लम्ब रूप पड़त सी होती है; पहिले पहिल यह गाढ़ी और अपारदर्शक होती है, परन्तु ज्यों ज्यों उष्णता बढ़ती जाती है त्यों त्यों पतली होती जाती है, यहां तक कि अत्यन्त ही उष्णता जिस को वह अधिक काल तक सहन नहीं कर सकती, उसे अत्यन्त ही सूक्ष्म भाफ बनाकर उड़ा देती है. यह दृष्टि-संबन्धी धोखा, जिस को राजपूत लोग भली भांति जानते हैं 'सीकोट' अर्थात् शीतकाल का दुर्ग कहलाता है, क्योंकि यह विशेष कर शीतकाल में ही दिखाई देता है. सम्भव है कि स्यात् इसी से उस कल्पित और मनोरंजक "शाटो-आं एस्पानी" (Chateau en Espagne) की उत्पत्ति हुई हो, जो पश्चिम में प्रसिद्ध है. *

---

* मैंने इस को हिसार के क़िले के खण्डहरों की चोटी पर से देखा है, जहां से दूर २ तक दृष्टि पहुंचती थी, जिस को रोकने के लिये

दक्षिण में लूनी नदी के उत्तरी किनारे से और पूर्व में शेखावाटी की सीमा से रेतीले प्रदेश का प्रारंभ होता है. बीकानेर, जोधपुर, जैसलमेर, ये सब रेतीले मैदान हैं, जो ज्यों ज्यों तुम पश्चिम की तरफ़ बढ़ोगे त्यों त्यों परिमाण में अधिक बढ़ते चले जायंगे. देश का यह संपूर्ण विभाग रेतीले पाषाण की बनावट पर अवलम्बित है. जोधपुर से अजमेर तक जितने नये कुएं खोदे गये हैं उन सब में एक ही प्रकार की रेत, मुरड़े के कंकर, और खड़िया मिट्टी निकली है.

जैसलमेर चारों ओर मरुस्थल से घिरा हुआ है; और राजधानी के गिर्द के उस विभाग को, जिस में गेहूं, जव, और चावल भी उपजते हैं, मरुस्थल के मध्य को उरवरा भूमि कहा जाय तो अनुचित नहीं है. यहां का क़िला एक पहाड़ी श्रेणी के छोर पर कई सौ फ़ीट की उंचाई पर बनाहुआ है, जिस [श्रेणी] का पता उस की दक्षिणी सीमा

छोटे छोटे जंगलों के सिवाय कोई आड़ नहीं थी; क्षितिज के संपूर्ण वृत्त भर में महलों, बुर्जों, और इन हवाई स्वर्गीय स्तम्भों की एक ऐसी श्रेणी जो ध्यान में भी आनी कठिन है, बारी बारी से अपनी क्षणिक स्थिति को समाप्त करती थी, परन्तु धाट और उमरसुमरा के मैदानों में, जहां गडरिये अपनी भेड़ें चराते हैं; और विशेषतः जहां पर खारदार पौदे ऊगते हैं वहां पड़तों की स्थिति, अधिक समसूत्र में होने से, जल का धोखा [मरीचिका] विशेष उत्पन्न करती है. यह वही भ्रांति है जिस की बाबत वह ईश्वरभक्त भविष्यवक्ता कहता है, कि "रेगिस्तान का मृग तृष्णारूपी जल सचा जल हो जायगा." मरुस्थल निवासी इस को चित्राम कहते हैं, जिस का शब्दार्थ चित्र है, और यह नाम भी अनुचित नहीं है. [शाहोआं एस्पानी—मनो कल्पित महत्व के विचार, मनमोदक].

के परे प्राचीन चोहटण के खंडहरों तक बताया जा सकता है, जो उसी पर बना है, और जिस के विषय में ऐसी जनश्रुति प्रसिद्ध है, कि [२४] द्रापा नामी किसी जाति का राजा की राजधानी था, जिस का कोई दूसरा चिन्ह अब नहीं मिलता. यह असम्भव नहीं है, कि स्यात् यह टीबा उस पहाड़ी से मिला हुआ हो जो, जालौर के उर्वरा प्रान्त में हो कर गुज़रती है; इसलिये यह आबू के मूल से निकलनेवाली एक शाखा होगी.

यद्यपि इन सब प्रदेशों के समुदाय का नाम मरूस्थली वा मरुदेश है, (जो रेतीले मैदान के लिये एक प्रभावशाली और लाक्षणिक नाम है) तो भी यह नाम केवल उसी भाग के लिये प्रयोग में लाया जा सकता है, जो राठौड़ जाति के अधिकार में है.

लूनी नदी पर के बालोतरा स्थान से लेकर सारे धाट और उमरसुमरा, जैसलमेर के पश्चिमी भाग, और दाऊदपोत्रा व बीकानेर की दक्षिणी सीमाओं के मध्यवर्ती चौड़े भूखण्ड भर में बिलकुल सुनसान उजाड़ है. परन्तु सतलज नदी से लेकर रण तक की पांच सौ मील की लंबाई और पचास से सौ मील तक की भिन्न भिन्न चौड़ाईवाले प्रदेश में अनेक उपजाऊ भूमिभाग पाये जाते हैं, जहां सिन्धु नदी के कछार व थल से गडरिये लोग आकर अपनी भेड़ें चराते हैं. इन स्थानों में जल के झरनों के भिन्न भिन्न नाम तीर, पार, रार और दर हैं, जो सब जल के वाचक हैं, जिन के

गिर्द मरुस्थल के निवासी राजड़, सोडा, मांगलिया, और सहराई* लोग एकत्र होते हैं.

मैं लवण के झीलों व सज्जी खार के क्षेत्रों अथवा मरुस्थल की दूसरी पैदावारों, अर्थात् वनस्पति वा खनिज पदार्थों का वर्णन नहीं करूंगा, यद्यपि खनिज सम्बन्धी वर्णन शीघ्रही हो सकता है, क्योंकि जैसलमेर के निकट केवल पीले पत्थर की एकही पहाड़ी है, जो [पत्थर] आगरे की उस उम्दा इमारत, अर्थात् शाहजहां की बेगम के रौज़े [ताजबीबी के रौज़े] को अरब देश के मकानों जैसी सुन्दर बनावट में बहुतायत से लगाया गया है.

मैं न तो सिन्धु नदी के कछार का वर्णन करूंगा, न उक्त नदी के उस पूर्वी विभाग का, जो मरुस्थल के रेतीले टीबों की अन्तिम सीमा है; किन्तु मैं केवल इतना ही कहूंगा कि वह छोटीसी नदी, जो भक्खर के टापू से सात मील दूर उत्तर में दरा के निकट सिन्धु से फटकर लखपत के समीप समुद्र में गिरती है, कछार के इस पूर्वी भाग की चौड़ाई प्रगट करती है, जो मरुस्थल की पश्चिमी सीमा बनाता है. यदि कोई यात्री खीची, अर्थात् सिन्धु की समान भूमि से पूर्व की ओर आगे को बढ़े तो वह मरुस्थल की सीमा को

---

* सहराई, 'सहरा' अर्थात् मरुस्थल से बना है, इसलिये 'सहराज़न' वा 'सहरासन' 'सहरा' मरुस्थल, और 'ज़दन'=मारना, इन दोनों शब्दों का संक्षिप्त अपभ्रंश है. 'राहज़नी' का अर्थ रास्ते (राह) में मारना है. 'राहवर' रास्ते पर, इसको पिंडारों ने बिगाड़ कर लावर कर दिया है, जो उन के यहां लूटमार का वाचक शब्द है.

उस के उन ऊंचे ऊंचे रेतीले टीबों सहित स्पष्ट रूप से देख लेगा जिन के नीचे साकड़ा[२५] नदी बहती है, जो सामयिक बाढ़ों के अतिरिक्त प्रायः शुष्क रहती है. ये रेतीले टीबे बहुत ऊंचे ऊंचे हैं, और मोठी नदी, अर्थात् 'मीठा महराण'[२६] की बाढ़ की सीमा कहे जा सकते हैं. मीठामहराण नदी के लिये एक सीथियन वा तातारी [?] नाम है, जिस से पंचनद* से लेकर समुद्र तक की सिन्धु नदी ही जानी जाती है.

---

* सिन्धु की सहायक नदियों का संगम.

पण्डित गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा कृत

भूगोल संबंधी टिप्पण।

१ टॉड साहिब ने जो पहिली वार टॉडराजस्थान का पुस्तक लन्दन नगर में छपवायी थी उस के प्रारम्भ में राजस्थान की नक़शा दिया था, परन्तु उस के पश्चात् जितनी आवृत्तियां इस पुस्तक की हिंदुस्तान में छपी हैं उन में यह नक़शा नहीं है.

२ छोटी सिन्धु के पूर्व, अर्थात् बुंदेलखण्ड में अधिकतर बुंदेले राजपूत रहते हैं जिन के साथ राजपूताना के राजपूतों का शादी व्यवहार नहीं है—(देखो राजपूत जातियों के इतिहास के प्रकरण ७ वें में गहरवालों का वृत्तान्त.)

३ भूमध्य रेखा से उत्तर वा दक्षिण के अन्तर को अक्षांश कहते हैं.

४ किसी नियत याम्योत्तर वृत्त के पूर्व वा पश्चिम के अन्तर को रेखांश वा देशान्तर कहते हैं.

५ उत्तर तथा दक्षिण ध्रुवों पर होकर गुजरनेवाले वृत्तों को याम्योत्तर वृत्त कहते है. जैसे अंग्रेज़ लोग ग्रीनविच (Greenwich) स्थान (लन्दन नगर के निकट) पर होकर गुजरनेवाले वृत्त को पहिला याम्योत्तर वृत्त मानते है, वैसे ही प्राचीन काल से भारतवासी उज्जैन में होकर गुजरनेवाले वृत्त को अपने यहां का प्रथम याम्योत्तर वृत्त मानते थे; परन्तु वर्त्तमान समय में जितने नक़शे इस देश के छपे हैं उन सब में रेखांश के अंक ग्रीनविच के याम्योत्तर वृत्त को ही मुख्य मान कर दिये गये है.

६ स्ट्रेबो (Strabo ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी के आसपास) नामी प्रसिद्ध यूनानी भौगोलिक, और डायोडोरस (Diodorus सन् ई० से पूर्व की प्रथम शताब्दी में) नामी रोमन इतिहास लेखक, तथा एरियन (Arrian ई० सन् की दूसरी शताब्दी में) नामक यूनानी इतिहास लेखक की पुस्तकों से पाया जाता है कि मुसीकेनस सोगडी राज्य के

दक्षिणी सीमा पर के देश का एक राजा था; परन्तु कर्टियस (Curtius) नामी इतिहास लेखक उस को किसी जाति का नाम बतलाता है. इस के शुद्ध नाम का पता नहीं चलता, परन्तु संभव है कि वह मशक, मूशक अथवा इसी से मिलता हुआ कोई दूसरा शब्द होगा.

७ जब कि सिकन्दर बादशाह पंजाब में होता हुआ सिन्धु नदी के रास्ते से सिन्ध देश में पहुंचा तो उस समय वहां कई जातियों के भिन्न भिन्न राज्य थे, उन में से एक जाति का नाम 'सोगडी' था, ऐसा एरियन नामी यूनानी इतिहास लेखक ने लिखा है; परन्तु डायोडोरस नामी रोमन इतिहास लेखक उस को 'सोढ़ी' लिखता है. टॉड साहिब का अनुमान है कि स्यात् सोगडी जाति के लोग सोडा राजपूत होंगे, जो परमारों की एक शाखा है; परन्तु जेनरल कनिंघम (Cunningham) आदि कितने एक प्रसिद्ध यूरोपियन शोधक टॉड साहिब के उक्त अनुमान को स्वी नहीं करते हैं. हमारी राय में भी टॉड साहिब का अनुमान ठीक प्रतीत नहीं होती, क्योंकि सोढे और सांखले परमार धरणीवराह के वंशज हैं, जो विक्रम संवत् १००० के आसपास हुआ था.

८ पाटलीपुत्र (पटना) के मौर्य वंशी (मोरी) राजा चन्द्रगुप्त के दर्बार में सिरिया (syria) के राजा सेल्युकस (seleukos) का एल्ची मेगेस्थिनीस (Megasthenes) सन् इसवी से ३०६ वर्ष पूर्व आया था, वह लिखता है कि भारतवर्ष में दस दस स्टेडिया (stadium एक स्टेडियम ६०६ फ़ीट ६ इंच का होता है) के अन्तर पर कोसों के पाषाण लगे हैं, जिन पर के लेखों से सराय और मकामों की दूरी का पता लग सकता है.

९ विक्रम संवत् १६९२ का लिखा हुआ अर्बुद माहात्म्य की एक पुस्तक हमारे देखने में आयी, उस में इस प्रकार के यंत्र का कोई ज़िक्र मालूम नहीं होता.

१० राजपूताना के बड़े हिस्से में जो पर्वत स्थित है उस का नाम 'आड़ा वला' है. अंग्रेजी में उस को 'आड़ा वली' (Aravali 'ड़' के स्थान पर 'र' जैसे 'गढ़' को garh) लिखते हैं, जो शुद्ध नाम

से बहुत मिलता हुआ है, परन्तु अंग्रेजी वर्णमाला की अपूर्णता के कारण उक्त लिपि में लिखा हुआ नाम एक ही तरह से नहीं पढ़ा जाता इसी से भिन्न भिन्न लेखकों ने उस का नाम अंग्रेजी पुस्तकों के आधार से 'अर्वली', 'अरावली' वा 'आरावली' होना अनुमान कर लिया है, जिन में से एक भी नाम शुद्ध नहीं है. 'अर्वली' नाम अशुद्ध होने पर भी हिन्दी भाषा की पुस्तकों में अधिक प्रचलित हो गया है, अतएव इस पुस्तक में वही नाम रक्खा गया है; परन्तु पाठकों को स्मरण रहे कि उक्त पर्वत का शुद्ध नाम 'आड़ा वला' ही है.

छोड़ा टोड़ा टोडड़ी, छोड़ी नदी वनास।
आड़ा वला उलांघिया छोड़ी घर की आस ॥ १ ॥
(प्राचीन पद्य).

टॉड साहिब ने एक स्थान में उस के नाम का शुद्ध रूप 'अर वल्ली' मान कर उस का अर्थ 'बल का पहाड़' किया है (देखो 'पठार' शब्द पर का हमारा नोट), और दूसरे स्थान में 'आड़ वलि' मान कर उस का अर्थ 'बलवानों का शरण' किया है, परंतु इन में से एक भी अर्थ स्वी करने योग्य नहीं है. उस के नाम (आड़ा वला) का अर्थ 'रोकने वाला' अथवा बीच में आया हुआ पर्वत है (आड़ा=रोकने-वाला या बीच में आया हुआ; वला=पर्वत).

११ यह राजपूताना में सब से ऊंची पहाड़ी चोटी है, जिस की ऊंचाई समुद्र के सतह से ५६५० फ़ीट है, इस पर गुरूदत्तात्रेय की चरण पादुका का तीर्थस्थान होने के कारण यह 'गुरू शिखर' के नाम से प्रसिद्ध है.

१२ टॉड साहिब ने 'मेदपाट' (मेवाड़) का शुद्धरूप मध्य पाट अनुमान करके उस का अर्थ मध्य की समान भूमि किया है, परन्तु उन का अनुमान कल्पित है, क्योंकि प्राचीन शिलालेखों तथा संस्कृत की पुस्तकों में इस देश का नाम 'मेदपाट' ही लिखा है जिस का अर्थ मेद वा मेव लोगों का राज्य है, जिन का प्राचीन समय में इस देश पर अधिकार था (देखो बम्बई गज़ेटियर जिल्द १, भाग, १, पृष्ठ ३३).

१३ टाड साहिब ' पठार ' (पठार) शब्द के ' पठ ' और ' अर ' दो विभाग करके ' अर ' का अर्थ पर्वत बतलाते हैं, परन्तु यह शब्द संस्कृत के ' प्रस्तर ' शब्द का अपभ्रंश है, जिस में पर्वत वाची ' अर ' शब्द का कोई संबंध नहीं है. ऐसे ही ' अर्बुद ' और 'अर्वली' शब्दों में भी उन की ' अर ' शब्द की कल्पना भ्रमपूरित है, क्योंकि अर्वली शब्द का पहिला भाग ' अर ' जिस को वे यहां पर्वतवाची बतलाते हैं, उसी को आगे जाकर उन्हों ने ' आड़ ' अर्थात् रोक लिखा है, जो बहुत ठीक है.

१४ ये लोग पूरे स्वतंत्र नहीं हैं, और मेवाड़ के महाराणा साहिब को वार्षिक नियत कर (ख़िराज) देते हैं.

१५ इन सब की उपाधि ' रावत् ' नहीं है, किन्तु ' रावद् ', 'राव' आदि भिन्न भिन्न हैं.

१६ यूरोप के मध्य का एक अत्यन्त ही पहाड़ी देश.

१७ यह यूरोप खण्ड की बड़ी नदियों में से एक नदी है, जो स्विट्ज़रलैण्ड के पहाड़ों में से निकल कर जर्मनी में होती हुई उत्तरी समुद्र में गिरती है. इस के मार्ग की लम्बाई अनुमान ८५० मील और अधिक से अधिक चौड़ाई २००० फ़ीट है.

१८ यूरोप खण्ड के इटली (Italy) देश का एक पर्वत , जो मलबार किनारे के घाटों की तरह उक्त देश में समुद्र के किनारे २ चला गया है.

१९ टॉड साहिब ने इस को मूल पुस्तक में 'ताप्ती' लिखा है, और अंग्रेज़ लोग उस का वही नाम लिखते हैं, इसी से हिन्दी के भूगोल सम्बन्धी पुस्तकों में भी ताप्ती ही लिखा जाने लग गया है; परन्तु इस का शुद्ध उच्चारण ' तापी ' है, और इसी नाम से यह संस्कृत भाषा तथा गुजरात देश में (जहां यह बहती है) प्रसिद्ध है. इसी तरह 'मलबार ' को अंगरेज़ी पुस्तकों के आधार पर ' मलाबार ' लिखने लग गये हैं, परन्तु उस का शुद्ध उच्चारण मलबार है.

२० ' आण ' से मतलब दुहाई या शपथ है. पूर्व समय में जब

कि हमारे देशी राज्यों का प्रबन्ध देशीरीति के अनुसार चलता था तो उस समय आण दिलाने का प्रचार वहुत था. जब कोई सवल किसी निर्बल के हक़ में अन्याय करना चाहता अथवा कोई किसी में रुपया आदि मांगता और वह नहीं देता तो ऐसे मौकों पर निर्बल लोग राजा की आण दिला कर सवल के अन्याय को रोकते वा अपना रुपया वसूल करते थे. यदि कोई मनुष्य राजा की आण भंग करता तो वह राज्य का अपराधी समझा जा कर उसे उचित दण्ड दिया जाता था. आण (दुहाई) दिलाने का रवाज देशी रियसतों में किसी प्रकार अब तक भी जारी है, परन्तु आण भंग करने के लिये कोई दण्ड नहीं होता है. 'दाण' से मतलब सायर का महसूल, और 'खान' से खनिज पदार्थों की पैदावार है.

२१ यह यूरोप खण्ड की एक बड़ी नदी है, जो ख़ास कर के फ्रांस देश से सम्बन्ध रखती है, और स्विट्ज़रलैण्ड के सेंट गॉथर्ड (St. Gothard) नामी पर्वत के समीप से निकल कर लायन्स नामी खाड़ी (Gulf of Lyons) में गिरती है. इस के संपूर्ण मार्ग की लंबाई ६५० मील के क़रीब है.

२२ विन्ध्य (विन्ध्याचल) से सूर्य का मार्ग रोके जाने का वृत्तान्त पुराणों में इस प्रकार लिखा मिलता है कि, " विन्ध्य पर्वत ने मेरु की ईर्षा करके सूर्य से यह चाहा कि वह जैसे मेरु की परिक्रमा करता है वैसे ही मेरी किया करे; परन्तु जब सूर्य ने उस के कथन पर ध्यान न दिया तो उस ने ऊंचा बढ़ना शुरू किया, और यहां तक बढ़ा कि सूर्य का मार्ग तक रुक गया; तब देवताओं को चिन्ता उत्पन्न हुई, और उन्हों ने अगस्त्य ऋषि के पास जा कर विन्ध्य को नीचा करने केलिये प्रार्थना की, जिस पर ऋषि ने विन्ध्याचल के पास पहुंच कर कहा कि मैं दक्षिण को जाना चाहता हूं, परन्तु वृद्ध होने से तुझ को उल्लंघन नहीं कर सकता इस लिये तू नीचा हो जा. यह सुन कर विन्ध्य (जो उक्त ऋषि का शिष्य था) नीचा हो गया, और ऋषि ने उस को पार कर कहा, कि जब तक मैं लौट न आऊं तब तक तू ऐसा ही रहना; यदि मेरी आज्ञा को उल्लंघन किया तो शाप दूंगा. यह कहकर ऋषि

दक्षिण में गये जहां से पीछे लौटे ही नहीं. इसी से विन्ध्यपर्वत नीचा ही रहा." इस पौराणिक कथा का अभिप्राय कितने एक विद्वान् यह अनुमान करते हैं, कि पहिले आर्य्यों का निवास हिमालय और विन्ध्य के बीच में ही था इसी से वह देश 'आर्य्यावर्त्त' कहलाया, और विन्ध्य के दक्षिण में आर्य्य लोग नहीं जाते थे परन्तु प्रथम अगस्त्य ऋषि ने वहां जाकर अपना आश्रम स्थापन करके वहां के निवासियों में आर्य्यों की सभ्यता का प्रचार किया, तब से आर्य लोग दक्षिण में में-जाकर बसने लगे.

२३ सीथियन लोगों (शकलोगों) में स्यात् नदी के लिये 'सिन' शब्द हो, परन्तु संस्कृत में यह शब्द उक्त अर्थ में कहीं नहीं आता, किन्तु 'सिन्धु' शब्द आता है, जो सिन् से भिन्न है. कदाचित टॉड साहिब ने सिन् और 'सिन्धु' को मिलते हुए देखकर ऐसा अनुमान कर लिया हो.

२४ यह जालौर के चौहान राजा कानड़देव के भाई सालम सिंह का बेटा था. जब वि० संवत् १३६८ (सन् १३११ ई०) में दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन खिल्जी ने चहुवानों से जालौर का क़िला लिया, उस समय सालम सिंह लड़ाई में काम आया. उस के तीन पुत्र बीकम, हापा, और कुंभा थे, जिन में से हापा ने अपने मामा को मारकर उस का सूराचन्द का इलाक़ा छीन लिया, जिस के अन्तर्गत ५२७ गांव होना बतलाते हैं. फिर उस ने चोहटण और जूना के पर्गने विजय कर के चोहटण के पहाड़ पर क़िला बनवाया. हापा के मरने बाद उस के वंशजों से बाला राठौड़ों ने चोहटण का इलाक़ा छीन लिया, और महाराज अजीत सिंहजी के समय वि० संवत् १७५७ (सन् १७०० ई) में प्रसिद्ध राठौड़ वीर दुर्गदास ने सूराचन्द का पर्गना छीनकर जोधपुर राज्य में मिला लिया. इस समय हापा के वंशजों के अधिकार में गंगसरा आदि २४ गांव जोधपुर राज्य में हैं.

२५ घग्गर नदी की एक धारा का नाम साकड़ा वा हाकड़ा था, जो पहिले पंजाब की तरफ़ से बीकानेर और जोधपुर के राज्यों में होती हुई सिन्ध देश में जाकर सिन्धु नदी में जा गिरती थी. परन्तु

दीर्घ काल से उस का वहाव वन्द हो गया है, जिस के विषय में कई वातें प्रचलित हैं, परन्तु उस के वन्द होने का मुख्य कारण यह है, कि इधर का किनारा ऊंचा हो जाने के कारण पानी कम आने लगा, और यों होते २ विल्कुल वन्द हो गया. अव तक थोड़ा २ पानी वीकानेर राज्य के हनुमान गढ़ इलाके में आता है, जहां उस से गेहूं आदि पैदा होते हैं, उस को वहां वाले कग्गर नदी कहते हैं. मारवाड़ में हांकड़ा के वहने का यह प्रमाण है, कि जोधपुर तथा मालानी के पर्गनों में कई गांवों की सीमा के अन्दर ईख पेलने के पत्थर के घाणे पड़े हुए मिलते हैं, जिन के विषय में यह कहा जाता है कि पहिले यहां हांकड़ा नदी वहती थी, जिस के तट पर गन्नों की खेती होती थी, जिन को इन घाणों में पेलकर गुड़ वनाते थे. यदि उक्त नदी का प्रवाह वहां न होता तो उन रेतीले प्रदेशों में ऐसे घाणों की संभावना ही क्योंकर होती.

२६ ' मीठा महराण ' सिन्धु नदी को कहते हैं. कर्नेल् टॉड उस को नदीवाचक सीथियन भाषा का शब्द वतलाते हैं. जिस को हम स्वी नहीं कर सकते, क्योंकि ' महराण ' सीथियन नहीं किन्तु मरु भाषा का शब्द है, जो संस्कृत के ' महार्णव ' (महा=वड़ा, अर्णव= जलसमूह, समुद्र) शब्द का अपभ्रंश है. समुद्र का जल खारा, और सिन्धु का मीठा होने से उस को ' मीठा महराण ' अर्थात् मीठे जल का समुद्र कहते हैं.

राजपूत जातियों का इतिहास।

प्रकरण पहिला।

राजपूत राजाओं की वंशावलियां.—पुराण.—राजपूतों का सीथिक [=शक] जातियों के साथ सम्बन्ध.

मध्य और पश्चिमीय भारत की वीर जातियों का इतिहास संक्षिप्त रूप में लिखने की इच्छा होने से इस बात का निर्णय करना आवश्यक समझा गया कि वे कहां से निकली हैं, वा अपने को किस के वंश में होना बतलाती हैं. इस काम के लिये मैंने उदयपुर के राणा के पुस्तकालय से उन के पवित्र ग्रन्थ, पुराणों को प्राप्त किया, और उन्हें पंडितों की एक मंडली के सन्मुख रक्खा, जिस का अधिष्ठाता विद्वान यति ज्ञानचन्द्र था. इन [पुस्तकों] से सूर्य और चन्द्र के महान वंशों की समस्त वंशावलियां एवम् ऐतिहासिक और भौगोलिक विषय छांटे गये.

अधिक तर पुराणों* में ऐतिहासिक और भौगोलिक

* संस्कृत विद्या के प्रथम प्रामाणिक पुरुष का कथन है, कि "हर एक पुराण में पांच विषय होते है—सृष्टि की उत्पत्ति; उस की स्थिति, और लय; देवताओं और वीर पुरुषों की वंशावली; कल्पित रीति के अनुसार ऐतिहासिक वर्णन; और वीरकथा, जिस में अवतारी पुरुषों और वीरों के चरित्रों का वर्णन होता है. प्रत्येक पुराण में

वृत्तान्त का कुछ कुछ अंश लिखा मिलता है; परन्तु भागवत्, स्कन्द, अग्नि, और भविष्यपुराण इस विषय में मुख्य हैं. खेद की अपेक्षा यह सौभाग्य का विषय है, कि उन में दी हुई वंशावलियां परस्पर एक दूसरी के साथ पूर्ण रूप से नहीं मिलतीं. उन में प्रत्येक वंश के राजाओं की संख्या भिन्न भिन्न है, और नाम [भी कहीं कहीं] उलट पुलट दिये गये हैं; परन्तु प्रत्येक के मुख्य मुख्य बातें स्पष्ट रूप से [एक सा] मिलती हैं, जिस से यह सिद्ध होता है, कि वे भिन्न भिन्न ग्रन्थकारों के रचे हुए हैं, और उन सबों ने किसी एकही मूल सोते से अपनी सामग्री प्राप्त की है.

हिन्दुओं की सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन [Genesis=जिनेसिस *] भी उसी घटना से प्रारंभ होता है, जो लगभग सारी जातियों के इतिहास में वर्णित है, अर्थात् महाप्रलय से, जिस को यद्यपि इन पूर्व देश निवासियों ने अपनी विशेष प्रकार की कल्पना से लिखा है, तो भी वह कम ध्यान देने योग्य नहीं है.

विश्व उत्पत्ति के वर्णन तथा देवताओं और वीरों के चरित्र होने से उन का मिलान यूनानियों के देवताओं की उत्पत्ति के वर्णन से भली भांति हो सकता है"—एच. टी. कोलब्रुक साहिब के संस्कृत और प्राकृत भाषा सम्बन्धी निबंध से-एशियाटिक रिसर्चेज़, जिल्द ७ पृष्ठ २०२.

* 'जिनेसिस' शब्द के संस्कृत में 'जन्म' और 'ईश' वा ईश्वर दो टुकड़े हो सकते हैं.

अग्निपुराण से इस विषय का लेख जो उद्धृत किया गया है उस का सार यह है :—

" जब कि ब्रह्मा की आज्ञा से समुद्र ने अपनी मर्यादा उल्लंघन कर के सारे संसार को नष्ट कर दिया, उस समय वैवस्वतमनु *(नूह्),जो कि हिमालय † पर्वत के निकट निवास करता था, कृतमाला नदी में देवताओं को जलांजली दे रहा था, उस समय एक छोटी मच्छी उस के हाथ में आ गई. वह बोली कि मेरी रक्षा कर. यह मछली बढ़ते बढ़ते बहुत बड़ी हो गई. मनु अपने पुत्रों, उन की स्त्रियों, और ऋषियों सहित प्रत्येक जीवधारी का बीज अपने साथ लेकर एक नौका में बैठ गया, जो उस मछली के सींग से बंधी हुई थी; और इस प्रकार वे बच गये. "

यहां पर [इस भांति] उत्तरीय बड़ी पर्वतश्रेणी का वर्णन है, जिस के निकट मनुष्य जाति के आदि पुरुष का निवासस्थान था. भविष्यपुराण में लिखा है कि—" वैवस्वतमनु (सूर्य का पुत्र) सुमेरु पर्वत पर शासन करता था. उस के वंश में राजा ककुत्स्थ उत्पन्न

* सूर्य [=विवस्वत] का पुत्र.

† बर्फवाला काकेशस [=क़ाफ़] पर्वत. 'एसेन्स आफ दि पुराण' [Essence of the Purans पुराणों का सार] नाम के ग्रन्थ से उद्धृत कर के सर विलियम जोन्स [Sir William Jones] लिखते है कि यह घटना दक्षिण के द्रविड़ देश में हुई थी.

हुआ, जिस ने अयोध्या * का राज्य प्राप्त किया, और उस के वंशज सारी पृथ्वी पर फैल गये. "

मैं जानता हूं कि हिन्दू लोग पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव को सुमेरु कहते हैं; परन्तु उन के यहां उसी नाम का एक सर्वोत्तम पर्वत भी माना है. 'मेरु' का अर्थ पर्वत और 'सु' उपसर्ग का अर्थ अच्छा वा पवित्र है. [अतएव सुमेरु का अर्थ] पवित्र पर्वत है.

अग्निपुराण में दिये हुए भूगोल में इस शब्द का प्रयोग वास्तविक भौगोलिक सीमा † की तरह किया गया है; और कितनी एक नदियां, जो उस पर्वत की श्रेणियों से निकली हैं, उन का सुमेरु के साथ सम्बन्ध दिखानेवाला स्थान भी वहां दिया हुआ है, और वे अब तक अपने प्राचीन नामों ही से पुकारी जाती हैं. स्पष्ट बातों का वर्णन जो रूपक के साथ दिया गया है उस

* अयोध्या को अब 'अवध कहते हैं, जो मुगलबादशाहों के राज्य के २२ सूबों में से एक की राजधानी है, और कितनी एक पीढ़ियों तक वह नाम मात्र के एक वज़ीर के आधीन रही, जिस ने थोड़े ही दिन हुए बादशाह का ख़िताब धारण कर लिया है.

† सुमेरु के दक्षिण में हिमवान, हेमकूट और निषध पर्वत हैं; और उत्तर में नील, श्वेत और शृंगि देश हैं. हिमाचल और समुद्र के बीच में भरतखण्ड है जो कुकर्मभूमि कहलाता है (आर्यावर्त्त अर्थात् सुकर्मभूमि के विरुद्ध) इस में महेन्द्राचल, मलयाचल, सूर्याचल[१२], शुक्तिमान, ऋष्याचल, विन्ध्याचल और पारियात्र नाम की महान सात पर्वत-श्रेणियां हैं—(अग्निपुराण) .

का केवल लाक्षणिक अर्थ ही ग्रहण कर के हमें उक्त विषय को गूढ नहीं कर देना चाहिये. यद्यपि हिन्दुओं ने सात द्वीपों का विभाग कर के उन के बीच बीच में दही, दूध वा मद्य [आदि] के समुद्र माने हैं, और पीछे से अज्ञान पुरुषों ने उन में बहुत सा क्षेपक मिला दिया है, तथापि [उन में लिखी हुई] प्रामाणिक और स्पष्ट बातों को हमे [निरर्थक मान कर] छोड़ नहीं देना चाहिये।

इस पवित्र पर्वत (सुमेरु) को ब्राह्मण लोग महादेव *, आदीश्वर वा बाघेश † का निवासस्थान बताते हैं; और जैन आदि नाथ ‡ अर्थात् प्रथम जिनेश्वर का वासस्थान मानते हैं. उन के कथनानुसार उन से यहीं पर मनुष्यजाति को कृषि और सभ्यता की प्रथम शिक्षा दी थी. यूनानी लोग इसे बैकस का निवासस्थान होना प्रगट करते हैं, और इसी से यह यूनानी कथा चली है, कि यह देवता जुपीटर की जंघा से उत्पन्न हुआ है, अतएव हिन्दुस्तान के इस देवता के मेरु (पर्वत) को

---

* सृष्टि का उत्पन्न करनेवाला. शब्दार्थ के अनुसार 'बड़ा देवता'.

† बाघेश=बाघ के स्वामी. ये बाघ वा चीते का चर्म धारण करते और बिछाते हैं. बैकस (Bacchus) का भी ऐसा ही हाल था. दोनों का चिन्ह लिङ्ग है. बाघेश[12] के मेवाड़ में कई मन्दिर है।

‡ प्रथम तीर्थंकर.

भ्रम से मेरोस (Meros=जंघा) समझ लिया है. इसी स्थान के निकट सिकन्दर के साथियों का सैटरनेलियाँ नामक त्यौहार पड़ा जिस में उन्हों ने वहां के उपजनेवाले अंगूरों का मद्य अधिकता से पीया, और अपने ललाटों पर आइवी नामक वेल * बांधी, जो पूर्व और पश्चिम के वाघेश के लिये अधिक पवित्र है, और जिस के उपासक समान रूप से खूब मद्यपान करते हैं.

ये कथाएं मनुष्य जाति के इतिहास में, जब कि हिन्दू और यूनानी लोग एक ही केन्द्र अर्थात् निकास स्थान पर पहुंचते हैं, एक ही स्थान और एक ही मनुष्य को बतलाती हुई जान पड़ती हैं, क्योंकि इस में थोड़ा ही सन्देह है कि आदीश्वर, ओसिरिर्स, बाघेश, बैकस, मनु, और मीनर्स, सब के सब मनुष्य जाति के आदि पुरुष नूह के नाम हैं.

हिन्दू लोग इस समय मेरु के स्थान के विषय में केवल एक बहुत ही साधारण विचार प्रगट कर सकते हैं; परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि वे उसे एक ऐसे स्थान पर होना बताते हैं, जिस की बाहिरी सीमा पर बामियाँ, काबुल, और गुज़नी होंगे. इन नगरों

* 'वेल' लता का साधारण पर्याय है, जो हिन्दुस्तान के बैकस (बाघेश, आदीश्वर, महादेव) को प्रिय है, जिस के पुजारी अपने देवता का अनुकरण कर मादक पदार्थों के शौकीन होते हैं. 'अमर-बेल एक अच्छी लता है, जिस का चित्र दूसरी जिल्द में देखो जहां यह वेल महादेव की पवित्र वाटिका में छाई हुई है.

में से पहिले में बुद्ध धर्म के बचे कुचे चिन्ह, अर्थात् गुफाएं और बड़ी बड़ी मूर्त्तियां * होना पाया गया है. परोपैमिसेन् इस्कन्दरियौ बामियां के निकट है; परन्तु यूनानी ग्रंथकारों ने सिकन्दर के समय में मेरु और निसा † को अधिक पूर्व की ओर माना है, और सावधान [इतिहास लेखक] एरियन [Arrian] के अनुसार ये कोफस (Cophas काबुलनदी) और सिन्धु नदी के बीच में स्थित हैं. [कितने एक] प्रामाणिक ग्रन्थों में इस को पेशावर और जलालाबाद के बीच में होना

---

* ज़ोहाक बामियां में एक अत्यन्त ही प्राचीन क़िला अभी तक अच्छी दशा में है, परन्तु बामियां का क़िला खण्डहर हो गया है. पर्वतों में १२००० गुफाएं चट्टानों में कटी हुई हैं, और खुदाई व पलस्तर की कारीगरी का बहुत सुन्दर काम है. इन को समाज कहते है, जहां देशी लोग शीतकाल में जा रहते थे. यहां पर तीन अद्भुत मूर्त्तियां हैं, एक पुरुष की जो ८० एल [१ एल=३॥। फ़ीट] ऊंची है. दूसरी एक स्त्री की ५० एल, और तीसरी एक बालक की १५ एल ऊंची है. इन समाजों में से एक में एक क़ब्र है, जहां सन्दूक़ में एक लाश धरी हुई है. इस के विषय में वृद्ध से वृद्ध आदमी भी कुछ नहीं जानता. यह यहां पर बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखी जाती है. प्राचीन समय के मनुष्यों के पास कोई ऐसा मसाला था जो मृत शरीर पर लगा देने से वह दीर्घ काल पर्यन्त सड़ने नहीं पाता था— आईनि अक्बरी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १६९.

† पुराणों में 'निषध' एक पर्वत का नाम लिखा है. यदि वह षष्ठी विभक्ति में हो (जो अन्तिम प्रत्यय से ज्ञात होता है) तो स्यात् वह निसा (Nyssa) नगर के नाम पर बना हुआ उन लोगों की भाषा का शब्द होगा.

माना है, और इस का नाम 'मेर-कोह' वा 'मार-कोह'* लिखा है. यह एक नंगा पहाड़ २००० फीट ऊंचा है, जिस के पश्चिमीय भाग में गुफाएं हैं. बादशाह हुमायूं ने उस का भयानक रूप † देखकर 'बेदौलत' नाम रक्खा

---

* संस्कृत में 'मेर' [=मेरु], और फ़ारसी में 'कोह' पर्वत को कहते हैं.

† एशियाटिक रिसर्चेज़, जिल्द छठीं के पृष्ठ ४९७ [Asiatic Researches Vol. VI, P. 497] में विल्फर्ड साहिब ने सर वाल्टर रैले के "हिस्टरी ऑफ दि वर्ल्ड" [History of World जगत् का इतिहास] नामक प्राचीन विद्या भंडार से (जैसा कि हिन्दू लोग कहते) बहुत कुछ उद्धृत किया हो ऐसा प्रतीत होता है. जो कुछ उस महत् पुरुष ने इस विचित्रता के साथ एकत्रित किया, और लिखा था उस के साथ अपने एकत्रित किये हुए (संग्रह) को विल्फर्ड साहिब ने मिला कर अपनी कल्पना शक्ति की सहायता से उसे अधिक रोचक बना दिया. परन्तु जब उन्हों ने पृथ्वी पर के स्वर्ग [=ईसाइयों के अदॅन] का वर्णन लिखा तो मुझे आश्चर्य होता है, कि उस समय उन्हों ने प्रलय के पहिले और पीछे के मनुष्य जाति के उत्पत्तिस्थानों को अलग अलग नहीं बताया. सर वाल्टर रैले का एक वाक्य है जिस से उन को अपनी कल्पना में सहायता मिल सकती, कि *अदन एशिया के ऊपरी प्रदेश में जेहून [Oxus] और दूसरी बड़ी नदियों के सामान्य* स्रोतों के बीच में था, जहां बहुत से बड़ के वृक्ष हैं, जो आदिनाथ वा महादेव के लिये पवित्र हैं.

" पाप पुण्य का ज्ञान करानेवाले वृक्षों के विषय में कितने एक मनुष्यों ने विशेष खयाल दौड़ाये हैं, विशेष कर गोरेप्यस बेकानस [Gorapius Becanus] ने जो अपने को उस वृक्ष की एक जाति का पता लगानेवाला बताता है, जिस का प्राचीन ग्रन्थकार अनुमान तक न कर सके, इस पर गोरेप्यस बड़ा आश्चर्य करता है. "

था. परन्तु यह 'दस्ते वे दौलत' वा 'अभागा मैदान'

" दोनों [आदम और ईवे] एक साथ सघन बन में गये, और वहां शीघ्रही उन्हों ने अंजीर [जाति] का वह वृक्ष [= वड़] पसन्द किया, जो अपने फल के लिये प्रसिद्ध नहीं है, किन्तु वह जिस से आज दिन तक मलवार वा दक्षिण के भारतवासी परिचित हैं, जो अपनी शाखा इतनी लंबी चौड़ी फैलाता है, कि जिन की जटाएं [नीचे को लटक कर] जमीन में जड़ पकड़ कर मूल वृक्ष के आसपास उस की सन्तति की नाईं जम जाती हैं, और स्तंभ रूप बन कर अपने बीच बीच में ऊंची ऊंची महराबदार आच्छादित कुंज गलियां बनाती है, जहां बहुधा चरवाहे उस की धूप से बचानेवाली शीतल छाया में बैठे बैठे अपने पशुओं को चराते हैं. . . .... उस के बड़े २ पत्तों को उन्होंने एकत्रित किया, जो ऐमेज़ोनें की [Amazonian] ढाल जैसे चौड़े थे. " पैरेडाइज़ लास्ट, पुस्तक ९

[Paradise Lost, Book IX].

सर वाल्टर [रैले] मनुष्य जाति के उत्पत्तिस्थान के विषय में हिन्दुओं की कल्पना को अच्छी तरह पुष्ट करते हैं, और उन का कथन है कि " प्रलय के पश्चात् पहिले पहिल मनुष्य और वनस्पती की उत्पत्ति भारतवर्ष में ही हुई थी. " (पृष्ठ ९९). उन का प्रथम प्रमाण यह है, कि वह एक ऐसा स्थान है जहां के देशी वृक्ष दाख और ज़ैतून हैं, जैसे कि शक जाति के सीथियन लोगों के यहां (और वे अब तक काबुल और बामियां के मध्य जई के साथ उत्पन्न होते हैं); और [दूसरा प्रमाण] यह कि अराराट पर्वत आरमीनिया में नहीं हो सकता, क्योंकि गोर्डियन [Gordian] पर्वत जिस पर [नूहकी] नौका ठहरी थी, ७५° रेखांश में और शिनार की वादी ७९° से ले कर ८०° रेखांश में है. इस दशा में स्थानान्तर में जाने का मार्ग उल्टा हो जायगा. "जैसे कि वे पूर्व से चले तो उन को शिकार की भूमि में एक मैदान मिला, और वहां वे रहे."—(जिनेसिस की पुस्तक, अध्याय दूसरा, आयत दूसरी). वह यह भी कहते हैं कि मूसा ने

नाम उस भूखंड का रक्खा गया था जो उपर्युक्त नगरों के मध्य में है.

जिस को अराराट कहा है वह किसी एक पहाड़ का नहीं, किन्तु काकेशस की विशाल पर्वतश्रेणी भर के वास्ते एक साधारण नाम है. इस लिये हमें इस अराराट पर्वत को उड़ा देना, वा उस को हटा कर आरमीनिया से दूर ले जाना, अथवा उस को उष्ण देश में किसी अन्य स्थान पर, और शिनार के पूर्व में ढूंढ़ना चाहिये." अतएव वह उस को १४०° रेखांश और ३५° से ३७° अक्षांस के बीच इंडो-सीथिया [Indo-S'cythia] में कायम करते हैं, जहां पहाड़ बहुत ऊंचे ऊंचे हैं." और अन्त में [सर वाल्टर रैले] यह कहते हैं कि—"वह स्थान जहां नूह ठहरा था अधिक उष्णता वाले पूर्वी देश में था, जहां उस ने अंगूर के पेड़ लगाये, और कृषि कर के उस पर अपना जीवन निर्वाह किया. (एरियस मॉन्टेनस=Arius Montanus नामी महान् विद्वान लिखता है)—" नूह कृषिकर्म से प्रसन्न हुआ, और कहते हैं कि इस विषय में वह सब से बढ़ गया, इस लिये उसी की भाषा में वह 'ईश आदमठ'* [Ish-Adamath] अर्थात् भूमि के काम में लगा रहने

* संस्कृत में ईश=स्वामी, आद [=आदि]=प्रथम, और मठ वा मठ=पृथ्वी वा मिट्टी है. यहां संस्कृत और इब्रानी भाषा का अर्थ एक सा है, 'अर्थात् पृथ्वी का पहिला स्वामी.' इन दूर के राजपूत प्रदेशों में जहां प्राचीन रीत भांत और भाषा अब तक चली आती है, मनुष्य के वास्ते जो ज़ोरदार शब्द [मांटी] है उस का असली अर्थ पृथ्वी है. कोई सर्दार अपने आदमियों और सीमा पर के लोगों के मध्य की लड़ाई का वर्णन करते समय, जिस में कोई मारा गया हो तो, कहता है कि "मेरा मांटी मारो" अर्थात् मेरी पृथ्वी मारी गई. यह एक ऐसा वाक्य है, जिस पर किसी प्रकार टीका की आवश्यकता नहीं; और जिस से यह भी प्रगट होता है, कि वह खून के बदले खून चाहता है.

सुमेरु के विषय में इतनी आलोचना करने का अभिप्राय केवल इस बात को दिखाना है कि स्वयं हिन्दू लोग अपनी जाति का उत्पत्तिस्थान सिन्धु के इधरवाले भारत को नहीं किन्तु पश्चिम में काकेशस * पहाड़ों के बीच बताते हैं, जहां से चलकर सूर्यपुत्र वैवस्वत के सन्तान पूर्व में सिन्धु और गंगा के किनारे तक आये, और कोशल में अपनी पहिली बस्ती अर्थात् राजधानी अयोध्या वा अवध की नींव डाली थी.

बहुत सी जातियों ने अपने मूल स्थान के नियत करने में, जहां से कि वे निकले हैं, बहुत कुछ इच्छा की है,

---

वाला पुरुष कहलाता था." उपर्युक्त पदवी, प्रकृति, और निवासस्थान जैनियों के प्रथम तीर्थंकर आदि नाथ के वृत्तान्त के साथ ठीक घट सकते हैं, जिन्हों ने मनुष्यों को खेती बाड़ी का काम, और "नाज गाहने के समय बैल के मुंह को छींकी लगाना भी सिखलाया था."

यदि सर बाल्टर को यह मालूम होता कि हिन्दुओं की धर्मपुस्तकों में उन के देश का नाम आर्यावर्त्त † दिया हुआ है, और विशाल इमौस [Imaus] उस की उत्तरी सीमा है, तो वह निस्सन्देह उसी को अपना अरारट मान लेते.

* हिन्दू वा इन्दुकुश या कोह, इस का स्थानीय नाम है, अर्थात् चन्द्र का पहाड़.

---

† आर्यावर्त वा पुण्य भूमि हिमवत से दक्षिण के हिन्द के हमवार मैदानों को नहीं कह सकते, क्योंकि पुराणों में इनके लिये बिल्कुल विरुद्ध नाम 'कुकर्मदेश वा पापभूमि' लिखा है.

और इस उच्च मध्य भूमि वा एशिया के मध्य प्रदेश की अपेक्षा बहुत थोड़े मनोहर स्थान होंगे, जहां से आमू, आक्सस (Oxus) वा जेहून तथा दूसरी नदियां निकली हैं, और जिस के अन्तर्गत सूर्य और चन्द्रवंशी दोनों उस पर्वत † के होने का दावा करते हैं, जो उन

† मेरु का स्पष्ट अर्थ पहाड़ है, जैसे कि 'जैसलमेर' शब्द में (जो पश्चिमी मरुस्थल में भाटी जाति के राजपूतों की राजधानी है) 'जैसल का पहाड़'–'मेरवाड़ा' वा पहाड़ी प्रदेश और उस के निवासी 'मेरें' वा पर्वत् निवासी हैं. इस तरह रामायण नामक महाकाव्य में (काण्ड १, पृष्ठ २३६) 'मेरां' पर्वती अप्सरा का नाम है, जो मेरु की पुत्री और हिमवत् की स्त्री थी, जिस से दो कन्या उत्पन्न हुई. पहिली देवी गंगा नदी, और दूसरी पर्वती अप्सरा पार्वती. इस को महाभारत में शैल की पुत्री शैला भी लिखा है, जो [=शैल] हिमवत् का दूसरा नाम है, इस लिये पर्वत से निकलनेवाली नदियों को संस्कृत में शैलेती [=शैलोदका ?] कहते हैं. शैला के गुण फ्रीगियाके [—Phrygia—एशियामाइनर का एक प्रदेश] लोगों की साइबेली [= Cybele = जुपीटर की माता] से मिलते हैं. वह भी इसी नाम के पर्वत् [= साइबाल ?] की पुत्री थी. 'शैला' सिंह पर सवार होती है, और 'साइबेली' के रथ में सिंह जुतता है. इसी तरह यूनानियों ने पर्वत पामीर' को 'पैरोपेमिसेन्' लिखा है. यह नाम उन्हों ने बामियां के पश्चिमी पर्वत् 'हिन्दूकोह' [= हिन्दू कुश] का रक्खा था. लेकिन् 'पर्वत पत पामीर' अर्थात् पर्वतों का राजा पामीर, चन्द कवि ने उस देश के अत्यन्त पूर्व भाग में होना लिखा है जिस की तलेहटी में दिल्ली के राजा पृथ्वीराज का बडा सामन्त हैमीर रहता था. यदि वह 'पैरोपेमिसेन्' होता (जैसा कि कईएक ग्रन्थकार लिखते हैं) तो यह उस स्थान के साथ, जहां इस का नाम पड़ा है, अधिक मेल खाता, क्योंकि

के आदि पुरुष के नाम से पवित्र है, और जहां से वे पूर्व की ओर आये.

राजपूत जातियां हिन्द के उष्ण मैदानों में सीथियन लोगों से मिलते हुए अपने कईएक स्वभावों और वीरता के मिथ्या विश्वासों को कठिनता से प्राप्त कर सकती थीं, जो अब तक उन में उपस्थित हैं. यहां ऐसी अधिक गरमी है कि वे लोग उत्साहमय भक्ति के साथ, दक्षिणी मार्ग से आकर उत्तरी गोलार्ध को प्रफुल्लित करनेवाले सूर्य का स्वागत् प्रसन्नतापूर्वक कदापि नहीं कर सकते. यह धर्म अधिकतर शीतप्रधान देश ही का हो सकता है, जिस [धर्म] को वे अपने पूर्व निवासस्थान से लाये थे, जहां से कि जेहून [= ऑक्सस वा आमू दरिया], और ज़ेगज़ार्टिस [= सेहून वा सिरे दरिया] नदियां निकली हैं. अत्यन्तही संभव है कि 'अस्वमेध' वा घोड़े (सूर्य के चिन्ह) का यज्ञ नामक बड़ा सांक्रान्तिक त्योहार, जिसे सूर्यपुत्र वैवस्वत के सन्तान मानते थे, उस को सिथिया से एकही समय उन लोगों ने तो हिन्दुस्तान में लाकर प्रचलित किया, और ओडिन्, वोडन् वा बुध के पुत्रों ने पश्चिम की तरफ़ स्कैंडीनेविया में ले जाकर प्रचलित किया, जहां वह शीत काल की संक्रान्ति का हि-एल

निसा और मेरु के निकट होने से उस का पाठांतर पर्वत या पहाड़ होता, और पॅरोपमिसन् पुराणों का निषध पर्वत् वा 'निसा का पहाड़' माना जाता.

वा हि-उल* [Hi-el or Hi-ul] नामक त्योहार प्रसिद्ध हुआ. यह उत्तरीय जातियों का एक बड़ा महोत्सव था, और ईसाई धर्म के प्रारंभिक समय में इस के जारी होने का ज़माना निकट होने से ईसाइयों के शुरू के पादरी लोग इस को उस घटना के स्मरणार्थ प्रसन्नतापूर्वक मनाते थे. †

---

* 'हय' वा 'ही³⁶' संस्कृत में घोड़े को कहते हैं-एल=सूर्य, जिस से 'इप्पोस' (Ippos) और 'इलिओस' (Elios) यूनानी शब्द बने हैं. 'हेल' [Hl] सूर्यवाची सीथियन शब्द मालूम होता है; और 'हरि' वा हिन्दुस्तान का अपोलो सूर्य का नाम है. उत्तरी जातियों के 'हिउल' वा 'जुल' (Huil or Jul) शब्द (फ्रांस का नोइल=Noel ?) हिन्दुओं के संक्रान्ति शब्द के पर्याय हैं, जिस का विशेष वर्णन आगे किया जायगा.

† मैलेट की 'नॉर्दर्न ऐंटीक्विटीज़' नामक पुस्तक (Mallet's Northern Antiquities).

पण्डित गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा कृत

पहले प्रकरण की टिप्पणी.

१—सीथिक जाति के लोग मध्य एशिया में रहते थे, जिन को यूनानी लेखक 'सीथियन' और ईरान तथा हिन्दुस्तान वाले शक कहते थे. ये लोग बढ़ते बढ़ते पश्चिमी यूरोप और दक्षिणी एशिया में फैल गये. बाक्ट्रिया (हिन्दूकुश पर्वत के उत्तर में), और पार्थिया (ईरान का उत्तरी भाग) के यूनानी राज्य को इन्हीं लोगों ने नष्ट किया, और यूनानियों को वहां से निकाल कर वे देश अपने आधीन कर लिये. फिर धीरे धीरे हिन्दूकुश पर्वत को पार कर दक्षिण की तरफ़ बढ़ते हुए सन् ईसवी की पहिली शताब्दी में अपने राजा वेनोनस (Venonus) की आधीनता में उन्हों ने हिन्दुस्तान पर चढ़ाई की, और थोड़ेही समय में उस के बड़े हिस्से पर अपना अधिकार जमा लिया. उन्हों ने जो अपना संवत् चलाया वह उन्हीं के नाम से 'शकसंवत्' कहलाया, और अब तक इस देश में प्रचलित है. उन का महाराज्य अस्त होने पर शक जाति के क्षत्रप राजाओं का राज्य ई० सन् ३८८ (=वि० संवत् ४४५) के क़रीब तक मालवा, गुजरात, काठियावाड़, राजपूताना आदि पर रहा. फिर उक्त सन् के आस पास गुप्त वंश के महाप्रतापी राजा चन्द्रगुप्त दूसरे ने जिस का प्रसिद्ध उपनाम (= ख़िताब) विक्रम या विक्रमादित्य था, शकों से यह देश छीन कर शक राज्य की समाप्ति की. यहां वाले इन को आर्यों में नहीं गिनते थे, परन्तु उन का बौद्ध तथा वैदिक मत को मानना पाया जाता है.

२—ज्ञानचन्द्र जयपुर के रहनेवाले खरतर गच्छ के यति अमरचन्द के शिष्य थे. भाषा कविता के अच्छे ज्ञाता होने के अतिरिक्त संस्कृत का भी ज्ञान होने से टॉड साहिब ने उन को अपने पास बड़े सत्कार के साथ रक्खा था, जिस से उन को अपने राजस्थान नामक इतिहास में बड़ी सहायता मिली. उदयपुर के महाराणा भीम सिंह जी

ने गांव मांडल में उन को कई बीघा जमीन प्रदान की, तब से उन को मांडल में रहना हुआ. उन के शिष्य शिवचन्द थे, जिन के शिष्य गणेशचन्द इस समय विद्यमान हैं.

३—सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंच लक्षणं ॥
ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, श्रीकृष्णजन्म खण्ड, अध्याय १३२.

४–ईसाइयों के मतानुसार महाप्रलय से बचा हुआ पुरुष, अर्थात् वर्त्तमान मनुष्य जाति का आदिपुरुष.

५–अग्निपुराण में कृतमाला नदी का हिमालय से नहीं किन्तु मलय पर्वत (मलयाचल से निकलना (अर्थात् दक्षिण में होना) लिखा है–(मलयात्कृतमालाद्या । अध्याय ११८, श्लोक ८). ऐसे ही उक्त पुस्तक में जहां मलय का वर्णन है वहां पर वैवस्वतमनु का हिमालय के निकट बसना नहीं लिखा है.

६–अग्निपुराण अध्याय दूसरा.

७- बम्बई के श्री व्यंकटेश्वर प्रेस के छपे हुए भविष्यपुराण में न तो वैवस्वत मनु का सुमेरुपर्वत पर राज्य करना, और न ककुत्स्थ का अयोध्या का राज्य प्राप्त करना लिखा है. उस में वैवस्वत का सर्यू के तट पर तप करना, और उस के वंश में ककुत्स्थ का होना लिखा है (प्रति सर्ग पर्व, अध्याय १, श्लोक ३-७), परन्तु उक्त पुस्तक में छपा हुआ सारा 'प्रतिसर्ग पर्व' विश्वास योग्य नहीं है. वह आधुनिक समय का तय्यार किया हुआ प्रतीत होता है. शायद टॉड साहिब के पास की पुस्तक में जैसा वे लिखते हैं वैसा पाठ हो.

८–अग्निपुराण अध्याय १०८.

९–अग्निपुराण अध्याय १०८ श्लोक २.

१०–नील, श्वेत, और शृंगि–ये देश नहीं, किन्तु पर्वत हैं. (हिमवान हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे । नीलः श्वेतश्च शृंगी च उत्तरे वर्षपर्वताः). अग्निपुराण, अध्याय १०८, श्लोक ५.

११–टॉड साहिब ने भरतखण्ड को 'कुकर्म भूमि' लिखा है यह उन

का भ्रम है. पुराणों में उक्त देश को 'कर्मभूमि' (वर्षं तद्भारतं नाम नवसाहस्त्रविस्तृतम्। कर्मभूमिरियं स्वर्ग०। अग्निपुराण अध्याय ११८ श्लोक १-२) लिखा है, जिस का अर्थ सुकर्म वा सत्कर्म करने योग्य भूमि है. (प्राप्येमां कर्मभूमिं न चरति मनुजो यस्तपो मन्द भाग्यः। भर्तृहरि कृत नीतिशतक, श्लोक १००). वेदादि में कहे हुए यज्ञ, तप आदि सत्कर्म केवल इसी देश में करने का अधिकार होने से ही यह कर्मभूमि कहलाता है; और आर्यावर्त्त भरतखंड के उस बड़े हिस्से का नाम है जो हिमालय और विन्ध्याचल पर्वत के बीच स्थित है, और उस को पुण्यभूमि कहते हैं. (आर्यावर्त्तः पुन्यभूमिर्मध्यं विंध्य हिमालयोः। अमरकोश ॥ आसमुद्रात्तुवै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्। तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्त्तं विदुर्बुधाः ॥ मनुस्मृति, अध्याय २, श्लोक २२.) शायद टॉड साहिब ने मध्य एशिया को आर्यावर्त्त ठहराने के विचार की धुन में भरतखण्ड को कुकर्मभूमि लिख दिया हो.

१२—टॉड साहिब ने जिस को सूर्याचल लिखा है उस के स्थान पर अग्निपुराण में 'सह्य' (=सह्याद्रि), और ऋष्याचल के स्थान पर 'ऋक्षवान्' नाम लिखा है. (मत्स्यपुराण, अध्याय ९५).

१३—कर्नेल टॉड ने यूनानियों और हिन्दुओं के देवी देवताओं तथा पौराणिक कथाओं आदि की समानता दिखलाने का प्रयत्न करने में खेंच ताण की है, और कहीं कहीं नये शब्द भी घड़न्त किये हैं, जिन में एक 'बाघेश' भी है. उन्हों ने महादेव तथा यूनानियों के देवता बैकस की एकता बतलाना चाहा है, इसी से महादेव के वास्ते बैकस से मिलता हुआ 'बाघेश' शब्द घड़न्त किया है; परन्तु महादेव के लिये साधारणतः उक्त शब्द का प्रयोग कहीं नहीं होता, और न संस्कृत में वह महादेव के पर्याय में कहीं आता है.

१४—'बैकस' यूनानी और रोमन लोगों का एक पौराणिक देवता है, जो जुपीटर (Jupiter) का पुत्र माना जाता है. उस के विषय में उन के यहां ऐसा प्रसिद्ध है कि उस ने ही प्रथम अंगूरों का बोना और उन से मद्य बनाना लोगों को सिखाया था, और इसी से उन के यहां वह मद्य का अधिष्ठाता माना गया है.

१५-यूनानी और रोमन लोगों का प्रसिद्ध देवता. उन के यहां उस का प्रायः वही दरजा है जो हिन्दुओं में इन्द्र का. ये लोग उस को सैटर्न (Saturn) याने शनि का पुत्र, स्वर्ग का राजा, तथा मनुष्यों और देवताओं का पिता मानते हैं. उस ने अपनी बहिन जूनों (Juno) से विवाह किया था, और अनेक अन्य देवियों एवं मनुष्य जाति की स्त्रियों के साथ उस का भोग विलास करना प्रसिद्ध है.

१६—सैटरनेलिया (Saturnalia) यूनानी तथा रोमन लोगों के एक प्रसिद्ध त्यौहार का नाम है, जो उन के प्रसिद्ध देवता जुपीटर के पिता सैटर्न (शनि) के सन्मानार्थ दिसम्बर मास में माना जाता था.

१७—बैकस अपने सिर पर दाखों के पत्ते तथा आइवी (Ivy) नामकलता को लपेटता था, और महादेव को बेल नामक वृक्ष के पत्ते (बिल्वपत्र) प्रिय हैं. टॉड साहिब ने महादेव को चढ़नेवाले बेल-पत्रों (बिल्वपत्रों) को बेल अर्थात् लता के पत्ते समझ कर भ्रम से आइवी नामक बेल (लता) का पूर्व और पश्चिम के 'ययेश' अर्थात् 'बैकस' और महादेव दोनों के लिये पवित्र होना लिख दिया है. महादेव के लिये किसी लता के पत्ते पवित्र नहीं माने जाते. आइवी शीतप्रधान देशों की लता है, और हिन्दुस्तान के उत्तरी प्रदेशों में भी होती है. पंजाब में इस को 'हलबम्बर,' 'या अरबम्बल,' विहार में 'लनलप,' और नेपाल में 'दुदेला' कहते हैं.

१८—ओसिरिस (Osiris) प्राचीन मिसर देशवालों का एक बड़ा देवता था, जो उक्त देश का राजा और अपनी प्रजा में सभ्यता का प्रचार करानेवाला माना जाता था. इस का पूजन बैल के रूप में होता था. इस के भाई ने इस को मार कर इस के शरीर के खण्ड खण्ड कर नाइल (नील) नदी में फेंक दिये थे, ऐसा प्रसिद्ध है.

१९—मिसरवालों की जनश्रुतियों से पाया जाता है कि मीनस (Menes) उक्त देश का पहिला राजा था, और सन् ई० से २७०० वर्ष पूर्व हुआ था, जिस को एक दरियाई घोड़ा मार कर खागया.

२०-प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएन्संग हिन्दुस्तान को आता हुआ सन् ६३० ई० में प्रामियां (अफगानिस्तान में) में ठहरा था. यह

लिखता है कि—" वहां के लोग बौद्ध धर्मावलम्बी हैं, और वहां पर बौद्धों के १० मठ हैं, जिन में हीनयान मत (बौद्धों के दो मुख्य फ़िर्क़ों में से एक) के १००० लोकोत्तरवादी धर्मगुरू रहते हैं. राजधानी से ईशानकोण में एक पर्वत के उत्तर में १४० से १५० फीट तक ऊंची बुद्ध की पाषाण की मूर्ति है. उस के पूर्व में शाक्य बुद्ध की एक धातु की मूर्ति १०० फीट ऊंची है, जिस के हिस्से अलग अलग ढाल कर जोड़े गये हैं. राजधानी से १२ वा १३ ली (१ मील=करीब ५॥ ली) दूर एक मठ में १००० (?) फीट लम्बी बुद्ध की सोती हुई निर्वाण (मोक्ष) की स्थिति की मूर्ति है. वहां का राजा जब 'मोक्ष महा परिषद' (प्रति पांचवें वर्ष होनेवाली बौद्धों की धर्मसभा) करता है, उस समय वह अपना सारा ख़ज़ाना धर्मगुरुओं को दान कर देता है. " ये मूर्तियां अब तक विद्यमान हैं.

२१—सिकन्दर बादशाह ने एशिया खण्ड की विजययात्रा में कई जगह अपने नाम से इस्कन्दरिया (Alexandria) नामक नगर बसाये थे, जिन में से कितने एक का अब तक पता चलता है. उन में से एक यह (Paropamisan Alexandria) भी है. जो पैरोपामीसस (=हिन्दूकुश) पर्वत के निकट होने से पैरोपैमिसेन् इस्कन्दरिया कहलाता है.

२२—निषध पर्वत का निसा नगर से कोई सम्बन्ध नहीं है, और न यह शब्द (निषध) षष्ठी विभक्ति में है.

२३—ईसाइयों के मतानुसार अदन (Eden) उस बाग़ का नाम है जिस में आदम और ईव (हव्वा) रहे थे.

२४—अदन के बाग़ का वह वृक्ष जिस का फल खाने के लिये ईश्वर ने आदम और ईव को मनाई की थी.

२५—ईसाइयों के धर्मानुसार ईश्वर का उत्पन्न किया हुआ मनुष्य जाति का पहिला जोड़ा.

२६—प्राचीन यूनानियों में एक कहानी इस आशय की प्रसिद्ध थी, कि एशिया माइनर के ईशान कोण में उन वीर स्त्रियों का एक

स्वतंत्र राज्य था, जिन्हें ऐमेज़ोन कहते थे. उस राज्य में कोई पुरुष नहीं रहने पाता था. वे स्त्रियां अपने पड़ोसी राज्य में जाकर गर्भ धारण कर आती थीं. यदि लड़का पैदा होता तो मारडाला जाता, वा उस के पिता के पास भेज दिया जाता था, और लड़की होती तो वह रख ली जाती थी. वे स्त्रियां सर्व प्रकार के शस्त्र धारण कर अपने राज्य की रक्षा करती थीं. इन की ढालें छोटी छोटी होती थीं, इसी से वड़ के पत्तों को उन की उपमा दी गई है.

२७–संस्कृत में पृथ्वी या मिट्टी के लिये मठ वा माठ शब्द नहीं है. इस से किसी प्रकार मिलता हुआ पृथ्वी के वास्ते 'मही' और मिट्टी के वास्ते 'मृत्तिका' शब्द है. राजस्थानी भाषा में 'माटी' और 'मांटी' दो भिन्न शब्द हैं. जिन में से पहिले का अर्थ मिट्टी, और दूसरे का अर्थ बहादुर आदमी वा पति है. 'मेरा मांटी मारा.' इस वाक्य का अर्थ जो टॉड साहिब 'मेरी पृथ्वी मारी गई' ऐसा करते हैं वैसा नहीं है, किन्तु 'मेरा बहादुर आदमी मारा गया' है. उन्हों ने 'माटी' और 'मांटी' इन भिन्न उच्चारणवाले दो शब्दों को एक ही समझ कर भ्रम से वैसा अर्थ किया है.

२८–मध्य एशिया का पार्वतीय उच्च प्रदेश.

२९–इस शब्द का अर्थ मेर लोगों का देश है. जातिवाचक 'मेर' शब्द मेरु (=पर्वत) से नहीं निकला, किन्तु 'मेहर' शब्द का अपभ्रंश है. मेर सर्दार ठेपक के ताम्रपत्र में उस की जाति का नाम मेहर ही लिखा है.

३०–मेरु की पुत्री का नाम 'मेरा' नहीं, किन्तु 'मेना' था (रामायण कांड १, अध्याय ३५, श्लोक १४).

३१—पृथ्वीराज रासे में लिखा है कि पृथ्वीराज चौहान का सामन्त हम्मीर (हाहुलीराय) कांगड़ा व जम्मू का राजा था, परन्तु उस समय उन देशों में उक्त नाम का राजा होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता.

३२–यह टॉड साहिब का अनुमान मात्र है. सूर्य और चंद्रवंशी

राजपूत सुमेरु के एशिया के मध्य भाग में होने का दावा नहीं करते और न किसी प्राचीन पुस्तक में उस का निश्चित रूप से उसी प्रदेश में होना लिखा है. पुराणादि ग्रन्थों में जो उस का वर्णन मिलता है उस के आधार पर उस का स्थान निश्चय करना कठिन है. काबुल नदी के तट पर के निसा नगर के पास के केवल २००० फीट की उंचाई के छोटे पहाड़ का नाम फ़ारसी लेखक 'मेरकोह', या 'मारकोह', और यूनानी ग्रन्थकार 'मेरोस' लिखते हैं उस को सुमेरु मानना भी सर्वथा असंभव है, क्योंकि मेरु अपनी महान उंचाई के लिये प्रसिद्ध है. कितने एक विद्वान ऐसा भी अनुमान करते हैं कि शायद वह हिमालय वा उस के किसी उन्नत शिखर का नाम हो.

३३—अश्वमेध शीतकाल की संक्रान्ति का साधारण त्यौहार नहीं था, और न वह सर्वत्र प्रतिवर्ष होता था, जैसा कि टॉड साहिब का अनुमान है. वह केवल बड़े राजाओं के करने का यज्ञ था, जो बहुत ही कम होता था, और कभी कभी तो सैकड़ों बरसों तक होने ही नहीं पाता था.

३४—ओडिन वा वोडन स्कैंडीनेवियावालों का एक प्रसिद्ध देवता था, जो उन के यहां युद्ध का देवता, स्वर्ग का राजा और एक ही आंखवाला माना जाता था.

३५—यूरोप खंड का उत्तरीय प्रायद्वीप, जिस के अन्तर्गत नॉर्वे और स्वेडन नामक देश हैं, स्कैंडीनेविया (Scandinavia) कहलाता है.

प्रकरण दूसरा.

वंशावलियां.—पुराणों की कथाएं.-राजसी तथा धर्माचार्य सम्बन्धी गुणों की एकता.—पुराणों की कथाएं, जिन को यूनानी इतिहास लेखकों ने पुष्ट किया है.

अब भागवत तथा अग्निपुराण के ऐतिहासिक वृत्तान्तों में दी हुई सूर्य तथा चन्द्रवंशियों की वंशावलियों की जांच की जायेगी. इन में से पहिला ग्रन्थ वंशावली के सिलसिले को गणना करने से विक्रमादित्य के पीछे की ६ शताब्दियों (सन् ६५० ई०) तक पहुंचाता है. अतएव इसी समय के लगभग इन्हीं ग्रन्थों का पुनः नया संस्करण किया गया होगा, वा उन पर टिप्पण की गई होगी; परन्तु इन का कृत्रिम होना नहीं माना जा सकता.

यद्यपि इन वंशावलियों के कुछ भाग सर विलियम जोन्स [Sir William Jones] मिस्टर बेंटले [Mr Bentley] और कर्नल विल्फर्ड [Colonel Wilford] द्वारा एशियाटिक रिसर्चेज़ [Asiatic Researches] की जिल्दों में प्रकाशित हो चुके हैं तथापि दूसरों के अनुसन्धान पर ही किसी को सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिये, जब कि वह स्वयं किसी प्रकार से [इस विषय के] मूल सोते तक पहुंच सके.

यदि इन सब बातों को छोड़ कर यह मान लिया, कि हिन्दुस्तान के प्राचीन ख़ानदानों की ये वंशा-

वालियां बनावटी हैं, तो भी वह बनावट प्राचीन समय की है; और जो कुछ वे इस विषय में स्वयं जानते थे वह सब यही है. कौमों के वास्तविक प्राचीन इतिहास से पूरा परिचित होने का दूसरा उत्तम उपाय यह है, कि जिन बातों से वे कौमें विख्यात हैं उन की पूर्ण जानकारी प्राप्त की जावे.

इस में सन्देह नहीं, कि मूल पुराणों में बहुत सा उपयोगी ऐतिहासिक विषय लिखा था; परन्तु अब भाष्यकारों तथा क्षेपक मिलानेवालों की निकृष्ट मिलावट में से किंचित भी शुद्ध वस्तु [=विषय] का निकाल लेना इस समय कठिन है. मैंने तो केवल ऊपरी सतह पर ही भ्रमण किया है; परन्तु एक योग्य पुरुष को अनुसन्धान द्वारा बहुत से बिखरे हुए वृत्तान्त एवम् उपयोगी विषय जो इस समय अज्ञाता और रूपक के परदे के तले छुपे पड़े हैं, प्राप्त हो सकते हैं.

हिन्दुओं में बुद्धि बल का होना उन की पचीकुची इमारतों के अद्यावधि पाये जानेवाले सुडौलपन, और खुदेहुए पौराणिक चित्रों की उत्तमता से प्रमाणित होता है; परन्तु उन्हों ने अपना बुद्धिबल घटने के साथही सत्य की लावण्यता के रस को भी खो दिया, और उस की जगह अपने लेखों और इमारतों में अद्भुत विषयों को ग्रहण कर लिया. यदि [बनावट के] पकड़े जाने का, और लज्जा का भय नहीं होता, तो यूरोप के सभ्य

देश में भी ऐतिहासिक विषय अत्यन्त ही गड़बड़ हो जाता; परन्तु पूर्व देश में प्राचीन एशिया के सत्य व्यवहार की दुर्बलता के समय किसी विवेकी आलोचना करनेवाले एवम् प्रशन्सा करनेवालों के न होने से प्रत्येक ब्राह्मण भाष्यकार बन्धनमुक्त होकर मनमाना लिखे चले गये होंगे, और यह समझ लिया होगा कि हम अपने ग्रन्थों में जितनी अधिक अद्भुत * बातें मिलावेंगे उतने ही हमारे प्रशंसक अधिक होंगे. बनावटी बातों का स्वाद पाये हुए इन लोगों को स्पष्ट ऐतिहासिक सत्य बातें बहुत दिनों से अरोचक हो गई हैं.

यदि ऐसे ही उस से पिछले समय में अर्थात् सन् ईस्वी से पूर्व तीसरी शताब्दी में बेबिलोनियां देश के इतिहासलेखक बेरोसस ने अपनी कृत्रिम कहानियां रचीं, जिन में उस राज्य को ऐसा प्राचीन ठहराया है, जो विश्वास करने योग्य नहीं है, तो भी उस के पूर्व के बहुत से प्रसिद्ध इतिहासलेखकों के लेखों से उस के

---

* बहुत सी जातियां अपनी उत्पत्ति सनातन से निरूपण करने की ममता करती हैं. उन के इस चावलेपन पर प्रसिद्ध गोगट (Goguet) आलोचना करता है कि, बैबिलोनिया, मिसर, और सीथिया के निवासी विशेष कर अपनी अत्यन्त ही प्राचीनता का घमंड करते हैं. बैबिलोनियावाले तो हिन्दुओं के सदृश डींग मारते हैं कि वे ४७३००० वर्षों से नछत्रगति अवलोकन करते चले आते हैं. इस प्रकार प्रत्येक जाति ने युगों पर युग लाद दिये हैं; परन्तु इस बनावटी प्राचीनता के आधार की पुष्टि अनुमान से नहीं होती, और ये सब आधुनिक ही हैं. Origin of Laws

कथन का खण्डन हो जाता है; परन्तु हिन्दुस्तान के कल्पित कहानी लिखनेवाले के लिये जांच का ऐसा कोई साधन नहीं है. यदि स्वयं व्यास ने ये कथाएं लिखी हैं, जैसी कि इस समय मौजूद हैं, तब तो इतिहास विद्या की धारा मूल सोते से ही बिगड़ी हुई है. जब सोता ही ऐसा है, तो धारा में जो अज्ञानता के जुगान जुगों में होकर निथरती चली आती है, केवल नवीन मलीनता ही बढ़ी है. जब कि पूर्व काल से जो कुछ बातें चली आती हैं उन की सत्यता में सन्देह करना पाप समझा जावे, तो यह समझना कठिन है, कि कलाओं और विद्याओं की उन्नति कैसे हो सकी, और यह मान लेना और भी कठिन है कि [पिछले] अवनत लोग उस में सुधार कर सकें. वर्त्तमान समय के धर्माचार्यों की पीढी दरपीढ़ी सब से बढ़ कर यही अभिलाषा रहती है, कि जो कुछ उन को पहिले के लोगों का लिखा हुआ मिला है उस को समझने के योग्य बनें, और गत बुद्धिमानों के रचे हुए ग्रन्थों पर भाष्य लिखें; और उन भाष्यों पर भी असंख्य भाष्य लिखे चले जाते हैं. जो कोई अब उस में विशेष सुधार करने की इच्छा का साहस करे भी तो उसे अपने इस भेद को मन में ही रखना पड़ता है. वे प्राचीन धर्मपुस्तकों की व्याख्या मात्र करनेवाले हैं. यदि वे इस से कुछ अधिक करें तो धर्मविरोधी बनें. परन्तु यह दशा सदा नहीं रही होगी.

हिन्दुओं ने भी अन्य जातियों के सदृश विद्याओं में पूर्ण उन्नति धीरे धीरे ही की होगी; परन्तु यदि हम उन को उक्त विद्याओं के निर्माण करने के यश का भागी न मान कर, दूसरों से उद्धृत करनेवाला मानें तो इस के विरुद्ध हो सकता है. बुद्धि के लिये यह दासवत् बन्धन पिछले समय ही की बनावट हैं, और इस से सहज ही अनुमान हो सकता है, कि विद्या और धर्म का अवरोध एकही साथ हुआ. ऐसे अवरोध का प्रभाव बुद्धि की शक्ति और प्रवृत्ति पर कैसा पड़ा होगा ? जहां ऐसा है, वहां विद्यायें चिरस्थाई नहीं रह सकती; वह अवश्य ही अवनति को प्राप्त होगी. यदि हम को इतना मात्र ज्ञात हो सके कि किस समय से धर्मकार्य* [सर्व साधा-

---

* ऐसा कहते हैं कि ब्राह्मणों के मत का प्रवेश हिन्दुस्तान में अन्य देश से हुआ था; परन्तु उस के प्रवेश के समय की बाबत् हमारे पास केवल सामान्य कथन मात्र है. हम सुगमता से विश्वास कर सकते हैं, कि वर्त्तमान पुस्तकों के रचेजाने के पूर्व समय समय पर अनेक प्रकार के मतसम्बन्धी विश्वास और सिद्धान्त सम्मिलित किये गये थे, और उस से पहिले केवल राज्यवंशियों को ही यह अधिकार था. इस प्रकार वर्ण बदलने के दृढ़ प्रमाण हम को मिलते है. जैसे कि मिस्टर कोलब्रुक [M. Colebrooke] अपने ' इंडियन क्लासेज़ ' [Indian Classes = हिन्दुस्तान की जातियां] नामक पुस्तक में लिखता है कि " द्विज जाति के एक मुखिया को विष्णु का गरुड़ शक द्वीप से लाया था; इसी से शाकद्वीपी ब्राह्मण जम्बूद्वीप में प्रसिद्ध हुए. ". शकद्वीप से सीथिया समझा जाता है, जिस के विषय में विशेष वर्णन आगे किया जायेगा.

रण के करने का] पेशा न रह कर पैतृक हो गया (और ऐसा अवश्य था, जो इन्हीं वंशावलियों से सिद्ध होता है), तो हम उस ज़माने का अनुमान कर सकते हैं, जब कि विद्या अपनी उन्नति के शिखर पर पहुंच गई थी.

इन सूर्य और चन्द्रवंशियों के आदिकाल में धर्म-गुरु का पद नियत कुटुम्बों में पैतृक नहीं था, किंतु यह एक आम पेशा [=वृत्ति] था; और इन जातियों की शाखाओं का अपने क्षत्रीकार्य को समाप्त कर के धर्म-सम्बन्धी शाखा वा गोल आरम्भ करने में प्रवृत्त होने तथा उन के सन्तानों के फिर से अपना क्षत्रीधर्म धारण करने के प्रायः उदाहरण वंशावलियों में मिलते हैं. इसी प्रकार इक्ष्वाकु* के दश पुत्रों में से तीन पुत्रों के विषय में लिखा है, कि वे सांसारिक व्यवहारों को त्याग कर धर्मकार्य में प्रवृत्त हो गये; और इन में से एक, अर्थात् कानीर्न के विषय में कहा गया है, कि वही प्रथम पुरुष था, जिस ने अग्निहोत्र लिया, और अग्नि की पूजा की; और एक दूसरा पुत्र व्यापार में प्रवृत्त हुआ. चन्द्रवंशी पुरुरवा के ६ लड़कों में से चौथे का

फ़िरिश्ता भी प्राचीन ग्रन्थों से अनुवाद करके ऐसाही लिखता है कि—"कन्नौज के राजा मेहराज [?] के राज्यशासन में एक ब्राह्मण ईरान से आया था, जिस ने जादू, मूर्त्तिपूजा, और नक्षत्रों की पूजा चलाई." अतएव मत सम्बन्धी नवीन बातों के प्रवेश होने के प्रमाणों की कमी नहीं है.

* देखो वंशवृक्ष पहिला.

नाम रेह [= रय] था. "इस की पन्द्रहवीं पीढ़ी में हारीत हुआ, जो अपने आठ भाइयों सहित धर्मकार्य में प्रवृत्त हुआ, और उस ने कौशिक गोत्र स्थापित किया, जो ब्राह्मणों की एक शाखा है."

ययाति से चौवीसवीं पीढ़ी में भारद्वाज नामी राजा के नाम से एक प्रसिद्ध गोत्र निकला. इस गोत्रवाले अब तक उसी नाम से प्रसिद्ध हैं, और कई राजपूत जातियों के पुरोहित हैं.

छब्बीसवें राजा मन्यु के दो पुत्रों ने धर्मपरायण हो कर प्रसिद्ध गोत्र स्थापित किये, अर्थात् महावीर्य, जिस के सन्तान पुष्कर ब्राह्मण हुए; और संसकृति, जिस की सन्तति वेदपाठी हुई. अजमीढ के वंश से धर्मगुरुओं की ये शाखा बराबर फटती रहीं.

बहुत ही प्राचीन समय में मिसरवालों तथा रोमन लोगों के समान सूर्यवंशी राजा राज्याधिकार के साथ धर्मगुरु का कार्य भी करते थे; चाहे वे ब्राह्मण धर्मावलम्बी हों, चाहे बौद्ध मतावलम्बी.* रामचन्द्र के पहिले तथा पीछे बहुत से राज्यवंशियों ने अपने जीवन का विशेष भाग तपस्वी के समान व्यतीत किया; और प्राचीन मूर्तियों एवम् चित्रों में मस्तक प्रायः जैसे जो-

---

* जैनों के चौवीस तीर्थकरों में से पहिले के कई एक अपनी उत्पत्ति सूर्यवंशी राजाओं से होना बतलाते हैं.

गियों की जटाओं से, वैसे ही राजमुकुटों * से सुशोभित मिलते हैं.

बड़े बड़े महाराजा अपनी कन्याओं का विवाह इन राजर्षियों तथा महर्षियों के साथ करते थे. पराक्रमी पाचीलक † की कन्या अहिल्या गौतम ऋषि की भार्या हुई. यदुकुल की बड़ी शाखा, अर्थात् हैहय वंशोत्पन्न महिश्मती ‡ के राजा सहस्रार्जुन × की कन्या से जमदग्नि का विवाह हुआ था.

---

* अब भी मेवाड़ के राणा राज्यकार्य के साथ धर्मगुरु का काम भी करते हैं, और जब वे अपने कुलदेवता [एकलिङ्ग] के मन्दिर में जाते हैं तो उस दिन मुख्य पुजारी का सब कार्य अपने हाथ से करते हैं. इस विषय में बहुत प्राचीन जातियों के साथ अब तक अधिक सादृश्य पाया जाता है.

† पंजाब, अर्थात् सिन्धु के पूर्व की पांच नदियों के प्रदेश का राजा.

‡ महेश्वर या नर्वदा नदी.

× इस राजा के अपने जंवाई [वशिष्ठ] ऋषि की गऊ को हरण करने (जो रामायण में अन्य रीति से वर्णित है), तथा जमदग्नि के पुत्र परशुराम के अवतार लेने और उन के वीर कार्यों की कथाएं आलंकारिक आख्यान स्पष्ट प्रतीत होते हैं, जिन से राजाओं का 'पृथ्वी' पर अत्याचार करने का आशय विदित होता है, जिस [पृथ्वी] को उन्हों ने पवित्र गोरूप से वर्णन की है; और ब्राह्मण लोग क्षत्रियों से राज्य छीनने को समर्थ हुए, इस से प्रगट होता है कि वे लोग संख्या में कितने बढ़ गये थे.

गो शब्द से निकले हुए शब्दों की उत्पत्ति के विषय में मैं कुछ लिखने का साहस करता हूं, कि जिस से आगे को और लोग भी उस का अनुसन्धान करें: —

हेरोडॉटस के कथनानुसार मिसर देशवालों में धर्म-गुरुओं को राजगद्दी मिलती थी, क्योंकि केवल वे और वीर जाति के लोग ही पृथ्वी के स्वामी हो सकते थे; और वल्कंन [Vulcan] के पुजारी सेथोस [Sethos] ने वीर जातियों की भूमि छीन कर विद्रोह खड़ा करवा दिया था.

जमदग्नि से लेकर मरहटे पेश्वा तक हिन्दुस्तान में राज्याधिकार के लिये ब्राह्मणों के लड़ने के कई उदाहरण हम को मिले हैं; राजर्षि विश्वामित्र * और वशिष्ठ

गय्या, गिआ, गी—Gaia, gea, ge (डौंर. गा=Dor ga,) जो सब चीज़ें उत्पन्न करनेवाली (गाओ, पैदा करनेवाले से—gao genero पृथ्वी है.—Jones's Dictionary

गाला [Gala]=दूध. ग्वाला=चरवाहा, संस्कृत में. गैलेटिकाय कल्टोइ, गैलेटियन्स वा गॉल्स, और केल्ट्स Galatichoi keltoi, Galatians, or Gauls, and Celts (जो एक ही हैं) ये सब चरवहों की कौम से होंगे, जिन्हों ने यूरोप पर हमला किया था.

* वशिष्ठ ऋषि के पास शबला नामक एक ऐसी फलदाता गऊ [कामधेनु] थी, कि उस की सहायता से वह अपनी सर्व कामना पूर्ण कर सकते थे. उस की सहायता से उन्हों ने राजा विश्वामित्र का सेना सहित आतिथ्य सत्कार किया. [इस कथा से] प्रत्यक्ष है कि यहां पर इस गऊ से अभिप्राय किसी प्रदेश का है, जो इस ऋषि के अधिकार में था (स्मरण रहे कि 'गो' का अर्थ पृथ्वी और गाय दोनों है) जो निःसन्देह विश्वामित्र के किसी अविवेकी पूर्वज का दिया हुआ दान था, जिस को वह पीछा लेना चाहता था. उसी गऊ से "देवताओं एवम् पितृश्वरों के लिये नैवेद्य, अग्निहोत्र तथा यज्ञार्थ"

के समय की नाईं, जिन्हें पूज्य मान कर मिथिला का राजा जनक हाथ जोड़ कर निवेदन करता था, आज

चलते थे. यही शवला "धर्मानुष्ठान की जड़" थी, जिस के बदले राजा [विश्वामित्र] " एक लक्ष गऊ " देने लगा था. [वास्तव में] यह " एक ऐसा रत्न था जो किसी राजाही के पास रहना चाहिये. " प्रतीत होता है कि ऋषि की प्रजा ने ऐसे बदले को पसन्द नहीं किया, और " शवला गाय के रांभने से " बहुत से विदेशी सहायक उपस्थित हो गये, जिस से वह ऋषि उस राजा का सामना करने के योग्य हो गये. इन में से " पल्हव (ईरानी) राजा, भयानक शक, तथा तलवार एवम् सोनहरे कवचधारी यवन (यूनानी), और कॉम्बोजी आदि क्रमशः इस कामधेनु से उत्पन्न हुए. पल्हव राजाओं की सेना को विश्वामित्र ने खंड खंड कर दिया, और वह लगातार सहायक सेना उत्पन्न होने से अन्त में वशिष्ठ के सैन्यसमूह से पराजित हो गया.

ऐसा प्रतीत होता है, कि ये सहायक लोग प्राचीन ईरानी, शक, यूनानी, आसाम तथा दक्षिण हिन्दुस्तान के रहनेवाले, और हिन्दू धर्म को न माननेवाली भिन्न भिन्न जातियों के लोग थे; [यहांवाले] इन सब को म्लेच्छ कहते थे, जो यूनानियों एवम् रोमवालों के बारबेरियन [Barbarian = असभ्य] शब्द के तुल्य है.

राजा विश्वामित्र इस पराक्रमी ऋषि से पराजित और अपमानित होकर " तोड़े हुए दांतवाले सर्प एवम् ग्रहण से तेज रहित सूर्य के समान व्याकुल हो गया, और अपने पुत्रों तथा सेना का नाश होने और पराक्रम एवम् गर्व के गंजन होने से पंखहीन पक्षी की नाईं निराधार हो गया. " उस ने अपना राज्य पुत्र को देकर तप और यज्ञ द्वारा " ब्राह्मणत्व प्राप्त करने का " दृढ़ संकल्प किया, जैसा कि सब हिन्दूराजा आपत्काल में किया करते थे.

वह पुष्कर के पवित्र तीर्थ में वास करके फल, कन्द मूल पर अपना जीवन निर्वाह करने लगा, और उस ने अपना चित्त स्थिर करके कहा,

भी ब्राह्मणों को अधिकार और सन्मान की बड़ी अभिलाषा रहती है.

कि " मैं ब्राह्मण बनूंगा. " ऐसा तप करने से उस की अध्यात्म शक्ति इतनी बढ़गई कि वह ब्राह्मण पद को छीनने के लिये समर्थ हुआ. विश्वामित्र को जिस ने तपोबल से ब्राह्मण होना ठान लिया था, सूचित करने के लिये यह देववाणी हुई कि " वेद पढ़ने के अधिकारी वही हैं, जो उन के तत्वों को जानते हैं ; तुझे (विश्वामित्र) यह उचित नहीं कि प्राचीन लोगों की बांधी हुई मर्यादा को तोड़े. "

उस के भ्रमण, तपस्या और [उस का तप भंग करने के लिये] जो जो लालच उसे दिखलाये गये थे उन का वृत्तान्त लिखा गया है. अप्सराएं उस का तप भंग करने के लिये भेजी गईं. स्वयं कामदेव की माता [उस के पास] पहुंची. ब्राह्मणों का पक्ष लेकर इन्द्र ने कोकिल-रूप धारण करके रम्भा के चित्ताकर्षक उद्योग, तथा वन में उस राजा के चौतरफ बहनेवाली सुगन्धित वसन्त वायु के साथ अपना मधुर सुर मिलाया. इन सब लालचों से उस का मन नहीं डिगा, और उसने रम्भा अप्सरा को शिला स्तंभ हो जाने का शाप दिया. सर्व वासना के दमन होने और अपने में पातक का लेश मात्र न रहने तक वह अपने तप में लगा रहा, जिस से ब्राह्मणों को बड़ी घबराहट हुई और डर लगा की कहीं उसकी परम पवित्रता हमारे लिये हानिकारक न हो जावे. उन को यह भय हुआ कि " मनुष्य जाति नास्तिक हो जायगी. " देवताओं और उन के अधिष्ठाता ब्रह्माने लाचार होकर उस की ब्राह्मणपद प्राप्त करने की इच्छा पूर्ण की, एवम् वशिष्ठ भी देवताओं के कहने से मान गये, और उन की इच्छा से सहमत हुए, और उन्हों ने विश्वामित्र से मित्रता करली.

* हिन्दुस्तान में ब्राह्मण बहुत है जिन में वीरता का गुण होने से वे अच्छे सिपाही बन सक्ते हैं, परन्तु हमारे अनुभवी अफसर रिसाले

परन्तु बहुत सी राजपूत जातियों में ब्राह्मणों का इस प्रकार का आदर सन्मान निस्सन्देह बहुत कम है. पूर्व प्रवृत्ति के लिहाज़ से वे उन का बाहिरी शिष्टाचार करते हैं, परन्तु जब तक कि कोई भय वा मतलब की बात न आन पड़े, उन का आदर चारण भाटों से भी कम होता है.

गाधिपुर * के राजा विश्वामित्र और ब्राह्मण वशिष्ठ की कथा, जो रामायण † के बालकाण्ड के बहुत से अध्यायों में वर्णित है, अलंकार की ओट में ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों के मध्य अधिकार के हेतु युद्ध होने का उदाहरण देती है, और उस से वर्णव्यवस्था के स्थिर होने का क़रीब क़रीब ठीक समय ज्ञात हो सकेगा. यदि उस में से अलंकारभाग को छोड़ देवें, तो यह कथा उस समय को बताती हुई प्रतीत होती है, जब कि वर्णव्यवस्था अपूर्ण दशा में थी; यद्यपि युद्ध की प्रबलता से

या पल्टन में उन के बहुत से आदमी भरती न करने में सावधान रहते हैं, क्योंकि उन में अब तक बखेड़ा खड़ा करने का स्वभाव बना है. मैंने कई कम्पनियों में देखा है, कि ब्राह्मण और वीरजाति के सिपाहियों की संख्या बराबर है; यह बड़ी भयानक भूल है.

* क़न्नौज जो मारवाड़ के वर्तमान राजवंश की पुरानी राजधानी था.

† देखो कैरे और मार्शमैन का बनाया हुआ इस महाकाव्य का तर्जुमा.

हम यह नतीजा निकाल सकते हैं कि क्षत्रियों के ब्राह्मणत्व प्राप्त करने का यह अन्तिम समय था.

विश्वामित्र गाधिपुर के राजा गाधी (कौशिकवंशी) का पुत्र, और इक्ष्वाकु से चालीसवें वंशधर अयोध्या वा, अवध के राजा अम्बरीष का समकालीन था, अतएव यह रामचन्द्र से दो सौ वर्ष पहिले हुआ. इस लिये यह घटना जिस से हमलोग अनुमान करते हैं कि वर्ण-व्यवस्था पूर्णतया स्थिर होने आई थी, संभव है कि सन् ईसवी से क़रीब १४०० वर्ष पहिले हुई हो.

यदि इस बात का प्रमाण मिल सके कि ये वंशावलियां सिकन्दर के समय में मौजूद थीं तो बड़े काम की बात हो. पुराणों में दी हुई चन्द्रवंश की उत्पत्ति की कथा से इस विषय की साक्षी पाई जाती है.

महाभारत नामी वीर रसात्मक वृहत काव्य के कर्त्ता व्यास देहली के राजा शान्तनु (हरिकुल के) के पुत्र थे, जो योजनगन्धा नामक एक धीवरकन्या * से

* यह एक बड़े आश्चर्य की बात है, कि हिन्दू लोग अपने दो प्रसिद्ध ग्रन्थकर्त्ताओं की उत्पत्ति, जिन को वे पवित्र मानते हैं, हिन्दुस्तान की जंगली तथा संकर जातियों से बताते हैं. "व्यास की [उत्पत्ति] एक धीमरी से, और रामायण नामक दूसरे वीर रसात्मक काव्य के कर्त्ता वाल्मीक की एक वधिक वा लुटेरे" से, जो आबू पर्वत के निकट रहनेवाली भील जाति का साथी था. वाल्मीक के वर्ण परिवर्त्तन या वृत्तान्त (जो आश्चर्यजनक घटना से, किसी देवमन्दिर में चोरी करते समय, हुआ था) चन्द के काव्य में पुराने प्रमाणों से एक अति प्रभावशाली कथा में वर्णन किया गया है.

उत्पन्न हुए थे, अतएव वह अनौरस पुत्र थे, वह शान्तनु के पुत्र तथा उत्तराधिकारी विचित्रवीर्य की लड़कियों, अर्थात् अपनी भतीजियों के धर्मपिता वा शिक्षक नियत हुए.

विचित्र वीर्य के कोई पुत्र नहीं था. उस की तीन लड़कियों में से एक का नाम पांड्या * था, और शान्तनु के वंश में केवल व्यास ही पुरुष सन्तान रह जाने से वह अपनी भतीजी तथा धर्मपुत्री पांड्या को अपनी स्त्री बनाकर पांडु के पिता हुए, जो [पांडु] पीछे जाकर इन्द्रप्रस्थ का राजा हुआ.

ऐरियन इस कथा को इस तरह लिखता है:—

---

*इस नाम का कारण इस प्रकार दिया गया है. इन लड़कियों में से एक लड़की दासी से उत्पन्न हुई थी, और यह निश्चय करना आवश्यक था, कि दासी से उत्पन्न लड़की कौनसी है. जिस परदे में वे सब रक्खी जाती थीं उस से इस विषय का निर्णय करना कठिन था. अतएव वंश की शुद्धता का निश्चय करना व्यास पर छोड़ा गया, जिस ने यह निश्चय किया, कि कुल की शुद्धता स्वयं प्रगट हो जायेगी, अतएव उस ने आज्ञा दी कि वे राजकन्याएं नग्न होकर मेरे सामने से निकलें. बड़ी लड़की ने लज्जा से नेत्र बन्द कर लिये, और उस से हस्तिनापुर के अन्धे राजा धृतराष्ट्र का जन्म हुआ; दूसरी ने उसी कारण [=लज्जा] से अपने शरीर पर पीली मिट्टी लगाली, जिसे पांडु कहते हैं, अतएव उस का नाम पांड्या पड़ा, और उस का पुत्र पांडु कहलाया; और तीसरी निर्लज्ज होकर उस के आगे से निकलगई, वह शुद्ध कुल की नहीं समझी गई, और उस से विदुर उत्पन्न हुआ.

"उस (हर्क्यूलीज़ ※) के वृद्धावस्था में एक लड़की उत्पन्न

※ हरिवंशी राजाओं के लिये यह एक जातिवाचक शब्द है, परंतु एरियन ने इस का प्रयोग एक खास व्यक्ति के नाम के तौर पर किया है. हरिकुल का वर्णन, जिस में कि व्यास थे, महाभारत के एक अंश में लिखा हुआ है.

थीब्ज़वालों [Theban] तथा हिन्दुओं के हर्क्यूलीज़ की समानता एरियन बताता है, और सेल्युकस [Seleucus] के राजदूत मेगेस्थिनीज़ [Megasthenes] के लेख का प्रमाण देता है, जिस का यह कथन है कि "उस [हिन्दुओं के हर्क्यूलीज़] का बाना थीब्ज़वालों के [हर्क्यूलीज़] का सा है, और सूरसेनी लोग विशेष कर उस की पूजा करते है, जिन के अधिकार में मथुरा एवम् क्लिसोबोरस [Clisobora], दो बड़े बड़े नगर हैं."

डायोडोरस भी कुछ हेरफेर कर के यही कथा लिखता है. उस का कथन है "हर्क्यूलीज़ का जन्म हिन्दुओं में हुआ था, और यूनानियों के सदृश वे भी उस को दण्ड एवम् व्याघ्रचर्मधारी बताते हैं. बल में वह सब आदमियों से बढ़ा हुआ था, और उस ने पृथ्वी एवम् समुद्र को राक्षसों तथा हिंसक पशुओं से साफ़ कर दिया था. उस के बहुत से लड़के थे, परन्तु कन्या केवल एक ही थी. कहते हैं कि उसी ने पालीबोथ्रा [पाटलीपुत्र] नगर बसाया, और अपने पुत्रों, बलिपुत्रों (अर्थात् बलि के बेटों) को अपना राज्य बांट दिया. उन लोगों ने कभी कोई नई बस्ती नहीं बसाई, परन्तु कालान्तर में बहुत से नगरों में सिकन्दर के आगमन के समय तक प्रजातंत्र प्रणाली का सा राज्य हो गया (यद्यपि कितने एक में राजाओं का राज्य था)." हर्क्यूलीज़ की जिन लड़ाइयों का उल्लेख डायोडोरस करता है वे वही हैं, जो हरिकुलियों ने अपने पैतृक स्थान से निकाले जाकर बारह वर्ष पर्यन्त वनवास करने के समय की थीं, जिन का वर्णन कथाओं में मिलता है.

— प्राचीन हरिकुल वंश के ऐसे बचे हुचे वृत्तान्त कैसे अनमोल हैं! यमुना के तटस्थ खण्डहरों में हर्क्यूलीज (बलदेव= बल के देवता,)

हुई,* और उस के योग्य कोई वर न मिलने से उस ने स्वयं

की मूर्ति कोदण्ड और व्याघ्रचर्म धारण किये बलदेव [=बलदाऊ] स्थान में चौकी पर खड़ी हुई और अब तक सूरसेनियों से पूजी जाती हुई देख कर चित्त को कैसा आनन्द होता है! यह नाम [सूरसेन] मथुरा के अथवा सूरपुर के गिर्दवाले देश के एक बड़े भाग का रक्खा गया था, जो [= सूरपुर] हिन्दुस्तान के अपोलो (Apollo], और हर्क्यूलीज़, अर्थात् कृष्ण, बलदेव दोनों भाइयों के दादा सूरसेन की बसाई पुरानी राजधानी थी. यद्यपि बलदेव में 'बल के देवता' के गुण मिलते हैं, तथापि यह पदवी [हर्क्यूलीज़] इन दोनों में घट सकती है. दोनों हरिकुल के ईश हैं. यूनानियों ने इन तीनों शब्दों का समास कर के 'हर्क्यूलीज़' शब्द बना लिया होगा. क्या आश्चर्य है, कि कुछ लोग महाभारत के युद्ध के पश्चात् पश्चिम में जाकर बसे हों! अट्रियस (Atreus =अत्रि, हरिकुल का आदिपुरुष है) की सन्तति हेराक्लाइड [Heraclidæ हर्क्यूलीज़ के सन्तान] के पीछे लौटने का समय इस प्रश्न का उत्तर दे सकता है. यह घटना महाभारत के युद्ध से अनुमान आधी शताब्दी के पीछे हुई थी.

यह खेद का विषय है, कि सिकन्दर के इतिहासलेखक हिन्दुओं के गुप्त भेदों को नहीं पहुंच सके होंगे, जैसा कि हेरोडॉटस मिश्रवालों के गुप्तभेदों से परिचित हुआ प्रतीत होता है. सिकन्दर का थोड़े दिन तक [हिन्दुस्तान में] ठहरना, और जिस अज्ञात भाषा में उन [=हिन्दुओं] की विद्या तथा धर्म की पुस्तक थी उस का जानना [ये दोनों] उन के लिये एक बड़ी असाध्य कठिनाई थी. वे अपनी और उन [=हिन्दुओं] की भाषा की समानता जाने बिना उन की भाषा के अध्ययन में बहुत ही थोड़ी उन्नति कर सके होंगे.

* एरियन इन बातों में अपनी बुद्धि खूब दौड़ाता है, और शीघ्र ही विश्वास नहीं करता. वह कहता है-कि "इस कहानी के विषय में मेरी यह राय है, कि यदि 'हर्क्यूलीज़' ऐसा काम करने और

उस से अपना विवाह कर लिया कि, जिस से हिन्दुस्तान की राजगद्दी के लिये राजा उत्पन्न कर सके. उस कन्या का नाम पांड्या था, और जिस प्रान्त में वह उत्पन्न हुई थी उस सम्पूर्ण प्रान्त का नाम उसी के नाम पर प्रसिद्ध हो गया. ”

यह वही पुराण की कथा है, जिस में व्यास (जो हरिकुलईश अर्थात् हरिकुल का मुखिया था) और उस

सन्तान उत्पन्न करने के योग्य था, तो वह ऐसा वृद्ध नहीं था, जैसा कि लोग हम को विश्वास दिलाना चाहते हैं. ”

सैंड्रोकॉटस [Sandrocottus=चन्द्रगुप्त] को भी एरियन ने इसी वंश में होना लिखा है; इसलिये ययाति के दूसरे पुत्र पुरु की वंशावली में उस को स्थान देने में हमें संकोच नहीं हो सकता, जहां से कि इस जाति का खान्दानी नाम निकला है, जो अब नष्ट हो गई है, जैसा कि पुरु के ज्येष्ठ भ्राता का खान्दानी नाम यदु निकला था. अतएव चन्द्रगुप्त यदि स्वयं पुरुवंशी नहीं है तो भी वह उस वंश से सम्बन्ध रखता है, जिस में जरासन्ध (भारत में लिखा हुआ एक वीर), और तेईसवीं पीढ़ी में रिपुंजय हुआ, जब कि सन् ई० के अनुमान ६०० वर्ष पहिले एक नये वंश ने, जिस के सर्दार शुनकें और शेशनाग थे, पुरु के वंशवालों से राज्य छीन लिया; इस राज्य छीननेवाले घराने में मोरी जाति का चन्द्रगुप्त हुआ, जो सिकन्दर के समय का सैंड्रोकॉटस है. मोरीजाति शेशनाग, तक्षक वा नागवंश की शाखा है, जिस का अलंकार भाग छोड़ कर मौके पर आगे वर्णन किया जायेगा. एरियन ने जिन को प्रासी [Prasi] लिखा है वे पुरु के वंशज होंगे. उन लोगों का उत्पत्तिस्थान उन के इतिहासों में, जो अब तक मिलते प्रयाग माना जाता है. यह वर्तमान इलाहाबाद है; और 'इरनबोअस (Eranaboas) अवश्य यमुना होगी, 'और जहां वह गंगा से ... है वह हम को प्रासी लोगों की राजधानी मानना चाहिये.

की धर्मपुत्री पांड्या का वर्णन है, जिन से महान् पांडु-वंश चला, और जिस से दिल्ली तथा उस के आधीनस्थ राज्यों का नाम पांडुराज्य पड़ा था.

उस [लड़की] के वंशधरों ने इकतीस पीढ़ी तक, अर्थात् सन् ई० के पूर्व ११२० वें वर्ष से लेकर ६१० तक राज्य किया, जब कि [वहां के] सर्दारों ने अन्तिम पांडु [वंश के] राजा को राज्यप्रवन्ध सम्बन्धी समस्त कार्यों से असावधान देख कर उस के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर के उसी वंश से सम्बन्ध रखनेवाले सैनिक मन्त्री * को [राजा] चुना, और उस [पांडु राजा] के पदच्युत होने व मरने पर नये खान्दान का प्रवेश हुआ.

इस प्रकार सैनिक मन्त्रियों के राज्य छीनने के कारण विक्रमादित्य तक दो दूसरे वंशों ने राज्य किया, जब कि पांडवों के राज्य और युधिष्टिर के संवत् दोनों की समाप्ति हो गई.

हिन्दुस्तान की राजधानी उत्तरी विभाग से उठकर दक्षिण में कायम हो जाने के कारण विक्रम संवत् की चौथी शताब्दी, वा कितने एक ग्रन्थकारों के लेखानुसार आठवीं शताब्दी तक इन्द्रप्रस्थ में कोई राजा न रहा. उस के बाद राजपूतों की तंवर जाति ने जो अपने को पांडवों के वंश में होना बताती है, युधिष्टिर की राजगद्दी

* फ्रैंक्स [Franks] लोगों की पूर्व जातियों के अतिशय अधिकार पाये हुए मंत्री की नाईं.

पर एक वार फिर से अधिकार प्राप्त किया. इस प्रकार पुनः स्थापित की हुई इस प्राचीन राजधानी का नाम देहली [ढिल्लि] रक्खा गया; और स्थापित करनेवाले अनंगपाल [प्रथम] का वंश वारहवीं शताब्दी तक क़ायम रहा; उस के पश्चात् उसं ने अपने दोहिते * अर्थात् हिन्दुस्तान के अन्तिम राजपूत सम्राट पृथ्वीराज को अपनी राजगद्दी सौंप दी, जिस के परास्त होने और मरने पर मुसल्मानों का प्रवेश हुआ.

इस घराने की समाप्ति भी एक नाम मात्र के वादशाह के साथ हो गई, और अब केवल पश्चिम के बड़ी दूर से आये हुए विदेशी लोग ही पांडु तथा तीमूर के राज्यसिंहासन के शासनकर्त्ता हैं.

इन्द्रप्रस्थ के वे स्मारक चिन्ह जो बुद्ध और इला के वंशजों ने बनवाये थे; पांडवों का लोहस्तंम्भ, जिस की नीव † पाताल तक पहुंची हुई है; वे स्तम्भ जो विजय की

---

* यह पहिला ही वा एक ही उदाहरण नहीं है कि जिस में भारतवर्ष का पुत्र के क्रमानुयायी होने का क़ानून तोड़ा गया हो. अनहिलवाड़ा पट्टन के राजाओं के इतिहास में ही इस के दो उदाहरण मौजूद हैं. इस प्रकार का दत्तकपुत्र जब अपने गोद लेनेवाले पिता की पगड़ी बांधता है, तो वह अपने उस पिता के गोत्र से बिल्कुल अलग हो जाता है, जिस के यहां उस ने जन्म लिया था.

† चन्द के काव्य में इसखील, अर्थात् पांडवों के लोहस्तम्भ का वर्णन है. एक श्रद्धाहीन तंवर राजा ने इस की गहराई विषयक दन्तकथा के सत्यासत्य का निर्णय करना चाहा; जिस पर (उस को उखाड़ते

यादगार के लिये बनाये गये, और जिन पर ऐसे अक्षरों के लेख हैं, जो अब तक पढ़े नहीं जाते; तथा उस के प्राचीन नगरों के खंडहर, जो दुन्या के सब से बड़े नगर की अपेक्षा भी अधिकतर भूमि को घेरे हुए हैं, जिन के गुम्बद तथा किले * नष्ट होने से उन के नाम तक लुप्त हो गये, और जो बल तथा प्रताप की क्षणभंगुरता पर विचार करने के लिये एक बड़ा भारी दृश्य उपस्थित करते हैं; इन सब का स्वत्वाधिकारी ब्रिटन हो गया है.

समय] " पृथ्वी के केन्द्र से रुधिर उबक उठा, और स्तम्भ ढीला (ढिल्लि) हो गया " इस अधर्म कार्य से [वैसेही] उस घराने का सौभाग्य भी [ढीला पड़ गया]. यही देहली (नाम) का मूल कारण है.

* मुझे सन्देह है कि शाहपुर को अब भी लोग जानते हैं वा नहीं. मुझे इस के विस्तार का पता एक बुर्ज के खंडहर से लगा, जो हुमायूँ के मक़बरे और क़ुतुब नाम के बड़े मनार के बीच में है. मैं सन् १८०९ ई० में चार महीने तक अवधके वर्तमान शाह के पूर्वज सफ़दरजंग के मक़बरे में रहा था, जो देहली की बस्ती से कई मील दूर इन्द्रप्रस्थ के खंडहरों में है, जो (खंडहर) कि वहां से देहली तक चले गये हैं. मैं इस एकान्त स्थान में अपने मित्र लेफ़्टिनेण्ट मेकार्टनी के साथ गया था जो अब गुजर गया है, और जिस के नाम की भली भांति प्रसिद्धि, और प्रतिष्ठा है. यमुना के सिरे अर्थात् शिवालक पर्वत की श्रेणी से जहां पर यह नदी पहाड़ों से निकल कर हिन्दुस्तान के मैदानों में प्रवेश करती है, वहां से निकलनेवाली नहरों की पैमाइश करने के लिये हम दोनों नियत हुए थे. ये नहरें यमुना से दोनों तरफ जल लेती हैं, और फिर यमुना ही में मिल जाती हैं; एक देहली नगर से, और दूसरी सामने की ओर से.

ब्रिटन [Britain] अपने इस राज्य के भावी उत्तराधिकारी के लिये ऐसा कौनसा स्मारक चिन्ह छोड़ जावेगा ? एक भी नहीं; सिवाय उस के जो और भी अधिक चिरस्थाई रहनेवाला हे, अर्थात् जातीय उपकार रूपी स्मारक चिन्ह. बहुत सी बातें हमारे अधिकार में हैं. बहुत कुछ [सत्व] दिया गया है, और आगामी संतान इस का फल प्राप्त करेंगे.

पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा कृत

दूसरे प्रकरण की टिप्पणी.

१–बैबिलोनिया (Babylonia) एशिया माइनर के उस प्रदेश का प्राचीन नाम है, जो यूफ्रेटिस [Euphrates] नदी के दक्षिणी बहाव के आसपास है, और जिस को इस समय 'इराकि अरब' कहते हैं, और ईसाइयों की धर्मपुस्तकों में जिस का नाम 'शिनार' लिखा है.

२–बेरोसस (Berosus) का जन्म सिकन्दर बादशाह के राजत्व-काल में हुआ था. यह बैबिलन नगर के बेलस (Belus) के मन्दिर का पुजारी था. इस ने बैबिलन देश के राजाओं का इतिहास लिखा था, जो इस समय उपलब्ध नहीं है; परन्तु उस का कुछ अंश, जो पिछले ग्रन्थकारों ने अपनी पुस्तकों में उद्धृत किया था, केवल वही बचा है. उस का इतिहास विश्वास योग्य नहीं माना जाता.

३—शाकद्वीपी ब्राह्मण शक द्वीप (=सीथिया-मध्यएशिया में) की तरफ़ से इस देश में आये हैं, जिन को वहां पर 'मग' कहते थे, और हिन्दुस्तान में आने के बाद वे शाकद्वीपी ब्राह्मण, अर्थात् शक द्वीप के ब्राह्मण (न कि इस देश के) नाम से प्रसिद्ध हुए; और यहां के ब्राह्मणों से भिन्न बतलाने के लिये ही उन को 'शाकद्वीपी ब्राह्मण' कहते हैं. राजपूताना में उन को सेवग और भोजक भी कहते हैं. सन् ५५० ई० के आसपास की लिखी हुई एक जीर्ण और अपूर्ण पुस्तक जो नैपाल से मिली है, उस में भविष्यत् वाणी रूप लिखा है, कि—"कलियुग में मग और ब्राह्मण समान माने जायेंगे."—(ब्राह्मणानां मगानां च समत्वं जायते कलौ—बंगाल एशियाटिक सोसाइटी की प्रोसीडिंग्ज़' सन् १९०२ ई० पृष्ठ ३). इस से पाया जाता है, कि उक्त पुस्तक की रचना के समय भी (सन ५५० ई० से पूर्व) मग और ब्राह्मणों में भेद समझा जाता था. कितनेएक विद्वानों का यह अनुमान है, कि इस देश में फलित ज्योतिष का प्रचार इन्हीं लोगों ने किया है, क्योंकि ये लोग उस में निपुण थे, और वेदांग ज्योतिष (=लगध) में फलित नहीं है. प्रसिद्ध मुसलमान ज्योतिषी अल्बेरूनी हिन्दुस्तान में रहा उस समय (ई० सन् १०३० के आसपास) के वृत्तान्त में वह

लिखता है, कि अबतक कितनेएक जरतुश्ती (=पारसी) धर्मगुरु हिन्दुस्तान में हैं, जिन को मग कहते हैं, और वहां पर 'सूर्य' की मूर्त्ति की पुजारी भी वेही लोग होते हैं. भविष्य पुराण से भी पाया जाता है कि सूर्य की मूर्त्ति के पुजारी मग ही होते थे, ब्राह्मण उस काम को स्वीकार नहीं करते थे—(त्वत्प्रसादान्मया प्राप्तं रूपमेतत्पुरातनम्। मत्यक्षं दर्शनं चापि भास्करस्य महात्मनः ॥ १ ॥ .... देवस्य परिचर्यायाः पालनं कः करिष्यति ॥ २ ॥ गुणायुक्तं द्विजं कश्चित् समर्थं परिपालने। ममैवानुग्रहं ब्रह्मन् द्विजं व्याख्यातु महर्षि ॥ ३ ॥ एव मुक्तस्तु सांबेन नारदः प्रत्युवाचतम्। न द्विजाः परिगृण्हंति देवस्य स्वीकृतं धनम् ॥ ४ ॥ .. देवचर्यागतैर्द्रव्यैः क्रिया ब्राह्मी न विद्यते ॥ ५ ॥ ... ..अग्राह्यं च द्विजातिभ्यः कस्मै देयमिदं मया ॥ २८ ॥ ... .मगासंमयच्छ त्वं पुरमेतन्त्रुभर्मविभोः ॥ २९ ॥ तस्याधिकारो देवाग्रे देवतानां च पूजने। . ... ॥ ३० ॥ भविष्यपुराण ब्रह्मपर्व, अध्याय १३९). मगध के एक विभाग के राजा रुद्रमान के मंत्री शाकद्वीपी ब्राह्मण गंगाधर कवि ने एक तालाब बनवाया जिस की प्रशस्ति में वह लिखता है कि—"तीन लोकों के रत्न रूप अरुण के निवास से शाकद्वीप पवित्र हुआ है, जहां पर ब्राह्मणों को मग कहते हैं. उन का वंश सूर्य के शरीर से उत्पन्न हुआ है, और उन ब्राह्मणों को सांब (कृष्ण और जांबुवती का पुत्र) इस देश में लाया था"—(देवोजीयात्त्रिलोकीमणिरयमरुणो यन्निवासेन पुण्यः शाकद्वीपस्स दुग्धाम्बुनिधिवलयितो यत्र विप्रा मगाख्याः। वंशस्तत्र द्विजानां भ्रमलिखिततनो र्भास्वतः स्वाङ्ग——शाम्बोयानानिनाय स्वयमिह महितास्ते जगत्यां जयन्ति। एपिग्राफिया इंडिका जिल्द २ पृष्ठ ३३३). हिन्दुस्तान में सूर्य की जितनी प्राचीन खुदी हुई मूर्त्तियां मिलती हैं उन के पैरों में बहुधा लांग बूट (घुटनों तक के बूट) पाये जाते हैं. इस से कितनेएक विद्वानों का यह भी अनुमान है कि सूर्य की मूर्त्तियां प्रथम मग लोगों ने ही इस देश में प्रचलित की हों, जहां पहिले सूर्य की उपासना मात्र थी; और उन्हीं के अनुसार पीछे जितनी मूर्त्तियां बनी हैं उन के लॉग बूट बनाये गये

हों, जिन के पहिनने का मध्यएशिया में प्राचीन रवाज था. दस से अधिक सूर्य की मूर्त्तियां मेरे देखने में आईं, उन सब के पैरों में ऐसे बूट पाये गये, और प्रसिद्ध सोमनाथ के एक मन्दिर की मूर्त्ति के बूटों पर सुन्दर चौखाने कारीगरी के साथ बनाये हुए देखने में आये. मगलोग हिन्दुस्तान में कब आये, इस का ठीक पता नहीं लगता, परन्तु दारा ने हिन्दुस्तान पर चढ़ाई की, उस समय (सन् ई० के पूर्व ५१० के करीब) उन का इस देश में आना अनुमान करते हैं.

४—कानीन इक्ष्वाकु के पुत्रों में से नहीं था, किन्तु वैवस्वतमनु के सातवें पुत्र नरिष्यन्त का ग्यारहवां वंशधर था, जिस का प्रसिद्ध नाम 'अग्निवेश्य' वा 'जातुकर्ण' था.

५—जिस ने वैश्यत्व पाया वह वैवस्वतमनु का पौत्र और दिष्ट का पुत्र नाभाग था.

६—हारीत रथ का वंशज नहीं, किन्तु उस के भाई विजय का वंशज था.

७—टॉड साहिब ने पंचाल वा पांचालिक को पंजाब देश बतलाया है, परन्तु पंजाब की प्रसिद्ध पांच नदियों के बीच के देश का प्राचीन नाम 'पंचनद' देश था (महाभारत सभापर्व, अध्याय ३२, श्लोक ११), जो पंचाल से बिल्कुल भिन्न है. पंचाल अन्तर्वेद के एक बड़े हिस्से का नाम था—(आर्य्य ! अदूर वर्त्तिनी भगवत्यगोध्या । इमे अन्तर्वेदी भूषणं पांचालाः । बाल रामायण अंक दसवां). प्राचीन काल में पंचाल देश का विस्तार हिमालय से चम्बल नदी तक माना जाता था, जिस के दो विभाग थे, जो उत्तर और दक्षिण पंचाल कहलाते थे. उत्तर पंचाल में सारा रुहेलखंड, और गंगा के उत्तर का प्रदेश शामिल था, जिस की राजधानी अहिच्छत्रपुर थी. उस के खंडहर बरेली से २० मील पश्चिम में अवतक मौजूद हैं; और दक्षिण पंचाल के अन्तर्गत गंगा और जमुना के बीच के दुआब का आधा हिस्सा, अर्थात् उत्तरी हिस्सा था और उस की राजधानी काम्पिल्य गंगा के तट पर थी, जिस को इस समय कम्पिल कहते हैं, जो फ़र्रुखाबाद के क़रीब बदाऊं के सामने है.

८—ये सब यूरोप की प्राचीन जातियों के नाम हैं.

९-रोमन और यूनानी लोगों का एक देवता, जो जुपीटर का पुत्र और अग्नि का अधिष्ठाता माना जाता है.

१०-रामायण में एक करोड़ लिखा है-(सर्ग ५३, श्लोक २१).

११-हिन्दुस्तान के वायव्य कोण की सीमा के परे का हिन्दूकुश के पास का प्रदेश कम्बोज कहलाता था. यह देश प्राचीन काल में घोड़ों के लिये प्रसिद्ध था.

१२-आपत्काल में नहीं किन्तु वृद्धावस्था में बहुधा राजालोग अपने पुत्र को राज्य देकर वानप्रस्थ हो जाते थे—(पुत्रसंक्रान्त लक्ष्मीकैर्यद्वृद्धैरिक्ष्वाकुभिर्धृतं ।-धृतं बाल्ये तदार्य्येण पुण्यमारण्यकं व्रतं ॥ उत्तर रामचरित नाटक).

१३-यह टॉड साहिब का अनुमान मात्र है, इस के लिये कोई ठीक प्रमाण नहीं है.

१४-व्यास वा वेदव्यास शान्तनु के पुत्र नहीं, किन्तु पराशर ऋषि के पुत्र थे. जिस योजनगन्धा नामक धींवरपुत्री से राजा शान्तनु ने विवाह किया था उसी से उस के कुंवारेपन में पराशर द्वारा व्यास का जन्म हुआ था, जिस के पीछे उस का विवाह शान्तनु से हुआ था.

१५-वाल्मीक के विषय में ऐसा प्रसिद्ध है कि वह ब्राह्मण के पुत्र थे (भृगुवंशीय मुनि विशेषः । त्रिकांड शेष कोश). उन के माता पिता उन को बाल्यावस्था से ही अरण्य में छोड़ कर तप करने को चले गये थे, जिस से उन का पालन पोषण एक भील की स्त्री ने अपने यहां रख कर किया, और भीलों में रह कर लुटेरेपन का काम करते रहे परन्तु नारद के उपदेश से उस कार्य को छोड़ दिया, और राम नाम का जप करके प्रसिद्ध मुनि और कवि हुए; परन्तु कोई कोई उन का जन्म से ही भील होना बताते हैं.

१६—विचित्रवीर्य की तीन लड़कियों तथा उन में से पांड्या के व्यास की स्त्री बनने की सारी ऊटपटांग कथा टॉड साहिब ने या तो भूल से और की और ही लिख दी हो, वा एरियन के लेख से मिलाने के लिये घड़ंत की हो, ऐसा पाया जाता है, महाभारत में यह कथा २ तरह दी है :—

" राजा शान्तनु का उत्तराधिकारी उस का बड़ा पुत्र चित्रांगद हुआ, जिस के निःसन्तान मरने पर उस का छोटा भाई विचित्रवीर्य उस के राज्य का मालिक हुआ. उस के दो राणियां अम्बिका, और अम्बालिका थीं, जो काशीराज की पुत्रियां थीं. विचित्रवीर्य के अपुत्र मरने पर उस की माता सत्यवती (योजनगन्धा) ने भीष्म की सम्मति से वेदव्यास को बुलाकर कहा, कि कुरुवंश को नष्ट होने से बचाने के लिये तुम अपने भाई विचित्रवीर्य की स्त्रियों से नियोग द्वारा पुत्र उत्पन्न करो. इस प्रकार अपनी माता से आज्ञा पाकर संकेत के अनुसार वेदव्यास प्रथम अम्बिका के शयनगृह में गये; परन्तु उस ने उन का श्याम वर्ण और भयानक रूप देख कर आंखें मूंद लीं, जिस से उस का पुत्र धृतराष्ट्र अन्धा हुआ. जब व्यास अम्बालिका के पास गये, तो वह भी उन का ऐसा रूप देख कर पांडु (पीली) पड़ गई, जिस से उस के जो पुत्र उत्पन्न हुआ वह पांडु (पीले रंग का) हुआ. इन दोनों अन्धे और पीले रंग के (रोगी) पुत्रों से प्रसन्न न होकर सत्यवती (योजनगन्धा) ने फिर अम्बिका से एक पुत्र उत्पन्न करने की प्रार्थना वेदव्यास से की, जिस से वे पुनः उस के पास गये; परन्तु उस ने उनके कुरूप के कारण अपने स्थान में एक दासी को सुन्दर आभूषण पहिना कर भेज दी, जिस से दासीपुत्र विदुर उत्पन्न हुआ." विचित्रवीर्य के एक भी लड़की नहीं थी, और 'पांड्या' नाम टॉड साहिब ने ही एरियन के लेख से मिलाने के लिये विचित्रवीर्य की स्त्री अम्बालिका के वास्ते घड़न्त किया है, जो वेदव्यास का भयानक रूप देख कर पांडु (पीली) पड़ गई थी.

१७—भारतसार नामक पुस्तक में अम्बिका और अम्बालिका दोनों का व्यास के सामने से नग्न होकर निकलना लिखा है, परन्तु उस में भी उन को विचित्रवीर्य की स्त्री ही लिखा है, और तीसरी दासी का उल्लेख नहीं है—(भारतसार नामक संस्कृत पुस्तक).

१८—यूनान का एक प्राचीन व प्रसिद्ध नगर.

१९—हर्क्यूलीज़ (Hercules) यूनानियों का प्रसिद्ध अवतारीक और वीर पुरुष था, जो जुपीटर (=इन्द्र) का पुत्र माना जाता है,

और वीरता के लिये प्रसिद्ध हैं. उन के यहां ऐसी भी प्रसिद्धि चली आती है, कि उस ने दूर दूर के देश विजय किये थे, और वह हिन्दुस्तान को भी गया था. हिन्दुस्तान सम्बन्धी वृत्तान्त लिखनेवाले यूनानी लेखकों ने यह नाम शिव, कृष्ण वा बलदेव के वास्ते लिखा हो ऐसा पाया जाता है. टॉडसाहिब इस (=हर्क्यूलीज़) शब्द को हरिकुल- ईश बनाकर चन्द्रवंशी राजाओं के लिये इस साधारण शब्द बतलाते हैं; परन्तु किसी संस्कृत पुस्तक में इस का प्रयोग नहीं पाया जाता. टॉडसाहिब ने यूनानियों के हर्क्यूलीज, और हिन्दुस्तान के चन्द्रवंशियों का एक ही होना सिद्ध करने की खेंचताण में यह शब्द घड़न्त किया है.

२०—'क्लिसोबोरस' जिस के पाठान्तर 'क्लिसोबोरस' वा 'क्लिसोबोर' मिलते हैं, वह किस नगर का नाम था इस का पता नहीं लगता; परन्तु यूनानियों का लिखा हुआ यह नाम 'कृष्णपुर' नाम से मिलता हुआ प्रतीत होता है.

२१—पुराणों से पाया जाता है कि यह नगर (Palibothra पाटलीपुत्र) शिशुनागवंश के राजा उदयाश्व ने बसाया था, परन्तु कथासरित सागर (गुणाढ्य रचित बृहत् कथा नामक प्राचीन पैशाची भाषा की पुस्तक के संक्षिप्त संस्कृत अनुवाद) में ऐसा लिखा है, कि "पुत्रक नामक राजा ने अपनी स्त्री पाटली (राजा महेन्द्र वर्म्मा की पुत्री) की प्रार्थना से यह नगर बसाया था, जिस से उस का नाम 'पाटलीपुत्र' हुआ."

२२—यूनानियों की कथाओं के अनुसार यूनान् के माइसेनी (Mycenne) प्रदेश का राजा.

२३—हेरोडॉटस, (Herodotus) एक प्रसिद्ध यूनानी इतिहास लेखक था, जिस का जन्म सन् ईसवी से पूर्व ४८४, और देहान्त सन् ई० से पूर्व ४२४ में हुआ था. वह 'इतिहास का पिता' नाम से प्रसिद्ध है.

२४—यह बृहद्रथ के वंश के अन्तिम राजा पुरंजय का मन्त्री था. इस ने पुरंजय को मार कर अपने पुत्र प्रद्योत को राजा बनाया था.

पांच पीढ़ी तक इस (प्रद्योत) के घराने में राज्य रहा, जिस के बाद शिशुनाग राजा हुआ.

२५—इस का शुद्ध नाम शिशुनाग है, जिस को टॉड साहिब ने शेशनाग समझ कर उस के वंश को तक्षकवंश, अर्थात् नागवंश मान लिया है; परन्तु पुराणों में इन राजाओं का जो वर्णन मिलता है उस में इन का नागवंशी होना नहीं लिखा.

२६—इस विषय का हम आगे विस्तार से विवेचन करेंगे.

२७—यूनानी लेखकों ने प्रासी शब्द पुरुवंशियों के वास्ते नहीं, किन्तु मगध देश वा राज्य के लोगों के वास्ते लिखा है, जो 'प्राच्याः' (पूर्व के निवासी) शब्द का अपभ्रंश प्रतीत होता है. सिकन्दर ने पंजाब को विजय किया उस समय वहां से प्राची, अर्थात् पूर्व के देश मगध राज्य के अन्तर्गत थे. इसी से यूनानियों ने मगधवालों के वास्ते उक्त शब्द का प्रयोग किया हो ऐसा संभव है. प्रासी लोगों की राजधानी इलाहाबाद नहीं, किन्तु पाटलीपुत्र (पटना) थी.

२८—इरनबोअस यमुना नदी का नाम नहीं, किन्तु 'हिरण्यवाह' शब्द का अपभ्रंश, और 'सोन' नदी (स्वर्णनद) का नाम है, जो पहिले पाटलीपुत्र से कुछ दूर गंगा में गिरती थी.

२९—यह सारी कथा ऊटपटांग और कल्पित है. प्राचीन यूनानियों को हिन्दुस्तान के इतिहास का बहुतही कम ज्ञान था, जिस से उन्हों ने मनमानी बातें लिख दी हों यह संभव है, जैसे कि टॉडसाहिब ने विचित्र वीर्य की बेटियों की कथा लिखी है. ऐसे ही पांड्य देश शांतनु के राज्य का नाम नहीं, किन्तु दक्षिण के एक देश का नाम था.

३०—यह अनंगपाल दिल्ली बसानेवाले अनंगपाल प्रथम से भिन्न राजा होना चाहिये.

३१—टॉड साहिब अनहिलवाड़ा के राज्य में दो बार भिन्न वंश के राजाओं का गोद आना लिखते हैं, परन्तु वहां एक बार भी ऐसा नहीं हुआ. मूलराज सोलंकी ने चावड़ा वंश के अन्तिम राजा सामन्त सिंह को मार कर (जो उस का मामा माना जाता है) उस

का राज्य छीना था, और सिद्धराज जय सिंह के उत्तराधिकारी कुमारपाल का चौहान होना और सोलंकियों के यहां उस का गोद जाना, जो वे मानते हैं वह भी भ्रम है, क्योंकि कुमारपाल चौहान नहीं किन्तु सोलंकी सिद्धराज जयसिंह के दादा भीमदेव प्रथम का वंशज था.

३२—यह न तो अनंगपाल का दोहिता था, और न इस को अनंगपाल ने देहली का राज्य दिया था, किन्तु अजमेर के चौहान राजा वीसलदेव (विग्रहराज) ने अपने बाहुबल से वि० संवत् १२२० (=सन् ११६३ ई०) के करीब तंवरों से राज्य छीना था, तभी से उस पर चौहानों का अधिकार था. इस विषय का विशेष वृत्तान्त हम आगे चल कर चौहानों के प्रसंग में लिखेंगे.

३३—देहली का प्रसिद्ध लोहस्तम्भ जो उक्त शहर से कुछ मील दूर प्रसिद्ध कुतुब मनार के इहाते में खड़ा है वह पांडवों (तंवरों) का बनाया हुआ नहीं है, किन्तु गुप्त वंश के महाप्रतापी राजा चन्द्रगुप्त दूसरे (विक्रमादित्य) ने उस को बनवा कर विष्णुपद नामक किसी पहाड़ी पर विष्णु के मन्दिर के आगे खड़ा किया था, ऐसा उस के ऊपर खुदे हुए लेख से पाया जाता है. उस को तंवरों ने वहां से ला कर वर्तमान स्थान पर गाड़ दिया है. उस की गहराई के विषय में अनेक बातें प्रसिद्ध हैं, परन्तु खोद कर देखने से निश्चय हुआ, कि वह ज़मीन के भीतर केवल एक फ़ुट आठ इंच है, और बाहिर को २२ फ़ीट.

३४—इस शहर का प्राचीन नाम 'ढिल्लि' था (देशोस्ति हरियानाख्यः पृथिव्यां स्वर्गसन्निभः। ढिल्लिकाख्या पुरी तत्र तोमरैरस्ति निर्मिता॥ देहली के म्यूज़ियम में रक्खे हुए वि० संवत् १३८४ के लेख से) प्रतोल्यां च वलभ्यां च येन विश्रामितं यशः। ढिल्लिका ग्रहणं श्रांत ...... ।(चौहान राजा सोमेश्वर के समय के बीजोल्यां [मेवाड़] में के चटान पर के लेख से), जिस को फ़ारसी अक्षरों में लिखने से देहली पढ़ा जाने लग गया, और वही नाम प्रसिद्ध हो गया. इस ढिल्लि नाम की उत्पत्ति के विषय में फ़िरिश्ता लिखता है, कि उस जगह की मिट्टी बहुत नरम और ढीली होने से उस में

मेख बड़ी मुश्किल से मज़बूत गाड़ी जा सकती थी, इसी से उस का नाम ढिल्ली पड़ा.

३५—इन विजयस्तंभों से टॉड साहिब का अभिप्राय मौर्यवंश के राजा अशोक के पाषाण के उन दो स्तम्भों से है, जिन पर उस राजा की धर्म्म आज्ञा खुदी हुई हैं. सन् १३५६ ई० के क़रीब फ़ीरोज़ शाह तुगलक ने इन में से एक स्तंभ यमुनातटस्थ टोबरा वा टोपरा स्थान से (जो देहली से क़रीब ९० कोस के फ़ासले पर था), और दूसरा मेरठ से ला कर वहां स्थापित किया था. 'ये स्तंभ विजय की यादगार के नहीं, किन्तु धर्मस्तंभ हैं.

प्रकरण तीसरा.

शेष वंशावली—सर विलियम जोन्स, मिस्टर बेंटले, कप्तान विल्फर्ड, और ग्रन्थकर्त्ता की दी हुई [वंशावलियों की] फिहरिस्तों का परस्पर मिलान समकालीन घटनाएं.

व्यास ने वैवस्वत मनु से लेकर रामचन्द्र तक सूर्य-वंश के केवल सत्तावन राजाओं के नाम दिये हैं; और, कोई भी वंशावली मेरे देखने में ऐसी नहीं आई, कि जिस में चन्द्रवंश के उसी समय में होनेवाले राजाओं के नामों की संख्या ५८ से अधिक हो. यह [संख्या] मिस्रवालों के धर्मगुरुओं की [दी हुई संख्या] से बहुत ही भिन्न है, जिन्हों ने हेरोडॉटस के कथनानुसार अपने पहिले राजा अर्थात् सूर्यपुत्र * मीनस [Menes] से लेकर उपर्युक्त समय तक ३३० † राजाओं की नामावली दी है.

इक्ष्वाकु मनु का पुत्र और सब से पहिला [राजा] था, जिस ने पूर्व की तरफ़ जाकर अयोध्या बसाई.

बुद्ध [Mercury] चन्द्रवंश का मूल पुरुष हुआ; परन्तु हम को यह पता नहीं लगा, कि उन की प्रथम

---

* मिस्र के लोग भी सूर्य को ही मिस्र की बादशाहत का प्रथम स्थापन करनेवाला मानते हैं.

† हेरोडॉटसमेल्पोमेनीप्रकरण १४ पृष्ठ २०० [Herodotus, Melpomene, Chap. XIV P 200]

सूर्यवंश की शाखाओं, और चन्द्रवंश की यदु शाखाओं में बड़ा अन्तर है, परंतु वह वंशावली जो यहां दी गई है, मुझ को, मिली हुई अन्य वंशावलियों की अपेक्षा अधिक पूर्ण है. सर विलियम जोन्स की दी हुई सूर्य-वंश की नामावली में ५६, और चन्द्रवंश की में, (बुद्ध से युधिष्ठिर तक) ४६ नाम हैं, अर्थात् इस के साथ दी हुई वंशावली से प्रत्येक में एक एक नाम कम है; और कृष्ण के साथ समाप्त होनेवाली प्रधान शाखा, तो उस ने दी ही नहीं. उन वंशावलियों में जो इस प्रसिद्ध पुरुष [सर विलियम जोन्स] ने और मैंने भिन्न-भिन्न ग्रन्थों से एकत्र की हैं, ऐसी समानता पाई जाती है, कि जिस से प्रतीत होता है, कि ये किसी एकही विश्वास-नीय मूल सोते से निकली हों.

मिस्टर बेंटले * की नामावलियां सर विलियम जोन्स की वंशावलियों से मिलती हैं, उन में उपर्युक्त सूर्य और चन्द्रवंशों की क्रमशः ५६ और ४६ पीढ़ियां दी हैं, परन्तु उन का आपस में अच्छी तरह मिलान करने से [पाया जाता है, कि] या तो उस ने नक़ल की है, या उसी मूल सोते से ली हैं; फिर पीछे से उस ने, नामों को ऊंचा नीचा रक्खा है, जो यद्यपि उन की कल्पना को सहायता देता है, परन्तु वह उन के इति-हास सम्बन्धी विश्वास के अनुकूल नहीं है.

* एशियाटिक रिसर्चेज़ जिल्द ५ पृष्ठ ३४१.

कर्नल विल्फ़र्ड * की दी हुई सूर्यवंश की नामावली किसी काम की नहीं है, परन्तु उस की दी हुई चन्द्रवंश के पुरु, और यदु खानदान की दोनों वंशावलियां बहुत अच्छी हैं, जिस में भी जरासन्ध से लेकर चन्द्रगुप्त तक पुरुवंश का भाग तो जितनी नामावलियां छपी हैं उन में उसी का शुद्ध है.

यह आश्चर्य की बात है, कि विल्फ़र्ड ने सर विलियम जोन्स के दिये हुए सूर्यवंश के समयक्रम का उपयोग नहीं किया, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है, कि वह रामचन्द्र को कृष्ण के समय के निकट होना बतलाने में डर गया, क्योंकि रामचन्द्र का यदु [इन्दु] वंशियों के महाभारतयुद्ध से चार पीढ़ी पहिले होना ज्ञात हुआ है.

यह स्पष्ट है, कि चन्द्रवंश की नामावली हम को अपूर्ण मिली है और ऐसा ही उन के वंशावली लिखनेवालों ने अनुमान किया है; और विल्फ़र्ड ने उस को प्रामाणिक मानकर और उस से मिलती हुई बनाने के लिये सूर्यवंश की नामावली को घटा कर उस की अशुद्धता और भी बढ़ा दी होती.

मिस्टर बेंटले का तरीका इसलिये अधिक माननीय है, कि वह यह अनुमान करता है, कि चन्द्रवंश की नामावली में जन्मेजय और प्रचीनवान के मध्य ग्यारह

* एशियाटिक रिसर्चेज़ जिल्द ५ पृष्ठ २४१.

राजाओं के नाम छोड़ दिये गये हैं. परन्तु जो कि इस के लिये कोई प्रमाण नहीं है, इसलिये वंशवृक्ष में चन्द्रवंशी राजाओं के नाम सूर्यवंशी राजाओं के मुकाबले में दिये हैं, कि जिस से उन का समकालीन सम्बन्ध बना रह कर उन का एक ही काल में होना सिद्ध हो जावे. इस उपाय से सब कल्पनाएं मिट जायेंगी, और वंशावलियां अपनी शुद्धता स्वयं प्रगट करेंगी. चन्द्रवंश की जिस मुख्य शाखा में पुरु, हस्ती, अजामीट, कुरु, शान्तनु, और युधिष्ठिर बड़े ही प्रसिद्ध वंशधर हुए, उस की जो वंशावलियां सर विलियम जोन्स और कर्नल विल्फ़र्ड ने दी हैं उन में परस्पर बहुत थोड़ा अन्तर है. उन में इतनी अधिक समानता पाई जाती है, कि जिस से अनुमान होता है, कि वे एक ही जगह से उद्धृत की गई हैं. परन्तु विचारपूर्वक देखने से पाया जाता है, कि विल्फ़र्ड के पास सामग्री बहुतायत से थी, क्योंकि हस्ती और कुरु दोनों के वंश की नई नई शाखाएं भी उस ने दी हैं. अन्तिम भाग में उस ने एक नाम (भीमसेन) और भी दिया है, जो मेरी दी हुई वंशावली में है, परन्तु सर विलियम जोन्स की में नहीं है. भीमसेन के बाद ही इन दोनों वंशावलियों में दिलीप का नाम है, जो मेरे पास के भागवत की पुस्तक में नहीं है, यद्यपि अग्निपुराण में दिया है. उपर्युक्त कथन से यह सिद्ध होता है, कि उन्हों ने अपनी अपनी सामग्री भिन्न भिन्न स्रोतों से

ली है, और जब उन सोतों की प्राचीनता का विचार किया जाता है, तो बड़ाही संतोष होता है. मेरी दी हुई वंशावलियों में बुध से उन्नीसवां नाम तन्सु [रंतिनार] लिखा है, जो न तो सर विलियम जोन्स की न विल्फ़र्ड की दी हुई वशावलियों में पाया जाता है. इस के अतिरिक्त विल्फ़र्ड ने हस्ती के पहिले सहोत्र का नाम दिया है, जो सर विलियम जोन्स की दी हुई वंशावली * में नहीं है.

फिर [उस ने] जन्हु को कुरु का क्रमानुयायी लिखा है, परन्तु पुराण में (जिस से मैंने वंशावलियां उद्धृत की हैं) परीक्षित को [कुरु का] क्रमानुयायी लिखा है, जिस ने जन्हु के पुत्र को गोद लिया था. यह पुत्र सोरथ [=सुरथ] था, जिसका नाम तीनों वंशावलियों में है. और जो दूसरा अन्तर है वह केवल अक्षरों का है.

यदि सर विलियम जोन्स की दी हुई सूर्यवंश की वंशावलियों का मुकाबला मेरे तय्यार किये हुए वंशवृक्ष से किया जावे तो उन अस्ली बातों की प्रमाणिकता के विषय में प्रायः वैसा ही सन्तोषदायक फल निकलेगा. मैं सर विलियम जोन्स की वंशावली के वास्ते इसलिये कहता हूं, क्योंकि दूसरी कोई भी वंशावली सम्पूर्ण नहीं है. प्रथम तो इक्ष्वाकु से चौथी पीढ़ी के विषय में हम, दोनों के बीच मतभेद है. मेरी वंशावली में यह नाम अन-

---

* परन्तु मैंने उन को अग्निपुराण में लिखा पाया है.

पृथु है, जिस की जगह उस ने दो नाम अनयास [= अनेना] और पृथु रक्खे हैं. इस के बाद अठारहवें नाम पुरुकुत्स में केवल अक्षरों का अन्तर है. मेरी नामावली में इरिशोक [= त्रिशंकु] का नाम तेइसवां, और सर विलियम जोन्स की नें छब्बीसवां है. एक नाम के अन्तर का कारण तो ऊपर बतला दिया गया. परन्तु मेरी नामावली में इरशदश्व और हयास्व, ये दोनों नाम नहीं हैं. इन के अतिरिक्त जो नाम हम दोनों की नामावलियों में एकसां मिलते हैं उन में अक्षरों का बहुत कुछ अन्तर है. फिर बिहार में चम्पापुर को बसानेवाले सत्ताइसवें राजा चम्प के क्रमानुयाइयों के विषय में हम सहमत नहीं हैं. सर विलियम लिखता है, कि सुदेव [चम्प का] उत्तराधिकारी हुआ, और उस के पीछे विजय ने राज्य पाया, परंतु मेरे प्रमाणों से पाया जाता है, कि ये दोनों चम्प के पुत्र थे, और बड़े सुदेव के तपस्या में प्रवृत्त हो जाने से छोटा विजय उस [चम्प] का उत्तराधिकारी हुआ. तेतीसवां और छत्तीसवां नाम केशी और दिलीप सर विलियम जोन्स ने छोड़ दिये हैं. परन्तु इन छोड़े हुए दो नामों से भी अधिक आवश्यकीय एक और राजा का नाम उस ने छोड़ दिया है, जिस का [पीछे के वंश के साथ] बड़ा सम्बन्ध है, और जिस से बड़े पुराने समय के इतिहास की समकालीनता का अच्छा पता लगता है. यह चालीसवां अम्बरीष है, जो गाधीपुर

अर्थात् कन्नौज बसानेवाले गाधी का समकालीन था. नलें, सुरूर [= सर्वकाम] और दिलीप (मेरी वंशावली में नं. ४४, ४५, ५४ पर हैं), ये सब नाम सर विलियम जोन्स ने छोड़ दिये हैं.

इन दोनों बड़े वंशों की वंशावलियों का मिलान कर के जो ब्यवरा दिया गया है वह सन्तोषदायक ही होगा. जो [वंशवृत्त] मैंने दिये हैं वे उस राजा के पुस्तकालय की पवित्र वंशावलियों [पुराणादि] से उद्धृत किये हैं, जो अपने को उसी वंश [= सूर्यवंश] में होना प्रगट करता है ; और उन में हेरफेर होने की कम संभावना है. बिरला ही ऐसा कोई पढ़ा लिखा राजा होगा, जिस को अपनी वंशावली कंठस्थ न हो, विशेष कर मेवाड़ के महाराणा [भीमसिंह जी] की स्मरण शक्ति इस विषय में बहुत ही अच्छी है. भाट लोगों ने, जिन का पेशा वंशावली रखने का है, उन [वंशावलियों] को अवश्य कंठस्थ किया होगा, और चारण (स्तुतिपाठक) इस विषय के अच्छे जानकार होंगे. प्रथम वंशवृत्त में सूर्यवंश की दो शाखाओं, अर्थात् अयोध्या और मिथिला देश वा तिरहुत के राजाओं की वंशावलियां दी गई हैं, जिन में से पिछली [= तिरहुत वाली] मैंने और कहीं नहीं देखी. उस में चन्द्रवंश की चार बड़ी, और तीन छोटी शाखा भी दर्ज हैं, और यदु [= इन्दु] वंश की आठवीं शाखा

जैसलमेर के भाटियों के इतिहास से ली गई है.

प्राचीन जातियों के वंशावली सम्बन्धी इतिहास के इस विश्रामस्थान को छोड़ने के पूर्व, कि जहां रामचन्द्र, कृष्ण और युधिष्ठिर के साथ हिन्दुओं के द्वापर युग की समाप्ति, और उन के वंशजों के साथ कलियुग का प्रारंभ होता है, मैं समकालीनता के उन थोड़े से स्थलों का शीघ्र ही वर्णन करूंगा, जिस को भिन्न भिन्न ग्रन्थकर्त्ता स्वी करते हैं.

ऐसे प्राचीन समयों का निर्णय करने में यही विचार रक्खा जाता है, कि वह [निर्णय] क़रीब क़रीब सत्य हो. और रामायण एवं पुराणों द्वारा ही यह समकालीनता स्थिर की गई है.

पहिला समय तो सूर्यवंश के प्रसिद्ध राजा हरिश्चन्द्र के साथ प्रारम्भ होता है, जो त्रिशंकु का पुत्र था, और जिस का नाम विनय [सत्य वचन] के लिये अब तक लोक प्रसिद्ध है. वह [उक्त वंश का] चौबीसवां * राजा. और नर्मदातटस्थ माहिष्मती के हैहय (चन्द्र) वंशी प्रसिद्ध राजा सहस्रार्जुन† को मारने-

* स्कन्दपुराण का सह्याद्री खण्ड.

† भविष्यपुराण में इस राजा सहस्रार्जुन को चक्रवर्त्ती लिखा है, और यह भी लिखा है, कि उस ने तक्षक, तरुष्क अथवा नाग कुल के करकोटक को विजय किया, और माहिष्मती की प्रजा को अपने साथ लाया, एवं अपने नर्मदा पर के राज्य से निकाले जाने पर उस

वाले परशुराम का समकालीन माना गया है. इस का प्रमाण रामायण में भी मिलता है, जिस में क्षत्रियजाति के नष्ट किये जाने, और ब्राह्मणों के, अपने मुखिया परशुराम की आधीनी में राज्याधिकार ग्रहण करने का व्यवरा दिया है, और उस समय का भी पता लगता है जब कि "क्षत्रियों ने अपना राजछत्र" खो दिया, जिस की बाबत ब्राह्मण लोग उपहास के तौर पर कहते हैं, कि उन्हों ने अपने वंश की शुद्धता खो दी. इस अन्तिम कथन का खण्डन स्वयं उन्हीं की पुस्तकों

ने हिन्दुस्तान के उत्तर में हेमनगर बसाया. नर्मदातटस्थ देशों में इस राजा के विषय में कई जनश्रुतियां वर्त्तमान हैं, जिन में उस को सहस्रबाहु अथवा हज़ार हाथवाला कहा है, जो उस के बहुत से सन्तान होने का रूपकालंकार है.

तक्षक वा नागकुल के विषय में, जिस का कि यहां पर उल्लेख हुआ है, हम आगे विचार करेंगे. प्राचीन काल में जन्तुओं, ग्रहों और जड़ पदार्थों के नाम भिन्न भिन्न जातियों के संकेतात्मक नामों के लिये हूबहू उपयोग में लाये जाते थे. हमारी धर्म्मपुस्तक [बाइबल] में मिस्र, शाम और मकदूनिया के राजाओं को मक्खी, मधुमक्खी और मींढा कर के लिखा है, और यहां पर नाग, घोड़ा, बन्दर आदि कर के.

तक्षक वा नागकुल एशिया के उच्च प्रदेशों में बहुत प्राचीन समय में खूब फैला हुआ था, और उस की पूर्ण प्रसिद्धि थी, जिस के विषय में हम आगे लिखेंगे.

रामायण में लिखा है, कि यज्ञ [=अश्वमेध] के घोड़े को " एक नाग (तक्षक) ने अनन्त का स्वरूप धर कर " चुराया था.

में स्पष्ट रूप से मिलता है, जैसा कि आगे की समकालीनता से पाया जाता है.

यह समय सूर्यवंश के वत्तीसवें राजा सगर से सम्बन्ध रखता है, जो चन्द्रवंशी सहस्रार्जुन के छटें वंशधर तालजंघ का समकालीन था. जब परशुराम ने क्षत्रिय जाति का नाश किया तो उस समय सहस्रार्जुन के पांच पुत्र नष्ट होने से वच गये थे, जिन के नाम भविष्यपुराण में दिये हुए हैं.

सूर्य और चन्द्र के इन प्रति स्पर्धि बड़े वंशों के बीच बराबर लड़ाइयां होती रहती थीं, जिन का वर्णन पुराणों और रामायण में है, भविष्यपुराण में उस लड़ाई का [illegible] है, जो [illegible] आ[illegible] तालजंघ के मध्य में हुई थी " जिस में हैहय वंशियों को ऐसी वड़ी भारी हानि उठानी पड़ी जैसी वि[illegible]उन के पूर्वजों ने सगर के पुरखों के साथ की लड़ाई में उठाई थी. " लेकिन परशुराम के बाद उन्हों ने अपनी ताक़त फीर्छी वढाली, जैसा कि सूर्यवंशियों से अपना पूरा वैर लेने और सगर के पिता *

---

* " सगर का पिता आसित, हैहय, तालजंघी, और शिशुविन्धी वंश के राजाओं से, जो उस के शत्रु थे, निकाला जाकर हिमवत पर्वत की तरफ़ भाग गया, जहां वह अपनी राणियों को गर्भवती छोड़ कर मर गया, और इन राणियों में से एक के गर्भ से सगर उत्पन्न हुआ था. क" सूर्यवंश को, निम्न चन्द्रवंश द्वारा नाश किये जाने से,

क रामायण का कैरे [Carey] कृत अनुवाद काण्ड १, अध्याय ४१.

को उस की राजधानी अयोध्या से निकाल देने से प्रगट होता है. सगर और तालजंघ का हस्तिनापुर के [राजा] हस्ती और अंगदिश + तथा अंगवंश को स्थापित करने वाले बुध के वंशज अंग से समकालीन होना पाया जाता है.

रामायण से एक दूसरी समकालीनता का पता लगता है, जो यह है कि सूर्यवंश का चालीसवां वंशधर अयोध्या का राजा अम्बरीप कन्नौज को बसानेवाले [राजा] गाधी और अंगदेश के राजा लोमपाद का समकालीन था.

अन्तिम समकालीनता कृष्ण और युधिष्ठर की है, जिस के साथ द्वापर की समाप्ति हो कर कलियुग का प्रारम्भ होता है. परन्तु यह समकालीनता चन्द्रवंश

बचाने के लिये ब्राह्मण परशुराम ने शस्त्र धारण किये. इस से स्पष्टतया सिद्ध होता है, कि सूर्यवंशी लोग ब्राह्मणधर्म के अनुयायी थे; इस के विरुद्ध चन्द्रवंशी लोग अपने मूल पुरुष बुध के धर्म को मानते थे; इसी से सूर्यवंश के ऋषि लोग विश्वामित्र (जो बुध वा चन्द्रवंश का था) के ब्राह्मणमत ग्रहण करने में विरोधी थे. ऐसा भी सिद्ध हो सकता है, कि चन्द्रवंशी कृष्ण नवीन मत की स्थापना करने के पहिले बुध के पूजक थे.

+ अंगदेश तिब्बत के निकट है, उस के निवासी अपने को हुंगी कहते है, जो ऐसा प्रतीत होता है, कि चीनी ग्रन्थकारों के लिखे हुए होंगनू, और यूरोप तथा हिन्दुस्थान के हन (हूण) होंगे, जिस से सिद्ध होता है, कि यह तातारी क़ौम चन्द्र अथवा बुध के वंश में हो.

की है; हमारे पास ऐसा कोई साधन नहीं है, कि जिस के द्वारा सूर्यवंशी राम, और चन्द्रवंशी कृष्ण के बीच के समय का अन्तर निर्णय हो सके.

इसी प्रकार क्रोष्टा के वंश का मथुरा का राजा कंस बुध से गुण साठवां, और उस के भानजे कृष्ण अट्ठावनवें थे, और पुरु के कुल में अजमीढ और देवमीढ के वंशज शल, जरासन्ध और युधिष्ठिर क्रमशः इक्कावन, तरेपन, और चौपनवें वंशधर थे.

अंगवंश का पृथुसेन, जो महाभारत के युद्ध में लड़ कर बचा था, बुध से तरेपनवां था.

इस तरह सब का औसत लेने से बुध से लगाकर कृष्ण और युधिष्ठिर पर्यन्त पचपन पीढ़ियों का होना हम मान सकते हैं. और प्रत्येक राजा के शासनकाल का औसत बीस वर्ष लगावें तो उन के लिये ११०० वर्ष का समय आता है. यदि उन से लेकर ई० सन् से ५६ वर्ष पूर्व राज्य करनेवाले विक्रमादित्य तक के [राजाओं के] उसी प्रकार निकाले हुए समय में यह समय [= ग्यारह सौ वर्ष] जोड़ दिया जावे तो सूर्य और चन्द्र नाम के दो जुदे जुदे बड़े वंशों की हिन्दुस्तान में स्थापना होने का समय ई० सन् से २२५६ वर्ष पहिले नियत करने का मैं साहस कर सकता हूं; कि जिस से कुछ ही पीछे मिस्र, चीन और असीरियों के

राज्यों का स्थापित होना* बहुधा माना जाता है, अर्थात् महाप्रलय की घटना से अनुमान डेढ़ सौ वर्ष के बाद.

यद्यपि अग्निपुराण के एक लेख से मालूम होता है, कि सूर्य्यवंशी लोग जिन का अधिष्ठाता इक्ष्वाकु था, मध्य एशिया से आकर हिन्दुस्तान में बसनेवालों में से सब से पहिले थे; तो भी हमें [चन्द्रवंश के] आदि पुरुष बुध को उस का समकालीन मानना पड़ता है, क्योंकि ऐसा लिखा मिलता है, कि उस ने एक दूर के देश से आकर इक्ष्वाकु की बहिन इला से विवाह किया था.

चन्द्रवंश को जारी रखनेवाले कृष्ण और अर्जुन के वंशजों वा सूर्यवंश को काइम रखनेवाले रामचन्द्र के पुत्र कुश और लव के सन्तानों के विषय में हम कुछ लिखें उस के पहिले आगे के प्रकरण में उन के पूर्वजों के हिन्दुस्तान में स्थापित किये हुए मुख्य मुख्य राज्यों पर कुछ विचार प्रगट करने का साहस किया जावेगा.

---

* मिस्रवालों ने मिस्राइम (Misraim) के अधिकार में सन् ई० से पूर्व २१८८ में; असीरिया (Assyria) वालों ने ई० सन् से पूर्व २०५९ में; और चीनियों ने सन् ई० से पूर्व २२०७ मे.

पण्डित गौरीशंकर हीराचंद ओझा कृत

तीसरे प्रकरण की टिप्पणी

१—'कुशस्थली' द्वारिका का ही दूसरा नाम है.

२—अबुलफज़्ल ने जो 'सिहर' नाम लिखा है उस के स्थान पर चाचनामा नामक सिन्ध की प्राचीन अरबी तवारीख़ में 'सिहरस' पाठ है, जो 'शल' का नहीं किन्तु 'श्रीहर्ष' का बिगड़ा हुआ रूप मालूम होता है.

३—'केशी' राजा नहीं था किन्तु सगर की स्त्री का नाम था, जिस से असमंजस उत्पन्न हुआ था.

४—'नल' चन्द्रवंशी था, और सूर्यवंशी ऋतुपर्ण का मित्र था, टॉड साहिब ने भ्रम से उस का नाम सूर्यवंश की वंशावली में दे दिया है.

५—'तुरुष्क' (तुर्क) वंश, जिस का कुछ वर्णन 'राजतरंगिणी' नामक पुस्तक में दिया है, तक्षकवंश से भिन्न था.

६—परशुराम ने सूर्यवंश की सहायता के लिये शस्त्र धारण नहीं किये थे, किन्तु सहस्रार्जुन के पुत्रों ने उन के पिता जमदग्नि को मारा था जिस का वैर लेने के लिये उन्हों ने क्षत्रियमात्र पर शस्त्र उठाया था.

७—उस समय में बौद्धधर्म्म का साधारणतः प्रचार नहीं था, और न श्रीकृष्ण उस धर्म के अनुयायी थे, और न उन्हों ने अपनी तरफ़ से कोई मत चलाया.

८—गंगा के दाहिने तट पर का बंगाल के पश्चिमी भाग का एक प्रदेश, जिस की राजधानी 'चम्पा' जिस को 'अंगपुरी' भी कहते थे, गंगा के तट पर 'भागलपुर' के निकट थी. टॉड साहिब ने उक्त देश को तिब्बत के पास होना लिखा है वह ठीक नहीं है; और उसी के आधार पर उन्हों ने हूणों के विषय में जो कल्पना की है वह भी निर्मूल है.

९—एशियामाइनर का एक प्राचीन राज्य.

१०—सूर्यवंशियों का मध्यएशिया से आना अग्निपुराण से नहीं पाया जाता.

११—टॉड साहिब ने इस प्रकरण में जहां जहां वंशवृक्ष नं १ में दिये हुए नामों का उल्लेख कर गणना द्वारा पीढ़ियों का जो अन्तर बताया है उस में उन्हों ने बड़ी गड़बड़ की है, जैसे कि तालजंघ को सहस्रार्जुन से छठीं पीढ़ी में बताया है, परंतु वंशवृक्ष में दिये हुए क्रम से वह नवीं ठहरता है. इसी तरह और और जगह भी इसी प्रकार का अंतर आता है, परन्तु हम ने टॉड साहिब के मूल में हेर फेर करना उचित न समझ अनुवाद में ज्यों का त्यों रहने दिया है. इसी तरह कहीं वंशवृक्ष से विरुद्ध भी उन्हों ने लिखा है.

प्रकरण चौथा.

भिन्न भिन्न जातियों द्वारा राज्यों और नगरों का स्थापित होना.

सूर्यवंशियों ने प्रथम अयोध्या * नगरी बसाई थी. अन्य राजधानियों के सदृश यह भी अवश्य धीरे धीरे उन्नति को पहुंची होगी; और यदि प्रत्येक अतिशयोक्ति

---

* वाल्मीक ने जो सूर्यवंश की राजधानी का चित्र खेंचा है उस पर उस ने इतना रंग चढ़ा दिया है, कि अयोध्या उटोपियों [Utopia] के सदृश हो जाती है, और इस कलियुग में अवध की वैसी सजावट और शोभा का मिलना बहुत दुष्कर है. "सर्यू के तट पर कौशल नामक एक बड़ा देश है, जिस के अन्तर्गत बारह योजन (अड़तालीस मील) के विस्तार में मनु की बसाई हुई अयोध्या नगरी है, जिस के मार्ग यथोचित बने हुए और भली भांति से छिड़के हुए हैं. यह नगरी व्यापारियों से परिपूर्ण, सुन्दर वाटिकाओं से शोभायमान, विशाल दर्वाज़ों तथा मिहराबदार ऊंचे दालानों से सुशोभित, अस्त्र शस्त्र सम्पन्न, रथ, गज तथा अश्वों एवं अन्य देशीय राजदूतों से सर्वदा संकुलित रहती है. यह नगरी ऐसे राजगृहों से विभूषित है, कि जिन पर पर्वत शृंगों के सदृश गुम्बज़ बने हुए हैं. सब मकान एक सी ऊंचाई के हैं, जिन में बीण, बांसुरी और पखावज की मनोहर वाद्यध्वनि गूंजती रहती है. नगरी के चौफेर अगम्य खाई खुदी हुई है, और धनुषधारी लोग नगरी की रक्षा किया करते हैं. महारथी दशरथ इस नगरी के राजा हैं. * वहां कोई नास्तिक नहीं है. सब पुरुष अपनी अपनी स्त्रियों से स्नेह रखते हैं. स्त्रियां पतिव्रता और पति की आज्ञाकारिणी, सुन्दर, विचक्षण, मधुरभाषिणी, विवेकी एवं परिश्रमी हैं, तथा उत्तम अलंकारों और वस्त्रों से विभूषित रहती हैं. पुरुषगण सत्यवादी, आतिथ्यसत्कारी एवं गुरुजनों, पित्रों, और देवताओं का आदर करनेवाले हैं."

को मान भी लिया जाय तो भी यह नगर रामचन्द्र से बहुत समय पूर्व अवश्य समृद्धि को प्राप्त हो गया होगा. उस का स्थान अवध के संक्षिप्त नाम से आज भी प्रसिद्ध है, और वह नाम उस देश का भी है, जो मुग़ल बादशाह के नाम मात्र के वज़ीर के अधिकार में है; और जिस देश की सीमा पच्चीस वर्ष पहिले प्रायः वही थी जो सूर्यवंशियों के प्राचीन राज्य कौशल की थी. एशिया की समस्त प्राचीन राजधानियां अत्यन्तही समृद्धिशालिनी थीं, और उन में अयोध्या का ऐश्वर्य बहुत ही अधिक था. जनश्रुति प्रसिद्ध है, कि वर्त्तमान राजधानी लखनऊ प्राचीन अवध नगर के बाहिरी भागों में से एक थी, और जिस का यह नाम रामचन्द्र ने अपने भाई लक्ष्मण के सम्मान सूचनार्थ रक्खा था.

अयोध्या की स्थापना के समय के निकट ही इक्ष्वाकु के पोते मिथिल ने मिथिला देश की राजधानी मिथिला पुरी* बसाई थी.

"वहां आठ राजमंत्री, दो उत्तम शास्त्रज्ञ धर्माचार्य, तथा अन्य ६ उपमंत्री हैं. ये जितेन्द्रीय, निर्लोभी, सहनशील, हंसमुख, धैर्यवान, एवं सन्तोषी हैं. अपने कार्य तथा देशव्यवहार में बड़े निपुण; सैन्य एवं कोष पर ध्यान रखनेवाले, अपने पुत्रों तक को भी निर्पक्ष हो कर दण्ड देनेवाले; शत्रुओं पर भी कदापि अन्याय न करनेवाले; निर्भिमानी, स्वच्छ वस्त्र धारण करनेवाले, सन्दिग्ध विषयों में सुनिश्चित न रहनेवाले, एवं पूर्ण राजभक्त हैं."

* मिथिला, बंगाल का वर्त्तमान तिर्हुत.

मिथिल के पुत्र जनक * के नाम से आदि स्थापक का नाम छिप गया, और सूर्यवंश की इस शाखा का नाम जनक ही के नाम से प्रसिद्ध हो गया.

इस प्राचीन काल में सूर्यवंशी राज्यों की इन्हीं दो मुख्य राजधानियों का वर्णन किया गया है, यद्यपि रोहतास, चम्पापुर आदि दूसरे छोटे छोटे नगर राम के पूर्व सब बस चुके थे.

बुध के चन्द्रवंश की अनेक शाखाओं ने बहुत से राज्य स्थापित किये थे. प्रयाग की प्राचीनता के विषय में बहुत कुछ कहा गया है; परन्तु प्रतीत होता है, कि चन्द्रवंश की पहिली राजधानी हैहयवंश के सहस्रार्जुन ने बसाई थी. यह नर्वदा के किनारे माहिष्मती नामक नगरी थी, जो अब तक माहेश्वर † में मौजूद है. चन्द्रवंशी एवं अयोध्या के सूर्यवंशियों के परस्परीय विरोध का वृत्तान्त, जिस में ब्राह्मणों ने सूर्यवंशियों के पक्ष पर हथियार बांधे तथा सहस्रार्जुन को माहिष्मती से निकाल दिया था, लिखा जा चुका है. इस प्राचीन हैहयवंश ‡ की एक छोटी शाखा अद्यावधि नर्वदा के निकट बघेलखण्डा-

---

* सीता (रामचन्द्र की पत्नी) के पिता कुशध्वज भी जनक कहलाते हैं, जो इस वंश में एक साधारण नाम है, और जिस को मिथिला के सुवर्ण रोमा राजा से तीसरे राजा ने ग्रहण किया था.

† इस को सर्वसाधारण लोग सहस्रबाहु की बस्ती कहते हैं.

‡ जिस चीनी जाति के लोग चीन में पहिले राजा हुए उन से बुध के हैहयवंशी लोग अपना सम्बन्ध बतला सकते हैं.

न्तर्गत घाटी की चोटी के पास सोहागपुर में विद्यमान है, जो अपनी प्राचीन वंश परम्परा से अभिज्ञ हैं. और यद्यपि वे लोग बहुत थोड़े ही हैं, परन्तु वीरता के कारण अब भी प्रख्यात हैं. *

कृष्ण की राजधानी कुशस्थली-द्वारिका, प्रयाग, सूरपुर वा मथुरा के पूर्व वसी थी. भागवत में लिखा है, कि सूर्यवंशी इक्ष्वाकु के भाई आनर्त ने यह नगरी वसाई थी, परन्तु कब वा किस प्रकार से यह नगरी यादवों के हस्तगत हुई इस बात का उस ग्रन्थ में उल्लेख नहीं है.

जैसलमेर के यदुवंशी राजघराने के प्राचीन इतिहास में लिखा है, कि सब से पहिले प्रयाग, तत्पश्चात् मथुरा, एवं सब के पीछे द्वारिका वसी थी. ये सब नगर ऐसे विख्यात हैं, कि इन का विशेष वर्णन करना आवश्यक नहीं है, ख़ास कर प्रयाग का, जो गंगा, यमुना के संगम पर स्थित है. प्रासी [Prasii] लोग प्रयाग के राजा पुरु † के वंशज थे, जहां [= प्रयाग में]

---

* हाल ही में इन के वीरत्व के अनेक विलक्षण प्रमाण मेरे सुनने में आये है.

† चन्द्रवंश की इस शाखा का नाम पुरु के नाम से विख्यात हुआ. इसी को सिकन्दर के इतिहासवेत्ताओं ने पोरस लिखा है. मथुरा के सूरसेनी (मथुरा के राजा सूरसेन के वंशज) सब पुरुवंशी ही थे, जिन को मैगेस्थिनीज़ [Megasthenes] ने प्रासी लिखा है. इलाहाबाद का हिन्दू नाम अब तक प्रयाग है जिस का उच्चारण प्राग भी करते हैं.

सेल्यूकस का राजदूत मेगेस्थिनीज़ गया था, और जो सात्वत से इस वंश की चार शाखा फटने से पूर्व यादवों का प्रधान नगर था. शकुन्तला का सुविख्यात पति भरत भी प्रयाग ही में रहता था.

रामायण में लिखा है, कि जब हैहय वंशवाले सूर्य वंशियों से युद्ध करते थे तो शशविंधी * लोग (यदुवंशियों की एक शाखा) भी उन के शामिल थे; और इसी वंश का शिशुपाल † (चेदी का राज्य क़ाइम करनेवाला) ‡ कृष्ण के शत्रुओं में से एक था.

सिकन्दर के इतिहास लेखकों से निश्चय होता है, कि सिकन्दर के आक्रमण के समय मथुरा के आसपास का प्रदेश तथा वहां के निवासीगण सूरसेनी कहलाते थे. कृष्ण के समीपी पुरखे सूरसेन नाम के दो राजा हुए,

---

* अर्थात् शशक. शीशोदियां शब्द की उत्पत्ति भी इसी से कही जाती है.

† रणथम्भोर के राजा भी, जिन को दिल्ली के पृथ्वीराज ने निकाल दिया था, इसी वंश में से थे.

‡ कहते हैं कि वर्तमान काल की चन्देरीही यह चेदी राजधानी है, और यह उन स्थानों में से एक है, जहां किसी अंग्रेज़ ने प्रवेश नहीं किया है, यद्यपि सन् १८०७ ई० में मैंने वहां जाने का बहुत प्रयत्न किया था. निस्सन्देह यहां बहुत सी अपूर्व वस्तुएं मिलतीं, क्योंकि विजय और विद्रोह के दिनों में यह स्थान सैनिक मार्ग से परे था, अतएव मुझे विश्वास है, कि इस स्थान में खोजने योग्य पदार्थ रहने की संभावना है.

जिन में एक तो उन के दादा, और दूसरे आठ पीढ़ी पहिले हुए. इन में से किसी ने सूरपुर * की राजधानी स्थापित की, जिस से यह प्रदेश तथा वहां के निवासी इस नाम से कहलाने लगे, हमलोग नहीं बता सकते.

---

* यह नगर अब यमुना में डूब गया है. सन् १८१४ ई० में मैंने इस के एक अवशिष्ट भाग का पता लगाया था, जिस से मुझ को आनन्द प्राप्त हुआ. उस के एक विभाग में बटेश्वर का पवित्र तीर्थस्थान है. इस अन्वेषण का मुझे द्विगुण आनन्द हुआ, क्योंकि जब मैंने यूनानियों की कही हुई सूरसेनी का पता लगाया तो मुझे "अपोलोडोटस" [Apollodotus] नामक एक कम प्रसिद्ध [राजा] के समय का एक पदक मिला, जिस [राजा] ने सिन्धु के मुहाने तक, और संभवतः यादवों के राज्य के मध्य तक आक्रमण किया था. बाक्ट्रिया [Bactria] के राजाओं की नामावली में बेयर [Bayer] ने यह नाम नहीं लिखा, परन्तु उस वंश के विस्तार का वृत्तान्त हम को अपूर्णही मिला है. भागवत पुराण में लिखा है, कि बल्कि देश वा 'बाक्ट्रिया' में १३ यवन वा आयोनियन [Ionian] राजा हुए, जिन में लोग पुष्पमित्र, दुमित्र को भी शामिल करते हैं. हम कह सकते हैं, कि यह दुमित्र युथिडिमस [Euthydemus] का पुत्र डेमिट्रियस [Demetrius] ही था, परन्तु मिनेन्डर [Menander] के बीच में गद्दी पर बैठ जाने से अपने पिता का उत्तराधिकारी न हो सका. इस अन्तिम विजयी [मिनेन्डर] का भी मेरे पास एक पदक है, जो मुझे सूरसेनियों के देश में मिला था, और वह विजय के स्मरणार्थ बनाया गया था, क्योंकि उस पर स्वर्गीय शान्ति के परदार दूत का चित्र है, जिस के हाथ में ताड़ के वृक्ष की एक शाखा है. बाक्ट्रिया के इतिहास की अपूर्णता को ये दोनों नाम पूरी कर देंगे, क्योंकि मिनेन्डर से लोग भलीभांति परिचित हैं. यदि एरियन न होता तो अपोलोडोटस का नाम तक नष्ट हो जाता, जिस ने 'पेरीप्लस ऑफ़दि इरीथ्रियंनसी'

सिकन्दर के इतिहास लेखकों ने मथुरा और क्लिसोबोरस [Clesobaras] को मुख्य सूरसेनी नगर लिखा है. यद्यपि यूनानी लोग नामों को वेढब बिगाड़कर लिखते हैं, परन्तु हम लोग क्लिसोबारस और सूरपुर इन दोनों में कुछ भी साहृश्य नहीं पा सकते.

चन्द्रवंश के सुप्रसिद्ध राजा हस्ती ने हस्तिनापुर बसाया था, जहां शिवालक पहाड़ से निकल कर गंगा भारतक्षेत्र में प्रवेश करती है, उसी स्थान पर हरिद्वार * से चालीस मील दक्षिण गंगा के तट पर हस्तिनापुर नगर का नाम अद्यावधि वर्तमान है. यह प्रबल नदी हिमालय के तुषारपुंजों से वह कर, और अनेक सहायक नदियों से मिल कर प्रायः जो कुछ उस के सामने आता है उस को नष्ट करती चली जाती है. ज्ञात हुआ है, कि [इस का] जल एक रात्रि में बढ़ते बढ़ते तीस फीट की सीधी खड़ी उंचाई तक पहुंच कर अपने वेग

[Periplus of the Erythræansea] नामक ग्रन्थ दूसरी शताब्दी में रचा, जब कि वह [एरियन] भड़ोच में, जिस को संस्कृत में भृगुकच्छ, और यूनानी बरूगज़ [Barugaza] कहते हैं, वाणिज्य सम्बन्धी एजण्ट था.

यदि एरियन का उल्लेख न होता तो मेरे अपोलोडोटस के पदक की आधी प्रतिष्ठा होती. यूरोप देश में आने के बाद मुझे डेमीट्रियस के बुखारा में मिले हुए एक पदक के विद्यमान होने का भी पता लगा है, जिस पर सेंटपीटर्सवर्ग निवासी एक विद्वान ने एक निबन्ध लिखा है.

* हरि का द्वार, जिन का त्रिशूल यहां पर विद्यमान है.

से सब कुछ वहा ले जाता है, और कहते हैं कि ऐसीही घटना से हस्ती की राजधानी भी नष्ट हो गई. *

जब कि वह महाभारत के युद्ध के पीछे बहुत काल तक विद्यमान थी, तो यह आश्चर्य की बात है, कि सिकन्दर के इतिहासलेखकों ने जिस [= सिकन्दर] ने संभव है कि इस घटना [= महाभारत] के लग भग आठ सौ वर्ष [?] बाद हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया था, इस नगरी का वर्णन नहीं किया. सिकन्दर का सामना करनेवाले पोरस नाम के दो राजाओं में से एक इसी पुरुवंश की नगरी में निवास करता था, जो संभव है, कि चन्द्रगुप्त का पुत्र वरुसर हो, जिन के लिये अनुमान किया जाता है, कि वे यूनानियों के लिखे हुए सैंड्रोकोटस और अविसरस हों. पोरस नाम के जिन दो राजाओं का सिकन्दर के इतिहासलेखकों ने उल्लेख किया है, उन में से एक तो पुरुवंशियों के उपर्युक्त आदि स्थानों में ही रहता था, और दूसरे का निवासस्थान पंजाब की सीमा पर था, जिस से यह कथन, कि सिकन्दर के समय के पोरी चन्द्रवंशी थे, प्रमाणित होता है,

* विल्फर्ड साहिब कहते हैं, कि महाभारत के पीछे छठीं वा आठवीं पीढ़ी में इस घटना का होना दो पुराणों में लिखा है. जिन लोगों ने 'दोआब' में यात्रा की है उन्हों ने उस स्थान को देखा होगा, जहां पर गंगा और यमुना ने अपना स्थान बदला है.

और अनेक ग्रन्थकारों * ने जो मेवाड़ † के राजाओं को पोरस के खानदान में होना बताया है उस को निर्मूल करता है.

हस्ती राजा से अजमीढ, देवमीढ, और पुरमीढ की तीन बड़ी शाखाएं निकलीं. पिछली दो शाखा तो हमारी दृष्टि में बिलकुल नहीं आती, परन्तु अजमीढ की सन्तति हिन्दुस्तान के सब उत्तरी भागों में पंजाब एवं सिन्धु पार फैल गई. संभव है, कि इन का समय सन् ई० से १६०० [?] वर्ष पूर्व हो.

अजमीढ ‡ के बाद चौथी पीढ़ी में बाजस्व नामक

---

* सर टामस रो [Sir Thomas Roe]; सर टामस हर्बर्ट [Sir Thomas Herbert]; होल्स्टीन [Holstein] राजदूत [ओलीरियस= Olearius का); डेलाविली [Della Valle]; और चार्चिल [Churchill] ने अपने संग्रह में, एवं इन्हीं की पुस्तकों से उद्धृत करके डी एन्विल [D' Anville] बेयर [Bayer], ऑर्मी [Orme], और रेनल [Rennell] आदि लोगों ने लिखा है.

† यदि किसी अन्य प्रकार से यह बात सिद्ध हो तो केवल मेवाड़ के राजवंश की इस बात से अजानकारी इस के विरुद्ध कोई प्रामाणिक दलील नहीं हो सकती; परन्तु उस समय सूर्यवंशी राजा चन्द्रवंशियों तथा उन नवीन जातियों से, जो शीघ्र ही सिन्धु की पश्चिम ओर से भारत में आये, और कालान्तर में उन लोगों को राज्यच्युत किया, एकदम दब गये थे.

‡ अजमीढ के उस की स्त्री नीला से पांच पुत्र हुए, जिन की शाखाएं सिन्धु नदी के दोनों ओर फैल गई थीं. तीन पुत्रों का पुराणों में कुछ वर्णन नहीं है, जिस से विदित होता है, कि वे लोग दूर देश में

राजा हुआ, जिस ने सिन्धु नदी के समीपवर्त्ती प्रदेश में अधिकार प्राप्त किया, और जिस के पांच पुत्रों के नाम से पांच नदियों द्वारा सींचित पंजाब प्रदेश का नाम पांचालिक पड़ा. छोटे भाई कम्पिल की स्थापित की हुई राजधानी का नाम कम्पिल नगर पड़ा. *

अजमीढ की दूसरी स्त्री केशुनी की सन्तति ने दूसरा राज्य और वंश काइम किया, जो उत्तरी हिन्दुस्तान के वीरतासूचक इतिहास में प्रसिद्ध है. इस वंश का नाम कुशिक वंश है.

कुश के चार पुत्र हुए, जिन में से दो अर्थात् कुशनाभ और कुशांब परंपरागत इतिहास द्वारा तथा उन के बसाये हुए नगरों के अब तक वर्त्तमान होने से भली भांति प्रसिद्ध हैं. कुशनाभ ने गंगा के किनारे पर महोदय नामक एक नगर बसाया था, जिस का नाम पीछे बदल कर कान्यकुब्ज वा कन्नौज हो गया, और शहाबुद्दीन के आक्रमण (सन् ११९३ ई०) पर्यन्त, जिस समय

चले गये. क्या संभव है, कि उन्हीं से मीढ़ियों की उत्पत्ति हुई हो? मीढी लोग आदिपुरुष मनु के तीसरे पुत्र ययात [Yayat] के सन्तान हैं; एवं मीढियों का मूल पुरुष मेडाई [Madai] जाफेट [Japhet] के वंश में था. बाजस्व शाखा के मूल पुरुष 'अजामीढ' का नाम अज अर्थात् बकरे के नाम से है. बाइबल में असीरिया देश के मीडी [Assyrian Mede] को बकरे के नाम से प्रदर्शित किया गया है.

* पांचों पांडव भाइयों की स्त्री द्रौपदी इसी घराने की थी. यह अनोखी चाल सीथिया देश में पाई जाती है.

कि यह बड़ा नगर सदा के लिये नष्ट कर दिया गया, इस की प्रतिष्ठा बराबर वैसी ही बनी रही थी. यह प्रायः गाधीपुर वा गाधिनगर कहलाता था. पूर्वीय देशों में नगरों के अनेक नाम रखने की यह प्रथा इतिहास में बड़ी हानि पहुंचाती है. हिन्दुओं के प्रमाणों से अबुलफ़ज़्ल ने क़न्नोज का वृत्तान्त लिखा है, और यदि ऐसी-बातों में कवि का कथन प्रामाणिक माना जाय तो पृथ्वीराज * के भाटचन्द [के काव्य] से सामग्री प्राप्त हो सकती है. फ़िरिश्ता लिखता है, कि प्राचीनकाल में यह नगर २५ कोस (३५ मील) के घेरे में था, और इस में तीस हज़ार दुकानें केवल तंबोलियों की थीं; और नगर की यह अवस्था छठीं शताब्दी में थी, जब कि यह स्थान पांचवें शतक के अन्त से राठौड़वंश के अधिकार में था, जो बारहवीं शताब्दी में जयचन्द के साथ समाप्त हो गया.

कुशांब ने भी एक नगर बसाया था, जो उसी के नाम से कौशांबी † कहलाया. ग्यारहवीं शताब्दी में यह नाम विद्यमान था, और गंगा नदी के किनारे किनारें क़न्नौज से

---

* दिल्ली का महाराजा.

† गंगा के तट पर कर्रानामक स्थान में एक शिलालेख मिला है, जिस में लिखा है, कि यशपाल कौशांबी प्रदेश का राजा था.—एशियाटिक रिसर्चेज़ जिल्द ९ पृष्ठ ४४०. विल्फ़र्ड साहिब ने अपने पौराणिक भूगोल सम्बंधी निबन्ध में कौशांबी को इलाहाबाद के निकट होना बतलाया है—ए. रि. जिल्द १४.

दक्षिण ओर यदि पता लगाया जावे तो इस स्थान के खण्डहर मिलना अब तक संभव है.

दूसरे पुत्रों ने धर्म्मारण्य और वसुमती नामक दो राजधानियां स्थापित की थी, परन्तु इन दोनों में से किसी का भी ठीक हाल हमलोगों को ज्ञात नही है.

कुरु के सुधनु तथा परीक्षित नामक दो पुत्र हुए पहिले पुत्र का वंश जरासन्ध के साथ [वंश वृक्ष नम्बर १ में] समाप्त हुआ, जिस की राजधानी राजगृह (वर्तमान राज महल) सूबे विहार में गंगा के तट पर थी. परीक्षित के वंश में शान्तनु और बाल्हीक राजा हुए. पहिले पुत्र के वंशज महाभारत के प्रतिद्वन्द्वी युधिष्ठिर और दुर्योधन हुए, और दूसरे से बाल्हीक पुत्र हुए.

कुरु की राजगद्दी का उत्तराधिकारी दुर्योधन प्राचीन राजधानी हस्तिनापुर में रहता था, परन्तु छोटी शाखा के युधिष्ठिर ने यमुना किनारे इन्द्रप्रस्थ नगर बसाया, जिस का नाम बदल कर आठवें शतक में देहली हो गया.

बाल्हीकपुत्रों ने दो राज्य स्थापन किये; गंगा के निचले भाग में पालीबोथरा [= पाटलीपुत्र]; और सिन्धु नदी के पूर्वी किनारे पर आरोर * शल ने बसाया.

---

* आरोर वा आलोर पुरातन समय में सिन्ध देश की राजधानी था; दरा के पास से जो सिन्धु नदी की एक शाखा निकली है उस पर का पुल ही सिकन्दर के समय की सोगडी की इस राजधानी का

शयाति के वंश की एक बड़ी शाखा, जो उरु वा

अवशेष चिन्ह मात्र है. उस के स्थान पर मरुस्थल के गडारियों ने एक बड़ी बस्ती बसाई है, जो भक्खर के टापू से सात मील पूर्व सिन्धु नदी की बाढ़ की पहुंच के बाहिर सिलीदास जाति के भापण की एक पहाड़ी पर बसी हुई है. अति प्राचीन काल में प्रमार वंश की सोढा नामक एक प्रबल शाखा के लोग इन देशों में राज्य करते थे, और वे लोग बहुत पिछले समय तक उमरकोट तथा उमर सुमरा के स्वामी रहे थे, जिस प्रदेश में कि आरोर नगर था.

शाल और उस की राजधानी अबुल्फज्ल को ज्ञात थी, परन्तु वह इस के स्थान से अपरिचित था, जिस को उस ने 'देविल' वा 'देवल' लिखा है, जो इस समय ठट्ठा कहलाता है. यह परिश्रमी इतिहासलेखक उस का वर्णन इस तरह करता है, कि "प्राचीन काल में सिहरिस (शल) नामक एक राजा था, जिस की राजधानी आलोर थी, और उत्तर में काश्मीर एवं दक्षिण में समुद्र तक उस का राज्य फैला हुआ था."

शल वा सिहर उस देश का, और सेहराई वहां के राजाओं तथा वहां के निवासियों का उपनाम पड़ गया.

प्रतीत होता है, कि आलोर सिगर्टिस [sigertis] राज्य की राजधानी थी, जिस को बाकट्रिया के मिनेन्डर ने विजय किया था. अरब देश निवासी भूगोलवेत्ता इब्न हॉकल ने इस का वर्णन किया है, परन्तु लिखने में एक नुक्ता अधिक लग जाने से आरोर के स्थान में आज़ोर वा अजोर हो गया, जैसा कि सर डब्ल्यु० औस्ले [Sir W. Ousley] के अनुवाद में है.

प्रसिद्ध डी ऐन्विल ने भी इस का वर्णन किया है, परन्तु उस का स्थान न जानने से उस ने अबुल फिदा के लेख को उद्धृत करने में लिखा है, कि वैभव में "आज़ोर मुल्तान के बराबर था."

हिन्दुस्तान के उत्तरी भाग की कई प्राचीन राजधानियों का पता लगानेवाला मैं कहा जा सकता हूं. [जैसे कि] यमुना पर यादवों की

उरवसु से जिस को अन्य लेखकों ने तुरवसु लिखा है, चली है, उस का वर्णन अभी तक नहीं किया गया है.

उरु एक राजवंश का मूल पुरुष था, जिस के वंशजों ने अनेक राज्य स्थापित किये.

राजधानी सूरपुर. सिन्धु के तट पर सोढों की राजधानी आलोर, पड़िहारों की राजधानी मेंन्दोड्री [=मंडोर], अर्वली पर्वत की तलेहटी में चद्रावती, और गुजरात में वाल्हीकरायों [?] की राजधानी वल्लभीपुर, जिन को अरब के यात्रियों ने वेलेहरा लिखा है, वाल्हीक वंशी आरोर के शल के सन्तान सौराष्ट्र के वल्लारजपूतों ने इस का नाम वल्लभीपुर रक्खा होगा. भाट लोग आज दिन पर्यन्त उन लोगों को ठट्ठा मुलतान का राव कह कर आशिस देते हैं (ठट्ठा और मुलतान वाल्हीक पुत्रों की राजधानियां थीं). यह भी असंभव नहीं है, कि महाभारत के पश्चात् जब हिन्दुस्तान के हर्क्यूलीज़ अर्थात् बलराम भारतवर्ष को छोड़ कर चले गये तो उन्हीं के आधीनस्थ इस वंश की एक शाखा ने बलिक वा बलख आबाद किया हो, जो कि ' नगरों की माता ' के नाम से प्रसिद्ध है. जैसलमेर के इतिहास में लिखा है, कि चन्द्रवंश की यादव तथा बलिक [= वाल्हीक] शाखाएं महाभारत के पीछे खुरासान में राजशासन करती थीं, जिन को यूनानी ग्रन्थकारों ने इन्डो सीथिक [Indo scythic] जातियां करके लिखा है.

बलिक [=वाल्हीक] तथा इंडो-मीडीज़ [Indo-Medes] की अनेक शाखाओं के सिवाय बहुत से कुरु के पुत्र भी इन प्रदेशों में फैल गये थे, जिन में हम पौराणवर्णित 'उत्तर कुरु' को भी शामिल कर सकते हैं, जिस को यूनानियों ने आटरो कुरी [Ottoro curœ] लिखा है. सूर्य और चन्द्रवंशी दोनों जातियां अपने यहां की विशेष आबादी को उन दूर के देशों में हमेशा के लिये भेजा करती थीं; उस समय संभव है कि सिन्धुनदी के पूर्व और पश्चिम में बसनेवाली इन जातियों में अनादि काल का एक ही धर्म प्रचलित हो.

उरु से आठवें राजा विरुत के आठ पुत्र हुए, जिन में से दो का वर्णन, जिन से द्रुह्य तथा वभ्रु नाम की दो शाखा निकलीं, विशेष पाया जाता है.

द्रुह्य से उत्तर देश में एक वंश क़ाइम हुआ. कहते हैं कि आर [आरद्वान] और उस के पुत्र गान्धार ने एक राज्य स्थापन किया; प्रचेत म्लेच्छ देश या असभ्य देश का राजा हुआ.

भरत की स्त्री प्रसिद्ध शकुन्तला[२] के पिता दुष्यन्त के साथ यह वंश समाप्त हो गया, जिस के विषय में हिन्दू लोग कहते हैं, कि कोई देवता उस से अप्रसन्न हो गया था, और वही उस वंश पर पीछे से आनेवाली सब आपत्तियों का कारण हुआ.

दुष्यन्त के चार पोतों कलिंजर, केरल, पांड्य, और चोल के नाम से [उक्त नाम के] देश प्रसिद्ध हुए.

बुंदेलखंड में कालिंजर का प्रसिद्ध क़िला है, जो अपनी प्राचीनता के कारण अति प्रख्यात है, जिस से वह बहुत कुछ वर्णन करने योग्य है.

दूसरे पुत्र केरल के विषय में इतना मात्र ज्ञात हुआ है, कि बारहवीं शताब्दी के ३६ राजवंशों की नामावली में केरल नाम आया है, परन्तु इस वंश की राजधानी मालूम नहीं हुई.

पांड्य का स्थापित किया हुआ राज्य मलवार के तट पर का वह राज्य हो, जिस को हिन्दू लोग पांड्य

मण्डल, और पश्चिमी भूगोलवेत्ता पांड्य राज्य [Regia Pandiona] कहते हैं, और संभव है, कि तंजोर उसी की वर्तमान राजधानी हो.

चोवाल * [चोल] सौराष्ट्र के प्रायद्वीप में जगत-कूंट की तरफ़ समुद्र के तट पर है, और अब तक उसी नाम से प्रसिद्ध है.

बभ्रु से निकली हुई दूसरी शाखा भी प्रसिद्ध हुई. [इस शाखा के] चौंतीसवें राजा अंग ने अंग देश का राज्य क़ाइम किया, जिस की राजधानी चम्पामालिनी † थी, जो क़रीब क़रीब कन्नौज के साथ ही ईसवी सन् के १५०० वर्ष पूर्व स्थापित की गई थी. उसी के साथ वंश का नाम भी परिवर्त्तित हो गया, एवं प्राचीन हिन्दू इतिहास में अंग वंश प्रख्यात हो गया, और आजतक

---

* समुद्रतट के चौवोले से जूनागढ़ की तरफ़ जाते हुए ७ मील पर एक प्राचीन नगर के खण्डहर हैं.

† अंगदेश के राजा लोमपाद (जो राजस्थापन करनेवाले से छठी पीढ़ी में था) की राजधानी चम्पा मालिनी में दशरथ के जाने का जो वर्णन रामायण में आया है उस से स्पष्ट विदित होता है, कि यह अत्यन्त ही पहाड़ी प्रदेश था, और सघन वन तथा अगम्य नदियों के कारण यात्रा में बड़ी कठिनता हुई थी. इस से मैं यह ख़याल करूंगा, कि कर्नल फ्रैंकलिन [Colonel Francklin] ने पालीपोथरा के निबन्ध में जो बंगाल के उस भाग को, जिस में चम्पामालि नामक एक स्थान है, अंगदेश लिखा है, वह असंभव बात है.

'अंगदेश' से चीनी तातार की सीमा पर का तिव्वत का उच्च प्रदेश प्रसिद्ध है.

पृस्तुसेन [= पृथुसेन] से अंग वंश समाप्त हो गया, परन्तु यह महाभारत के युद्ध में बच गया था, जिस से उस के वंशज संभव है, कि उन देशों में फैल गये होंगे, जहां कि जातिभेद का प्रचार नहीं था.

इस प्रकार मनु तथा बुद्ध से लेकर रामचन्द्र, कृष्ण, युधिष्ठिर एवं जरासन्ध तक सूर्य और चन्द्रवंश की संक्षेप से समालोचना की गई है, जिस से आशा है, कि कईएक नई बातें सिद्ध हुई होंगी, और कदाचित् इस सम्पूर्ण विषय के विश्वास में कुछ दृढ़ता भी हुई होगी.

उन लोगों के स्थापित किये हुए समस्त बड़े नगरों के खंडहरों का अब तक पता लगता है. इक्ष्वाकु तथा रामचन्द्र की नगरी सर्यू के किनारे पर; इन्द्रप्रस्थ, मथुरा, सूरपुर, और प्रयाग यमुना के तट पर; हस्तिनापुर, कान्य-कुब्ज, राजगृह गंगा पर; महिश्वर नर्बदा किनारे; आरोर सिन्धु के तट पर; और कुशस्थली-द्वारिका हिन्द महा-सागर के किनारे पर हैं. इन में से प्रत्येक मे उन की प्राचीन समृद्धि का कोई न कोई चिन्ह अवशेष पाया जाता है, और शोध करने पर और और चिन्हों का भी पता लग सकता है.

पांचालिक में अभी एक प्रदेश की खोज होनी बाकी है, जिस में उस की राजधानी कम्पिलनगर तथा वे सब

नगर, जो वाजस्व के पुत्रों ने सिन्धु के पश्चिम में वसाये थे, शामिल हैं.

यदि कोई साहसी मुसाफ़िर ऑक्सस नदी के परे के प्रदेश में पहुंच कर साइरोपोलिस [Cyropolis], और सब से उत्तरी इस्कन्दरिया के स्थानों में, वल्ख़ में तथा वामियां की गुफाओं के भीतर खोज करे तो संभव है, कि प्राचीन इन्डो-सिथिक [= हिन्दुस्तान की शक] जातियों के चिन्हों का पता लग सके.

भारत-भूमि में अव तक अनेक प्राचीन नगर विद्यमान हैं, जिन के खंडहरों से कुछ कुछ हाल जानने योग्य मिल सकता है. और जहां से ऐसे अक्षरों में खुदी हुई प्रशस्तियां जो अव तक पढ़ी नहीं जाती, प्राप्त हो सकती हैं. परन्तु इस अनुसन्धान के समय में वे सदा ऐसे ही नहीं रहेंगे. इस विषय में यदि आम तौर से खोज होती रही, और एक वार उन के पढ़ने की कुंजी हाथ लग गई तो फिर वे एक दूसरी में बहुत कुछ सहायता देंगी. जहां जहां कुरु, उरु और यदुवंशियों का राज्य रहा है वहां वहां से पुरानी प्रशस्तियां मिली हैं, जिन के अक्षर अव तक पढ़े नहीं गये.

पुराणों में लिखे हुए ऐतिहासिक एवं भौगोलिक विषय का जो और भी अच्छा अध्ययन करेगा वह वड़ा लाभ उठावेगा. परन्तु हमें इस वात पर सर्वथा विश्वास नहीं करना चाहिये, कि रामचन्द्र का इतिहास एवं

कृष्ण तथा पांचों पाण्डव * भाइयों का महाभारत केवल रूपक ही हैं, जैसा कि उन के वंश, नगर, तथा मुद्रा अद्यापि वर्त्तमान रहने पर भी कितने एक लोग मानते हैं. यदि हम इन्द्रप्रस्थ, प्रयाग और मेवाड़ के स्तंभों, जूनागढ़ † तथा अर्वली पर के चीजोल्यां के चटानों और हिन्दुस्तान भर के भिन्न भिन्न जैनमन्दिरों पर के लेखों की लिपि का ज्ञान प्राप्त कर सकें तो हम यथार्थ और सन्तोषदायक निर्णय करने के योग्य होंगे.

---

* पाण्डवों तथा हरिकुलियों [कृष्ण, बलदेव] का इतिहास और उन के वीरता के कार्य हिन्दुस्तान के दूर दूर के भागों में प्रसिद्ध हैं, अर्थात् सौराष्ट्र के वन आच्छादित पर्वतों, हिड़ंब तथा विराट के घने जंगलों और गुफाओं में (जो अब तक जंगली भीलों तथा कोलियों का आश्रयस्थान है), अथवा चर्मरावती (चम्बल) के पथरीले किनारों पर. जनश्रुति से प्रसिद्ध है, कि इन में से प्रत्येक स्थान में ये वीरपुरुष, जब कि यमुनातट से निकाले गये उस समय रहते थे. पर्वत में काट कर बनाई हुई विशाल मूर्तियां, प्राचीन मन्दिर और गुफाएं जहां पर खुदे हुए लेखों की लिपि अब तक पढ़ी नहीं जाती, ये सब पाँण्डवों के बताए जाते हैं, जिन से पौराणिककथा की पुष्टि होती है.

† पवित्र पर्वत गिरनार की तलहटी में उस की रक्षा करनेवाली यह प्राचीन राजधानी 'जूनागढ़' के नाम से प्रख्यात है. अबुलफज़ल ने लिखा है कि चिरकाल पर्यन्त यह ऊजड़ और अज्ञात रही, और अकस्मात् इस का पता लगगया. जनश्रुति से इस का कुछ हाल मालूम होने से इस को जूना (पुराना) गढ़ (किला) कहते हैं. मुझे इस कुछ भी सन्देह नहीं है कि यह ग्रैहिलोतों [= गुहिलोतों] की ख्यातों में लिखा हुआ असिल दुर्ग या असिलगढ़ है. उस में लिखा है, कि ... असिल ने अपने मामा दावी [वंश] के राजा की अनुमति से ... के पास अपने नाम पर एक किला बनवाया था.

चौथे प्रकरण की टिप्पणी।

१—यूरोप के साहित्य में एक कल्पित स्थान है जहां का राज्य प्रबन्ध, सुन्दरता, वैभव आदि सब बातें उत्तमोत्तम मानी गई हैं, अर्थात् जिस की समानता कहीं नहीं पाई जाती.

२—सीता के पिता जनक का दूसरा नाम कुशध्वज नहीं, किन्तु सीरध्वज था; कुशध्वज उस का छोटा भाई था.

३—आनर्त इक्ष्वाकु का भाई नहीं, किन्तु उस के भाई सर्याति का पुत्र था, और कुशस्थली (द्वारिका) उस ने नहीं बरन उस के पुत्र रेवत ने बसाई थी.

४—यह शकुन्तला का पति नहीं किन्तु पुत्र था. उस के पिता का नाम दुष्यन्त था.

५—सिकन्दर के इतिहासलेखकों ने उस की चढ़ाई के समय पंजाब में पोरस नाम के दो राजाओं का होना लिखा है, परन्तु यदि उन के नाम 'पुरु' होना अनुमान करें तो भी यह निश्चित नहीं है, कि वे पुरुवंश के ही थे.

६—सीसोदाग्राम में रहने सेही शीशोदिया (सीसोदिया) कहलाये.

७—पृथ्वीराज के पूर्व से लेकर हम्मीर के समय तक रणथम्भोर का क़िला चहुआनों के ही आधीन रहा था, किसी दूसरे वंशवालों के आधीन नहीं था. पृथ्वीराज रासा में रणथम्भोर के यादव राजा की पुत्री से पृथ्वीराज का विवाह होना लिखा है वह कल्पित है.

८—चेदी राजधानी नहीं किन्तु जब्बलपुर के आस पास के विस्तृत देश का नाम था, जिस की राजधानी त्रिपुरी थी, जिस को इस समय तेवर कहते हैं, जो जब्बलपुर से चंद मील पश्चिम में नर्बदा के तट पर है. इस चेदी देश को डाहल भी कहते हैं. उस का विस्तार किसी समय में कलिंजर, माहिष्मती, और दक्षिण कोशल तक था.

९—भागवत में १३ वाल्हीक राजाओं का होना लिखा है, जो शिशुनन्द और उस के भाई यशोनन्दी के पुत्र माने गये हैं (स्कन्द १२ अ. १, श्लोक ३३–३४), परन्तु उस के पूर्व जहां यवन राजाओं का होना लिखा है वहां केवल ८ राजा लिखे हैं, और पुष्पमित्र तथा दुर्मित्र को यवन और वाल्हीक राजाओं से भिन्न माना है (श्लोक ३०).

१०—सिकन्दर ने हिन्दुस्तान की चढ़ाई के समय पंजाब और सिन्ध के बड़े बड़े हिस्सों को अपने आधीन कर उन पर अपनी तरफ़ से यूनानी हाकिम नियत किया था; परन्तु क़रीब पांच वर्ष बाद मौर्य (मोरी) वंशी राजा चन्द्रगुप्त ने वह प्रदेश विजय कर वहां से यूनानियों का अधिकार उठा दिया. परन्तु बाक्ट्रिया में उन का राज्य दृढ़ हो गया था. सन् ई० से क़रीब २०६ वर्ष पूर्व वहां का यूनानी हाकिम (राजा) युधिडिमस स्वतन्त्र बन बैठा, जिस के पुत्र डेमिट्रियस ने हिन्दुस्तान पर चढ़ाई कर अफ़ग़ानिस्तान और पंजाब को अपने आधीन कर लिया. इस प्रकार हिन्दुस्तान में यूनानियों का दूसरी बार राज्य हुआ, और उस समय क़रीब २५ राजाओं ने काबुल, पंजाब, सिन्ध आदि पर राज्य किया हो ऐसा उन के सिक्कों से पाया जाता है, जिन के एक तरफ़ फ़ार्सी की नाईं उलटी लिखी जानेवाली गांधार लिपि में प्राकृत मिश्रित संस्कृत लेख हैं. इन राजाओं में से मिनेन्डर और अपोलोडॉटस अधिक प्रतापी हुए, जिन का राज्य काठियावाड़, गुजरात तथा कुछ अंश राजपुताना तक भी फैल गया था, वरन मिनेण्डर का राज्य तो पूर्व में अयोध्या तथा पाटलीपुत्र तक फैल गया हो ऐसा माना जाता है. इस वंश के राजाओं के केवल सिक्के मात्र मिलते हैं, जिस से उन का क्रम निर्णय नहीं हो सकता. मिनेण्डर उपर्युक्त डेमिट्रियस का समकालीन नहीं, किन्तु उस के बहुत पीछे हुआ था.

११—यह पुस्तक बाक्ट्रिया आदि का वृत्तान्त लिखनेवाले एरियन का रचा हुआ नहीं है. वह मिस्र के किसी व्यापारी का लिखा हुआ माना जाता है, जिस का पता नहीं लगता. कोई कोई उस को एरियन का लिखा हुआ मानते हैं, परन्तु यदि उन का मानना ठीक हो तो वह कोई दूसरा एरियन होना चाहिये.

१२–त्रिशूल हरि (विष्णु) का नहीं, किन्तु हर (महादेव) का होना चाहिये.

१३–अबिसिरस चन्द्रगुप्त का पुत्र नहीं किन्तु कश्मीर के तरफ के अभिसार देश (झेलम और चन्द्रभागा नदी के बीच का कितना एक प्रदेश) का कोई राजा होना चाहिये, क्योंकि उस समय तो चन्द्रगुप्त भी राजा नहीं होने पाया था.

१४–सिकन्दर के इतिहास लेखकों ने पोरस नाम के जिन दो राजाओं का वर्णन किया है उन में से एक भी हस्तिनापुर का राजा नहीं था. उन में से प्रसिद्ध, अर्थात् जो सिकन्दर से लड़ा था, झेलम और चिनाब के मध्यवर्ती देश का राजा था; और दूसरा पोरस चिनाब और रावीके बीच के (गोंडलबार) प्रदेश का स्वामी था, और प्रसिद्ध पोरस का रिश्तेदार था.

१५–पंजाब देश का नाम पंचनद था न कि पंचाल वा पांचालिक (देखो हमारा उक्त विषय का नोट प्रकरण दूसरे में) पंचाल देश पंजाब से भिन्न था, जो राजा हर्यस्व (बाजश्व) के पांच बेटे होने से पंचाल कहलाया था. (विष्णु पुराण अध्याय १९, अंश ४)

१६–यह शब्द कन्याकुब्ज से बना है. कनौज का प्राचीन नाम महोदय था, जो पीछे से कन्याकुब्ज कहलाया जिस का कारण ऐसा लिखा मिलता है कि राजा कुशनाभ के घृताची अप्सरा से १०० कन्या उत्पन्न हुई, जो एक दिन वाटिका में गाने बजाने में लीन हो रही थीं, कि इतने में पवन ने आकर उन से विवाह करने की इच्छा प्रगट की, परन्तु उन्हों ने उस बात को अपने पिता की आज्ञा लिये विना स्वीकार करना न चाहा, जिस से वायु ने क्रुद्ध होकर उन के शरीर में प्रवेश कर के उन्हें कुब्ज (कुबड़ी) कर दिया. चीनीयात्री हुएन्संग ने इन कन्याओं का एक ऋषिद्वारा शापित होकर कुबड़ी होना लिखा है. कनौज कान्यकुब्ज का प्राकृत रूप है.

१७—कनौज पर राठौड़ों का अधिकार ई० सन् की ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त से कुछ पहिले हुआ था, सन् ई० की चौथी और

पांचवीं शताब्दी में तो इस नगर पर गुप्तों का अधिकार था. छठीं शताब्दी में इस पर मोखरियों का अधिकार हुआ, जिन में अन्तिम राजा ग्रहवर्मा हुआ, जो थानेश्वर के वैसवंशी राजा प्रभाकर वर्द्धन का जमाई था. ई० सन् ६०४ के आस पास ग्रहवर्मा को मार कर मालवा के राजा ने कन्नौज पर अपना अधिकार जमा लिया. यह ख़बर पाकर प्रभाकरवर्द्धन का पुत्र राज्यवर्द्धन अपने बहिनोई का बैर लेने को गया, परन्तु वह भी दग़ा से मारा गया; तब उस के छोटे भाई प्रसिद्ध हर्षवर्द्धन ने सन् ई० ६०७ के क़रीब कन्नौज पर अपना अधिकार किया. सन् ई० ६४८ के क़रीब उस का देहान्त हुआ, जिस के पीछे वहां पर फिर मोखरियों का अधिकार हुआ. उक्त वंश का राजा यशोवर्मा सन् ई० ७३६ के क़रीब वहां का राजा था. फिर पडिहार देवशक्ति के वंशजों का अधिकार हुआ. इस वंश के राजा राज्यपाल के समय में सुल्तान महमूद ग़ज़नवी ने क़न्नौज पर चढ़ाई की. राज्यपाल के पुत्र त्रिलोचनपाल वा उस के पुत्र के समय गाहड़वाल (राठोड़) वंश के राजा चन्द्रदेव ने क़न्नौज लिया था.

१८-राजगृह (बिहार में) को इस समय राजगिर कहते हैं. प्राचीन काल में उस को गिरिव्रज भी कहते थे; और चीनीयात्री हुएन्संग ने उस का नाम कुशाग्रपुर लिखा है; राजमहल इस का नाम नहीं, किन्तु उक्त नाम का एक अलग ही शहर है, जो बंगाल प्रदेश के संताल पर्गने में है.

१९—इलाहाबाद से ३० मील उत्तर में यह नगर था. यह स्थान अब कोसम नाम से प्रसिद्ध है.

२०—इस का शुद्ध नाम श्रीहर्ष होना चाहिये, जो सन् ई० की छठीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ था. चाचनामा नामक फ़ार्सी पुस्तक में इस का वर्णन है. यह शल के वंश में था या नहीं यह अनिश्चित है.

२१—उस देश का, वहां के राजाओं का, तथा वहां के निवासियों का हाल वा सेहरिस (श्रीहर्ष) से कोई सम्बन्ध नहीं पाया जाता. सहरा फ़ार्सी में जंगल को कहते हैं, और उसी से सहराई शब्द की उत्पत्ति हुई हो.

२२—यह नाम सागरद्वीप (समुद्र के बीच के टापू) से मिलता हुआ प्रतीत होता है. शायद यह कच्छ के वास्ते हो.

२३—पुरुवंशी दुष्यन्त की स्त्री और भरत की माता थी. तुर्वसु के वंशज दुष्यन्त की पुत्री शकुन्तला का होना, और उस का भरत के साथ विवाह होना पुराणों में लिखा नहीं मिलता.

२४—इस का संस्कृत नाम मांडव्यपुर है, न कि मन्दोद्री, जिस को अब मंडोर कहते हैं.

२५—अरब के यात्रियों ने बल्हरा शब्द बल्लभीपुर के राजाओं के लिये नहीं, किन्तु दक्षिण के राठौड़ों के वास्ते लिखा है. यह शब्द वल्लभराय [वल्लभराज] का अपभ्रंश है, जो उन का खिताब था. अरबों ने स्पष्ट लिखा है, कि उन की राजधानी मानकेर (मान्यखेट दक्षिण के राठौड़ों की राजधानी) और उन के मुल्क की भाषा कनड़ी थी.

२६—टॉड साहिब शल्यवंशी बल्ला (बाल्हीक) राजपूतों से वल्लभीपुर का नाम पड़ना मानते हैं, परन्तु शल्यवंशी राजपूत चन्द्रवंशी हैं, और बल्लभीवाले सूर्यवंशी माने जाते हैं.

२७—इस के नाम से दक्षिण में केरल प्रदेश प्रसिद्ध है, जो पश्चिमी घाट और समुद्र के बीच कावेरी नदी के उत्तर में है.

२८—पाण्ड्य मण्डल, पाण्ड्यदेश वा पांड्यराज्य मद्रास इहाते के दक्षिणी प्रदेश का नाम है, जिस में मदूरा और तिनेवेल्ली विभाग है.

२९—टॉड साहिब ने इस का उच्चारण चोवाल लिखा है, वह शुद्ध नहीं है; इस का शुद्ध उच्चारण चोल है. चोल देश मद्रास इहाते के उस विभाग का नाम है, जो पूर्वी समुद्रीतट पर पांड्यदेश की उत्तरी सीमा से लेकर पराछु नदी तक फैला हुआ है. और सौराष्ट्र में जो चोवाल नामक स्थान का होना उन्हों ने समुद्र के निकट बतलाया है वह शायद चोरवाड़ नामक स्थान हो.

३०—टॉड साहिब का यह अनुमान भ्रमपूरित है, और कर्नेल फ्रेंक्लिन का लिखना यथार्थ है.

आदि धनाढ्यों की बनवाई हुई है. पाण्डवों की बनवाई हुई एक भी गुफा अब तक नहीं पाई गई.

३५–जूनागढ़ का नाम आसिलगढ़ होना नहीं पाया जाता. उक्त नगर के पास के चटान पर अशोक की धर्माज्ञाओं के पीछे की तरफ़ महाक्षत्रप रुद्रदामा का शक संवत् ८० [वि० सं० २१५ = ई० सन् १८५] के आस पास का जो लेख खुदा है, उस में उस शहर का नाम 'गिरिनगर' लिखा है.

रामचन्द्र कृष्ण से पहिले हुए थे, परन्तु बहुत वर्ष पहिले नहीं, क्योंकि उन के इतिहासलेखक वाल्मीक एवं व्यास, जिन्होंने अपनी देखी हुई घटनाओं का वर्णन किया है, समकालीन थे [?].

इस [प्रकरण के साथ दिये हुए] वंशवृक्ष में सूर्य और चन्द्रकुल दीपक [रामचन्द्र और कृष्ण] के पीछे होनेवाले राजाओं की वंशावलियां दी गई हैं, जो संख्या में तीन हैं. *

प्रथम–सूर्यवंश, अर्थात् रामचन्द्र के वंशधर.

द्वितीय-इन्दुवंश, अर्थात् पाण्डुवंशी युधिष्ठिर के सन्तान.

तृतीय–इन्दुवंश, अर्थात् राजगृह के राजा जरासन्ध के वंशज रामचन्द्र और जरासन्ध के वंशों के लिये भागवत और अग्निपुराण प्रमाणभूत हैं, और पाण्डुवंश राजतरंगिणी तथा राजावली से उद्धृत किया गया है.

वर्तमान सूर्यवंशी राजपूत अपने को रामचन्द्र के दो बड़े पुत्रों लव और कुश के वंश में बताते हैं. मुझे ऐसा विश्वास नहीं है कि कोई वर्तमान राजपूत कुलवाले अपने को रामचन्द्र के अन्य पुत्रों तथा उन के भाइयों के वंश में होना बताते हों.

---

* चौथे और पांचवें वंश की भी वंशावली दी जाती, परन्तु वे अपूर्ण रूप में हैं. उन में से प्रथम में रामचन्द्र के दूसरे पुत्र कुश का वंश, जिस में नरवर तथा आमेर के राजा हैं, और दूसरे में कृष्ण के सन्तान, जिन के वंशज जैसलमेर के राजा हैं.

मेवाड़ के राणा अपनी उत्पत्ति रामचन्द्र के ज्येष्ठ पुत्र लव से मानते हैं. ऐसी ही बड़गूजर लोग भी, जो पहिले वर्त्तमान आंबेर प्रदेश में प्रबल थे, और जिन के वंशज अब गंगा के तटस्थ अनूप शहर में बसते हैं, अपनी उत्पत्ति उसी से बताते हैं.

ज्येष्ठ पुत्र लव से सुमित्र तक दी है, कुश ※ से नहीं, जैसा कि कई पुराणों तथा उस ग्रन्थ में, जिस से विलियम जोन्स ने अपनी वंशावली तय्यार की है, लिखा है.

.जिस आधार से सर विलियम जोन्स ने वंशावली का संग्रह किया है उसी से बेंटले साहिब ने भी यह वंशावली उद्धृत की है, परन्तु नाम उलट पलट कर के उस को बिगाड़ डाला है. और उस के लिये जो प्रमाण दिये हैं वे यथेष्ट नहीं हैं, वरन हिन्दुओं के प्रत्येक

प्रत्येक राजा एवं प्रत्येक पढ़ा लिखा हिन्दू इस बात को स्वीकार करता है, कि मेवाड़ के राजा रामचन्द्र के सिंहासन के अधिकारी हैं, अतएव केवल उन्हीं का नहीं, किन्तु उन की राजधानी का भी वे सम्मान करते हैं.

जब माधो जी सेंधिया को राणा ने एक राजद्रोही सर्दार को, जो चित्तौड़ में था, सर करने के लिये बुलाया, तो उस स्थान के 'सम्मान का प्रभाव उस निःशंक (अन्य विषयों में) राजा के चित्त पर ऐसा हुआ, कि वह समझाने बुझाने पर भी उस क़िले की दीवारों पर, जिन के भीतर सर्व सम्मति के अनुसार रामचन्द्र की गाड़ी स्थापित होना माना जाता है, गोळा चलाने पर राजी न हुआ तब पहिले- राणा ने, जो उस समय युवक थे, स्वयं अपने प्राचीन निवासस्थान पर गोलन्दाज़ी कर के उस का संकोच दूर किया.

※ ब्रायंट [Biyant] ने अपनी 'ऐनेलीसिस' [Analysis] नामक पुस्तक में लिखा है, कि कुशॊइट 'हाम' के सन्तान सलाम करने के समय उस के सम्मानार्थ उस का नाम उच्चारण करते थे. इन हिन्दू देशों में 'राम राम' शब्द सलाम में साधारणतः बोले जाते हैं, और प्रत्योत्तर देनेवाला सीता का नाम उस के पति राम के नाम के साथ मिलाकर प्रायः 'सीताराम' कहता है.

विचार के विरुद्ध है. वृहद्बल तथा वृहत्शूर के नामों को देख कर, जो युधिष्टिर के समकालीन माने गये हैं, उन्हों ने अपनी वंशावली में तक्षक * तथा बाहुमान † के बीच के दश राजाओं के नाम सब के सब उलट पलट कर दिये हैं.

बाहुमान ‡ (दराज़ दस्त या लंबे हाथवाला) रामचन्द्र से चौतीसवीं पीढी में है, और उस के राज्यशासन का समय क़रीब क़रीब रामचन्द्र और सुमित्र वा उस के समकालीन विक्रम के बीच में अर्थात् रामचन्द्र से छः

---

* बेंटले साहिब की वंशावली में यह नाम रामचन्द्र से २८ वीं पीढ़ी में, और मेरी दी हुई में २५ वां लिखा है.

† बेंटले साहिब की दी हुई नामावली में ३७ वां, और मेरी में ३४ वां लिखा है, लेकिन बीच के नाम रामचन्द्र के बाद, तथा बाहुमान, (जिस को बेंटले ने 'बानुमत' लिखा है) का नाम तक्षक के बाद लिखा गया है.

‡ समय मिलता हुआ होने से लोगों ने मिथरस [Mithras = सूर्य] के पूजक दारा के पिता, और अर्तज़र्कसीज़ [Artaxerxes] के पुत्र को सूर्यवंश में मिला लिया हो, और इस वंशावली में से एक पिछले नाम को राजा जय सिंह ने नौशेरवां लिखा है, जो उस मिलान को और भी पुष्ट करता है. सचमुच बाहुमान ने हिन्दुस्तान में सेना ले जाकर मिथिला और मगध के सूर्यवंशी राज्यों पर आक्रमण किया था. (देखो डी. हर्बेलॉट की बाइब्लिओथेक ओरिअंटल 'बहमन' का निबन्ध). वह समय दारा प्रथम और उस के बाप के लिये ठीक जंचता है; और हेरोडॉटस का कथन है कि उस [दारा] के राज्य का सब से अधिक धनवान और उत्तम सूबा हिन्दुओं का देश था.

सौ वर्ष पीछे वा सुमित्र से उतना ही पहिले होना चाहिये.

भागवत पुराण में सूर्य वा राम के वंश की समाप्ति सुमित्र के साथ होती है, जिस के साथ मेवाड़ के वर्त्तमान वंश का सम्बन्ध जय सिंह के आधार पर बतलाया गया है, और उस का कई दूसरी नामावलियों से मिलान किया गया है, विशेष कर जैनियों की से, जैसा कि मेवाड़ के इतिहास में वर्णन किया जायगा.

यह बात प्रगट होगी कि रामचन्द्र के पुत्र लव से सुमित्र तक, जिस को पुराणों में अन्तिम राजा लिखा है, सूर्यवंश के ५६ राजा हुए. सर विलियम जोन्स ने ५७ राजा लिखे हैं. यदि हम इन ५६ राजाओं का औसत राज्यसमय बीस बीस वर्ष मानें तो रामचन्द्र से सुमित्र तक, जो विक्रमादित्य से थोड़े ही समय पहिले हुआ, ११२० वर्ष होंगे, और रामचन्द्र तथा युधिष्ठिर तक ११०० वर्ष व्यतीत होने की गणना ऊपर की जा चुकी है. इस से सिद्ध होता है, कि सूर्यवंश के स्थापक इक्ष्वाकु से सुमित्र तक २२०० वर्ष व्यतीत हुए होंगे.

इन्दुवंश (पांडुवंशी युधिष्ठिर की सन्तति) की वंशावली राजतरंगिणी तथा राजावली से ली गई है. पंडित विद्याधर और रघुनाथ के बनाये हुए ये [दोनों] ग्रन्थ जो रजवाड़े में वंशावलियों तथा ऐतिहासिक विषयों के संग्रह के लिये प्रसिद्ध हैं, उस समय के सब

है, जैसी कि रोमूलस [Romulus.] वा अन्य वंश के संस्थापकों की.

पाण्डु वंश की किसी भारी बदनामी को छिपाने के लिये संभव है कि ऐसी कथाएं * रची गई हों, जिन का सम्बन्ध व्यास की उपर्युक्त कथा तथा हरिकुल की इस शाखा की हलकाई से हो. अतएव पांडु का देहान्त होने पर उस के भतीजे दुर्योधन (धृतराष्ट्र जो अन्धा होने के कारण राजगद्दी नहीं पा सका था उस का पुत्र) ने हस्तिनापुर में उपस्थित अपने बन्धुवर्ग के सन्मुख पाण्डवों का अनौरस होना प्रगट किया था.

तिस पर भी ब्राह्मणों तथा अन्धे धृतराष्ट्र की

अर्जुन, जिस को उस के पिता ने धनुर्विद्या सिखाई थी, जिस से उस ने महाभारत में बड़ा संहार किया; और देवताओं के वैद्य अश्वनीकुमार (Esculapius=एस्क्यूलेपियस) से नकुल और सहदेव पैदा हुए.

* आंबेर के राजा की बुद्धिमानी की हम को प्रशंसा करनी चाहिये, जिस ने ये प्राचीन जनश्रुतियां अपने सामने तय्यार कराई हुई वंशावलियों में दर्ज करने दीं. वह राजा [=सवाई जय सिंह] जिस ने पुर्तगाल के [बादशाह] तीसरे इमेन्युएल [Emanuel III] के यहां से यूरोप और एशिया के ज्योतिष सम्बन्धी नक्शों को मिला देनेवाले डि सिल्वा [De Silva] को बुलाया, और हिन्दुस्तान के समस्त प्रधान नगरों में अपने प्रिय विषय (ज्योतिषशास्त्र) सम्बन्धी निपुणता के स्मारक चिन्ह [=वेधशाला] ऐसे समय में बनवाये जब कि वह राजनैतिक तथा युद्ध सम्बन्धी कामों में लगा हुआ था, प्रशंसा तथा प्रतिवाद की आवश्यकता नहीं रखता.

सहायता से उस के भतीजे और पाण्डु के ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर को राजधानी हस्तिनापुर में राज्याधिकार प्राप्त हुआ।

पाण्डवों तथा उन के पक्षपातियों के विरुद्ध दुर्योधन इतने अधिक कूट प्रबन्ध रचने लगा, कि उन पांचों भाइयों ने कुछ काल के लिये गंगातटस्थ अपनी पैतृक राजधानी को छोड़ जाना ठान लिया. उन्हों ने सिन्धु के समीपवर्ती अन्य देशों में जा कर आश्रय लिया, और पहिलेपहिल पंचाल के राजा द्रुपद ने उन की रक्षा की, जिस की राजधानी कम्पिल नगर थी, जहां उस की पुत्री द्रौपदी * के स्वयम्बर में आसपास के अनेक राजा आये हुए थे. परन्तु यह कन्या स्वदेश से निकाले हुए पांडवों के भाग्य में बदी थी, और अर्जुन की धनुर्विद्या की निपुणता ने उस सुन्दरी को प्राप्त किया, जिस ने उस के गले में वरमाला पहिनाई. [जिस पर अन्य] राजा लोग निराश हो कर पांडवों से युद्ध करने लगे, परन्तु अर्जुन के धनुर्बल से उन लोगों की वही दशा हुई, जो पेनिलोप [Penelope] से विवाह करने की इच्छा रखनेवालों की हुई थी, और वह उस दुलहिन को अपने घर ले आया, जो

---

* द्रुपद अजामीढ के वंशज बाजस्व (वा हयाश्व) के कुल में होने से अश्ववंशी था.

उन पांचो भाइयों की समान रूप से स्त्री हुई. यह रवाज * निस्सन्देह शक लोगों का है.

इन पांचों भाइयों के कार्यों की चर्चा हस्तिनापुर में फैल गई, और अन्धे धृतराष्ट्र के दबाव से वे पीछे बुलाये गये. और धृतराष्ट्र ने आन्तरिक विरोध मिटाने के लिये पाण्डु-राज्य के हिस्से कर दिये. उस के पुत्र दुर्योधन के अधिकार में हस्तिनापुर रहा, और युधिष्ठिर ने इन्द्रप्रस्थ नामक एक नई राजधानी स्थापित की. परन्तु महाभारत के कुछ समय पीछे युधिष्ठिर ने अपने नाम का एक संवत् जारी कर के अपने भतीजे के पुत्र परीक्षित को राज्य सौंप दिया. यह संवत् ११०० वर्ष तक प्रचलित रहा. जब कि फिर उसी वंश के उज्जैन के तंवरे [राजा] विक्रमादित्य ने अपने नाम

* यह विवाह हिन्दू सभ्यता के विरुद्ध होने पर भी इस [की कथा] पर कलई कर दी गई है. बहुत से पति करना स्वीकार करने पर भी उस को जातीय रवाज न जान कर उस के लिये छछोरेपन की दलीलें बीच में लाई गई हैं. उसी वंश, अर्थात् जैसलमेर के राजा के पूर्वपुरुषों के पुराने इतिहास से प्रगट होता है कि छोटे पुत्रे को राजगद्दी मिली है, यह भी सीथिया [शक द्वीप] वा तातारवालों की रीति है.

हेरोडॉटस ने, जो शक लोगों के रीति रवाज का वर्णन किया है, वह अद्यावधि उन के वंशजों में पाया जाता है. "अपनी स्त्री के दर्वाज़े पर जूतों की जोड़ी" इस संकेत को ईमॉर्क [Eimauk] जाति के सब पुरुष भली भांति समझते हैं.—एल्फिन्स्टन की काबुल नामक पुस्तक जिल्द २, पृष्ठ २५१.

का एक दूसरा संवत् जारी कर के उस संवत् को उठा दिया, और इन्द्रप्रस्थ को विजय कर लिया.

पाण्डु राज्य के विभाग होने बाद इन्द्रप्रस्थ का राज्य हस्तिनापुर की अपेक्षा बहुत ही विभव सम्पन्न हो गया. इन [पांचों] भाइयों ने आसपास की सब जातियों * को आधीन बना कर उन के राजाओं से कर देने के इक़ारनामे (पायनामे †) लिखवा लिये.

युधिष्ठिर ने अपने राज्य को दृढ़ कर के अपने साम्राज्य तथा 'राजाधिराज' पद के स्मरणार्थ महत्त्व सूचक तथा पवित्र अश्वमेध ‡, और 'राजसूय' यज्ञ करने का विचार किया.

इन महा यज्ञों में सब कार्य राजा लोग ही करते हैं, यहां तक कि द्वारपाल का काम भी वही करते हैं.

अर्जुन की निगरानी में यज्ञ का घोड़ा छोड़ा गया था, जो बारह महीने तक अपनी इच्छानुसार भ्रमण करता रहा, और जब किसी ने उस को पकड़ कर लड़ने का साहस न किया, तब वह अश्व फिर इन्द्रप्रस्थ में लाया

---

* तरंगिणी.

† पायनामा एक ख़ास शब्द है, जो किसी बड़े राजा के आधीन होना प्रगट करता है, चाहे वह धनद्वारा हो चाहे सेवाद्वारा. यह शब्द "पाय"=पैर से निकला है.

‡ सूर्य को अश्व का बलिदान करना. जिस का पूरा विवरण आगे दिया गया है.

गया, तब तक यज्ञशाला भी बन चुकी थी, और देश-भर के सब राजा यज्ञ में बुलवाये गये थे.

पाण्डवों के इस महत् पद धारण करने से कौरवों* का हृदय ईर्षा से जलने लगा, क्योंकि हस्तिनापुर का राजा प्रसाद बांटने पर नियत किया गया था.

इन [दोनों] घरानों की द्वेषाग्नि नये सिर से फिर भड़क उठी, परन्तु दुर्योधन ने अपने बैरियों को हानि पहुंचाने के उपायों में बराबर निष्फल होने के कारण युधिष्ठिर की धार्मिकता को अपनी सफलता का साधन बनाने की दृढ़ प्रतिज्ञा की. उस ने जुवा खेलने के अपने जातीय व्यसन से लाभ उठाना चाहा, जो सीथियन† लोगों से मिलता हुआ रवाज राजपूतों में अब तक चला आता है. युधिष्ठिर उस के जाल में फंस गया. उस ने अपना राज्य, अपनी स्त्री, और अपनी तथा अपने भा-

* दुर्योधन ने बड़ी शाखा में होने के कारण वंश के आदि पुरुष 'कुरु' ही का पद धारण किया, और राज्य अलग होने पर युधिष्ठिर ने अपने पिता पांडु के नाम से इस नये वंश का नाम रक्खा. महाभारत का स्थान, जहां पर कौरव पाण्डव लड़े थे कुरुक्षेत्र कहलाता है.

† हेरोडोटस सीथिक लोगों में जूआ खेलने की विनाशकारी आदत होने का वर्णन करता है, जिस को ओडिन पश्चिम की ओर स्केंडीनेविया, और जर्मनी में ले गया होगा. टैसीटस (Tacitus) कहता है, कि जर्मनलोग पाण्डवों की नाईं अपनी—शारीरिक—स्वतन्त्रता का भी दाव लगाते थे, और जीतनेवाला हारनेवालों को दास की नाईं बेच देता था.

इयों की शारीरिक स्वतन्त्रता भी बारह वर्ष के लिये खो दी, और यमुनातट के [अपने] देश से निकल गये.

हिन्दुओं की प्राचीन कथाओं में इन [पाण्डवों] के वनवास के समय के आख्यान, उन के गुप्त रहने के स्थान जो अब पवित्र माने जाते हैं, उन का अपने पैत्रिक स्थान पर लौट आना, और बड़ी भारी लड़ाई (महाभारत) जो पीछे से हुई [इन की] बड़ी ही रोचक आख्यायिकाएं हैं.

इस आपस की लड़ाई के लिये कॉकेशस [Caucasus] से ले कर समुद्र पर्यन्त प्रत्येक प्रसिद्ध जाति और राजा कुरुक्षेत्र में एकत्र हुए, जहां पर कि उस समय के पीछे अनेक वार भारत के साम्राज्य के लिये लड़ाई हुई, और वह एक के हाथ में से दूसरे के हाथ में गया †.

यह युद्ध यदु की " ५६ शाखाओं " के प्रबल प्रभाव के लिये विनाशकारी हुआ. इस लड़ाई के १८ दिनों में प्रत्येक दिन हज़ारो आदमी मारे गये, क्योंकि [उस समय] " बाप बेटे को नहीं पहिचानता था, और न शिष्य गुरु को ".

विजय होने से युधिष्ठिर को कोई सुख प्राप्त नहीं हुआ. मित्रों के मारे जाने से वह संसार से उदासीन

---

† इसी रणक्षेत्र में अन्तिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज ने अपना राज्य, अपनी स्वतंत्रता और अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया.

हो गया, और उस ने उस को त्याग देने का विचार किया. इस के पूर्व उस ने हस्तिनापुर में दुर्योधन की दाहक्रिया, (जो भीम के हाथ से मारा गया था) की, जिस की ऐश्वर्य की आकांक्षा और अधर्म ने इस सर्व-नाशी युद्ध को उठाया था.

"अपने राज्य को पुनः प्राप्त कर के उस ने एक नया संवत् चलाया और अर्जुन के पोते परीक्षित को इन्द्रप्रस्थ की गद्दी पर बिठा कर वह कृष्ण और बलदेव के साथ द्वारिका को चला गया, और उस युद्ध से लगा कर, इस पुस्तक के लिखने के समय तक ४६३६ वर्ष बीत चुके हैं.*"

युधिष्ठिर, बलदेव, और कृष्ण इस सर्वनाशी युद्ध से बचे हुओं को साथ लेकर जब द्वारिका को चले गये। [जहां पर] युधिष्ठिर और बलदेव को शीघ्रही कृष्ण की मृत्यु का शोक भोगना पड़ा जो अनार्य भीलजाति के एक पुरुष के हाथ से मारे गये, जिन से वे अपनी दुर्बल दशा के कारण लड़ाई करने के योग्य नहीं थे. इस घटना के उपरांत युधिष्ठिर, बलदेव और थोड़े से आदमियों को साथ लेकर भारत से बिल्कुल ही चला गया, और सिन्ध के रास्ते से उत्तर में हिमालय के पहाड़ों में गया, वहां तक का वृत्तान्त हिन्दुओं के पौराणिक

---

* राजतरंगिणी, जो सन् १७४० ई० में बनी.

इतिहासों में लिखा है; और उन के लिये यह अनुमान किया जाता है कि वे हिम में गल कर मर गये. *

* पूर्वीय और पश्चिमीय हर्क्यूलीज़ के बीच की समानता का अनुमान करने के पश्चात् मैं उसे और भी आगे ले चलूंगा। हिन्दुओं की आख्यायिका हरिकुलियों को उन के मुखियों युधिष्ठिर और बलदेव की आधीनता में कॉकेशस पर्वत के बर्फ के बीच में छोड़ देती है, तो भी यदि सिकन्दर ने अपनी वेदिकाएं पांचालिक में बनाईं, जहां पर कि पुरु और हरिकुलियों के सन्तान रहते थे, तो ऐसा मानने में क्या असंभवता है, कि इन का एक दल युधिष्ठिर और बलदेव की आधीनता में [उस से] आठ शताब्दी पहिले यूनान में जा बसा हो? विज्ञान और अस्त्र शस्त्र के व्यवहार में अधिक निपुण होने के कारण इन्हों ने [यूनानियों पर] सरलता से विजय प्राप्त करली होगी. जब सिकन्दर ने पांचालिक के स्वतंत्र नगरों पर आक्रमण किया तो उस का सामना करनेवाले पुरुवानियों, और हरिकुलियों ने अपने झंडे पर हर्क्यूलीज़ का चित्र रख कर अपने पूर्वज का स्मरण दिलाया था. हिन्दुओं और यूनानियों की देवकथाओं का मिलान करने से सिद्ध होता है, कि वे एक ही स्थान से उत्पन्न हुए हैं. और प्लेटो [Plato = अफलातून] कहता है, कि यूनानी लोगों ने अपनी देवकथाएं मिस्र और पूर्वी देशों से ली हैं. क्या हरिकुलियों का यह दल हेराक्लाइडी ([illegible]) लोग नहीं हो सकते, जो पेलोपोनेसस ([illegible]) में (वॉल्नी Volney के कथनानुसार) ई० सन् से १०७८ वर्ष पूर्व जा बसे थे, जो समय हमारे गणना किये हुए महाभारत के समय से बहुत ही निकट है.

हेराक्लाइडीलोग आर्किअस [[illegible]] के सन्तान होने का दावा करते थे, और हरिकुली अत्रि के.

यूरिस्थेनीज़ [[illegible]] हेराक्लाइडियों का प्रथम राजा था. युधिष्ठिर का नाम य्यास [[illegible]] के इस प्रथम राजा के नाम से इतनी समानता रखता है कि स्वच्छ व्युत्पत्ति विद्या के जाननेवाले (हमें

इस कथन से) चौंक नहीं उठेंगे, क्योंकि 'ड' और 'र' संस्कृत में हमेशा एक दूसरे के स्थान पर आ सकते हैं.

यूनानी वा आयोनियन (Ionian) यवन वा जवन [Yavan or Javan] के सन्तान हैं, जो जेफट [Japhet] से सातवीं पीढ़ी में हुआ था. हरिकुली लोग भी यवन हैं, क्योंकि वे अपने को जवन या यवन की औलाद बताते हैं; जो उन के वंश के आदि पुरुष के तीसरे पुत्र ययाति से तेरहवीं पीढ़ी में उत्पन्न हुआ था.

यूनान देश के प्राचीन हेराक्लाइडीलोग कहते थे, कि वे सूर्य के समकालीन, और चन्द्रमा से अधिक प्राचीन थे. क्या इस गर्व के वचन में यह बात छिपी हुई नहीं है कि यूनान के हेलियाडी (अर्थात् सूर्यवंशी) वहां पर हरिकुल के चन्द्रवंशियों के बसने से पूर्व आबाद हो गये थे ?

भारत के अवतारी पुरुष बलदेव (हर्क्यूलीज़), कृष्ण वा कन्हैया (अपोलो), और बुध (मर्क्यूरी) के पौराणिक इतिहासों से सम्बन्ध रखनेवाले सब विषयों की हिन्दुओं, यूनानियों, और मिस्रानियों की कथाओं में बहुतही कुछ समानता पाई जाती है. हरिकुली बलदेव की अब तक वैसीही पूजा होती है, जैसी कि सिकन्दर के समय में होती थी. उन का मन्दिर ब्रज में बलदाऊ स्थान पर (जो यूनानियों की सूरसेनी है) है. उन का आयुध हल, और वस्त्र सिंह की खाल है.

हिन्दुस्तान से मिलेहुए एक दुष्प्राप्य नग पर हर्क्यूलीज़ की ठीक वैसी ही मूर्त्ति बनी है, जैसा कि एरियन उस का वर्णन करता है. उस नग पर दो प्राचीन अक्षरों में एक नाम का संकेत है, जो अब पढ़े नहीं जाते, परन्तु कथा कहानियों से जहां कहीं हरिकुलियों का सम्बन्ध पाया जाता है वहां पर वह [मूर्त्ति] अवश्य पाई जाती है. विशेष कर सौराष्ट्र में, जहां पर वे दिल्ली से निकाले जाने बाद बहुत समय तक छिपे रहे थे.

हम सहसा कह सकते हैं कि हर्क्यूलीज़ की यह ठीक वैसी ही मूर्त्ति

मादित्य तक चार * वंशावलियां लगातार दी गई हैं, जिन में राजपाल तक ६६ राजाओं के नाम हैं, जो कमाऊं पर आक्रमण करने में शुकवन्त के हाथ से मारा गया था. कमाऊं के उस विजयी राजा ने देहली पर अपना अधिकार जमा लिया; परन्तु शीघ्र ही विक्रमादित्य ने वह उस से छीन ली, और अपनी राजधानी इन्द्रप्रस्थ से बदलकर अवन्ती, अर्थात् उज्जैन में स्थापित की; तभी से उज्जैन हिन्दुओं के ज्योतिषशास्त्र का प्रथम याम्योत्तर वृत्त हुआ.

आठ सौ वर्ष तक इन्द्रप्रस्थ राजधानी नहीं रहा. इस के उपरान्त तंवरवंश के स्थापक अनंगपाल † ने फिर

थी, जिस के विषय में परियन लिखता है कि सिकन्दर से पोरस की लड़ाई हुई उस समय उस [हयूंलीज़] के वंशजों के झंडे पर बनी हुई थी। इस नग का चित्र रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के ट्रान्सैक्शन में दिया जायगा।

* अट्ठाईसवां राजा खेमराज युधिष्ठिर के भतीजे के पुत्र परीक्षित के वंश का अन्तिम राजा था। पहिला वंश १८६४ वर्ष तक चला। दूसरा वंश विसर्व का था, जिस में १४ राजा हुए। यह केवल पांच सौ वर्ष चला। तीसरे वंश का प्रथम-पुरुष महराज, और अन्तिम, अर्थात् पन्द्रहवां अन्तिनय था। चौथे वंश का प्रथम पुरुष दुधसेन था, और अन्तिम अर्थात् नवें राजा राजपाल के साथ इस वंश की समाप्ति हुई—(राजतरंगिणी)।

† इस का समय विक्रम संवत् ८४८ वा सन् ईसवी ७९२ राजतरंगिणी में दिया है, और यह भी लिखा है, कि " शिवालक, अर्थात् उत्तरीय पहाड़ों के राजाओं ने आकर उस समय इस को अपने आधीन

उसे राजधानी बनाया जो पाण्डवों का सन्तान होने का दावा करता था, तब से इन्द्रप्रस्थ का नाम देहली हुआ.

"कमाऊं के उत्तरीय पहाड़ों से आकर शुकवन्त नामक राजा ने १४ वर्ष राज्य किया, जिस के बाद विक्रमादित्य * ने उसे मारडाला. भारत से लेकर इस घटना तक २९१५ वर्ष बीते. †"

६६ राजाओं के राज्यसमय में इतना समय बीतना मानने में प्रत्येक राजा के राज्यसमय का औसत ४४ वर्ष आता है, जो यदि सर्वथा असंभव नहीं तो विश्वास के योग्य भी नहीं है.

दूसरे स्थल में वह ग्रन्थकर्त्ता कहता है, कि "मैंने अनेक ग्रन्थ (शास्त्र) पढ़े हैं, और सबकी सम्मति यही है, कि युधिष्ठिर से लेकर पृथ्वीराज तक ४१०० ‡ वर्ष के

किया, और तंवरों के समय पर्यन्त बहुत दिनों तक यह ऊजड़ पड़ा रहा."

* सन् ईसवी से पूर्व ५६ वर्ष.

† रघुनाथ.

‡ ४१०० वर्ष का यह समय उस दशा में माना होगा, जब कि संग्रहकर्त्ता ने रघुनाथ के इस कथन को स्वीकार किया होगा कि, महाभारत से विक्रमादित्य तक २९१५ वर्ष बीते हैं, और उस में उस ने पृथ्वीराज तक का निर्णीत समय मिला दिया होगा, जिस का जन्म संवत् १२१५ में हुआ था. क्योंकि यदि ४१०० में से २९१५ निकाल दिये जावें तो ११८५ बचते हैं. यह समय चहुवानों के इतिहास के अनुसार पृथ्वीराज के जन्म से ३० वर्ष पूर्व का है.

बीच में देहली की गद्दी पर सौ राजा क्षत्रिय * जाति के बैठे, और उस के उपरान्त उस गद्दी के मालिक रावर + जाति के लोग हुए."

ऐतिहासिक तत्वों के इन बचेकुचे वृत्तान्तों के लिये यह सौभाग्य की बात है कि ग्रन्थकारों ने केवल राजाओं के राजत्व काल को बढ़ाया है; परन्तु राजाओं की संख्या नहीं बढ़ाई युधिष्ठिर और विक्रमादित्य के बीच ६६ पीढ़ियों का मानना बिल्कुल ठीक है.

युधिष्ठिर से पृथ्वीराज तक के समय के बीच में १०० राजाओं के होने के विषय में हम कुछ विरोध नहीं कर सकते, यद्यपि विक्रमादित्य से पूर्व जितने राजा हुए, और उस के पीछे जितने हुए उन की संख्या का कोई ठीक विभाग नहीं हुआ है; क्योंकि उस से पूर्व तो ६६, और पश्चात् केवल ३४ राजाओं का होना कहा जाता है, यद्यपि दोनों के समय में आधी शताब्दी का भी अन्तर नहीं हो सकता.

यदि युधिष्ठिर से लेकर पृथ्वीराज तक इन १०० राजाओं के [समय को] जाँचें तो उस का परिणाम २२५० वर्ष होगा.

यह जांच राजस्थान के मुख्य मुख्य वंशों के राजाओं

---

* राजपूत या क्षत्री.

+ सूर्यवंशी.

के राजत्व काल के ६३३ * से ६६३ † वर्ष तक, अथवा पृथ्वीराज से आज तक के समय का औसत निकाल कर की गई है.

मेवाड़ के ३४ ‡ राजा, वा १६ वर्ष प्रत्येक राजा के लिये.
मारवाड़ के २८ " " २२
आंबेर के २६ " " २२
जैसलमेर के २८ " " २३

इस से प्रत्येक राजा के राजत्वकाल का औसत २२ वर्ष निकलता है.

इस से अधिक समय प्रत्येक के शासन काल के लिये मानना ठीक न होगा; और विस्तृत नामावली वाले वंशों के लिये तो शायद कम से कम औसत अर्थात् १६ वर्ष ही मानना ठीक होगा. युधिष्ठिर से विक्रमादित्य तक के ६४ राजाओं के लिये तो इतना भी नहीं मानना चाहिये; क्योंकि उस समय के बीच में चार बार राज्य

---

* संवत् १२५० अथवा ईसवी सन् ११९४ से लगा कर, अर्थात् पृथ्वीराज के राज्यसिंहासन से उतारे जाकर कैद होने के समय से.

† संवत् १२१२ अथवा ई० सन् ११५६, अर्थात् जैसल ने जैसलमेर बसाया उस समय से लगाकर वर्त्तमान राजा गज सिंह के राज्याभिषेक, अर्थात् संवत् १८७६ वा ई० सन् १८२० तक.

‡ यहां के शुरू शुरू के बहुत से राजा लड़ाई में मारे गये, और वर्त्तमान राजा का पिता अपने भतीजे का उत्तराधिकारी हुआ था, जिस से समय कम आया.

का उलटफेर * हुआ, और राज्य छीना गया था.

जरासन्ध की शेष वंशावली, जो भागवत से ली गई है, बहुत ही उपयोगी है, और उस से और विचार करने का अवसर मिलेगा.

जरासन्ध राजगृह + वा बिहार का राजा था, जिस का पुत्र सहदेव, और पौत्र मार्जारी महाभारत के समकालीन माने गये हैं, अतएव वे देहली के सम्राट परीक्षित के समकालीन थे.

नामक विजेता की आधीनता में हिन्दुस्तान में आये, जो पाण्डु की गद्दी पर बैठे[21], और जिन का वंश दश पीढ़ी तक चल कर [अन्तिम] अनौरस राजा महानन्द के साथ समाप्त हुआ. यह अन्तिम राजा, जिस का नाम वैकत भी था, शुद्ध वंश के राजपूतों से ऐसी लड़ाई लड़ा कि उस ने उन का तहस नहस कर डाला, क्योंकि पुराणों में लिखा है, कि शेशनाग के समय से राजा लोग शूद्र हो गये. इन दश राजाओं के राजत्वकाल का समय ३६० वर्ष माना जाता है.

चौथी वंशावली इसी तक्षक वंश के चन्द्रगुप्त मोरी से प्रारंभ हुई. मोरी वंश में दश राजा हुए, जिन की समाप्ति १३७ वर्ष के बीच में होगई.

शृंगी देश से आकर पांचवें वंश के आठ राजाओं ने ११२ वर्ष तक राज्य किया. अन्तिम राजा को काण्व देश के एक राजा ने आकर मार डाला, और उस का राज्य छीन लिया. इन आठ राजाओं में से चार शुद्ध वंश के थे. फिर शूद्राणी से उत्पन्न होनेवाला, कृष्ण[26]

को मैं स्ट्रबो [Strabo] के लिखे हुए प्राचीन सीथिक टाचारि [Tochari] का वा चीनियों के लिखे हुए तरुइ उकों [Tak-i uks] का, वा तुर्किस्तान के वर्त्तमान ताजकों [Tajuks] का निवासस्थान होना मानता हूं. यह जाति वही जान पड़ती है, जिस को (पुराणों में) तुरुश्क कहा है, और जो शकद्वीप वा सीथिया में अरवर्मा (अरेक्सीज़ Araxes) पर शासन करती थी.

राजा हुआ. *कागव देश से आया हुआ यह वंश २३ पीढ़ी तक चला. इस का अन्तिम राजा सुलोमधी हुआ.

इस प्रकार महाभारत के समय के उपरान्त छैः वंशावलियां दी गई हैं: जिन से ययासी राजाओं की अटूट शृंखला जरासन्ध के उत्तराधिकारी सहदेव से सलोमधी तक मिलती है.

अन्त तक की हैं. जो कि हम इन ग्रन्थों के बनानेवालों को भविष्यवक्ता नहीं मान सकते, अतएव हम यह अर्थ निकाल सकते हैं कि उन्हों ने अपने प्राचीन इतिहासों का सलोमथी के शासनकाल में, अर्थात् वि० संवत् ६०० [?] वा सन् ५४६ ई० के लगभग नवीन संस्कार किया होगा.

जिन वंशावलियों का वर्णन ऊपर किया गया है उन के राजत्वकाल के वर्षों की औसत के विषय में जो गणना पहिले की गई है उस से संसार के दूसरे भागों के राजाओं के शासनकाल का मिलान करने से, जो इतिहासों द्वारा हम को मिलता है, हम को अपनी मानी हुई प्रणाली की सत्यता जांचने का अच्छा अवसर मिलेगा.

रेहोबोमैं * [Rehoboam] के विरुद्ध दस जातियों के विद्रोह करने के समय से जेरूसलमैं [Jerusalem] विजय हो जाने तक जो ३८७ वर्ष का समय होता है, [जिस में] जिंहा के सिंहासन पर २० राजा बैठे, जिस

चल रही है. मिस्टर बेंटले का कथन है कि, इसी प्रणाली के अनुसार उन का ऐतिहासिक समय भी पलटा गया था, इस से मेरी गणना दृढ़ होती है, परन्तु मि० बेण्टले के प्रमाण का महत्व उस अनुचित कटाक्ष से बहुत कुछ घट गया है, जो उन्हों ने मि० कोलब्रुक पर किया, जिन का विस्तृत ज्ञान आनुमानिक बातों को बिलकुल न मानने के कारण दुगुणा क़ीमती है.

* ईसा से ९८७ वर्ष पूर्व.

से प्रत्येक राजा का राजत्वकाल १६½ वर्ष होता है, परन्तु यदि इस मे तीन और पाहिले राजाओं का समय जो विद्रोह के पूर्व गद्दी पर बैठे थे, अर्थात् सॉल [Saul], डेविड [David =दाऊद], और सौलोमन [Solomon = सुलेमान] का मिला देवें तो प्रत्येक राजा का शासनकाल २६; वर्ष होगा.

ईसा से अनुमान ६०० वर्ष पहिले सार्डेनापोलेस [Saidana palus] के आधीनस्थ असीरिया * [Assyria] के साम्राज्य के छिन्न भिन्न होने के समय से लेकर बेबूलोनिया [Babylonia], असीरिया और मीडियॉ [Media] की पिछली तीन सम्मिलित वंशावलियों का मिलान करने पर भिन्न भिन्न औसत निकलते हैं.

असीरिया की वंशावली तो मध्यम श्रेणी का औसत समय दिखाती है, परन्तु बैब्लोनिया और मीडिया की वंशावलियों का औसत वहुत अधिक आता है. असीरिया से अलग होने के समय से लगाकर पीछा उसी में शामिल होने तक बैब्लोनिया पर जिन ६ राजाओं ने शासन किया उन का समय ५२ वर्ष आता है, परन्तु मीडिया का राजा दारा, जिस ने साठ वर्ष राज्य किया, इन सब के समय से भी अधिक जीता रहा. दारा के

* इन संवतों और उन के पीछे के संवतों को मैंन गोगट [Goguet] साहिब की ओरीजन ऑफ लाज़ [Origin of Laws] नामक पुस्तक में दी हुई वंशावलियों के समयक्रम के नक़शों से लिया है.

वंश के केवल ६ राजा इन दोनों राज्यों के अलग होने के समय से लगा कर साइरस [Cyrus] के समय में उन के फिर शामिल होने तक हुए, जिन का समय १७४ वर्ष, अर्थात् प्रत्येक राजा का शासनकाल २६ वर्ष होता है.

असीरिया के राजाओं का राजत्वकाल और भी अधिक मध्यम श्रेणी का है. नेवुकेडनेज़र [Nebuchednezzar] से ले कर सार्डेनापालस के समय तक प्रत्येक राजा का राजत्वकाल २२ वर्ष होता है; परन्तु तब से इस वंश का अन्त होने के समय तक १८ वर्ष ही आता है.

यूरिस्थीनीस [ईसा से १०७८ वर्ष पूर्व] से लगा कर पहिले ११ राजा, जिन को लेसीडीमॅन [Lacedæmon] का हेराक्लाइडी [Heraclidæ] कहते हैं, उन के राज्य समय का औसत, ३२ वर्ष आता है, और लगभग उसी समय एथेन्स के प्रजातंत्र राज्य में मरण पर्यन्त क़ाइम रहनेवाले पहिले प्रधान शासक के समय से लगा कर उस समय तक जब कि यह पद सातवें ओलिम्पियॅड [Olympiad] में दस दस बरस का हो गया तब तक १२ मुख्य प्रधान शासक हुए जिन के समय का औसत २८½ वर्ष होता है.

इस प्रकार हम को तीन काल अर्थात् यहूदियों का, स्पार्टावालों का, और एथिनियन लोगों का मिलता है, जिन का प्रारंभ ईसा से लगभग ११०० वर्ष पूर्व हुआ

था. अर्थात् महाभारत से आधी शताब्दी भी दूर नहीं. और इन के साथही साथ बेबिलन, असीरिया. और मीडिया के राज्यकाल हैं, जिन का प्रारंभ उस समय से होता है जब कि हम यूनानी राज्यकाल को छोड़ते हैं, अर्थात् ईसा से पूर्व आठवीं शताब्दी में: और यहूदियों के राज्यकाल का अन्त छठी शताब्दी में हुआ.

और तमाम इतिहास के देखने से जान पड़ता है, कि इन की तुलना केवल अनहिलवाड़ा के राजाओं के साथ की जा सकती है, जिन में से चामुँण्ड ने क़रीब क़रीब दारा के बराबार राज्य किया था.

अलग की हुई दस जातियों में विद्रोह [के ज़माने] से लेकर क़ैद होने के समय तक इसराईल जाति के बीस राजाओं ने दो सौ वर्ष राज्य किया, अर्थात् प्रत्येक राजा ने दस वर्ष तक.

स्पार्टा, और असीरियावालों का राजत्वकाल अधिक से अधिक ३२, और कम से कम १८ वर्ष आता है, जिस से प्रत्येक राजा का औसत २५ वर्ष निकलता है.

हमारे चार हिन्दूवंशों के औसत का परिणाम सात सौ वर्ष के बीच में २२ वर्ष होता है.

ऊपर के सब सबूतों से मैं ५० राजाओं की शृंखला के लिये राजत्वकाल का औसत २० से लेकर २२ वर्ष तक नियत करना चाहता हूं.

यदि इस प्रकार प्राप्त किया हुआ फल सन्तोष-दायक हो, और इतने ग्रन्थकारों द्वारा लिखी हुई वंशावलियां ठीक हों तो हमारा भी वही सिद्धान्त होगा जैसा कि बेंटले साहिब का है, जो अधिक विद्वत्ता के साथ ज्योतिष सम्बन्धी, और वंशावली सम्बन्धी रीतों के सम्मेलन से युधिष्ठिर के संवत् का समय संसार की उत्पत्ति से २८२५[३१] वर्ष पीछे मानते हैं. यदि वह ४००४

में से (अर्थात् संसार की उत्पत्ति से लगा कर ईसा के जन्म समय तक) निकाल लिया जावे तो युधिष्टिर के संवत् का प्रारंभ ईसा से ११७६ वर्ष वा विक्रमादि से ११२३ वर्ष पूर्व सिद्ध होगा.

पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा कृत

पांचवें प्रकरण की टिप्पणी.

१—मेवाड़ के महाराणा अपनी उत्पत्ति रामचन्द्र के ज्येष्ठ पुत्र कुश से मानते हैं न कि लव से जो छोटा था.

२—'कुशवाहा'—यह शब्द भी टॉडसाहिब के कल्पित शब्दों में से एक है. कछावों (कछवाहों) के प्राचीन लेखों में 'कुशवाहा' कहीं भी लिखा नहीं मिलता, बहुधा 'कच्छपघात' और कहीं २ 'कच्छपारि' लिखा मिलता है.

३—आंबेर (जयपुर) के कछवाहे नरवर से निकले हुए ग्वालियर के कछवाहों की छोटी शाख में हैं. ग्वालियर के कछवाहा राजा वज्रदामा के बेटे मंगलराज के दो पुत्रों से दो शाखें चलीं, जिन में से बड़े पुत्र कीर्त्तिराज के वंशज तो कुतुबुद्दीन ऐबक के समय तक ग्वालियर के राजा बने रहे, और छोटे पुत्र सुमित्र के प्रपौत्र देवानीक के पुत्र ईशसिंह (ईश्वरीसिंह) के बेटे सोढदेव ने विक्रम संवत् ११२५ के क़रीब राजपूताना में आकर दौसा में अपना राज्य जमाया, जिस के पीछे आंबेर राजधानी हुई, अतएव कछवाहों का राजपूताना में आना टॉडराजस्थान के बनने से क़रीब ७६० वर्ष पूर्व हुआ था न कि १००० वर्ष पूर्व.

४—यह घटना शायद संवत् १८४८ से सम्बन्ध रखती हो, जब कि सलूंबर के रावत् भीमसिंह को चित्तौड़गढ़ पर से निकालने के लिये, जहां पर कि उस ने अधिकार जमा रक्खा था, महाराणा भीमसिंह ने माधोजी सेंधिया को मदद पर बुलाकर फ़ौजकशी की थी.

५—कुशाइट हाम = हाम के पुत्र कुश के वंशज. ईसाइयों की धर्म-पुस्तक बाइबल में हाम को नूह का पुत्र लिखा है, जो (नूह) प्रलय के अन्त में जीवित रहा था. टॉडसाहिब ने हाम को राम से मिलाने की खेंचताण की है.

६—राजपूताना में कितने एक लोग एक दूसरे से मिलने पर सलाम में 'राम राम' शब्द का उच्चारण करते हैं, जिस के उत्तर में

माननेवाला पुरुष भी वही शब्द बोलता है, न कि ' सीताराम ' जैसा कि टॉडसाहिब लिखते हैं. अलबत्ता कितने एक रामभक्त साधु आदि सलाम में 'सीता राम' कहते हैं, जिस के उत्तर में भी 'सीता राम' बोला जाता है.

७-रोमुलस-रोमनगर का बसानेवाला. उस की उत्पत्ति के विषय में ऐसा प्रसिद्ध है कि विष्टा नामक देवी की सिल्विया नामक एक पुजारिन के यमज पुत्रों में से एक था, जो मार्स (मंगल) देवता से उत्पन्न हुए थे, उक्त देवी की पुजारिनों को सदा कुवारी रहना पड़ता था, और यदि उन में से कोई कुकर्म में फंस जाती तो वह जीवित जमीन में गाड़ दी जाती, और उस का सन्तान टाइवर नदी में छोड़ दिया जाता था. यही दशा सिल्विया और उस के दोनों पुत्रों की हुई, परन्तु वे बच गये, जिन का पोषण एक जंगली कुतिया ने अपना दूध पिला कर किया था.

८-पेनिलोप=यूनान के प्रसिद्ध वीर युलिसिस की स्त्री. जिस समय उस का पति ट्रॉय नामक नगर (एशिया माइनर में) के युद्ध में कई बरसों तक लगा हुआ था. उस समय कई पुरुषों ने उस की प्रीति संपादन करने की चेष्टा की थी, परन्तु उस ने अपनी युक्ति से उन सब को निराश कर दिया था.

९—जयसलमेर में ही नहीं किन्तु राजपूताना की दूसरी रियासतों में भी बड़े पुत्र के विद्यमान होने पर भी कभी कभी छोटे पुत्र के राज्य पाने के उदाहरण मिल जायेंगे, परन्तु यह कोई ऐसी साधारण रीति नहीं थी. किसी कारण विशेष से ही कभी कभी ऐसा हुआ है.

१०—ऐमॉक=अफ़ग़ानिस्तान के हिरात प्रदेश के उत्तरी भाग तथा ईरान के एक हिस्से में बसनेवाली एक जाति, जो प्राचीन काल में एक ही नियत स्थान में नहीं रहती थी, किन्तु अपने पशुओं के साथ अलग अलग स्थानों में भ्रमण किया करती थी.

११—टॉडसाहिब ने भारत युद्ध, अर्थात् युधिष्ठिर का समय वि० संवत् के प्रारंभ से ११०० वर्ष पूर्व माना है, परन्तु ऐसा मानने के लिये कोई प्राचीन लिखित प्रमाण नहीं मिलता. भागवत और विष्णुपुराण

में परीक्षित के जन्म से लगाकर नंद के राज्याभिषेक तक १०१५ वर्ष व्यतीत होना लिखा है, और राजा नंद से १०० वर्ष पीछे मौर्य वंश के राजाचन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक हुआ था, जिस ने ई० सन् से पूर्व ३२१ में राज्य पाया था, अतएव युधिष्ठिर का समय कम से कम वि० संवत् से १३८० वर्ष पूर्व होना मानना पड़ता है. कोई उस का कलियुग के प्रारंभ में और कोई कलियुग के ६५३ वर्ष बीतने पर होना भी मानते हैं—(देखो प्राचीन लिपिमाला पृष्ठ २१).

१२—विक्रमादित्य किस वंश का था यह निश्चित नहीं है. कोई उस को तंवर और कोई परमार बतलाते हैं, और आधुनिक शोधक उस को गुप्तवंश का राजा चन्द्रगुप्त दूसरा अनुमान करते हैं, जिस का उपनाम विक्रम वा विक्रमादित्य था.

१३—महाभारत से पाया जाता है कि युधिष्ठिर ने परीक्षित को राज्य सिंहासन पर विठलाया उस के पूर्व कृष्ण और बलदेव का स्वर्ग वास हो चुका था. राजतरंगिणी के कर्त्ता जैन पंडित विद्याधर का यह उल्लेख भ्रमपूरित है.

१४—महाभारत में बलदेव का देहान्त कृष्ण से पूर्व होना लिखा है. अतएव उन (बलदेव) का युधिष्ठिर के साथ जाना संभव नहीं हो सकता.

१५—राजतरंगिणी तथा राजावली के आधार से देहली के राजाओं की राजपाल तक की जो नामावली टॉडसाहिब ने दी है उस की पुष्टि (भाटनामों के सिवाय) न तो पुराणों से और न शिलालेखादि से होती है. इसी तरह उन्हों ने उन राजाओं के विषय में जो कुछ लिखा है वह भी संशयरहित नहीं है, अतएव जब तक किसी प्राचीन विश्वास योग्य प्रमाण से उस का ठीक होना सिद्ध न हो तब तक हम उस पर विश्वास नहीं कर सकते.

१६—टॉडसाहिब ने भारतवर्ष के प्राचीन राजाओं के नामों को यूरोप के प्राचीन राजाओं के तथा बाइबल में लिखे हुए नामों से मिलाने की खेंचताण बहुत की है. युधिष्ठिर और यूनान के युरिस्थिनीस का

एक होना अनुमान किया है, जो स्वीकार करने योग्य नहीं है. यही यवन के लिये भी कहा जा सकता है. पुराणों में ययाति से १२वीं पीढ़ी में यवन नामक राजा का होना लिखा नहीं मिलता.

१७-बलदेव का वस्त्र सिंह की खाल नहीं किन्तु नीले रंग का वस्त्र है, और उसी से उन का 'नीलांबर' नाम प्रसिद्ध हुआ है. टॉडसाहिब ने हर्क्यूलीज़ से मिलाने के लिये सिंह की खाल की कल्पना की है.

१८-पृथ्वीराज का जन्म वि० संवत् १२१५ में नहीं, किन्तु संवत् १२२५ के आस पास होना चाहिये, क्योंकि पृथ्वीराज की विद्यमानता के समय के बने हुए 'पृथ्वीराज विजय' नामक काव्य में, जिस की टीका जोनराज (कश्मीर के इतिहास राजतरंगिणी के दूसरे भाग के कर्ता) ने की है, लिखा है कि सोमेश्वर के देहान्त समय पृथ्वीराज बालक था, जिस से उस की माता कर्पूर देवी ने अपने प्रधान कादंब (कदंब वंशी) वाम की सहायता से राजकार्य चलाया था. सोमेश्वर का देहान्त वि० संवत् १२३६ में हुआ था, इसलिये यदि पृथ्वीराज का जन्म संवत् १२१५ में होना माना जावे तो सोमेश्वर के देहान्त समय उस का वय २१ वर्ष का होना मानना पड़ेगा. ऐसी अवस्था में वह राजकार्य करने को समर्थ न हो यह संभव नहीं.

१९-पृथ्वीराज के पीछे देहली पर मुसल्मानों का अधिकार हुआ था न कि गहरवारों का.

२०-शिशुनाग को तक्षकनाग मानकर टॉडसाहिब ने तक्षनाग देश से उक्त वंश का आना मान लिया है, परन्तु पुराणों में जहां शिशुनाग वंश का वर्णन है वहां पर तक्षनाग देश का कोई उल्लेख नहीं है.

२१-जरासंध के वंशजों के पीछे शिशुनागवंशी राजाओं ने मगध पर राज्य किया था न कि वे पाण्डु के गद्दी के मालिक हुए.

२२-टॉडसाहिब ने शिशुनाग तथा मौर्य (मोरी) वंशी राजाओं का तक्षक (नाग) वंशी होना माना है, परन्तु ऐसा मानने के लिये कोई प्रमाण नहीं है. बौद्ध और जैन ग्रंथ दोनों का शूद्रवंशी होना बताते हैं.

२३–शुंग नाम को भ्रम से शृंग पढ़ कर टॉडसाहिब ने शुंगवंशी राजाओं का शृंगदेश से आना लिख दिया है, परन्तु पुराणों में ऐसा कहीं लिखा नहीं मिलता.

२४–पुराणों में लिखा है कि शुंगवंश के अन्तिम राजा देवभूति को उस के कण्ववंशी मंत्री वसुदेव ने मार डाला था जिस का पुत्र भूमिल (भूतिमित्र) था.

२५–अरेक्सीज़, अरास (Aras) नदी का प्राचीन नाम है, जो रूसी आर्मीनिया प्रदेश में वहती है, और कूरनदी के साथ मिलकर कास्पियन सागर में गिरती है.

२६–कृष्ण का शूद्राणी से उत्पन्न होना पुराणों में नहीं लिखा, किन्तु उक्तवंश (आंध्रवंश) को वृषल (शूद्र) लिखा है. उक्तवंश का पहिला राजा कृष्ण नहीं, किन्तु सिमुक था, जिस का काण्वदेश से आना भी पुराणों में लिखा नहीं मिलता.

२७–टॉडसाहिब ने यहां पर छः वंशावलियां देना लिखा है, परन्तु नक़्शे में सात दी हैं. इसी तरह कहीं कहीं प्रकरण तथा नक़्शे में दी हुई नामों की संख्या में भी फ़र्क़ है, अर्थात् प्रकरण में कुछ है तो नक़्शों में कुछ औरही है.

२८–सुलोमधी के राज्य की समाप्ति ई०सन् ५४६ में नहीं, किन्तु ई० सन् २०० के पूर्व हो चुकी थी. पुराणों में राजाओं की क्रमशः नामावली तो आंध्रवंश के अन्तिम राजा सुलोमधी तक की मिलती है परन्तु उन में सुलोमधी से बहुत पीछे प्रयाग, साकेत (अयोध्या) और मगध देशों पर गुप्त वंशियों का अधिकार रहना भी लिखा है. गुप्तवंश के राजा चन्द्रगुप्त प्रथम के समय, जिस का राज्याभिषेक ई० सन् ३२० में हुआ था, गुप्तों के आधीन येही प्रदेश थे. उस के पीछे गुप्तराज्य दूर दूर तक फैला था, अतएव यदि टॉडसाहिब के विचारानुसार हिन्दुओं के प्राचीन इतिहासों (पुराणों) का नवीन संस्कार हुआ होतो वह सन् ई० की चौथी शताब्दी में होना चाहिये न कि छठी में.

२९–ब्रह्मगुप्त ने 'ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त' शक संवत् ५५० (वि०सं६८५

=ई० सन् ६२८) में रचा था. ई०सन् ५२७ में ब्रह्मगुप्त का होना पाया नहीं जाता.

३०–रोहोबोम सौलोमन का पुत्र और जूडा का बादशाह था. उस के पिता [सौलोमन] ने कई कुचाल की बातें प्रचालित की थीं, जिस से उस की प्रजा असन्तुष्ट हुई थी, और उस के मरने बाद उस के पुत्र रोहोबोम के समय उस की प्रजा में से १०जातियों ने विद्रोह किया था.

३१–जेरूसलम = एक प्राचीन नगर, जो एशियामाइनर में है.

३२—जिडा = एशियामाइनर के एक विभाग का नाम, जो पहिले एक स्वतंत्र राज्य था.

३३–सार्डानापोलस = आसीरिया का एक बादशाह.

३४–आसीरिया एशियामाइनर के एक प्राचीन राज्य का नाम था.

३५–मीडिया = एशिया खण्ड के पश्चिमी विभाग का एक प्राचीन राज्य.

३६ – यूनान के स्पार्टा नगर को लेसिडिमन या लेसिडिमोनिया भी कहते थे.

३७–प्राचीन समय में यूनान देश में प्रति पांचवें वर्ष शारीरिक बल प्रगट करनेवाले खेल हुआ करते थे जो " ओलिंपिक गेम " कहलाते थे, और उन के बीच के ४ वर्ष के काल को ' ओलिंपियड ' कहते थे.

३८–ईरान के दारा और अनहिलवाडा के चामुंड का राजत्वकाल समान नहीं था, क्योंकि चामुंड ने १३ वर्ष के करीब राज्य किया था, जिस को टॉडसाहिब ने भी अपनी पुस्तक ' ट्रैवलस इनवेस्टर्न इंडिया ' (पृ० १५०) में स्वी किया है, और दारा प्रथम ने ३६, दूसरे ने १९, और तीसरे ने ५ वर्ष राज्य किया था.

३९–ईसाइयों के मतानुसार महाप्रलय के बाद से संसार की उत्पत्ति मानी गई है.

—o—

प्रकरण छठां ।

विक्रमादित्य के पीछे की राजपूत जातियों का वंशावलीसम्बन्धी इतिहास. विदेशी जातियां, जिन्हों ने भारत में प्रवेश किया. सीथिया वालों, राजपूतों, और स्कैंडिनेविया की जातियों का परस्परीय मिलान.

इस प्रकार भारत की प्राचीन वीर जातियों का वंशावलीसम्बन्धी इतिहास, प्रारंभिक काल से युधिष्ठिर और कृष्ण के समय तक, और उन के समय से विक्रमादित्य के समय और आज दिन तक का लिखकर उन जातियों के विषय में, जिन्हों ने उक्त समयान्तर में भारत पर आक्रमण किया, और अब राजस्थान के ३६ राजवंशों में गिनी जाती हैं, कुछ विचार प्रगट करना अनुचित न होगा कि जिस से कतिपय आश्चर्यजनक सादृश्य दिखाने का अवसर मिलेगा.

जिन जातियों का उल्लेख यहां पर किया गया है वे हय वा अश्व, तक्षक और जिट वा जिटी (git or Gete) हैं; जिन के देवताओं, उन की आरंभिक वंशावलियों के नामों, तथा और बहुत सी दूसरी बातों में सादृश्य होने से इस कथन का सिद्ध होना पाया जाता है, कि वे और चीनी, तातारी, मुग़ल, हिन्दू और सीथियन जातियां एक ही मूल से निकली हैं.

यद्यपि इन जातियों के हिन्दुस्तान में आने का समय ठीक ठीक नहीं बताया जा सकता, तो भी जिन

प्रदेशों से वे आई हैं वे बड़ी आसानी से निश्चित हो सकते हैं.

अब हम को तातारियों और मुग़लों की उत्पत्ति का, जैसी कि उन के इतिहास लिखनेवाले अबुलग़ाज़ी ने दी है, पुराणों में लिखी हुई उन जातियों की उत्पत्ति के साथ, जिन का वर्णन हम कर रहे हैं, मिलान करना चाहिये.

तातारियों के आदि पुरुष का नाम मुग़ल था. उस का पुत्र ओगज़ ⊙ [Ogz] था, जो उत्तरी प्रदेशों की उन सब जातियों का मूल पुरुष हुआ जो तातारी और मुग़ल कहलाती हैं.

ओग्ज़ या ओगज़ के छः पुत्र+ थे. पहिला किउन ✡ [Kin] अर्थात् पुराणों में लिखा हुआ सूर्य; दूसरा अय § [Ai] पुराणों में दिया हुआ चन्द्र या इन्दु.

पिछला नाम आयु, पुराणों में लिखे हुए चंद्रवंश के एक पुरखा का नाम भी है.

सब तातारी लोग अपने को आयु वा पुराणों में लिखे हुए चंद्र अर्थात् इन्दु का वंशज बतलाते हैं. इसी से उन लोगों में जर्मन लोगों की नाईं चन्द्रमा सदैव नरदेवता माना जाता था.

तातारी अय के जुल्डस [Juldus] नामक एक पुत्र था. इस का पुत्र ह्यू [Hyu] था, जिस की औलाद * में चीन का सब से पहिला राजवंश था.

पौराणिक आयु के एक पुत्र यदु (जिसे जदु भी कहते हैं) था, जिस के तीसरे लड़के ह्यू से हिन्दू-वंशावली लेखक किसी वंश का निकलना नहीं मानते; और उस के द्वारा चीनी लोग अपने को इन्दु * की औलाद बता सकते हैं.

एलखां (अय के नवें वंशधर) के दो पुत्र थे. पहिला काइयान [Kaian]; और दूसरा नगस [Nagas] जिस के सन्तान सारे तातार में बस गये.

चंगेज़खां अपने को काइयान के वंश में होना मानता था.

संभव है कि नगस पुराणों और तातारी वंशावली

---

* सर विलियम जोन्स कहते हैं कि चीनवाले अपने को हिन्दुओं से निकला बतलाते हैं. परन्तु मिलान करने से ये दोनों इन्दु जातियां सीथियन लोगों से उत्पन्न हुई सिद्ध होती हैं [?]

लेखकों के तक्षक वा नागवंश * का संस्थापक था. जिस को डी गिगनीस [De Guignes] ने तकयुक मुग़ल लिखा है.

इन तीन जातियों की वंश विषयक उत्पत्ति इस प्रकार एक दूसरे से मिलती हुई है. अब हम को उन के देवताओं की उत्पत्ति के वर्णन का मिलान करना चाहिये, जिस में प्रत्येक ने चन्द्रवंश के संस्थापक की उत्पत्ति कल्पित रीति से लिखी है.

प्रथम—पुराण सम्बन्धी कथा—"इला (पृथ्वी) जो सूर्यपुत्र इक्ष्वाकु की कन्या थी, एक समय जब कि वह जंगल में घूम रही थी, बुधने उस को पकड़ कर उस के साथ बलात् जारकर्म किया, जिस से इन्दुवंश की उत्पत्ति हुई."

दूसरा—चीनियों का अपने पहिले बादशाह यू (आयू) की उत्पत्ति का वृत्तान्त. "एक तारे † (Mercury or Fo=बुध वा फो) का उस की माता के साथ यात्रा के समय समागम हो गया, और उस को गर्भ रह गया, जिस से 'यू' की उत्पत्ति हुई, जिस ने

---

* नाग वा तक्षक संस्कृत में सांप को कहते हैं, जो बुध का चिन्ह है. नाग जाति के लोगों ने जो भारत में बहुत प्रसिद्ध हैं, और जो सीथिया के तक्षक वा तकियक हैं, ईसा की छः शताब्दि [?] पहले भारत पर आक्रमण किया था [१].

† De Guignes, 'Surles Dynasties des Huns' vol. 1 P. 7.

चीनियों के प्रथम राजवंश को चलाया. यू ने चीन को नौ भागों में विभक्त किया, और वह ईसा से २२०७ * वर्ष पूर्व राज्य करने लगा.

इस प्रकार तातारियों का अय, चीनियों का यू, और पुराणों का आयु, ये तीनों नाम उपर्युक्त तीनों जातियों के बड़े पुरुषा इन्दु (चन्द्र) को स्पष्ट रूप से प्रगट करते हैं.

इन्दु वा चन्द्र का पुत्र बुध प्रथम पुरुखा और धर्मगुरु हुआ; इसी तरह यही पद 'फो' को चीन में प्राप्त हुआ; और वोडन और ट्यूटेटीस + [Teutates] उन जातियों के पुरुखा और धर्मगुरु हुए जो यूरोप को गईं.

इस से यह सिद्ध होता है कि बुद्धधर्म्म अवश्य इन जातियों का समकालीन होगा; और यह कि वह [धर्म्म] खास भारत में उन्हीं लोगों द्वारा लाया गया, और कृष्ण, तथा सूर्य का मत अर्थात् बलके उपासकों के प्रगट होने तक उन लोगों में यही मत प्रचलित रहा, और जब समय पाकर उन्हों ने बुद्ध के अनुयायियों को दबा दिया तो उक्त धर्म्म का रूपान्तर होकर वर्त्तमान काल का सौम्य रूप जैन धर्म्म बन गया.

---

* पुराणों से गणित करके निकाले हुए समय के लगभग.

+ 'तात' संस्कृत में पिता को कहते हैं. मश्र—थ्यूथस, और टॉथ मिसर में बुध को कहते हैं.

[Napas] थे (प्रश्न-क्या यह तातारियों की वंशावली का नागवंश है ?), जो अपने बड़े बड़े कामों के लिये प्रसिद्ध थे, और जिन्हों ने देशों को बांटा था; और उन के नाम से जातियों के नाम पालियन * (पाली ?) और नेपियन पड़े. वे अपनी सेना मिसर में नील नदी तक ले गये, और उन्होंने बहुतसी जातियों को अपने आधीन किया. उन्होंने सीथियन साम्राज्य को पूर्वीय महासागर, कास्पियन समुद्र और मोइटिस [Mœoties] झील तक बढ़ाया. उस जाति के अनेक राजा थे जिन के वंश में सैकेन्स (सैंकी), मैसजेटी (जट वा जिट), एरीआस्पियन (एरियां के अश्व लोग), और अनेक अन्य जातियां हैं. उन्होंने असीरिया और मीडिया+ [Media] को विजय करके राज्य को उलट पलट कर दिया, और वहां के निवासियों को अरक्सीज़ नदी के पासवाले प्रदेश

* प्रश्न-क्या सीथिया के पाली लोग मिसर के गडरिये नहीं हो सकते हैं ? पाली अक्षर अब भी वर्त्तमान हैं, और वे वैसेही दीख पड़ते हैं, जैसे कि बौद्धों के शिलालेखों के प्राचीन टुकड़ों में हैं, जो मेरे पास हैं. बहुत से अक्षर कॉप्टिक [Coptic] लिपी से मिलते हैं.

+ चन्द्रवंशी अश्वजाति की तीन बड़ी बड़ी शाखा "मीढ" की पदवी धारण करती हैं, जैसे पुरमीढ, अजमीढ, और देवमीढ. प्रश्न-असीरिया, और मीडिया पर आक्रमण करनेवाले अश्वजाति के लोग जो बाजस्व के पुत्र थे, जब पांचालिक देश से, जहां पर उन का पैतृक स्थान था, चलकर सिन्धु नदी के पश्चिम के देशों में आये जहां पर उन का मेद्या में बढ़ जाना स्पष्ट रीति से कहा गया है ?

में लेजाकर बसाया और उन का नाम सौरो-मेशियन ⊛ [sauro-Matians] रक्खा."

जो कि सकी, जट, अश्व, और तक्षक ऐसे नाम हैं, जो हमारे छत्तीस राजवंशों में आगये हैं, और यूरोप की आरंभिक सभ्यता के समय की अन्यजातियों में भी मिलते हैं, इसलिये हम को उन के असली निवासस्थान के विषय में और भी प्राचीन प्रमाण खोजने चाहिये.

स्ट्रेबो † कहता है कि "कास्पियन झील के पूर्व की सारी जातियां सीथिक कहलाती हैं. उन में से डाही ‡ जाति उस समुद्र के निकट बसती है. मैसेजेटी (बड़ेजट) और सेकी और भी पूर्व की ओर बसती हैं; परन्तु प्रत्येक जाति का एक खास नाम है. ये सब की सब एक ही नियत स्थान पर रहनेवाली नहीं हैं; परन्तु इन भ्रमण करनेवाली जातियों में से सब से अधिक प्रसिद्ध असी § [Asi] पासियानी [Pasiani], टाचरी [Tachari], सेकरेन्ली [Sacaranli] हैं, जिन्हों ने यूनानियों से बाक्ट्रिया ले लिया था, इन

⊛ सूर्यपूजक सूर्यवंशी.

† स्ट्रेबो Lib. ११, पृष्ठ २५४.

‡ दाहिया जाति (३६ वंशों में एक वंश) अब लुप्त हो गई.

§ शकद्वीप की असी और टाचरी जातियां पुराणों में दी हुई अश्व और तक्षक या तुरुष्क नाम में हैं.

शकों * (जातियों) ने एशिया में वैसी ही चढ़ाइयां की हैं जैसी कि किमेरियन [Cimmerians] लोगों ने की थीं; इस प्रकार उन लोगों का वाक्ट्रिया को अपने आधीन कर लेना ज्ञात हुआ है; और ऐसे ही आर्मीनिया [Armenia] के सर्वोत्तम प्रदेश को भी, जो उन के नाम से सैकेसेनी † [Sacasenœ] कहलाता है.

अब हम इस बात को दर्याफ्त करने के लिये नहीं ठहरेंगे कि राजस्थान की कौन कौन सी जातियां इन्दु-वंश के अश्व और मीडियों की सन्तान हैं, जिन के नये नये नाम हो गये हैं, परन्तु हम अपनी कल्पना को केवल चढ़ाइयों के विषय में ही लगावेंगे, और कुछ प्रमाण इस विषय का देंगे कि वे चढ़ाइयां [इस देश पर] उसी समय में हुईं, जब कि उस दल ने यूरोप में प्रवेश किया. इसी से राजपूतों और यूरोप की आदि काल की जातियों का एक ही मूल से उत्पन्न होने का सिद्धान्त निकल सकता है; जिस के पुष्ट करने में उन के देवी देवताओं की आख्यायिकाओं, वीरता की रीतों और कविता, भाषा और गान तथा शिल्प की सुन्दरता में भी परस्पर समानता होना दिखाया जा सकता ‡ है.

---

* एक बार मैं और कहूंगा कि सकी शब्द को संस्कृत में 'शाखा' लिखते हैं, जिस का शब्दार्थ शाख वा जातियां है.

† "सैकेसेनी लोग सैक्सन लोगों के पुरखा थे." – टर्नर साहिब का एँग्लो सैक्सन जाति का इतिहास.

‡ हेरोडॉटस (Melpomene P. 190) कहता है:– " कि मेरियन

इन्डू-सीथिक जेटी, तक्षक, और असी जातियों का प्रथम भारत में आना और शेशनाग (तक्षक) का शेशनाग देश (टोचारिस्थान?) वा शेशनाग से आना जिस का समय हिसाब लगाने से सन् ईसवी की छः शताब्दी पहिले ठहरता है, पहिले पहिल पुराणों में सूचित किया गया है, इसी समय के लगभग इन्हीं जातियों ने एक बड़ी चढ़ाई कर के एशिया माइनर को विजय किया, और अन्त में स्केंडिनेविया को; और असी व टाचरी जाति ने बाक्ट्रिया के यूनानी राज्य को उलट पलट कर दिया. उस के थोड़े ही समय पीछे रोमन

लोगों पर असी, * काटी [Catti] और किम्बरी जातियों ने बाल्टिक समुद्र के तट पर से आक्रमण किया.

"यदि हम जर्मन लोगों को आदि में सीथियन वा गॉथ (जेटी वा जिट) होना सिद्ध कर सकें, तो शासन-प्रणाली और रीत भांत आदि की उत्पत्ति के विषय में अन्वेषण करने योग्य विषयों का एक विस्तृत क्षेत्र मिलेगा; यूरोप की सारी पुरानी बातों का रूप ही नया हो जायगा, और उन का जर्मनवालों के गिरोहों से पता लगाने के स्थान पर, जैसा कि मॉण्टेस्क्यू [Montesquieu] और बड़े बड़े लेखकों ने अब तक किया है, उन का पता सीथियन आदि लोगों की रीत भांत के विस्तारपूर्वक वर्णनों से, जो हेरोडॉटस ने लिखे हैं, लगाया जा सकता है. ईसा से पांच सौ वर्ष पूर्व सीथियन लोगों ने स्कैंडिनेविया को अपने अधिकार में कर लिया था. ये सीथियन लोग मर्क्यूरी (बुध), वोडन वा ओडिन को पूजते थे, और अपने तई उस का सन्तान होना मानते थे. गॉथ लोगों की देवकथाओं का मिलान करने से वे यूनानियों की पाई जाती हैं, जिन के देवता-

---

* असी वह शब्द है जो जेटी, यूट वा जट लोगों के लिये उस समय व्यवहार किया जाता था, जब कि उन्हों ने स्कैंडिनेविया पर आक्रमण किया, और यूटलैंड वा जटलैंड बसाया. See 'Edda' Mallets' Introduction.

गण केलस और टेरा (Cœlus and Terra=बुध और इला) के सन्तान थे. वन की देवियां, और वन के देवता, और परियां एवम् यूनान और रोम की सारी मिथ्या विश्वास की बातें स्कॉडिनेवियावालों के विश्वास में पाई जा सकती हैं. गॉथ लोग बलि के हृदय से शकुन लेते थे, और भविष्यद्वाणियां कहनेवाले स्त्रीपुरुषों पर विश्वास करते थे, और फ्रेया [Freya] को वीनर्स [Venus] के स्थान पर और वल्कोइरी [Valkyrie] को पारेसी [Parcæ] के स्थान पर मानते थे." *

इन देवकथाओं की समानता का पता लगाने से पहिले हम को चाहिये कि प्राचीन यूरोप की जातियों और सीथियन राजपूतों के एक ही मूल से निकलने के विषय को सिद्ध करने के लिये कुछ और भी सम्मतियां लिखें.

अबुल्गाज़ी की पुस्तक के अनुवादक अपनी भूमिका में लिखता है कि–"हम लोग जो तातारियों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं वह [घृणा] कम हो जायेगी, यदि हम लोग यह विचार करें कि हमारा उन के साथ कितना निकटवर्ती सम्बन्ध है, और यह कि हम लोगों के पुरखा पहिले पहिल एशिया के उत्तर से आये, और हमारा चाल चलन, व्यवहार, कानून और रहन सहन पहिले

* हिस्ट्री [illegible] का [illegible] जिल्द २ पृ० ९५.

वैसा ही था जैसा कि उन का. सारांश यह कि हमलोग तातारियों की एक नई वस्ती मात्र हैं.

' वे लोग तातार से आये थे, जिन्हों ने क्रमशः किम्ब्रियन * [Cymbrians], केल्ट [Kelts], और गॉल [Gauls] के नाम से यूरोप का सारा उत्तरीय भाग जीत लिया था. गॉथ [Goths] हन् [Huns=हूण], एलन [Alans], स्वीड [Swedes] वांडल [Vandals] फ्रैंक [Franks] एक ही छत्ते की मक्खियां होने के सिवाय और क्या थे? स्वेडन [Sweden] के इतिहासों के देखने से जान पड़ता है कि स्वीड + लोग काशगर[23] से आये थे, और सैक्सन

---

* अबुलगाज़ी कहता है कि कैमेरी [Camari] जैफेट के आठ पुत्रों में से एक था; और उसी से कैमेरी; किमेरियाई [Cimmerii] वा किम्बरी [Cimbri] की उत्पत्ति है. कैमेरी सौराष्ट्र की जातियों में से एक जाति है.

+ सुइयोनीज़ [Suiones], सुएवी [Suevi], वा सू [Su] अर्थात् सू, यूची [Yuchi] वा यूटी [Yuti] जातियां डि गिगनीज़ के लेखानुसार जेटी हैं. मॉर्कोपोलो [Marco-Polo] काशगर को, जहां पर कि वह छठीं शताब्दी में था, स्वीड लोगों की जन्मभूमि बताता है; औ डी ला क्रॉइक्स [De la Croix] भी कहता है, कि सन् १६९१ में स्पर्विनफ़ेल्ट [Sparvenfeldt] ने, जो पैरिस में स्वेडन का राजदूत था, मुझ से कहा कि उस ने स्वेडन के इतिहासों में पढ़ा है कि काशगर उन का देश था. जब हूण लोग उत्तरीय चीन से खदेड़े गये तो उन का अधिकतर भाग उन दक्षिणीय देशों में चला गया, जो

गण केलस और टेरा (Cœlus and Terra=बुध और इला) के सन्तान थे. वन की देवियां, और वन के देवता, और परियां एवम् यूनान और रोम की सारी मिथ्या विश्वास की बातें स्कैंडिनेवियावालों के विश्वास में पाई जा सकती हैं. गॉथ लोग वलि के हृदय से शकुन लेते थे, और भविष्यद्वाणियां कहनेवाले स्त्रीपुरुषों पर विश्वास करते थे, और फ्रेयॉ [Freya] को वीनर्स [Venus] के स्थान पर और वल्कीइरी [Valkyrie] को पारेंसी [Parcœ] के स्थान पर मानते थे." *

इन देवकथाओं की समानता का पता लगाने से पहिले हम को चाहिये कि प्राचीन यूरोप की जातियों और सीथियन राजपूतों के एक ही मूल से निकलने के विषय को सिद्ध करने के लिये कुछ और भी सम्मतियां लिखें.

अबुलग़ाज़ी की पुस्तक के अनुवादक अपनी भूमिका में लिखता है कि-" हम लोग जो तातारियों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं वह [घृणा] कम हो जायेगी, यदि हम लोग यह विचार करें कि हमारा उन के साथ कितना निकटवर्त्ती सम्बन्ध है, और यह कि हम लोगों के पुरखा पहिले पहिल एशिया के उत्तर से आये, और हमारा चाल चलन, व्यहार, क़ानून और रहन सहन पहिले

* पिंकर्टन [Pinkerton] का लेख गॉथ लोगों के विषय में, जिल्द २ पृ० ९४.

वैसा ही था जैसा कि उन का. सारांश यह कि हमलोग तातारियों की एक नई वस्ती मात्र हैं.

' वे लोग तातार से आये थे, जिन्हों ने क्रमशः किम्ब्रियन * [Cymbrians], केल्ट [Kelts], और गॉल [Gauls] के नाम से यूरोप का सारा उत्तरीय भाग जीत लिया था. गॉथ [Goths] हन् [Huns=हूण], एलन [Alans], स्वीड [Swedes] वांडल [Vandals] फ्रैंक [Franks] एक—ही छत्ते की मक्खियां होने के सिवाय और क्या थे? स्वेडनें [Sweden] के इतिहासों के देखने से जान पड़ता है कि स्वीड + लोग काशग़र से आये थे, और सैक्सन

---

* अबुलग़ाज़ी कहता है कि कैमेरी [Camari] जैफ़ेट के आठ पुत्रों में से एक था; और उसी से कैमेरी, किमेरियाई [Cimmerii] वा किम्बरी [Cimbri] की उत्पत्ति है. कैमेरी सौराष्ट्र की जातियों में से एक जाति है.

+ सुइयोनीज़ [Suiones], सुएवी [Suevi], वा सू [Su] अर्थात् सू, यूची [Yuchi] वा यूटी [Yuti] जातियां डि गिगनीज़ के लेखानुसार जेटी हैं. मॉर्कोपोलो [Marco-Polo] काशग़र को, जहां पर कि वह छठीं शताब्दी में था, स्वीड लोगों की जन्मभूमि बताता है; औ डी ला क्रॉइक्स [De la Croix] भी कहता है, कि सन् १६९? में स्पर्विन्फ़ेल्ट [Sparvenfeldt] ने, जो पैरिस में स्वेडन का राजदूत था, मुझ से कहा कि उस ने स्वेडन के इतिहासों में पढ़ा है कि काशग़र उन का देश था. जब हूण लोग उत्तरीय चीन से खदेड़े गये तो उन का अधिकतर भाग उन दक्षिणीय देशों में चला गया, जो

[Saxon] तथा किप्चक भाषा के बीच बड़ा सम्बन्ध है; और केल्टिक [keltick] भाषा जो अब तक ब्रिटनी [Britany] और वेल्स [Wales] में बोली जाती है, इस बात का प्रमाण है, कि वहां के निवासी तातारी जातियों के सन्तान हैं. "

३०° और ५०° उत्तर अक्षांश, और ७५° से लेकर ६५° अंश पूर्व देशान्तर के बीच, मध्य एशिया की उच्च भूमि से; जो उष्णप्रधान विषुवत रेखा से तथा शीतप्रधान उत्तरीय ध्रुव वृत्त से समान ही दूर है, ये जातियां चली चली यूरोप और सिन्धु नदी के इस पार आईं. अतएव हम लोगों को सिन्धु के परे चलकर पैरोपैमिसन को लांघ कर के जैगज़ार्टीज़ वा जेहून पर होकर सकिटाई ० वा शाकद्वीप में पहुंचना

यूरोप से मिले हुए हैं. शेष लोग सीधे ऑक्सस [Oxus] और ज़ैगज़ार्टीज़ के किनारे चले गये; वहां से वे कास्पियन समुद्र के तटस्थ देशों में और फ़ारिस के सीमान्त प्रदेशों में फैल गये. मावेरुन्नहर (Transoxiana=आक्सस नदी के परे का देश) में वे यू, यूची, वा जेटी लोगों के साथ मिल गये, जो विशेष पराक्रमशाली थे, और यूरोप में भी फैल गये थे. कोई यह समझेगा कि वे उन्हीं जेटियों के पूर्व पुरुखा हैं जो यूरोप में प्रसिद्ध थे. इसी तौर पर यू लोगों के कई एक गिरोह यूरोप के उत्तर में भी गये होंगे जो सुएवी कहलाये.

° मिस्टर पिंकर्टन ने अपने शोध से सकिटाई का पता लगाया है, यद्यपि पुराणों के शाकद्वीप के लिये उन्हों ने कोई प्रमाण (डि एनविल = D Anville का) नहीं दिया है! " सकिटाई, ऑक्सस और जैग-

चाहिये, और वहां से एवम् डेरटी किपूचक से तच्चक, जेटी, कैमेरी, कट्टी, और हूण लोगों को हिन्दुस्तान के मैदानों में लाना चाहिये.

हम को इन अजान प्रदेशों से बहुत से विषयों की जानकारी प्राप्त करना है जहां पर प्राचीन काल में सभ्यता ने स्थान पाया था, और चंगेज़ ख़ां के आक्रमण के समय तक भी इन में बड़े बड़े नगर विद्यमान थे. यह सोचना भूल है कि एशिया की उच्च भूमि की जातियां केवल चरवाहा मात्र थीं; और डी गिगनीज़ हम को प्राचीन प्रमाणों के आधार से सूचित करते हैं, कि जब सू लोगों ने यूची वा जिट लोगों पर आक्रमण किया, तो उन लोगों ने सौ से अधिक ऐसे नगर पाये, जिन में भारत की सौदागरी की वस्तुएं थीं, और उन में वहां के राजाओं की मूर्ति से अंकित सिक्के प्रचलित थे.

सन् ईसवी से बहुत पहिले मध्य एशिया की यह दशा थी, यद्यपि उन बर्बाद करनेवाली लड़ाइयों के

ज़ार्टीज़ नामक नदियों के निकास पर का प्रदेश है, जो सैकी लोगों के कारण सकिटा कहलाता है." —D'Anville Anc. Geog.

जैसलमेर के यदु लोग जो जाबुलिस्तान का शासन करते थे, और जिन्हों ने गज़नी बसाई थी, चँगताई लोगों को अपनी ही इन्दु जाति होना मानते हैं. यह ऐसा दावा है कि जो विना गहरे विचार के मानने योग्य प्रतीत नहीं होता, परन्तु उसे मैं अब विश्वास के योग्य समझता हूं.

कारण जो इन देशों में होती रहीं, और जिन का नमूना यूरोप में नहीं पाया जाता, अब यह देश निर्जन और उजाड़ हो रहा है. आधुनिक समय में जेटिक कौम के साथ तीमूर की लड़ाइयां उस के लोभी पुरखाओं के संहारकारी जीवन व्यवहार का उदाहरण होंगी.

ईसा से छः शताब्दी पहिले साइरस [Cyrus] के समय में इस बड़ी जेटिक जाति के राजकीय प्रभाव की सीमा को यदि हम लोग जाँचें तो हम को जान पड़ेगा कि तीमूर के उन्नति प्राप्त करने पर इन कौमों का बल कुछ भी न्यून नहीं हुआ, यद्यपि २० शताब्दी का समय बीत चुका था. उस समय (सन् १३३० ई०) में जेटिक जाति के अन्तिम राजा तुग़लक़ तीमूरख़ां के शासन-काल में चग़ताई * सल्तनत की पश्चिमी सीमा डेश्टी किपूचिक और दक्षिणीय जैग़ज़ार्टीज़ वा जेहून नदी थी, जिस के किनारे पर जेटी जाति के ख़ान की, जो टोमिरिस [Tomyris] के सदृश था, राजधानी थी कोजेण्ट ताश्कन्द, उट्रार, † साइरोपोलिस, और सब से उत्तरी इस्कन्दरिया चग़ताई सल्तनत की सीमा के अन्तर्गत थे.

---

* चग़ताई वा सकटाई, जो पुराणों का शाकद्वीप है (जिस को यूनानियों ने बिगाड़कर सीथिया कर दिया है), "जिस के निवासी सूर्य का पूजन करते हैं; और जहां से अरवर्मा नदी का निकास है."

† ऊट्रार [Ootrar] सम्भवतः प्राचीन भूगोल का ओटोराकुरी [Ottoracuru] है. (उत्तरी) + कुरु (वंश) इन्दु वंश की एक शाखा.

जेटी, जोट, वा जिट, और तक्षक जातियां, जो हिन्दुस्तान के छत्तीस राजवंशों में शामिल हैं, सब की सब सकटाई प्रदेश से आई हुई हैं. सब से पूर्वकाल में उन के स्थानान्तरित होने के विषय का पता हम पुराणों से लगावेंगे; परन्तु उन के आधुनिक समय के हमलों के विषय में महमूद गज़नवी और तीमूर के इतिहास हम को भली भांति से वाक़िफ़ करते हैं.

जोउद ⊛ [Joud] के पहाड़ों से लेकर मकरान † के तट तक, और गंगा के किनारे किनारे जिट जाति के लोग बहुत फैले हुए हैं; और तक्षक जाति का नाम केवल शिलालेखों वा पुरानी पुस्तकों में पाया जाता है.

उन के आदि निवासस्थानों में, और उन जातियों के मध्य, जिन को अब लोग भिन्न भिन्न नामों से पुकारते हैं, जांच करने से उन का असली नाम प्रकाशित होगा, जो अब केवल सिन्धु नदी के प्रदेशों में भली-भांति ज्ञात है. और तक्षक वा तकिउक का पता, संभव है कि ताजिक लोगों में लग जायेगा, जो अद्यापि अपने प्राचीन निवासस्थान में रहते हैं, जो प्राचीन ग्रन्थकारों का लिखा हुआ ट्रान्स ऑक्सियाना, और चौरास्मिया

⊛ जिद् का डांग रेनेल के नक्शे में दिया हुआ जौदीज़ [Joudes] है. यदु का पहाड़ जो पंजाब में ऊपर की तरफ़ है, जहां पर यदु जाति की एक बस्ती सौराष्ट्र से निकाली जाने के बाद बसी थी.

† बलूचिस्तान की नूमरी वा लूमड़ी (लोमड़ी) जाति के लोग जिट हैं. येही लोग रेनेल के लिखे हुए नोमर्डी [Nomardies] भी हैं.

[Chorasmia]; ईरानियों का मावेरुन्नहर; देशी भूगोल में दिया हुआ तूरान, तुर्किस्तान, वा टोचरिस्तान; और टाचरी, तक्षक वा तुरश्क नाम के भारत पर आक्रमण करनेवालों का निवासस्थान है, जिन का वर्णन पुराणों और विद्यमान शिलालेखों में आया है.

जेटी लोगों ने दीर्घ काल पर्यन्त अपनी स्वाधीनता काइम रक्खी, और जब साइरस ने उन को आधीन बनाने के लिये चढ़ाई की तो टोमिरिस ने उस का मुकाबला किया. जब वे लगातार की अनेक लड़ाइयों में सतलज नदी के पार निकाल दिये गये तो भी उन की पुरानी आदतें उन में बनी रहीं, जिन का बयान आगे किसी जगह किया जायगा, यद्यपि उन को अपना प्राचीन इतिहास ज्ञात नहीं है तथापि वे [पुरानी चाल के अनुसार] लाहोर के जिट सर्दार के महल मे रंगरूट सवारों की तरह, और बीकानेर, हिन्दुस्तान के मरुस्थल एवं दूसरे स्थानों में चरवाहों की नाई रहते हैं. इन्हों ने चरवाहों का पेशा छोडकर किसानों का पेशा थोड़े ही दिनों में इख्तियार कर लिया है, और ट्रान्स ऑक्सिआना के भ्रमणकारी जेटियों के सन्तान अब हिन्दुस्तान के मैदानों में सब से उत्तम खेती करनेवाले हैं.

इन इन्डो-सीथिक जातियों, अर्थात् जेटी, तक्षक, असी, कट्टी, राजपाली ०, हूण, केमेरी की चढ़ाइयों से

० राज चरवाहे.

इन्दुवंश वा चन्द्रवंश के संस्थापक बुध की पूजा चली.

हेरोडॉटस कहता है कि जेटी लोग आस्तिक * थे, और आत्मा का अमर होना मानते थे, और ऐसा ही बौद्ध लोग भी मानते हैं.

परन्तु हम असी, जेटी वा स्कैंडिनेविया के जट (जिन से किम्बरिक चेरसोनीज़=Cimbric Chersones का नाम पड़ा), और सीथिया तथा हिन्दुस्तान के जेटी लोगों के धर्म विषय की समानता का वर्णन करने से पहिले हम को चाहिये कि असी वा अश्व के विषय में कुछ आलोचना करें.

अश्व का इन्दुवंश (देवमीड और बाजस्व के सन्तान) सिन्धु नदी के दोनों किनारों पर के प्रदेशों में फैल गया, और संभव है, कि इसी नाम से एशिया खण्ड का नाम पड़ा हो.

हेरोडॉटस † कहता है, कि यूनानी लोगों ने 'एशिया' नाम प्रोमेथियँस [Prometheus] की स्त्री के नाम पर रक्खा; परन्तु दूसरे लोग मेनेसे [Manes] के एक पोते के नाम से यह नाम पड़ा बतलाते हैं, जिस से

---

* सूर्य उनका 'बड़ा देवता' था तो भी जैमोल्क्सिज़ [Xamolxis] को वे भय का देवता भी मानते थे, जो यम वा हिन्दुओं के प्लुटो (Pluto) के समान है. "सीथिक जाति के फेन्स [Fenus] लोगों का मुख्य देवता यमल्लू था." Pinkerton's History of the Goths, Vol.II, P. 215.

† मेल्पोमिनी अध्याय १४.

प्रथम पुरुष मनु की सन्तान अश्व जाति का ही बोध होता है.

आसा,* साकंभरी,† माता,‡ आशा की देवी है, जो जातियों की रक्षा करनेवाली माता है.

प्रत्येक राजपूत आशापूर्णा अर्थात् 'आशा पूर्ण करनेवाली' देवी की पूजा करता है, वा शाकंभरी देवी (रक्षा करनेवाली देवी) के रूप में, प्रत्येक कार्य आरंभ करने के पूर्व उस की स्तुति की जाती है,

अश्व लोग विशेप कर इन्दुवंश के थे; तथापि सूर्यवंश की एक शाखा का भी यही नाम था. इस नाम से पाया जाता है, कि वे लोग प्रसिद्ध घुड़सवार § थे. ये सब के सब घोड़े का पूजन करते थे, और उसी का सूर्य को[१४] बलिदान किया करते थे. अश्वमेध का बड़ा यज्ञ ही, जो शीतकाल की संक्रान्ति के उत्सव पर होता

---

* आशा.

† शाकंभरी; शाकम्=शाखा का बहुवचन, और अम्बर्=रक्षा करना.

‡ माता=मा.

§ अश्व और 'हय' संस्कृत में घोड़े के पर्याय हैं. फारसी में इस के लिये 'अस्प' है. नबी इन्सार्वोर्लों ने इस शब्द का प्रयोग जिटि लोगों की उस चढ़ाई में किया है, जो सन् ई० से ६०० वर्ष पूर्व इन्हों ने सीथिया पर की थी. डायोडोरेस बयान करता है कि "तोगेंराह [Togarmah] के पुत्र घोड़ों पर चढ़ते हैं" यह समय वही है जब कि भारत पर तक्षक लोगों ने आक्रमण किया था.

था, इस बात का एक बड़ा उदाहरण होगा, कि इन की और जेटिक जाति की उत्पत्ति सीथियन लोगों से ही है; और पिंकर्टन के इस सिद्धान्त को प्रमाणित करेगा कि, "सीथियन लोगों की एक बड़ी क़ौम कास्पियन सागर से लेकर गंगा नदी तक फैली हुई थी."

अश्वमेध यज्ञ सन् ई० से १२०० वर्ष पूर्व सूर्यवंशी राजाओं द्वारा गंगा और सरयू के किनारे पर किया जाता था, जैसा कि साइरस के समय में जेटी लोग किया करते थे; हेरोडॉटस लिखता है कि "सृष्टि क्रम से उत्पन्न जीवों में से सब से अधिक शीघ्रगामी प्राणी को वे देवताओं के नायक को बलि देना उचित समझते थे." और घोड़े का यह पूजन और उस का बलिदान वर्तमान काल के राजपूतों तक चला आता है. इस बड़ी रसम का हाल लिख कर इन एक सी मिलती हुई बातों के वर्णन को समाप्त करेंगे.

जेटी जाति के असी लोग घोड़े के इस पूजन को, जो उन के मुख्य देवता सूर्य का प्रतिरूप था,- स्कैंडिनेविया में ले गये; और इसी तरह सू, सुएवी, कट्टी, सुकिम्ब्री, और जेटी नाम की समस्त प्राचीन जर्मन जातियों ने [इस रसम को] जर्मनी के जंगलों में और एल्ब [Elbe] तथा वेज़र [Weser] नदियों के किनारों पर प्रचलित किया.

दुग्धवर्ण श्वेत घोड़ा देवताओं की तरफ़ सूचना

करनेवाला माना जाता था, और उस के हींसने से लोग भविष्य घटनाओं का होना जान जाते थे. यही विश्वास वुध (वोडेन) के सन्तान अश्वजाति के लोगों का यमुना और गंगा के किनारे पर भी उस समय से था, जब कि किसी मनुष्य ने स्कैंडिनेविया के पहाड़ों और वाल्टिक समुद्र के किनारों पर पांव भी नहीं रक्खा था. इसी शकुन से डेरियस हिस्टास्पेंस (हींसना=हिनहिनाना, अस्प=घोड़ा) को राज्यछत्र मिला था. चन्द भाट ने भी इसी को अपने मुख्य वीरों की मृत्यु का सूचक गिना है.

स्कैंडिनेविया की लड़ाई के देवता का घोड़ा अपसालैा [Upsala] के मन्दिर में रक्खा जाता था जो सदैव " लड़ाई के बाद पसीने से तर, और मुंह से झाग डालता हुआ पाया जाता था. " टैसीटैस [Tacitus] कहता है कि " जर्मन लोग मुद्रा [=सिक्के] को तभी लेते थे जब कि उस पर घोड़े की आकृति बनी होती थी. "

ऐड्डा [Edda] में लिखा है कि जेटी वा जिट लोग, जिन्हों ने स्कैंडिनेविया में प्रवेश किया, असी कहलाते थे, और उन की पहिली वस्ती अस-गर्ड * [As-gard] थी.

पिंकर्टन एड्डा का प्रमाण नहीं मानते और टार्फि-यस [Torfeus] का अनुकरण करते हैं, जो आइस-

---

* असी गढ़, अर्थात् असी लोगों का गढ़.

लैंड के इतिहासों और वंशावलियों के प्रमाण से ओडिन का स्कैंडिनेविया में आना सन् ई० से ५०० वर्ष पूर्व डेरियस हिस्टास्पस के समय में मानता है. ”

यह अन्तिम बुद्ध वा महावीर का समय है, जिस का संवत् विक्रम से ४७७ वर्ष और ईसा से ५३३ वर्ष पूर्व चला था.

स्कैंडिनेविया में ओडिन का उत्तराधिकारी गौतम था; और गौतम अन्तिम बुद्ध महावीर * का उत्तराधिकारी था, जिस का पूजन गौतम वा गोदम नाम से अब तक मलक्का के जलडमरू मध्य से लेकर कास्पियन सागर तक होता है.

पिंकर्टन कहते हैं, कि “अन्य प्राचीन वृत्तान्त दूसरा ओडिन बतलाते हैं, जो सन् ई० से एक हज़ार वर्ष पहिले मुख्य देवता गिना जाता था. ”

मैलेट [Mallet] दो ओडिन का होना मानते हैं, परन्तु पिंकर्टन की राय है, कि उस [मैलेट] को टॉर्फियस के मतानुसार सन् ई० से ५०० वर्ष पहिले [ओडिन का होना] मानना चाहिये था.

यह एक आश्चर्य की बात है कि स्कैंडिनेविया के दोनों ओडिनों का समय बाईसवें बुद्ध नेमिनाथ, और चौबीसवें तथा अन्तिम [बुद्ध] महावीर के समय से मिल जाता है. इन में से पहिला कृष्ण का समकालीन

* महा=बड़ा, वीर=युद्ध करनेवाला.

शेशनाग देश से तक्षक जाति के आने का समय छठीं शताब्दी गिना गया है, और इसी घटना व राजत्वकाल के ऊपर पुराणों में लिखा है कि इस समय से "कोई राजा शुद्धवंश का नहीं पाया जायेगा, किन्तु शूद्र, तुरश्क, और यवन सर्वत्र फैल जायेंगे."

ये सब इन्दू-सीथिक आक्रमण करनेवाले लोग बुद्ध का धर्म्म मानते थे; और इसी से स्कैंडिनेवियावालों व जर्मन जातियों और राजपूतों की रीत भांत, तथा देवकथाओं की परस्परीय समानता, उन के वीरता विषयक काव्यों का मिलान करने से अधिक प्रतीत होती है.

मूल उत्पत्ति की एकता का दृढ़तर प्रमाण भाषा की अपेक्षा धर्म विषयक व्यवहारों की समानता है. भाषा सदैव बदलती रहती है—ऐसे ही रीत भांत भी; परन्तु जब छूटी हुई रीत रसम का पता उस के मूल तक लगाया जावे, और जो जल वायु के विरुद्ध होने पर भी मानी गई हो, तो यह एक ऐसा प्रमाण है जो अस्वीकार नहीं किया जा सकता.

ह। जातीय स्वभाव और पहराव—जब टैसिटस के लेख रे हम को यह विदित होता है कि प्रत्येक जर्मन व्यक्ति दोनों रे उठ कर सब से पहिले स्नान करता था, तो इस नैची यह सिद्ध होता है; कि यह स्वभाव जर्मनी के शीत-मि न देश में प्राप्त किया हुआ नहीं हो सकता वरन

अवश्य पूर्वीय देशों से उत्पन्न हुआ होगा *; "ऐसा ही हाल ढीले ढाले और नीचे चुगों और लंबे लंबे गुथे हुए केशों का, जिन का मस्तक के वीच में जूड़ा बांधा जाता था;" और अनेक दूसरे रीत रवाजों, जातीय स्वभाव तथा सीथियन, किम्त्री, जट, कट्टी, सुएवी लोगों के मिथ्या विश्वासों का हुआ होगा, जो उसी नाम की जेटी जातियों के समान ही हैं, और जिन का वर्णन हेरोडॉटस जस्टिन [Justin], और स्ट्रैबो ने किया है, और जो राजपूत शाखाओं में अब तक पाया जाता है.

अब हम को उन समानताओं का मुकाबला करना चाहिये, जो धर्म्म और व्यवहार के विषय में इतिहास से पाई जाती हैं, और सब से पहिले धर्म्म विषयक समानताओं का.

देवोत्पत्ति—आदि काल की जर्मन जातियों के मुख्य देवता टुइस्टो [Tuisto] (मर्क्यूरी=बुध) और अर्था [Eartha] पृथ्वी थे.

टुइस्टो † पृथ्वी (इला), और मैनस (मनु) से

---

* यद्यपि टैसिटस जर्मन की जातियों को वहीं की निवासी मानता है, परन्तु जब वह यह प्रश्न करता है कि "ऐसा कौन है जो एशिया के सुखद निवासस्थान को छोड़कर जर्मनी में जायेगा, जहां पर सिवाय भद्देपन के प्रकृति में और कुछ भी नहीं पाया जाता ?" तो इस से स्पष्ट है कि वह इस बात को जानता था कि वे लोग अपनी उत्पत्ति एशिया से होना बताते हैं.

† सक्लिन्द्रपुर (सुन्दपुर) के जेटी या जिट राजा का एक लेख,

उत्पन्न हुआ था. लोग प्रायः उस को भूल से ओडिन वा वोडेन् समझ कर, जो पूर्वीय जातियों का बुध है, गड़वड़ कर देते हैं, यद्यपि वे इन जातियों के मार्स [Mars =मंगल] और मर्क्यूरी [Mercury =बुध] हैं.

धर्मसम्वन्धी रस्में-सुयोनीज़ वा सुएवी, जो स्कैंडिनेविया की जेटी जातियों में सब से अधिक प्रबल कौम थी, बहुत सी जातियों में विभाजित हो गई थी, जिन में से सू (यूची वा जिट) जाति के लोग अपनी पवित्र वाटिकाओं * में अर्था (इला) को मनुष्य का वलिदान चढ़ाते थे, जिस [अर्था] को वे सब पूजते थे, और जिस के रथ को गऊ † खींचती थी.

जो पांचवीं शताब्दी का है, उस में उस को "तुष्ठ जाति का" (प्रश्न-टुइस्टो ?) लिखा है. वह उस प्राचीन कीलाकृति के सिरवाकी लिपि में है, जिस का प्रयोग भारत के प्राचीन बौद्ध लोग करते थे, और जो अब तक तातार के लामा लोगों की पवित्र लिपि" है, अर्थात् पाली. अग्निकुल के चौहान, परमार, सोलंकी, और परिहारों के जितने प्राचीन शिलालेख मेरे पास हैं वे सब के सब इन्हीं अक्षरों में हैं. जिट राजा के एक शिलालेख में उक्त राजा को "जिट कैथीर्डा" (प्रश्न-कैथेका हा ?) लिखा है. टुइस्टो और वोडेनसे हम लोगों के टुइज़्डे [Tuesday] और वेडनेस डे [Wednesday] के नाम पड़े हैं. हिन्दुस्तान में वेड्नस डे को बुद्धवार (Dies Mercurii) और टुइज़्डे को मंगलवार (Dies Martis) कहते हैं, जो फ़रांसीसियों का मर्डी [Mardi] है.

* टैसिटस ३८.

† गौ वा गाय पृथ्वी का चिन्ह है, इस विषय पर ३० वें पृष्ट की टिप्पणी देखो.

सुएवी लोग ईसिस (ईश, गौरी अर्थात् राजस्थान के ईसिस और सीरीस) की पूजा करते थे, जिस की रस्मों में एक जहाज़ की आकृति होती है; जो टैसिटस के कथनानुसार " उस रस्म के विदेशी होने का चिन्ह है. " ईश वा ईश्वर की पत्नी गौरी का त्योहार उदयपुर में झील पर किया जाता है, और ठीक ठीक वैसा ही मालूम होता है, जैसा कि ईसिसे [Isis] और ओसिरिसे [Osiris] का मिसर में होता है, जिस का वर्णन हेरोडॉटस ने किया है. इस अवसर पर ईश्वर (ओसिरिस) के हाथ में, जो अपनी स्त्री से दूसरे दरजे पर माना जाता है, प्याॅज़ के खिले हुए फूलों की छड़ी रहती है. यह एक ऐसा पौदा है जिस से हिन्दू लोग साधारणतः घृणा करते हैं, यद्यपि मिसर के लोग उस को पवित्र मानते हैं.

युद्ध सम्बन्धी रवाज—वे हर्क्यूलीज़, एवम् टुइस्टो वा ओडिनै की स्तुति के गीत गाते थे, जिस के झंडे और मूर्त्तियां वे लड़ाई के मैदान में ले जाते थे और फ़िर्के फ़िर्के होकर लड़ते थे, और भिड़कर तथा दूर दूर से, दोनों तरह लड़ाई में बरछे का उपयोग करते थे. इन सब बातों में वे बुध के वंशज हरिकुलियों, और बाजस्व के वंशज अश्व लोगों की समानता रखते थे, जो सिन्धु नदी के पश्चिम के देशों के बसे थे, और जिन की अधिक बस्ती पूर्व और पश्चिम दोनों में फैल गई.

सुएवी वा सुइयोनीज़ लोगों ने उपसाला [Upsala] का प्रसिद्ध मन्दिर बनवाया, जिस में उन्हों ने थोर [Thor] वोडेन और फ्रेया [Freya] की मूर्त्तियां स्थापन कीं, जो स्कैंडिनेविया की असी जाति के त्रिदेव हैं, और जो सूर्य तथा चन्द्रवंश की त्रिमूर्त्ति हैं. पहिला (थोर, गर्जनेवाला, वा लड़ाई का देवता) हर, वा महादेव, जो विनाश करनेवाला है; दूसरा (वोडेन्) बुध*, जो रक्षा करता है; और तीसरा (फ्रेया) उमा, जो उत्पत्तिकरनेवाली शक्ति है.

फ्रेया का बड़ा उत्सव वसन्त ऋतु में, जब कि सम्पूर्ण प्रकृति फिर से सजीवन हो जाती है, होता था. उस समय स्कैंडिनेवियन लोग उस को सूअर का बलिदान देते थे, यहां तक कि आटे को पकाकर उस के भी सूअर बनाये जाते थे और उन को वहां के किसान लोग खा जाते थे.

वसंती वा वसन्त ऋतु को हर की स्त्री रूप में मानकर राजपूत लोग उस की पूजा करते हैं, और उस के प्रारंभ में एक बड़ी शिकार † करते हैं, जिस के लिये राजा अपने सर्दारों सहित जाता है. वे शूकर का

---

* हिन्दुओं के मुख्य तीन देवताओं में से कृष्ण रक्षा करनेवाले देवता हैं. कृष्ण बुध के इन्दुवंश के हैं, जिन की पूजा वे स्वयं देवतावत् माने जाने के पहिले करते थे.

† मुहूर्त की शिकार.

पीछा करके उसे मारते और खाते हैं. उस दिन शारीरिक जोखिम की कुछ भी पर्वा नहीं की जाती; क्योंकि यदि [उस दिन] शिकार में सफलता न हो तो उस से यह अपशकुन माना जाता है, कि साल भर तक महामाई से जो कुछ प्रार्थना की जायेगी वह अस्वी होगी.

पिंकर्टन टॉलेमी (जो टैसिटस से पचास वर्ष पीछे हुआ था) के लेख को उद्धृत कर के कहता है, कि जट लोगों के देश युटलैंड वा जटलैंड में छः जातियां थीं, जिन में सब लिंगई (सुएवी * वा सुइयोनीज़), कट्टी और हेर्मन्द्री भी थीं, जो एल्ब, और वेज़र नदी के मुहाने तक फैल गई थीं. वहां पर उन्होंने इर्मनस्युल [Irmanseul] नामक स्तंभ "लड़ाई के देवता" के नाम पर खड़ा किया था, जिस के विषय में सैमीज़ † [Sammes] कहता है कि "कई लोग इसे मार्स [मंगल] का स्तंभ, और कई हर्मीज़ सॉल [Hermes saul] अर्थात् हर्मीज़ वा मर्क्यूरी [बुध] का स्तंभ मानते हैं"; और वह स्वभावतः प्रश्न करता है कि, "सेक्सन लोग मर्क्यूरी [बुध] के यूनानी नाम से कैसे परिचित हुए. ?"

---

* टैसिटस की लिखी हुई सीवी जाति.

† सैमीज़ लिखित "सेक्सनऍटीकिटिज़" नामक पुस्तक (Sammes' Saxon Antiquities)

यज्ञ के स्तंभों को संस्कृत में 'सुर' वा 'सूल' कहते हैं, जिस को हिन्दुस्तान के युद्ध के देवता 'हर' * के नाम के साथ जोड़ देने से हरसूल होता है. राजपूत योद्धा लड़ाई में अपनी सहायता करने के लिये हर का उस के त्रिशूल सहित आह्वान करता है, और उन का रणघोष 'मार'! 'मार'! है.

किम्ब्री जाति, जो युटलैंड की ६ जातियों में से सब से अधिक प्रसिद्ध है, अपना नाम अपनी वीरता † की नामवरी से पाना मानती है.

कुमार ‡ राजपूतों का लड़ाई का देवता है. हिन्दुओं की देवकथाओं में उस के सात सिर होना लिखा है. सैक्सन लोगों के युद्ध देव के ६ सिर ॥ हैं.

किम्ब्री चेर्सोनीज़ का ६ सिर वाला मॉर्स, जिस के

---

* 'हर' स्कैंडिनेविया का 'थोर' है; हरी बुध, हर्मीज़, वा मर्क्यूरी है.

† मैलेट इस को 'कम्पफ़र' (Kempfer) से जिस का अर्थ 'लड़ना' है, निकालता है.

‡ 'कु' केवल एक उपसर्ग है, जिस का अर्थ बुरे का है; [इसी से कुमार का अर्थ] 'बुरा मारनेवाला' है. अतएव संभव है कि इसी से रोम का [युद्धदेव] 'मार्स' निकला हो. हिन्दुओं के यहां देवताओं की सेना का सेनापति कुमार की उत्पत्ति ठीक उसी प्रकार से है, जैसी कि यूनानियों के युद्धदेव की, अर्थात् जान्हवी देवी (Juno=जूनो) से बिना मैथुन के उत्पन्न हुआ कुमार सदैव अपने साथ मोर रखता है, जो जूनो का पक्षी है.

॥ स्कैंडिनेविया के युद्ध के देवता के चित्र के लिये सैमीज़ (Sammes) [की पुस्तक] देखो.

नाम से वेज़र नदी के किनारे पर इर्मनस्योल बनाया गया था. सैकेसनी, कट्टी, सीवी, वा सुएवी, जोटी वा जेटी, और किम्त्री जाति द्वारा पूजा जाता था, जिन के नाम और धर्म सम्बन्धी रस्मों से उन का और हिन्दुस्तान के वीर योद्धाओं का एक ही मूल से उत्पन्न होना प्रगट होता है.

वीर राजपूतों का धर्म और लड़ाई के देवता हरकी रस्में सौम्य वृत्तिवाले हिन्दुओं के धर्म और उन की रस्मों से बहुत कम मिलती हैं जो गोचारक देवता के अनुयायी, गाय के पूजनेवाले, और फल, पौदों, तथा जल पर निर्वाह करनेवाले हैं. राजपूत लोग रक्त बहाने में प्रसन्न होते हैं. उन के युद्धदेव का चढ़ावा रक्त सम्बन्धी, अर्थात् रुधिर और मद्य होता है, और अर्घ देने का प्याला (खरपरा) मनुष्य की खोपड़ी होती है. वे इन वस्तुओं को प्रिय जानते हैं, क्योंकि वे उस देवता के चिन्ह हैं, जिस को वे पूजते हैं, और उन को यह विश्वास रखना सिखलाया जाता है, कि वे हरको प्रिय हैं, जो युद्ध के समय खोपड़ी से शत्रु का रुधिर पीता हुआ, और शान्ति के समय में मदिरा और स्त्रियों का संरक्षक दरसाया जाता है; पार्वती उस के जानु पर बैठी हुई, और उस के नेत्र धतूरा और अफ़ीम पीने से घूमते हुए हैं. यह लड़ाई का देवता ऐसा मदोन्मत्त है. क्या यह हिन्दू धर्म भारत के उष्ण मैदानों का हो

सकता है? क्या यह स्कैंडिनेविया के वीरों की रीतों का ठीक चित्र नहीं है?

राजपूत लोग भैंसों का वध करते हैं; शूकर तथा हरिण का शिकार करके उन का मांस खाते, और जल के पक्षियों तथा जंगली कुक्कुट (कूकड़ा) को बन्दूक से मारते हैं; वे अपने घोड़े, अपनी तलवार, और सूर्य को पूजते हैं, और ब्राह्मणों के मंत्रों की अपेक्षा भाटों के वीररसवाले गीतों पर अधिक ध्यान देते हैं. स्कैंडिनेविया के लोगों की वीरतासम्बन्धी देवकथाओं और वीररसात्मक काव्यों से बहुत कुछ समानता पाई जाती है, और पूर्व तथा पश्चिम के असली लोगों के बचे कुचे काव्यों का मिलान करने से ही अलम रीति से जाना जा सकता है, कि वे लोग एक ही मूल से उत्पन्न हुए हैं.

भाट लोग–राजपूतों के पूज्य बरदोई की तरह सैक्सन लोगों के पुरखाओं के भी भाट होते थे; इन वीररसात्मक छन्दों के गानेवालों के विषय में टैसिटस कहता है, कि "वे लड़ाई के समय अपनी जोश दिलाने वाली ध्वनि से वीररस के गीत पढ़ कर उन के चित्तों में प्रभाव उत्पन्न करते हैं."

इतने बड़े विस्तृत विषय का मिलान करने में उन के समस्त रीति व्यवहार और धर्मसम्बन्धी विश्वास शामिल किये जायंगे, अतएव यह विषय एक जुदे ग्रन्थ

के लिये ही रख छोड़ना चाहिये. * सुएवी वा सीवी जाति की वल्काइरी (Valkyrie) वा नाश करनेवाली बहिनों [देवियों] की अप्सराओं में से दो जोड़ली बहिनें समझना चाहिये, जो राजपूत योद्धाओं को रण-क्षेत्र से बुलाती और सूर्य लोक में, जो यूनानियों के हेलियाड़ी लोगों के एल्युसियम + [स्वर्ग] के सदृश है, ले जाती हैं, जहां पर पहुंचना स्कैंडिनेविया में रहनेवाले ओडिन के सन्तान, और सीथिया के मैदानों, एवम् गंगा के किनारे के निवासी बुध और सूर्य के सन्तान [सबही] चाहते हैं.

लड़ाई के दिन हमलोग इन प्रत्येक जातियों में यश के लिये एक ही प्रकार की उत्तेजना और मृत्यु की वे

---

* मेरा विचार है कि भारत के अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज के अन्तिम बड़े कविराज चन्द के रचे हुए काव्य के ६९ पर्वों में से थोड़े से [का अनुवाद] सर्वसाधारण के भेंट करूं जो सर्वतो भाव वीर-रसात्मक हैं. प्रत्येक खण्ड उस समय के उस वीराग्रणी राजा के एक एक वीर कार्य के विषय में है. उन से राजपूतों के और स्कैंडिनेविया के भाटों के बीच मिलान करने में सहायता मिलेगी और वे इस बात को दिखलावेंगे कि प्रोवेंकल के ट्राबेडर [Provencal Troubadour], न्युस्ट्रिआ के ट्राउवियर [Neustrienne Trouveur], और जर्मनी के मिनेसिंगर [Minnesinger] से राजपूतों के बर्दाई [=भाट] में कितनी समानता है.

† एल्युसियोस [Elusios] शब्द इलियस [Ηlios] से निकला है, जिस का अर्थ सूर्य है. यह अपोलो [Apollo] अर्थात् भारत के हरि की भी उपाधि है.

परछाई देखते हैं, और रण-रंगभूमि पर नाटक करनेवाले ये पात्रगण, चाहे देवलोक सम्बन्धी हों अथवा मृत्यु-लोक सम्बन्धी, दोनों एक ही प्रकार से चलते फिरते और नाट्य करते दिखाई देते हैं. हम लोग थौर, अर्थात् गर्जनेवाले देवता को सीवी जाति के लोगों को लड़ाई में ले जाते हुए, और हर (शिव) को जो हिन्दुस्तानियों का जोवँ [Jove] है, अपने ही उपासकों (शिव-सेवकों) को [लड़ाई में] ले जाते हुए देखते हैं. जिस में फ्रेया [Freya] वा भवानी, और स्वयं रक्षा करने-वाले (कृष्ण) भी प्रायः शामिल होते हैं.

युद्ध का रथ–दशरथ * और महाभारत के वीरों के समय से लेकर मुसल्मानों के हिन्दुस्तान पर विजय पाने तक हम लोग रथ की सवारी इण्डो-सीथीक कौमों में विशेष रूप से पाते हैं; उस के बाद इस का व्यवहार छोड़ दिया गया. कुरुक्षेत्र के मैदान में कृष्ण अपने मित्र अर्जुन के सारथी बने थे ; और जेगज़ार्टीज़ के किनारे के जेटी समूहों ने, जब कि उन्हों ने जर्कसीज़ [Xerxes] को यूनान में और दारा को अँर्बेला †

* रामचन्द्र के पिता का यह नाम ' रथी ' का बोधक है.

† हेरोडॉटस लिखता है कि डेरियस वा दारा का भारतीय सूबा ईरान के सारे सूबों में से सब से धनाढ्य था, और सुवर्ण के ६०० टेलॅंट [Talents] उस से प्राप्त होते थे. एरियन हम को सूचित करता है, कि उस की इण्डो सीथिक प्रजा सिकन्दर के साथ की लड़ाइयों के

[Arbela] के मैदानों में सहायता दी थी, उस समय उन के पास मुख्य सैन्यबल युद्ध के रथ ही थे.

लड़ाई के रथ और स्थानों में तो नहीं, परन्तु दक्षिण-पश्चिमीय भारत में पिछले समय तक व्यवहार

समय उस [दारा] की सर्वोत्तम सेना थी. सैकेसेनी के अतिरिक्त हम लोगों को ऐसी जातियों के नाम मिलते हैं जो वैसे ही हैं जैसे कि ३६ राजकुलों के नाम हैं. विशेषतः डाही (दहिया, जो छत्तीस कुलों में से एक है).

इण्डो-सीथिक सेना में २०० लड़ाई के रथ, और १५ हाथी थे, जो पार्थियन [Parthian] लोगों के साथ दाहिनी तरफ तथा दारा के निकट रक्खे गये थे. इस व्यवस्था से वे लोग उस सैन्य दल के सामने थे जिस की कमान स्वयं सिकन्दर करता था.

रथियों ने लड़ाई आरंभ की और इरानियों की बांई तरफ़ की सेना को हटाने के सिकन्दर के यत्न को रोका. उन के रिसाले का भी बड़ी ही प्रतिष्ठा के साथ वर्णन किया गया है; वे उस सेना में घुस गये जहां पर पर्मिनियो [Parmenio] कमान करता था, और जिस की सहायता के लिये सिकन्दर को कुमक भेजनी पड़ी. यूनानी इतिहास लेखक इण्डो सीथिक लोगों की वीरता का प्रसन्नतापूर्वक वर्णन करता है. "घुड़सवारों के कोई करतब नहीं हुए, न बाणों से दूर दूर लड़ाई हुई; परन्तु प्रत्येक वीर ऐसा लड़ता था मानो वह अपनी ही भुजा पर विजय का भरोसा रखता है." ये यूनानियों से भिड़ कर लड़े थे.

परन्तु अर्बेला की लड़ाई में दारा के साम्राज्य का नष्ट होना भाग्य में लिखा था, और शक तथा इण्डो-सीथिक लोगों को यूनानी यवनों के हाथ से अपनी जन्मभूमि से बहुत दूर राजराजेश्वर की सहायता करने में मारे जाने की प्रतिष्ठा प्राप्त हुई.

में लाये जाते थे, और सौराष्ट्र की काठी *, कोमानी और कोमारी जातियों में उन की सीथियन रहन सहन आधुनिक समय तक बनी हुई है, जैसा कि उन के स्मारक पाषाणों के देखने से प्रमाणित होता है, जो यह प्रगट करते हैं, कि वे लोग अपने रथों पर से मारे गये थे.

स्त्रियों के साथ व्यवहार—किसी बात में प्राचीन जर्मन और स्कैंडिनेविया की जातियों और वीर राजपूतों वा प्राचीन जेटी लोगों के मध्य उतनी समानता नहीं पाई जाती जितनी कि उन के स्त्रियों के साथ की शिष्टता के व्यवहार में.

टैसीटस कहता है, कि "जर्मन लोग स्त्री की सम्मति को अत्यन्तही आवश्यकता के समय भविष्यद्वक्तायों की वाणी के तुल्य मानते थे." और ऐसा ही राजपूत भी करते हैं, जैसा कि चन्दभाट प्रायः उदाहरण देता है, और इसी कारण वे लोग अपनी स्त्रियों के नाम में देवी शब्द (वा संक्षेप में दे) लगाते हैं, जिस का अर्थ 'देवी के तुल्य' है. टैसिटस कहता है कि

* काठी लोग सिकन्दर की लड़ाइयों में प्रसिद्ध हैं. काठियावाड़ के काठियों का पता मूलथान (प्राचीन स्थान) से लगाया जा सकता है. दाहिया (डाही), जोहिया (पिछले हूण), और काठी ३६ राजकुलों में है. ये सब के सब छः सौ वर्ष पहिले पांचों नदियों के अन्तर्गत, और गारा के दक्षिण मरुभूमि में रहते थे. अन्तिम दो ने अपने पीछे केवल नाम छोड़ा है.

" जर्मन लोगों के खयाल में स्त्रियों को वन्दी बना कर ले जाना असह्य है. " राजपूत लोग इस बात को रोक के लिये अपना छुरा उन शरीरों [स्त्रियों] के विरुद्ध उठाते हैं, जो केवल उन्हीं के लिये जीवित हैं, यद्यपि वे इस घोर आपत्ति से बचने की स्वयं भी आशा नहीं रखते. ऐसे समय में वे ' जौहर ' यज्ञ करते हैं, जब कि प्रत्येक शाखा कट मरती है. अतएव राजपूत लोग शाका-बन्द की उपाधि पर गर्व करते हैं, जो कि इस भयंकर रीति, अर्थात् शाकों के करने से ही प्राप्त होती है, और जो प्रत्येक प्रकार से प्रायः सीथियन जेटी लोगों की सैसिया रस्म प्रतीत होती हैं, जैसा कि स्ट्रैबो ⊙ ने वर्णन किया है.

⊙ सैकी लोगों ने पॉन्टिक समुद्र [Pontic sea] के किनारे रहने-वालों पर आक्रमण किया था. जिस समय वे लोग लूट का माल बांटने में लगे हुए थे, ईरानी सेनापतियों ने एकाएक रात्रि को उन पर हमला कर उन्हें मार डाला। इस घटना की यादगार को चिर-स्थाई करने के लिये ईरानियों ने उस क्षेत्र में जहां युद्ध हुआ था, एक चट्टान के चारों ओर मिट्टी का एक ढेर लगा दिया, और उस पर दो मन्दिर बनवाये, एक तो अनाइटिस [Anaitis] देवी का, और दूसरा ओमेनस [Omanus] और अनेन्डेट [Anandate] नाम के देवताओं का, और तब से सैसिया नामक वार्षिक त्योहार प्रचलित किया, जिसे जेली [Zela] के अधिकारी अब तक मानते हैं. कई ग्रन्थकारों ने सैसिया की उत्पत्ति का ऐसा वर्णन किया है. दूसरे ग्रन्थकारों की सम्मति है कि उस का प्रारंभ केवल साइरस के राजत्व-काल से ही है. उन लोगों का कथन है, कि यह यादगार उन सैकी

द्यूतकर्म—उन खेलों के व्यसन में, जिन में भाग्य-वश हार ज़ीत होती है, एवम् उस के अधिक व्यवहार तथा भयानक परिणामों के सहन करने में राजपूत लोग वहुत प्राचीन काल से ऐसा अनुराग प्रगट करते हैं कि [इस विषय में] उन की तुलना सीथियन लोगों तथा उन के जर्मन सन्तानों के साथ हो सकती है.

जर्मन लोग अपनी शारीरिक स्वतंत्रता तक को भी दांव में लगा कर जीतनेवाले के गुलाम हो जाते, और उस की सम्पत्ति की नाईं वेचे जाते थे. इसी दुर्व्यसन से पाण्डवों ने अपना राज्य तथा शारीरिक स्वतंत्रता खोदी, और अन्त में सारी इन्दू जातियां इसी से नष्ट हो गई, और अभी तक यह दुर्व्यसन कम नहीं

(हेरोडॉटस के लिखे हुए मैसेजेटी) लोगों के देश में जा कर युद्ध करने लगा तो एक लड़ाई में हार गया, तब उस को अपने मेगज़ीन की तरफ़ मजबूरन हटना पड़ा, जिस में बहुतायत से खाद्यपदार्थ, परन्तु विशेषकर मदिरा थी, और कुछ समय तक अपनी सेना को विश्राम देने के लिये ठहर कर जब वह शत्रु के सामने से हट गया, यह धोखा दे कर कि मानो भाग निकला है, और अपने पड़ाव के स्थान को खाद्यपदार्थों से भरा हुआ छोड़ दिया, तो सैसी लोग पीछा करते हुए उस के छोड़े हुए पड़ाव में, जो खाद्य पदार्थों से भरा था, पहुंचे, और वहां खूब नशाबाज़ी करने में लग गये. साइरस पीछा लौटा और उस ने उन मदोन्मत्त एवम् मूर्ख असभ्यों पर अचानक हमला कर दिया. कोई कोई तो घोर निद्रा में होने के कारण सरलता से काट डाले गये. और दूसरे मदिरापान तथा नृत्य में निमग्न होने से अपना बचाव न कर सके और शस्त्रधारी शत्रुदल के हाथों में पड़ गये. इस प्रकार सब

हुआ है. उन के धर्म्म तक में इस दुर्व्यसन का विधान है, और वर्ष में एक वार दिवाली के त्यौहार पर सब लोग लक्ष्मी की प्रसन्नता उस के आगे जूआ खेल कर प्राप्त करते हैं.

मस्तिष्क सम्बन्धी कामों में प्रवृत्त न रहने से वीर राजपूत प्रायः आलसी और इन्द्रियों के भोग विलास

के सब नष्ट हो गये. विजेता ने अपनी विजय दैवीरक्षा के कारण होना समझ कर इस दिन को अपने देश की माननीय देवी के नाम पर पवित्र माना, और आज्ञा प्रचारित की, कि यह दिन 'सेसिया का दिन' [The day of the sacae] कहा जावे. *

राजपूत शाखाओं में वे सब बड़ी बड़ी लड़ाइयां, जिन का परिणाम सर्वनाश करने वाला होता है, शाका कहलाती है. जब वे [राजपूत लोग] घिर जाते हैं, और कुमक की आशा नहीं रहती, तो अन्त में निराश हो कर अपनी स्त्रियों को मार डालते हैं, और वीरलोग केसरिया बागे पहिन कर अमिट मृत्युमुख में स्वयं कूद पड़ते हैं, इस को शाका करना कहते हैं, जहां प्रत्येक शाखा मारी जाती है. चित्तौड़ में (साढ़े) तीन वार शाका होने का अभिमान किया जाता है. गोहिलोत राजपूतों की अत्यन्त माननीय शपथ 'चित्तौड़ शाके का पाप' है.

यदि टोमिरिस (Tomyris) की सेकी जाति के विनाश से इस त्यौहार की इस प्रकार उत्पत्ति हुई तो वह सिन्धु के पूर्वीय और पश्चिमीय देशों में निवास करनेवाले सेकी लोगों के बीच की समानता को जिस पर इतना विवाद किया जाता है, पुष्ट करने के लिये प्रमाण स्वरूप माना जा सकता है.

* यह वही लड़ाई है, जिस का वर्णन हेरोडॉटस ने किया है, जो ईरान के बादशाह और जिटि लोगों की राणी टोमिरिस के मध्य हुई थी, और जिस का उल्लेख स्ट्रेबो भी करता है.

में लीन रहते हैं, और जब इस से किसी कारण सचेत किये जाते हैं, तो उत्साह के जोश में प्रमत्त हो जाते हैं. परन्तु जब किसी धनवान रियासत में प्रबन्ध, और उचित रीति पर चलने की शिक्षा रहती है तो उस में उस प्रकार की प्राचीन चाल का विशेष अंश कई एक वैसे ही आमोद प्रमोद सहित पाया जाता है, जो राजपूतों तथा जेहून के किनारे रहनेवाले जेटियों और स्कैंडिनेविया के निवासियों में समान रूप से घट सकती है.

शकुन और भविष्य का जानना—चिट्ठी डाल कर वा अन्य प्रकार से भविष्य का जानना, और पक्षियों के उड़ने से शकुन लेना जैसा कि हेरोडॉटस के कथनानुसार जेटी जातियां और टैसिटस के वर्णनानुसार जर्मन जातियों में प्रचलित था, राजपूतों में भी पाया जायगा. उन [राजपूतों] के इस विषय के ग्रन्थों * से जर्मन और रोमन लोगों के शकुनों और अपशकुनों का सारा वृत्तान्त मिल सकता है.

मादक द्रव्यों से प्रीति—मदिरा से प्रीति, और उस को अधिकता से पान करने का प्रचार स्कैंडिनेविया की असी और जर्मन जातियों में विशेष था. इस से उन की जेटी उत्पत्ति प्रगट होती है, और इस बात में राजपूत

* मैंने रॉयल एशियाटिक सोसाइटी को एक ग्रन्थ इस विषय का और दूसरा सामुद्रिक आदि का भेट किया है.

अपने सीथिया वा यूरोप के भाइयों से कम नहीं हैं. इस के और इसी प्रकार दूसरे मादक द्रव्यों के वे रोक टोक व्यवहार से, जिन के लिये उन शास्त्रों में मनाई है, जिन के अनुसार साधारण हिन्दू लोग चलते हैं, मुझे पहिले पहिल विश्वास हुआ, कि इन वीर जातियों ने इस स्वभाव को हिन्दुस्तान से प्राप्त नहीं किया है.

राजपूत लोग अपने मेहमान का स्वागत मनुहार का प्याला पिला कर करते हैं, और उसी से वे अपनी पुरानी शत्रुता को मिटाते हैं. ओडिन के वीर लोग अपने मीड [Mead] नामक मद्य को इतने प्रेम से कभी नहीं पीते थे जितने प्रेम से कि राजपूत लोग अपना मध्वा * पीते हैं, और स्कैंडिनेविया तथा रजवाड़े के भाट उस प्याले की प्रशंसा करने में समान ही वाक्पटु हुए हैं, जिस की प्रशंसा में चरदाई ने प्रत्येक प्रकार की उपमा का व्यवहार किया है, और जिस को वह अमृत का प्याला कहता है. "भाट अमृत † का वह प्याला पीकर,

---

* मध्वी एक प्रकार का उन्मादक रस है. यह नाम मधु शब्द से निकला है, जिस का अर्थ संस्कृत में 'मधुमक्खी' है. प्रसिद्ध है कि मीड नामक मद्य शहद से बनता है. यदि जर्मन लोगों का मीड शब्द हिन्दुस्तानियों के मधु (मधुमक्खी) से बना हो तो यह एक आश्चर्य-जनक बात होगी. उस दशा में प्याला (खर्परा) और रस दोनों के नाम अन्य स्थान से लिये हुए होंगे.

† अमृत (अमर) में [अ] आरंभिक निषेध वाची उपसर्ग है, और 'मृत' का अर्थ मृत्यु है. इस प्रकार इमरत्वम्, अर्थात् मृत्यु का

जिस में लालमणि की नाईं अनार के दाने चमकते थे, निर्भय * जाति की कीर्त्ति का वर्णन करने लगा कि भाट, और शत्रु को दान देने में समान उदारता रखनेवाले राजन् चिरायु हो॰ "

इन्द्रलोक में भी, जो हिन्दू वीरों का स्वर्ग और वलहल्लो [Valhalla] के सदृश है, राजपूतों को अपना प्याला मिलता है, जिस को अप्सरा अर्थात् स्कैनिया [Scania] की स्वर्गीय हीबी°१ [Hebe] की जोड़ली बहिनें [अपने हाथोंसे] देती हैं. मरणासन्न जेटी वीर † कहता है, कि " मैं देवताओं के मध्य बैठकर प्याले भर कर मद्यपान करूंगा ; मैं हंसता हुआ प्राण त्याग करता हूं." ये ऐसे भाव हैं, जिन की राजपूत लोग भी प्रशंसा करेंगे.

राजपूत लोग मदोन्मत्तदशा में बहुत ही कम दिखाई देते हैं ; परन्तु एक अधिक हानिकारक और नवीन कुचाल ने हाल में निमन्त्रण के प्याले की प्रतिष्ठा अधिक

दरा, जो न्यूफ़ैचैटल [Neufchatel] में है, संस्कृत और जर्मन का एक सा शब्द प्रतीत होता है.

* मारवाड़ के राजा अभयसिंह ने जब अपने भाट को भोजन के समय अपने हाथ से प्याला दिया तो उस [भाट] ने ये वाक्य कहे थे.

† रेग्नर लॉडब्रॉग [Reguer Lod brog] ने उस [जेटी वीर] के मृत्युसमय के गीत में, जब उस को भाग्य की देवियां बुलाती हैं [उपर्युक्त वाक्य लिखे हैं].

अपने सीथिया वा यूरोप के भाइयों से कम नहीं हैं. इस के और इसी प्रकार दूसरे मादक द्रव्यों के वे रोक टोक व्यवहार से, जिन के लिये उन शास्त्रों में मनाई है, जिन के अनुसार साधारण हिन्दू लोग चलते हैं, मुझे पहिले पहिल विश्वास हुआ, कि इन वीर जातियों ने इस स्वभाव को हिन्दुस्तान से प्राप्त नहीं किया है.

राजपूत लोग अपने मेहमान का स्वागत मनुहार का प्याला पिला कर करते हैं, और उसी से वे अपनी पुरानी शत्रुता को मिटाते हैं. ओडिन के वीर लोग अपने मीड [Mead] नामक मद्य को इतने प्रेम से कभी नहीं पीते थे जितने प्रेम से कि राजपूत लोग अपना मध्वा ० पीते हैं, और स्कैंडिनेविया तथा रजवाड़े के भाट उस प्याले की प्रशंसा करने में समान ही वाक्पटु हुए हैं, जिस की प्रशंसा में चरदाई ने प्रत्येक प्रकार की उपमा का व्यवहार किया है, और जिस को वह अमृत का प्याला कहता है. "भाट अमृत + का यह प्याला पीकर,

---

० मध्वा एक प्रकार का उन्मादक रस है. यह नाम मधु शब्द से निकला है, जिस का अर्थ संस्कृत में 'मधुमक्खी' है. प्रसिद्ध है कि मीड नामक मद्य शहद से बनता है. यदि जर्मन लोगों का मीड शब्द हिन्दुस्तानियों के मधु (मधुमक्खी) से बना हो तो यह एक आश्चर्यजनक बात होगी. इस दशा में प्याला (मध्वा) और इन दोनों के साथ आप स्थान से लिये हुए होंगे.

+ अमृत (अमर) में [अ] नाञ्चित निषेध वाची अक्षर है. और 'मृत' का अर्थ मृत्यु है. इस प्रकार इस शब्द, अर्थात् मृत्यु का

जिस में लालमणि की नाईं अनार के दाने चमकते थे, निर्भय * जाति की कीर्त्ति का वर्णन करने लगा कि भाट, और शत्रु को दान देने में समान उदारता रखनेवाले राजन् चिरायु हो."

इन्द्रलोक में भी, जो हिन्दू वीरों का स्वर्ग और वलहल्लॉ [Valhalla] के सदृश है, राजपूतों को अपना प्याला मिलता है, जिस को अप्सरा अर्थात् स्कैनिया [Scania] की स्वर्गीय हीबी"* [Hebe] की जोड़ली वहिनें [अपने हाथोंसे] देती हैं. मरणासन्न जेटी वीर † कहता है, कि " मैं देवताओं के मध्य बैठकर प्याले भर कर मद्यपान करूंगा ; मैं हंसता हुआ प्राण त्याग करता हूं." ये ऐसे भाव हैं, जिन की राजपूत लोग भी प्रशंसा करेंगे.

राजपूत लोग मदोन्मत्तदशा में बहुत ही कम दिखाई देते हैं ; परन्तु एक अधिक हानिकारक और नवीन कुचाल ने हाल में निमन्त्रण के प्याले की प्रतिष्ठा अधिक

दरा, जो न्यूफ़ैचैटल [Neufchatel] में है, संस्कृत और जर्मन का एक सा शब्द प्रतीत होता है.

* मारवाड़ के राजा अभयसिंह ने जब अपने भाट को भोजन के समय अपने हाथ से प्याला दिया तो उस [भाट] ने ये वाक्य कहे थे.

† रेग्नर लॉडब्रॉग [Regner Lod brog] ने उस [जेटी वीर] के मृत्युसमय के गीत में, जब उस की भाग्य की देवियां बुलाती हैं [उपर्युक्त वाक्य लिखे हैं].

घटा दी है ; और उस में शुद्ध "फूल *" के स्थान पर अफ़ीम का प्रचार होने लगा है, जो प्रत्येक उत्तम गुण को नष्ट करनेवाला है. इस हानिकारक स्वभाव के विषय में हम लोग उन्हीं शब्दों का प्रयोग करेंगे, जो जर्मनी के लोगों की रीत भांत का इतिहास लिखनेवाले ने वेज़र और एल्ब नदी के तट पर निवास करनेवाली जातियों की बाबत उन के उन्मत्त करनेवाले मादक द्रव्यों की प्रीति के विषय में लिखे हैं. जो ये हैं. "उन को मतवाले होने दो, फिर उन के लिये तुम को अपने शस्त्रों का डर बताने की आवश्यकता न रहेगी. उन की कुचाल स्वयम् उन को तुम्हारे आधीन करा देगी."

स्कॅंडिनेविया में लड़ाई के देवता थोर के पूजनेवालों का प्याला मनुष्य की खोपरी होती थी, और वह भी शत्रु की. जिस में वे अपनी रक्त की प्यास प्रगट करते थे. यह रीति हिन्दुओं की त्रिमूर्त्ति में से मुख्य हर से, जो लड़ाई का देवता है, ली गई प्रतीत होती है, जो अपने हाथ में खर्परा †. लिये हुए अपने वीर योद्धों को "रुधिरपूरित रणभूमि में" ले जाता है, और उन से वह मारेजानेवालों का रक्त पान करता है.

हर उन सब लोगों का संरक्षक है, जो संग्राम तथा तेज़ मादक द्रव्यों से प्रेम रखते हैं, और राजपूत योद्धा विशेष कर उस की भक्ति रखते हैं. इसी से रक्त और मद्य ही हिन्दुओं के बड़े देवता को अर्घ देने के मुख्य पदार्थ हैं. गोसाईं लोग *, जो हर, वा बल अर्थात् सूर्य के ख़ास पुजारी हैं सब के सब मादक पदार्थ, पोदों, और रसों का सेवन करते हैं. व्याघ्र, चीता वा मृग के चर्म पर बैठे हुए, अपने शरीर पर भस्मि लगाये हुए, अपने केशों का जटाजूट बांधे हुए, चिमटा लिये हुए, जिस से वे अपनी धूनी की अग्नि चेताते रहते हैं, इन लोगों का जंगली रूप इन को रक्त तथा वध के देवता की आज्ञाओं का प्रतिपालन करनेवाला योग्य व्यक्ति प्रगट करता है. साधारण व्यवहार के विपरीत युद्ध के देवता हर का यह पुजारी मर जाने पर भूमि में गाड़ा जाता है, और उस के ऊपर एक वृत्ताकार समाधि बनाई जाती है, और कई एक सम्प्रदाय के गोसाइयों में छोटी छोटी समाधें बनाई जाती हैं, जिन का आकार अग्रभागरहित शंकु के समान होता है, और एक तरफ़

---

* कनफटा योगी वा गोसाईं लोगों की बड़ी बड़ी और बहुधा हज़ारों की जमाअतें होती हैं, और प्रायः रक्षा के निमित्त की लड़ाइयों में सहायता देने को ये लोग बुलाये जाते हैं. लड़ाई के देवता के नाम पर उदयपुर में राजपूतों का जो बड़ा उत्सव [नवरात्रि का उत्सव] किया जाता है उस में खड्ग जो मार्स का चिन्ह है, और गुहिलोत जिस की पूजा करते हैं, इन्हीं लोगों के सुपुर्द किया जाता है.

घटा दी है; और उस में शुद्ध "फूल *" के स्थान पर अफ़ीम का प्रचार होने लगा है, जो प्रत्येक उत्तम गुण को नष्ट करनेवाला है. इस हानिकारक स्वभाव के विषय में हम लोग उन्हीं शब्दों का प्रयोग करेंगे, जो जर्मनी के लोगों की रीत भांत का इतिहास लिखनेवाले ने वेज़र और एल्ब नदी के तट पर निवास करनेवाली जातियों की बाबत उन के उन्मत्त करनेवाले मादक द्रव्यों की प्रीति के विषय में लिखे हैं, जो ये हैं. "उन को मतवाले होने दो, फिर उन के लिये तुम को अपने शस्त्रों का डर बताने की आवश्यकता न रहेगी. उन की कुचाल स्वयम् उन को तुम्हारे आधीन करा देगी."

स्कैंडिनेविया में लड़ाई के देवता थोर के पूजनेवालों का प्याला मनुष्य की खोपरी होती थी, और वह भी शत्रु की, जिस में वे अपनी रक्त की प्यास प्रगट करते थे. यह रीति हिन्दुओं की त्रिमूर्त्ति में से मुख्य हर से, जो लड़ाई का देवता है, ली गई प्रतीत होती है, जो अपने हाथ में खर्परा † लिये हुए अपने वीर योद्धों की "रुधिरपूरित रणभूमि में" ले जाता है, और उस से वह मारेजानेवालों का रक्त पान करता है.

* फूल=महुवे का फूल, और उक्त नाम का मद्य जिसे राजपूत लोग बड़े प्रेम से पीते हैं. संस्कृत में इस को मधूक कहते हैं. देखो एशियाटिक रिसर्चेज जिल्द १, पृष्ठ ३००.

† मनुष्य की खोपड़ी —देश की प्रचलित बोलियों में 'खप्पर' कहलाता है. प्रश्न—क्या यह सैक्सन लोगों का कप [Cup] है ?

हर उन सब लोगों का संरक्षक है, जो संग्राम तथा तेज़ मादक द्रव्यों से प्रेम रखते हैं, और राजपूत योद्धा विशेष कर उस की भक्ति रखते हैं. इसी से रक्त और मद्य ही हिन्दुओं के बड़े देवता को अर्घ देने के मुख्य पदार्थ हैं. गोसाईं लोग *, जो हर, वा बल अर्थात् सूर्य के ख़ास पुजारी हैं सब के सब मादक पदार्थ, पोदों, और रसों का सेवन करते हैं. व्याघ्र, चीता वा मृग के चर्म पर बैठे हुए, अपने शरीर पर भस्म लगाये हुए, अपने केशों का जटाजूट बांधे हुए, चिमटा लिये हुए, जिस से वे अपनी धूनी की अग्नि चेताते रहते हैं, इन लोगों का जंगली रूप इन को रक्त तथा बध के देवता की आज्ञाओं का प्रतिपालन करनेवाला योग्य व्यक्ति प्रगट करता है. साधारण व्यवहार के विपरीत युद्ध के देवता हर का यह पुजारी मर जाने पर भूमि में गाड़ा जाता है, और उस के ऊपर एक वृत्ताकार समाधि बनाई जाती है, और कई एक सम्प्रदाय के गोसाइयों में छोटी छोटी समाधें बनाई जाती हैं, जिन का आकार अग्रभागरहित शंकु के समान होता है, और एक तरफ़

---

* कनफटा योगी वा गोसाईं लोगों की बड़ी बड़ी और बहुधा हज़ारों की जमाअतें होती हैं, और प्रायः रक्षा के निमित्त की लड़ाइयों में सहायता देने को ये लोग बुलाये जाते हैं. लड़ाई के देवता के नाम पर उदयपुर में राजपूतों का जो बड़ा उत्सव [नवरात्रि का उत्सव] किया जाता है उस में खड्ग जो मार्स का चिन्ह है, और गुहिलोत जिस की पूजा करते हैं, इन्हीं लोगों के सुपुर्द किया जाता है.

हर उन सब लोगों का संरक्षक है, जो संग्राम तथा तेज़ मादक द्रव्यों से प्रेम रखते हैं, और राजपूत योद्धा विशेष कर उस की भक्ति रखते हैं. इसी से रक्त और मद्य ही हिन्दुओं के बड़े देवता को अर्घ देने के मुख्य पदार्थ हैं. गोसाईं लोग *, जो हर, वा बल अर्थात् सूर्य के ख़ास पुजारी हैं सब के सब मादक पदार्थ, पोदों, और रसों का सेवन करते हैं. व्याघ्र, चीता वा मृग के चर्म पर बैठे हुए, अपने शरीर पर भस्मि लगाये हुए, अपने केशों का जटाजूट बांधे हुए, चिमटा लिये हुए, जिस से वे अपनी धूनी की अग्नि चेताते रहते हैं, इन लोगों का जंगली रूप इन को रक्त तथा वध के देवता की आज्ञाओं का प्रतिपालन करनेवाला योग्य व्यक्ति प्रगट करता है. साधारण व्यवहार के विपरीत युद्ध के देवता हर का यह पुजारी मर जाने पर भूमि में गाड़ा जाता है, और उस के ऊपर एक वृत्ताकार समाधि बनाई जाती है, और कई एक सम्प्रदाय के गोसाइयों में छोटी छोटी समाधें बनाई जाती हैं, जिन का आकार अग्रभागरहित शंकु के समान होता है, और एक तरफ़

* कनफटा योगी वा गोसांई लोगों की बड़ी बड़ी और बहुधा हज़ारों की जमाअते होती हैं, और प्रायः रक्षा के निमित्त की लड़ाइयों में सहायता देने को ये लोग बुलाये जाते हैं. लड़ाई के देवता के नाम पर उदयपुर में राजपूतों का जो बड़ा उत्सव [नवरात्रि का उत्सव] किया जाता है उस में खड्ग जो मार्स का चिन्ह है, और गुहिलोत जिस की पूजा करते हैं, इन्हीं लोगों के सुपुर्द किया जाता है.

सीढ़ियां बनी होती हैं, और उस समाधि की चोटी पर बेलन जैसा एक पत्थर * रख दिया जाता है.

मृतकक्रिया—मृतक की अन्त्योष्टिक्रिया के मिलान से प्रारंभिक समानता के प्रमाण मिलेंगे. स्कैंडिनेविया की अन्त्योष्टि क्रिया दो कौमी समयों में विभाजित हैं, अर्थात् अग्नि का समय, और पर्वत का समय +, अर्थात् वे समय जिन में योद्धा लोग पृथ्वी माता के अर्पित किये जाते वा चिता में जला दिये जाते थे.

ओडिन (बुद्ध) ने पिछली रीति चलाई, और शरीर के भस्म होने बाद वहां पर समाधि का बनाना भी प्रचलित किया. ऐसे ही अपने मृत पति के साथ स्त्री के जलने की रीति भी चलाई. ये रीतें शकद्वीप वा शक-सीथिया से लाई गई थीं. हेरोडॉटस कहता है, कि "वहां पर जेटी लोग चिता पर जलाये जाते थे, अथवा स्त्री उस के पति के साथ जीवित जला दी जाती थी."

---

* मैं ने इन लोगों का सारा समाधिस्थान और बहुत सी अलग अलग समाधें देखी हैं, ओर उन के चेलों को जो तपस्या के इन्हीं स्थानों में निवास करते है, अपने गुरुओं की पूजा करते भी देखे हैं. पूजा के समय ये लोग आक के पुष्प और सदैव हरे रहनेवाले वृक्षों की पत्तिया और शुद्ध जल उन की समाधों पर चढ़ाते हैं.

+ मैलेट की नॉर्दर्न ऐंटिक्विटीज़ [Mallet's Northern Antiquities] अध्याय १२.

स्कैंडिनेविया के जेटी वा सीवी वा सुरायी लोगों में यदि मृत पुरुष के एक से अधिक स्त्रियां होतीं तो बड़ी स्त्री अपने पति के साथ जल जाने का सत्व रखती थी *. तदनुसार "नन्ना [Nanna] अपने पति वाल्डर [Balder] के मृत शरीर के साथ, जो ओडिन के साथियों में से एक था, अग्नि में जलादी गई थी." परन्तु स्कैंडिनेवियावाले अपनी एशियाई उत्पत्ति को जतानेवाली इस रस्म को भुलाना चाहते थे, और वे सदैव जलाने वा "पति के मृत आत्मा के निमित्त ऐसा निर्दयी और बेहूदा बलिदान देने के इच्छुक नहीं थे, यह रवाज उन के सीथियन पुरखाओं द्वारा प्रचलित हुआ था, जब कि वे एशिया के उष्णप्रधान प्रदेश में रहते थे, जो उन का आदि निवासस्थान + था."

हेरोडॉटस कहता है, कि "सीथियन जेटी लोग अपनी चिता पर अपने घोड़े का बलिदान कर देते थे, और स्कैंडिनेविया के जेटी अपने घोड़े और अपने शस्त्रों को अपने साथ गड़वा देते थे, क्योंकि वे ओडिन के पास पैदल नहीं पहुंच सकते ‡ थे." राजपूत योद्धा अपने

* मैलेट अध्याय १२, जिल्द १ पृष्ठ २८९.

† एदा [Edda].

‡ मैलेट की नार्दर्न एंटिकिटीज़ अध्याय १२. केल्ट जाति के फ्रैंक लोगों में भी यही रस्म जारी थी. चिल्पेरिक [Chilperic] के शस्त्र और उस घोड़े की हड्डियां, जिस पर वह ओडिन के पास पेश किया जानेवाला था, उस की समाधि में पाई गई थीं.

अन्तिम निवासस्थान [= दग्धस्थान] को उसी प्रकार शस्त्रों से सजा हुआ जाता है, जैसा कि वह अपनी जीवित अवस्था में रहता है, अर्थात् उस की ढाल उस की पीठ पर बंधी हुई, तलवार हाथ में लिये हुए, और उस का घोड़ा यद्यपि बलि नहीं चढ़ाया जाता तो भी वह प्रायः किसी देवता के अर्पण कर दिया जाता है, और वह उस के पुजारी का माल हो जाता है.

मृत वीर का जलाया जाना, और उस की स्त्री का [उस के साथ] जलना वा सती होना प्रसिद्ध रस्में हैं; तथापि उन के दग्धस्थानों पर जो बड़ी बड़ी छत्रियां बनाई जाती हैं उन से यूरोपियन लोग कम परिचित हैं, वा उन को देखने के लिये वे कम जाते हैं. राजपूतों के सब राज्यों की उन्नति और अवनति का उन [छत्रियों] से बढ़ कर और कोई स्मारक चिन्ह नहीं है. पुत्र ही अपने पिता की यादगार में उस की छत्री बनवाता है. भक्ति वा प्रशंसाप्रद अहंकार की यह अन्तिम यादगार केवल कोष की अवस्था के अनुसार होती है. उस [पुत्र] के राजत्व का वैभव इसी से स्मरण किया जाता है, जब कि उस के पिता की छत्री उस के पूर्वाधिकारी राजा की छत्री से बढ़ कर बने. [मेरा] यह कथन रजवारा के प्रत्येक राज्य में राजा और सर्दारों के लिये एक सा घटता है.

सती होने का प्रत्येक पवित्र स्थान 'महासती'

कहलाता है, जो कथा कहानियों के अनुसार प्रेतस्थल है. उन चबूतरों के मध्य जहां सुन्दरियों और वीर राजपूतों की अन्त्येष्टि क्रिया की गई है, डाकिन निवास करती * है, और अपनी शिकारों के कलेजों का संहार करती फिरती है. राजपूत लोग इन सुनसान स्थानों में और कभी नहीं जाते सिवाय उस समय के जब कि उपरोक्त क्रिया करनी वा अपने पुरखों [पित्रेश्वरों] की वार्षिक पुष्प और जल चढ़ाना होता है.

ओडिन + अपने वीरों के अन्तिम निवासस्थान को, क़बरिस्तान के इर्द गिर्द स्थान परिवर्त्तन करनेवाली जलती हुई अग्नि के ज़रीए, लुट जाने से बचाता था, और सैलिक आईन का दसवां अध्याय उन लोगों को दण्ड देने के विषय में है, जो लोग समाधि पर से "भोजन और बिस्तर उठाले जाते थे." ऐसे पवित्र

---

* डाकिन (सिन्ध देश की जिगरख़ोर) जीवित कलेजा खानेवाली है. कप्तान डब्ल्यु [W.] साहिब ने उदयपुर की घाटी में बहुत काल तक पीछा करने के बाद एक लकड़बघे को बर्छे से मारा जो कबरिस्तान में रहा करता था, और जो आहेड़ की डाकिनी का घोड़ा प्रसिद्ध था, जिस पर चढ़ कर वह रात्रि में बाहिर निकलती थी. लोग कहते थे कि इस लकड़बघे के मारने से आपत्ति आवेगी; और पीछे से जब एक बारासिङ्घे का पीछा करते हुए वे घोड़े पर से बुरी तरह गिरे तो लोग इस का कारण यह बताने लगे कि उसी डाकिन के घोड़े को मारने से ऐसा हुआ.

+ मैलेट अध्याय १२.

स्थानों में चोरी करनेवालों का जल और अग्नि बन्द कर दिये जाने का विधान है.

शहाचा * अर्थात् स्थान परिवर्त्तन करके फिर फिर दीखनेवाली ज्वाला लड़ाई के क्षेत्रों में किम्वा महासती के स्थानों में यद्यपि मनोरंजक दिखाई देती है, तथापि उदासीनता का भाव प्रगट करती है. वह हिन्दुओं के हृदयों में मिथ्या विश्वाससम्बन्धी भय, और भक्ति उत्पन्न करनेवाली है, जिस की उत्पत्ति का स्वाभाविक कारण वही है, जो "ओडिन की स्थान परिवर्त्तन शील

---

* ग्वालियर में वहां के प्रसिद्ध गढ़ के पूर्व की तरफ़, जहां पर सहस्रों वीर योद्धा लड़ कर भूमि पर गिरे हैं. यह फ़ास्फ़ोरससम्बन्धी ज्वाला प्रायः आश्चर्यजनक दृश्य प्रगट करती है. मैंने उन मित्रों के साथ जिन के नेत्र इस को (फिर) देख सकेंगे, रात्रि के समय की चंचल ज्वाला की श्रेणी को आगे की तरफ बढ़ते हुए इस प्रकार देखा है, कि एक स्थल पर बुझ जाती है, और पुनः दूसरी जगह प्रकाशित हो जाती है, जो विषम दूरी पर होने के कारण प्रायः मरहटा राजा के दूर से दिन भर शिकार कर अनेक मशालचियों सहित पीछे लौटने का भ्रम उत्पन्न कराती हैं. मैंने उस ज्वाला-श्रेणी के निकट जाने के लिये एक बड़े ही दिलेर राजपूत से कहा, जिस के कथन और सूरत से यह बात भली भांति प्रगट होती थी कि वह मेरी इच्छा को निरर्थक समझता था. (उस ने कहा कि) "मैं मनुष्यों से युद्ध करने को तय्यार हूं, परन्तु उन लोगों की आत्मा के साथ नहीं लड़ सकता जो पहिले लड़ाई में मारे गये हैं." प्रायः यह ज्वाला वर्षा ऋतु के अन्त में दिखाई देती है, जब कि इन दलदलवाले स्थानों में जहां खार भरा रहता है भाफ निकलने लगती है.

ज्वाला का है," अर्थात् मुर्दों के सड़ने से फ़ास्फ़ोरस सम्बन्धी खार का उत्पन्न होना.

स्कैंडिनेवियाके निवासी मुर्दों की राख पर गुम्बज बनाते थे, और ऐसाही जैग्ज़ार्टीज़ नदी के तटस्थ जेटी लोग, और हिन्दुओं के युद्ध देवता हर के पुजारीगण भी किया करते थे.

गिबन [Gibbon] ने जो जेटिक अलॉरिक [Getic Alaric] के मकबरे का उत्तम चित्र खींचा है उस की समानता चंगेज़ख़ां की क़ब्रही कर सकती है. जब कि उस का ऊंचा घेरा बनाया गया तो उस के इर्द गिर्द दूर तक जंगल लगा दिया गया। कि जिस से उस की अस्थि के निकट कोई मनुष्य न जा सके.

चबूतरे, पत्थरों के ढेर, [पालिये] वा स्तभ अब भी उन राजपूतों के लिये बनाये जाते हैं, जो युद्ध में मारे जाते हैं, और रजवाड़े भर में ऐसे मृत वीरों के स्मारक चिन्ह पाये जाते हैं, जिन पर वीर अपने घोड़े पर सवार और सर्व प्रकार के शस्त्रों से सुसज्जित एवम् उस के पास अपनी आत्मा का उत्सर्ग करनेवाली उस की पतिव्रता स्त्री (सती) और एक तरफ़ सूर्य तथा दूसरी ओर चन्द्र जो चिरस्थाई कीर्त्ति के चिन्ह हैं, पाषाण पर खुदे रहते हैं.

सौराष्ट्र देश में काठी, कोमानी, बल्ला, और अन्य,

सीथिक वंश के लोगों में पालिया वा जूझार (मृत वीरों के स्तंभ) प्रत्येक नगर की शहरपनाह के नीचे कहीं तो पंक्तियों में, कहीं विषम समूहों में, और कहीं वृत्ताकार बने हुए देखे जाते हैं, प्रत्येक पर गंवारू रीति से वीर का आकार खुदा होता है, और जिस पर उस के मारेजाने का ढंग भी दिखाया जाता है; अर्थात् हाथ में बर्छा लिये प्रायः घोड़े पर सवार, और कभी कभी अपने रथ में बैठा हुआ; और समुद्र के किनारे पर "बुद्ध * [विष्णु] के जहाज़ी लुटेरे " जहाज के मस्तूल को थामनेवाले रस्सों पर से जहाज पर उतरते हुए खोद कर दिखाये गये हैं.

तातार के कोमानी लोगों में पादरियों को पत्थर के चक्कर मिले थे जो वैसी ही थे जैसे कि उन स्थानों में पाये जाते थे, जहां पर केल्ट लोगों की रस्में प्रचलित थीं, और इस बात के लिये बड़ी बुद्धिमानी की आवश्यकता नहीं है, कि ड्रूइड [Druid] लोगों के चक्करों और इन्डू-सीथियन लोगों के स्मारकसम्बन्धी पक्की कुची वस्तुओं के मध्य समानता सिद्ध कर दी जावे, यदि उन का एक ही मूल से उत्पन्न होना दिखाया न भी जासके.

---

* डारिया में चोरों के देवता को बुद्ध त्रिविक्रम कहते हैं, जिस का अर्थ "तीन प्रकार के बलवाला" है. यह देवता वैसाही है, जैसा कि मिसरवालों का तीन बलवाला मर्कुरी (बुध), जिस को हर्मीज् ट्रिस्मेजिस्टस [Hermes Trismegistus] कहते हैं.

न्यायस्थान के वृत्त के केन्द्र में जो आसन वा त्रिलिथोन [Trilithon=तीन पत्थर से बना हुआ] होता है वह उस संख्या से बनाया जाता है जो हर, बल, वा सूर्य के नाम पर पवित्र है, जिन के पुजारी क़ानून की व्याख्या करते हैं.

शस्त्रपूजा-खड्ग-राजपूत लोग अपने शस्त्रों की तरफ़ अब तक वैसीही भक्ति दिखाते हैं, जैसे कि वे अपने घोड़े की तरफ़. वे अपने " खड्ग की " शपथ खाते हैं, और अपना बचाव करनेवाली ढाल, अपने बर्छे, अपनी तलवार वा अपनी कटार को साष्टांग प्रणाम करते हैं.

खड्ग (असि) वा घोड़े (अश्व) की पूजा से ही एशिया महाद्वीप का नाम पड़ा हो, जो सीथियन जेटी लोगों में प्रचलित थी, और जिस का वर्णन हेरोडॉटस ने ठीक ठीक किया है. डेसिया [Dacia] और थ्रेस [Thrace] में यह रीति जेग्ज़ार्टीज़ नदी के किनारे पर के जेटी लोगों द्वारा, जो वहां जाकर बसे थे, लाई गई, और इन स्वतंत्रता के प्रेमियों ने इस को उस समय में फैलाया, जब कि इन के गिरोहों ने यूरोप पर हमला किया.

खड्ग की पूजा जेटी अटीला [Getic Atila] द्वारा एथेन्स के क़िले में सर्व प्रकार की धूमधाम और सजावट के साथ की जाती थी, जो रोम की अवनति

और ज़वाल के इतिहास में एक प्रशंसनीय उपाख्यान है. यदि गिवन साहिव ने मेवाड़ के महाराणा को अपने समस्त सर्दारों सहित दुधारी तलवार (खांडा) की पूजा करते देखा होता तो वह मार्स [मंगल] के चिन्ह [अर्थात्] तलवार की पूजा के अपने जोशदार बयान को और भी अधिक उत्तमता के साथ लिखते.

शस्त्रविद्या में प्रवेश–जैसी कि जर्मन लोगों में, सैनिक कार्य में प्रवेश करने के समय जो कार्यवाही की जाती थी, वैसी ही राजपूतों में भी प्रचलित है, अर्थात् प्रवेश करनेवाले युवक को एक वर्छा दिया जाता था, वा ढाल बांध कर तलवार वंधाई जाती थी. इस रस्म का वर्णन जागीरदारी की रीतों का हाल लिखने के समय किया जायगा. उसी समय उन के और भी कई गुणों की विशेषता का चित्र खींचा जायगा. ऐसी ऐसी समान रस्मों को लिख कर उन की सूचिका बढ़ाना एक सरल कार्य होगा जिन में खाद्य पदार्थों* की जो वस्तुएं उन के यहां निषिद्ध समझी जाती हैं, उन का मुक़ाबला भी प्राचीन केल्ट और राजपूतों के बीच सम्बन्ध दिखाने

---

* सीज़र [Caesar] हम को सूचित करता है, कि वृटिन के केल्ट ख़रगोश, राजहंस, वा पालीकड़ पक्षियों को नहीं खाते थे. राजपूत ख़रगोश का शिकार करते हैं, परन्तु न तो उसे खाते है, और न हंसों को, जो लड़ाई के देवता (हर) के कारण पवित्र है. मेवाड़ के राजपूत जंगली कुक्कुट को खाते हैं, परन्तु पालीकड़ को बहुत ही कम.

का काम देगा. परन्तु इन रस्मों के बयान को सब से प्राचीन रस्मों के सविस्तर वर्णन के साथ समाप्त करेंगे.

अश्वमेध, वा घोड़े का यज्ञ—कई एक वस्तुएं, जो जड़ और चैतन्य हैं, जगत् की जातियों में पूजा के साधारण पदार्थ हैं; जैसे सूर्य्य, चन्द्र, और स्वर्ग का सारादल [=तारागण]; तलवार; रेंगनेवाले जीव, जैसे सर्प; जानवर, जैसे घोड़ा, जो उन में सर्वोत्तम है. यह अन्तिम [=घोड़ा] भक्ति की साक्षात् वस्तु की नांई नहीं पूजा जाता था, किन्तु उस प्रभापूर्ण बिम्ब [=सूर्य्य] के चिन्ह की तरह, जिस की प्रतिष्ठा प्रकृति का प्रत्येक सन्तान करता आता है. तातार के मैदानों लीबिया की मरूभूमि, ईरान के पर्वतों, गंगा की वादी और ओरिनोको [Orinoco] के जंगलों में से प्रत्येक में उस की प्रभा, अर्थात् "इस बड़े संसार के नेत्र और आत्मा [=सूर्य्य]" के समान ही उत्साहवाले भक्त उत्पन्न हुए हैं.

जल वायु और स्वभाव के अनुसार उस के प्रतिरूप की पूजा और चढ़ावा भिन्न भिन्न प्रकार का होता था ; और एशिया में बल की, और गालें तथा ब्रटिन के केल्ट लोगों के बेलिनस की वेदियां मनुष्य के बलिदान के धूम्र से आच्छादित होती थीं, बैबिलन में मिथ्रास [=सूर्य्य] की सांड का * बलि चढ़ाया जाता

* जैसा कि बलनाथे (बल के देव) के लिये प्राचीन काल में भारत-

में उसे ह्यर्सा (hyrsa); ब्यूटानिक में हॉर्स् (hors) सैक्सन में हॉर्स (horse) कहते हैं.

बाल्टिक समुद्र के किनारे की जर्मन जातियों का बड़ा त्यौहार ही-उल वा हि-एल (जिसपर पहिले टिप्पण हो चुकी है) था, और अश्वमेध * गंगा के किनारे के सूर्य के सन्तानों का था.

अश्वमेध की रस्मों में बहुत ही व्यय चाहिये, और उस में इतना अधिक भय है, कि आधुनिक राजा लोग उस को नहीं कर सकते. इस के विनाशकारी परिणामों के कई ऐतिहासिक उल्लेख भारतीय इतिहास के प्रारंभिक काल से उस के अन्तिम [स्वतंत्र] राजा

---

* अश्व (मेध का अर्थ 'मारना') में हम लोगों को वाजस्व के पुत्रों से उत्पन्न प्राचीन जातियों के नामों की उत्पत्ति मिलती है जो सिन्धु नदी के दोनों किनारों के देशों में बस्ती थीं, और यही शब्द एशिया के नाम की उत्पत्ति का भी सम्भावतः मूल कारण है. अस्ससेनी [जाति] जो सिकन्दर के इतिहास लिखनेवालों की अरि-अस्पी है, और अस्पासियानी, जिस की शरण में अर्सासिज़ें सेल्युकस के पास से भाग कर गया था, और जिसे स्ट्रेबो एक जेटी जाति लिखता है, एक ही मूल से निकली है अतएव असि-गढ़, अर्थात् असी लोगों का गढ़ (जिस को भूल से हांसी कहते हैं) और अस-गर्ड स्कैंडिनेविया में जेटी जाति के असीलोगों की पहिली बस्तियें थीं.

मार्कोपोलो [Marco Polo] के कथनानुसार जिस से मिल्टन ने अपना भूगोल लिया है सिकन्दर ने इन सब जेटी जातियों की आधीनता सूचक सेवा 'नगरों की माता' बल्ख़ में स्वीकार की थी, जहां पर कैथियन खान (मेरे शिलालेख का जिट कैथीडा) की राजगद्दी थी.

पृथ्वीराज के समय तक के हमारे पास मौजूद हैं. रामायण, महाभारत, और चन्द का काव्य इस बड़े प्रभावशाली यज्ञ और उस के फल का दृष्टान्त दिखाते हैं. *

रामायण में अश्वमेध का एक अति उत्तम चित्र खींचा है. अयोध्या के महाराजा दशरथ, जो राम के पिता थे, इस यज्ञ के लिये इस प्रकार आज्ञा करते हुए, दिखाये गये हैं. "यज्ञ की तय्यारी करो, और घोड़ा † सरयू के उत्तरी किनारे से छोड़ो ! ‡"

एक वर्ष बीतने पर जब घोड़ा अपने परिभ्रमण से लौट आया § तब यज्ञभूमि उस के प्रथम छोड़े जाने के स्थान पर तय्यार की गई.

---

* अन्तिम अश्वमेध आंबेर के प्रसिद्ध राजा सवाईजयसिंह ने किया था, परन्तु सूर्य का दुग्धवर्ण श्वेत घोड़ा, मुझे विश्वास है कि नहीं छोड़ा गया था, नहीं तो राठौड़ लोग युद्ध की ललकार को अवश्य स्वीकार करते.

† विशेष चिन्हवाला दुग्धवर्ण श्वेतघोड़ा चुना जाता था. छोड़े जाने पर उस की भली भांति रक्षा की जाती है, और वह अपनी इच्छानुसार जहां चाहता है, फिरता है. इस से युद्ध की ललकार समझी जाती है. युधिष्ठिर के छोड़े हुए अश्व की रक्षा अर्जुन ने की थी, परन्तु वह घोड़ा जिस को उस के पोते परीक्षित ने छोड़ा था "उत्तर के तक्षक लोगोंने पकड़ लिया था" यही दशा दशरथ के पिता सगर की हुई. जिस से उस का राज्य जाता रहा.

‡ सरयू वा गग्गर कमाऊ के पहाड़ों से निकल दशरथ के राज्य कोशलदेश में होकर बहती है.

§ एक वर्ष के उपरान्त घोड़े का लौटना स्पष्ट करता है कि ज्योतिष

चारों ओर के नृपतियों अर्थात् राजा कैकय ⊛, काशी + के राजा, अंगदेश * के लोमपाद, मगधदेश § के कोशल, और सिन्धुदेश ¶, सौवीर ✓, और सौराष्ट्र × के राजाओं को अयोध्या में आने का निमन्त्रण भेजा गया.

सम्बन्धी एक भ्रमण या सूर्य का क्रान्ति मंडल में पुनः उसी स्थल पर लौट कर आना प्रगट करता है. सूर्य का अपने दक्षिणायन से लौटना सीथियन और स्कैंडिनेवियन जातियों में सदैव आनन्द का दिन माना जाता होगा, क्योंकि गिबन कहता है कि वे अपने विशाल निवासस्थान को, जब उत्तरीय शीतल वायु चलता होगा, नरक से भी अधिक दुःखदायी समझते होंगे. वे दक्षिण की ओर इस देवता [सूर्य] के लिये ताकते रहते थे, और इसी से राजपूतों में भी घर का दर्वाज़ा उत्तर की तरफ़ रखना धर्म के नियमानुसार निषिद्ध है.

⊛ [रामायण के] अनुवादक डॉक्टर कैरे साहिब की राय में कैकयैं ईरान का राजा होना चाहिये. [वहां पर] कै वंश दारा से पहिले हुआ था. हिन्दुओं के आख्यायिकासम्बन्धी दोहे में कै उपाधि प्रायः मिलती है. एक दोहा जो मुझे स्मरण है जयपुर राज्य के अन्तर्गत अभयनेर के प्राचीन खंडहरों से सम्बन्ध रखता है, और जिस में उस के एक राजा का विवाह कैकम्ब की बेटी के साथ होने का उल्लेख है.

तू बेटी कैकम्ब की, नाम परमला हो [य]। इत्यादि

जिस का अर्थ यह है कि—तू कैकम्ब की कन्या है, और तेरा नाम परिमला है. ईरान के राजाओं के एक वंश की भी उपाधि कै थी. प्रश्न—क्या काम वख्श यूनानियों का कैम्बिसेज़ नहीं है ?

+ बनारस.

* तिब्बत वा आवा. § बिहार. ¶ सिन्ध की वादी.

✓ मुझे ज्ञात नहीं. × काठियावाड़ का प्रायद्वीप.

जब कि यज्ञ के स्तंभ खड़े हो चुके तब यज्ञ आरंभ हुआ. इस रसम का वह हिस्सा, जिस का नाम यूपचार्य्या है, इस प्रकार व्यवेरेवार वर्णित है :–

"अष्ट पहलू २१ यूप वा स्तंभ * खड़े किये गये थे. इन में से प्रत्येक की ऊंचाई २१ फ़ीट, और व्यास ४ फ़ीट था. उन की चोटियों पर मनुष्य, हस्ती या सांड की मूर्तियां बनी हुई थीं. वे भिन्न भिन्न लकड़ियों के,

* मैंने बहुत प्राचीन काल के पाषाण के कई एक यज्ञस्तंभ देखे हैं. बहुत वर्ष पहिले जब कि राजपूत राज्यों में मरहटों के अधिकार का उत्पात था, सूरत के एक बड़े ही योग्य और धनाढ्य कोठीवाले ने, जो अपने ख़ानदानी नाम से त्रिवेदी कहलाता था, और जिस से उन दुःखों को देख कर, जो वे लुटेरे शत्रु राम और कृष्ण की सन्ततियों को लगातार दिया करते थे, अत्यन्त ही करुणा आती थी, नेत्रों में आंसू भर कर मुझ से कहा कि, जयपुर की आपत्तियों का कारण यह है, कि यहां के राजा जगत्सिंह ने यज्ञस्तंभों के सुवर्ण के पत्र उखड़वा कर अपने ख़ज़ाने में भिजवा महापाप किया है. यह कर्म रेहोबोम के कुकर्म से भी नीच समझा गया, जिस ने कि "सोलोमन [सुलैमान] की बनवाई हुई सुवर्ण की ढालों" को मन्दिर से ले कर उन के स्थान पर पीतल की ढालें रखवा दी थीं. जब उन (सुवर्ण के पत्रों) के सिक्के ढाले गये तो वे मरहटों के पास चढ़ाई के व्यय के तौर पर भेजे गये, या उस से भी अधिक नीच कार्य में, अर्थात् उस की रसकपूर नामक पासवान के अर्थ लगाये गये. यह कार्यवाही इस राजा की मूर्खता की अन्य कार्यवाहियों के तुल्य ही थी. जयसिंह ने इन स्तंभों को बनवाया था, और अपने देश की प्रतिष्ठा बढ़ाई थी, जिस का कि वह दूसरा संस्थापक था, और जिस के राजत्वकाल में उस देश ने उन्नति प्राप्त की थी, परन्तु अब उस की अवनति हुई है.

जिन का व्यवहार यज्ञ में हो सकता था, बनाये गये थे. उन पर सुवर्ण के पत्तर मंढ़े हुए थे, और वे कलाबत्तू के कामवाले वस्त्र तथा फूलों के तोरण व वन्दनवार से आच्छादित थे. स्तंभों के खड़े किये जाने के समय अध्वर्य्यू, होत्री अर्थात् यज्ञ के आचार्य से अनुशासन पाकर, मन्त्रों को उच्चस्वर से उच्चारण करता था. "

" यज्ञकुण्ड गरुडाकृति आकार की तीन पंक्तियों में बनाये गये थे, और सब मिलकर १८ थे. यहीं पर बध किये जानेवाले जीव, जिन में पक्षी, जलजन्तु और वह घोड़ा था, रक्खे गये थे. "

" महाराजा दशरथ के इस घोड़े को कौशल्या ने तीनवार यज्ञाग्नि की प्रदक्षिणा कराई, और ब्राह्मणों के मन्त्र उच्चारण करने पर प्रसन्नता के कोलाहल में वह बध * किया गया. "

" महाराजा और महाराणी को प्रधान ऋत्विज ने अश्व के निकट बिठाया. वे पक्षियों का निरीक्षण करते हुए सारी रात बैठे रहे. पुरोहित [प्राणियों] के हृदय निकाल कर शास्त्रों के अनुसार प्रसन्नता पूर्वक तय्यार करता था. होमे हुए हृदयों के धुंएं की नरपति ने सुगन्ध ली, और उस ने अपने किये हुए अप-

---

* नौरोज अर्थात् नये साल के त्यौहार पर मुग़ल बादशाह एक ऊंट अपने हाथ से मारता है, और उसे अपने मर्ज़ीदानों को बांटता है, जिसे वे लोग खाते हैं.

राधों की उसी क्रम से, जिस क्रम से कि वे किये गये थे स्वीकार किया."

"तब यज्ञ करानेवाले १६ ऋत्विज (शास्त्रों की आज्ञानुसार) घोड़े के अंगों को अग्नि में होमने लगे, और सब जीवों का हव्य लकड़ी के शरवे से, परन्तु केवल घोड़े का बेत के शरवे से दिया गया."

"यज्ञ के अन्त में ऋत्विजों और भविष्यद्वक्ताओं को भूमिदान दिया गया, परन्तु पवित्र पुरुषों [ब्राह्मणों] ने सुवर्ण दान ही स्वीकार किया, अतएव उन को एक करोड़ जाम्बूनंदे * दिये गये."

मूर्तिपूजकों के सब से प्राचीन और अधिक प्रभावशाली अश्वमेध का इस प्रकार का विस्तार पूर्वक वृत्तान्त लिखा हुआ है. इस में और भिन्न भिन्न [अन्य]

---

* यह एक प्रकार का देशी सुवर्ण है, जिस का रंग एक प्रकार का श्यामता लिये हुए चमकीला होता है, और जिस की उपमा जम्बू के फल (जो डेम्सन नामक बेर से मिलता हुआ है) से दी जाती है. हिन्दुओं में सारी वस्तुएं रूपक के तौर पर वर्णित की जाती हैं. और इस धातु के उत्पन्न होने का वही काल माना गया है, जब कि जान्हवी अर्थात् गंगादेवी ने अग्निदेव से गर्भ धारण कर कुमार अर्थात् युद्ध के देवता को उत्पन्न किया, जो देवताओं की सेना का सेनापति है. यह घटना उस समय हुई थी, जब कि गंगा ने अपने जन्म स्थान हिमालय को जिस की वह बेटी है (जो सर्व प्रकार के खनिज पदार्थों का बड़ा गोदाम है) छोड़ा. निस्सन्देह यह किसी बहुत ही प्राचीन काल का सम्बोधक है, जब कि गंगा ने अपने शिलामय मार्ग को फोड़ कर " अपनी बग़ल से " इस बहु मूल्य धातु की खान दिखलाई.

जातियों की इस प्रकार की रस्मों में [ईश्वर के] चुने हुएँ लोगों से लेकर रोम के औरेस्पेक्स (Aurespex) लोगों तक एवम् कैथलिक धर्म्म की पाप स्वीकार की रस्मों के बीच समानता दिखलाना अनावश्यक है.

संक्रान्ति * वा शिवरात्रि शीतकाल में पड़ती है. इस अवसर पर घोड़ा सूर्य्य वा बल-नाथ को बलिदान दिया जाता था.

स्कैंडिनेवियन लोग सब से लंबी रात को 'रात्रि माता † ' पुकारते थे, और उसी रात को संसार के उत्पन्न होने की रात्रि मानते थे. इसी से बेलटानी [Beltanœ] अर्थात् बल वा बेलीनस [Belenus] की ज्वाला, उत्तरीय जातियों का हि-उल, और अश्वमेध वा सूर्य की पूजा के यज्ञकुण्ड की अग्नि है, जिस की पूजा सूर्यवंशी लोग गंगा के किनारे, और सीरियन और सौरोमेटी लोग भूमध्यसागर के किनारे पर करते थे.

फ़िनीशियाँ [Phœnicia] के हेलिओपोलिस

---

* छोटे छोटे कमख़ाब के बटुवे, जिन में तिल के दाने और तिल के लड्डू भी होते हैं, राजालोग इस अवसर पर अपने मित्रों को बांटते हैं. और जिस समय कि ग्रन्थकर्त्ता [टॉड साहिब] लिख रहा है उस के सामने ऐसे दो बटुवे युवक मरहटा महाराजा हुल्कर के भेजे हुए रक्खे हैं.

† शिवरात्रि शायद पितृरात्रि हो. शिव-ईश्वर जगत् का पिता है.

[Heliopolis], बोलबेक * [Balbec] वा टॉडमोर † [Tadmor] की वेदियां उसी देवता के लिये पवित्र थी जिस की वेदियां सरयू के किनारे वा सौराष्ट्र देशान्तर्गत बलेपुर में थीं, जहां पर वहां के राजाओं को विजय करने के निमित्त लेजाने को "सूर्य के घोड़े उस के कुण्ड [सूर्यकुण्ड] में से निकलते थे."

केल्टिक ड्रुइड [Celtic Druids] लोगों के शिक्षक सीरियां से आये थे, जो मनुष्य का बलिदान चढ़ाते थे, और जिन्हों ने कैम्ब्रियां और केलीडोनियां के पहाड़ों पर बेलेनस के नाम पर स्तंभ खड़े किये थे.

"जबकि जूडेहें [Judah] ने परमेश्वर की दृष्टि में पाप किया तो उस ने ऊंचे ऊंचे चबूतरे, मूर्त्तियां, और बगीचे प्रत्येक ऊंचे पहाड़ पर और प्रत्येक वृक्ष के नीचे बनाये", जो बल के निमित्त थे और स्तंभ (लिङ्ग)

---

* फिरिश्ता जो भारत के शहन्शाहों का इतिहास लिखनेवाला है, इस को फारसी या अरबी शब्दों से बना हुआ बतलाता है, अर्थात् बल=सूर्य्य, और बेक=मूर्ति.

† यह शब्द बिगड़ कर पाल्मायरा [Palmyra] हो गया है. इस की उत्पत्ति मेरे विश्वासानुसार अद्यापि कभी नहीं दी गई. यद्यपि यह टाडमोर का ही एक दूसरा रूपान्तर है. संस्कृत में ताड़ वा ताड़, ताड़ के वृक्ष को कहते हैं, और मोर का अर्थ मुख्य है. भारत में एक से अधिक नगरों का नाम "ताड़ों का नगर" (तारपुर) है, और एक जाति जो सिन्ध देश के हैदराबाद में शासन करती है, उस स्थान के कारण तालपुरी कहलाती है, जहां से वह पहिले पहिल निकली थी.

उस का चिन्ह था. यह इसी देवता की वेदी थी, जिस पर वे धूप जलाते थे और "महीने के पन्द्रहवें दिन * (हिन्दुओं की पवित्र अमावास्या) बछवा का बलि चढ़ाते थे." ईसराईल का बछवा बालकेश्वर वा ईश्वर का सांड (नंदी) और मिस्र देश के ओसिरिस [Osiris] का एपिस [Apis] है.

पश्चिमीय देशों में सूर्य देवता के निमित्त ऐश [नामक वृक्ष] पवित्र था. उन पुस्तकों में जो पूर्वीय देशों में बल के कारण पवित्र हैं, अश्वत्थ (वा पीपल) † को 'वृक्षों में मुख्य' कहा है, और जो कोई धर्मद्रोही

---

* Kings अध्याय २३.

† पीपल-यह इटली और जर्मनी के पोपल (पोपलर) वृक्ष के साथ जिस की एक जाति स्पेन है सम्पूर्णतः मिलता है. यह उस से इतना मिलता है, कि कैरोलिनां (Carolina) से लाया हुआ पीपल का एक नमूना लैगोमैगिओर (Lago Maggior) के आइसोलाबेला [Isola Bella] में पापुलस एन्गुलाटा [Papulus Ougulata] कहलाता है, और दूसरा टोलन (Toulon) के जार्डिनडेसप्लैन्टीज़ (Jordin des plantes) में फाइकस पापुलीफोलिया ऑन फिगुइर आफ्यूलीज़ डि प्युपलियर (Ficus populifolia on figuier a feulles de peuplier) कहलाता है. एस्पेन (ospen), वा ऐश (Ash) का वृक्ष जिसे केल्ट जाति के पुजारी पवित्र मानते थे, उसे पहाड़ी ऐश बतलाते हैं.

पीपल के नीचे 'पलका बछड़ा' प्रायः रक्खा जाता है, और हिन्दुओं की कथा के अनुसार उस का कभी न सूखनेवाला पेड़ पवित्र है, जो उस स्थान को बतलाता है, जहां पर कि हिन्दुओं के ऐपोलो हरि (सूर्य) सौराष्ट्र के समुद्री तट पर जंगली भील के हाथ से मारे गये थे.

उस की पवित्र कुंजों * को काटता है उस का कोई

* राजपूतों के धर्म्मविषयक विश्वासों पर यद्यपि सैकड़ों वर्षों से मुग़लों, और ग़ुलाम पठानों का आघात होता रहा है तो भी वे उन विश्वासों के अनुसार पवित्र पीपल, और छायादार वट पर किसी को कुलहाड़ी मारते हुए न देख सकेंगे, और ऐसा करनेवाले को अभिशापित करेंगे, ऐसी चित्तवृत्तिवाला अभागा है, जो ऐसे प्राचीन काल के धर्म-विषयक विश्वासों पर जान बूझ कर आघात करे! तो भी हमारे देश-वाले (अंग्रेज़) जो पूर्वीय देशों में रहते हैं, अन्य देश के सारे विश्वासों को तुच्छ समझ कर *हिन्दुस्तानी मार्ग के पवित्र पक्षियों पर गोली चलाते,* बलके बछड़ों को मारते, और पवित्र पीपल को देशियों के देखते हुए बिना पछतावे के काट डालते हैं।

यह अज्ञानी और मूर्ख है, जो ऐसे विश्वासों के साथ गंवारपने का व्यवहार करता है। ये विश्वास बुद्धि की पहुंच से बाहिर हैं। वह अनुदार चित्त है, जो उन की प्रतिष्ठा नहीं करता, वह बुद्धिशून्य है, जो मूर्खता और बेपर्वाई से ऐसे अपराधों को रोकने का पूर्ण यत्न नहीं करता। ऐसा करना हमलोगों के बल की बदनामी कराना, और अनुदार भाव से उन लोगों की दुर्बलता से लाभ उठाना है। हमलोगों को स्मरण करना चाहिये कि बलके इन मन्दिरों का, उन के पीपल का, और उस के पवित्र पक्षी (मोर) का कौन रक्षक है। सूर्य और चन्द्र की सन्तति, और प्राचीन काल के ऋषियों के सन्तान जो हम लोगों की सेना में भरे पड़े हैं वे हमारे सब कामों को ध्यानपूर्वक चुप चाप देखा करते हैं। ये लोग मनुष्य जाति भर में [illegible] को सब से अधिक चाहनेवाले, हमारे बड़े वफ़ादार और आज्ञाकारी हैं। हम-लोगों को चाहिये उन के विश्वासों की प्रतिष्ठा करके और उन के अभि-मान को रख कर उन्हें अपने कर्त्तव्य, आज्ञापालन और हमारी अनु-राग में दृढ़ रक्खें। इस बात को पूर्णतः निश्चित कर हमलोगों का भारतवर्ष में राज्य क़ायम रहना निर्भर है। परन्तु गत कुछ वर्षों में उन लोगों का प्रेम हमारी ओर निश्चय नहीं रहा है। इस का एक [illegible]

न कोई अंग भंग हो जाता है वा मृत्यु होती है. वहां एक स्तंभ, जिस पर उन के नहीं काटने की आज्ञा खुदी रहती है, खड़ा किया जाता है.

विचारवान पुरुषों के सामने रखना चाहिये, कि क्या उन लोगों का आराम भी उतनाही बढ़ा है, जितना कि उन लोगों ने हमारे लिये राज्य विजय किया है वा उतनाही घटा है? क्या उन का भत्ता और उन का सुख नहीं घटा है? क्या रुपये और जीवन की सुखदायक वस्तुओं के बीच वही सम्बन्ध अभी तक है, जो २० वर्ष पहिले था? जिस प्रकार आधे भत्तेवाली छावनियां और उन के कर्त्तव्यकार्य बढ़े हैं साथ ही उस के क्या मुद्रा की दर [महंगाई] प्रति सैकड़ा २५ के हिसाब से नहीं घट [बढ़] गई है? शासक और सेवक के लाभार्थ हमें इन बातों का शोधन करना चाहिये. मैं अत्यन्त सच्चाई के साथ दृढ़तापूर्वक कहता हूं कि मैं इन सब बातों को केवल सब लोगों की हृदय से भलाई चाहने के कारण कहता हूं. मैं राज्यसेवा से प्रेम रखता था, और देशी सिपाहियों से प्रीति रखता था. मैं ने इस बात को सिद्ध कर के दिखा दिया है, कि देशी सिपाही जहां प्रसन्न हो कर चित्त से काम करता है तो कैसा करता है. सन् १८१७ ई० में ३२ पथरकलावाले मेरगार्ड के सिपाहियों ने १५०० शत्रुओं के पड़ाव पर आक्रमण किया, उन को पराजित करके तितर बितर कर दिया, और अपने से तिगुनों * को मार कर गिरा दिया. मैं हमेशा के लिये उस स्थल को छोड़ने के बाद बिना किसी आवेश के एक [=सिपाही] की भलाई के लिये सम्मति प्रगट करता हूं, जिस के साथ दूसरे [=अंग्रेज़] की दृढ़ता वा उस के प्रतिकूल होना निर्भर है.

---

* कोरीगाम, जो भारत का थर्मोपिली [Thermopylæ] है, क्या कहता है? पांच सौ पथरकलावाले २० सहस्र योद्धों से लड़े। क्या इतिहास में नेपोलियन का इस से बढ़ कर चमत्कृत कार्य लिखा है? क्या कोई स्तंभ इस स्मरणीय दिन के लिये यूरोपियन और देशी योद्धों के नाम पर खड़ा किया गया है, कि भविष्य में लोग उसे देख कर वैसे वैसे वीरता के कार्य करने को

हम अब इस स्थान पर इण्डो-सीथियन राजपूतों और यूरोप की प्राचीन जातियों के मध्य की समानता का वर्णन समाप्त करते हैं. और भी अधिक समानता के दृष्टान्त दिये जा सकते हैं; यदि स्कैंडिनेविया के पुराने रूनिक [Runic] केल्टिक, और ओसि [Osci] वा इट्रुस्कन [Etruscan] अक्षरों का राजस्थान और सौराष्ट्र की गुफाओं और चटानों पर मिलनेवाले अक्षरों से मिलान करें तो और भी प्रारंभिक समानता का उपयोगी प्रमाण मिल सकता है, और जर्मन लोगों का नाम ही ('वेर' = युद्ध) * राजपूतों के फ्यूड (वैर) और फ़्री-मैन (वैरी) से निकला हुआ पाया जा सकता है.

यदि ये समानताएं केवल संयोगवश मिल गई हैं तब तो जो कुछ पहिले कहा गया है वही बहुत है; परन्तु यदि ऐसा नहीं है तो यहां पर जो प्रमाण दिये गये हैं, और कल्पना की गई है वे दूसरे लोगों की सहायता के लिये हैं.

---

* डी ऐन्विल साहिब की दी हुई जर्मन शब्द की उत्पत्ति वेर (युद्ध), और मेनस [= मनुष्य] से है.

उद्यत हों ? वीर फ़िट्ज़ जिराल्ड [Fitzgerald] की छाती पर कौन सा तमगा नागपुर के मैदान में वीरता दिखाने के लिये चमक रहा है ? किसी दूसरे स्थल पर और समय में उस के ये शब्द कि, "मेरी उत्तरदायिता पर भरोसा रख कर आक्रमण करो ?" उस के टोप पर अंकित किये जाते. इन बातों पर सुधार के लिये ध्यान देने की आवश्यकता है.

त्रुटि ।

इस प्रकरण में फ्रेन्च भाषा की पंक्तियों का अनुवाद यथास्थान पर नहीं दिया जा सका इस लिये यहां प्रकाशित किया जाता है.

पृष्ठ १३६ में असी [Asi] जाति पर के नोट में.

" सम्भव है कि इसी नाम टाचरी से एम. डी. एन्विल को प्रतीत हुवा कि ऐसे नामवाली जातियां उस देश में रहती होंगी जो आज कल डोकरिस्थान कहलाता है, जिस [देश] की बाबत वह बड़ा भूगोलवेत्ता कहता है कि वह पहाड़ों और जेहुन या अमूं नदी के बीच में स्थित है "—स्ट्रैबॅन [Strabon] जिल्द ११ पृष्ठ २५४ नोट ३.

पृष्ठ १३७ में सैकेसेनी [Sacasenœ] जाति पर के नोट में.

" संभवतः सैकेसेनी अल्बानिया और शिर्वान की सीमा पर आर्मिनिया का एक प्रदेश था. "—स्ट्रैबॅन [Strabon] tome i पृष्ठ १९१ नोट ४.

सब की लिपि को उन्हों ने भ्रम से पाली ही मान रक्खा है. उन को जितने लेख इस देश में मिले थे उन में से किसी की लिपि कापटिक लिपि से नहीं मिलती, केवल यूरोप और हिन्दुस्तान की प्राचीन जातियों के बीच समानता बतलाने की धुन में उन्हों ने लिपियों का सादृश्य भी मान लिया है.

७ एरिया=हिरात के आस पास का प्रदेश.

८ अश्वजाति–चंद्रवंश की अश्व नामक कोई जाति नहीं हुई, परंतु टॉड साहिब ने चन्द्रवंशी अजमीढ के वंशज वाजश्व (बाह्यश्व) के नाम के अन्त में 'अश्व' पद देख कर उस वंश में अश्व जाति की कल्पना कर ली, और उक्त जाति तथा मध्य एशिया की असि जाति का एक होना अनुमान कर लिया, परन्तु उन का यह अनुमान स्वीकार योग्य नहीं है.

९ मीड – यह भी टॉड साहिब की घढन्त है. पुरमीढ, अजमीढ, आदि के नामों के अन्त में 'मीढ' पद देख कर उन का और मीडिया प्रदेश की शकों की 'मीड' जाति का एक होना अनुमान कर लिया है, परन्तु उस को स्वीकार करने के लिये कोई प्रमाण नहीं है.

१० डाही–दाहिया शब्द डाही से मिलता जुलता होने के कारण ही टॉड साहिब ने शकों की डाही जाति और दाहिया राजपूतों का एक होना अनुमान कर लिया है, परन्तु यह भी उन की कल्पना मात्र है, जिस के लिये कोई प्रमाण नहीं है.

११ क्रीमिया=यूरोप के अन्तर्गत काले समुद्र के उत्तर का एक प्रायद्वीप.

१२ दिश्टीकिप्चक=मध्य एशिया में रहनेवाली क्रिप्चक नामक मंगोलियन जाति का निवासस्थान.

१३ केल्ट=पश्चिमी यूरोप की एक प्राचीन जाति, जो पीछे से जर्मनी, इटली, स्पेन, पुर्तगाल, बृटन आदि यूरोप के भिन्न भिन्न देशों में फैल गई थी.

१४ ड्रुइड = केल्ट जाति के लोगों के धर्म्मगुरु जो अनेक देवी देवताओं तथा अग्नि के पूजक थे.

१५ कोमानी = काठियों की तीन मुख्य शाखों में से एक 'खुमाण' नाम की शाखा है उसी को टॉड साहिब ने कोमानी लिखा है.

१६.गॉथ = यूरोप की एक प्राचीन जाति (देखो टॉड साहिब की भूमिका पर हमारा नोट नंबर २१).

१७ फ्रेया = प्रीति और सुन्दरता की देवी, जिसे स्कैंडिनेवियावाले उन के यहां के देवता ओडन वा वोडन की स्त्री मानते हैं.

१८ वीनस = रोमन लोगों की पौराणिक कथाओं के अनुसार प्रीति की देवी.

१९ वलकाइरी (अप्सरा) = युद्ध में मरे हुए पुरुषों की तरफ़ ताकनेवाली रूपवती देवांशी स्त्रियां.

२० पारसी = भाग्य की ३ देवियां.

२१ स्वेडन = यूरोप का एक देश.

२२ जेफ़ेट = नूह के पुत्रों में से एक.

२३ काशगर = चीन के पूर्वी तुर्किस्तान का एक प्रसिद्ध नगर जो प्राचीन काल में एक स्वतन्त्र राज्य की राजधानी था.

२४ मार्कोपोलो = वेनिस नगर का निवासी एक प्रसिद्ध मुसाफिर, जिस का जन्म ई० सन् १२५४ में और देहान्त ई० सन् १३२४ में हुआ था. उस ने मध्य एशिया, चीन, और हिन्दुस्तान की यात्रा की, जिस में २४ वर्ष (ई० सन् १२७२ से १२९५ तक) लगे थे. यात्रा से लौटने बाद वह उस युद्ध में शरीक हुआ, जो जिनोआ के राज्य के साथ हुआ था, और उस में क़ैदी बना. उस ने क़ैदख़ाने में अपनी यात्रा का सविस्तर वृत्तान्त एक दूसरे क़ैदी को लिखवाया जो उक्त विषय की एक अपूर्व पुस्तक मानी जाती है. वह काशगर में ई० सन् की छठीं शताब्दी में नहीं, जैसा कि टॉड साहिब ने लिखा है, किन्तु तेरहवीं शताब्दी में था।

२५ जाबुलिस्तान काबुल से दक्षिण का एक विस्तीर्ण प्रदेश, जिस

की राजधानी ग़ज़नी थी, और जिस के अन्तर्गत सीस्तां (शकस्थान) प्रदेश भी था.

२६ चग़ताई = मुग़ल लोगों की एक शाख़. जयसलमेरवाले चग़ताई मुग़लों को हिन्दू नहीं मानते, परन्तु उन के भाटों की ख्यातों में, जो विश्वास योग्य नहीं है, भालन्द के ज्येष्ठ पुत्र भट्टी के बेटे का नाम चकित होना लिखा है, उसी पर से टॉडसाहिब ने चग़ताई मुग़लों का हिन्दू होना अनुमान कर लिया है. इस के सिवाय उक्त अनुमान के लिये कोई भी प्रमाण नहीं है. नामों में कुछ कुछ समानता देख टॉडसाहिब ने अनेक विचित्र कल्पनाएं करडाली है उन में से एक यह भी है.

२७ साइरस = ईरान के महाराज्य का संस्थापक. उस ने ईरान का राज्य पाने बाद अपने बाहुबल से मीडिया, आसिरिया, बाबिलन्, सीरिया, अरब, एशियामाइनर आदि देशों को अपने आधीन किया था, और सन् ई० से पूर्व ५२९ में मेसेजिटी लोगों के साथ की लड़ाई में वह मारा गया था.

२८ टोमोरिस = जेटी लोगों का राजा, जो ईरान के बादशाह साइरस का समकालीन था.

२९ उद्गार = टॉडसाहिब उद्गार नाम को उत्तरकुरु से मिलाना चाहते हैं, परन्तु उन नामों में कुछ भी समानता नहीं है. यह ख़ाली उन की हठधर्मी है. पुराणादि में जो उत्तर कुरुदेश का वर्णन मिलता है उस में उक्त देश का नील पर्वत से दक्षिण में, और मेरु से उत्तर में होना लिखा है, परन्तु उक्त प्रदेश का सर्व सुखसम्पन्न होना, वहां पर लोगों की उम्र १००० से १०००० वर्ष तक की होना और वहां पर मिथुनों (एक लड़का और एक लड़की) का सदा साथ उत्पन्न होना लिखा है, जिस से अनुमान होता है कि शायद वह कोई कल्पित देश हो.

३० प्लुटो = यूनानियों की देवकथाओं के अनुसार काले रंग का भयानक देवता जिस को हिन्दुओं के यमराज के तुल्य समझना चाहिये.

३१ प्रोमेथिअस = यूनानियों की पौराणिक कथाओं के अनुसार एक बुद्धिमान देवता. उस के लिये यह भी प्रसिद्ध है कि उस ने मिट्टी के मनुष्य बनाये, और स्वर्ग में से अग्नि चुराकर उस के द्वारा उन में जीवारोपण किया था.

३२ मेनस = रोमन लोगों की पौराणिक कथाओं का पितृदेवता वा कुलदेवता.

३३ शाकंभरी = सांभर (राजपूताना में) का नाम है, जहां की देवी का नाम भी शाकंभरी है. यह नगर चौहानों की प्रथम राजधानी होने से ही चौहानों को 'शंभरीराज' (सांभर के राजा) कहते हैं, और शाकंभरी देवी उन की खास देवी है. शाकम् शब्द 'शाखा' का बहुवचन नहीं है, और न अंबर का अर्थ रक्षा करना है, जैसा कि टॉडसाहिब का अनुमान है.

३४ राजपूत लोगों में जैसे देवी को बकरे व पाड़े का बलिदान दिया जाता है वैसे सूर्य को घोड़े का बलि देने का रवाज कभी नहीं रहा. अश्वमेध यज्ञ कोई सामान्य बलिदान नहीं था. वह तो बहुत ही कम, और कभी तो सैकड़ों वर्षों तक होने ही नहीं पाता था, परन्तु सेथिक जातियों में तो सामान्य पशु की नाईं घोड़े का बलिदान साधारण रीति से होता था. सेथिक जातियों के अश्वबलि और हिन्दू राजाओं के अश्वमेध यज्ञ में कुछ भी समानता नहीं थी.

३५ नबी हज़कील—ईसाइयों की धर्मपुस्तकों में उन को [illegible] में रहनेवाले धर्मगुरु बूज़ी (Buzi) का पुत्र लिखा है. उस का जन्म ई० सन् से पूर्व ६२४ में होना माना जाता है.

३६ हायरोडोटस = यूनान का प्रसिद्ध इतिहास लेखक, जो सन् ई० से पूर्व की पांचवीं शताब्दी में हुआ था. उस ने '[illegible]' नामक इतिहास की पुस्तक लिखी थी, जिस का [illegible] इस समय उपलब्ध है. वह [illegible] के [illegible] में निवास करता था.

३७ [illegible] = [illegible] लोगों का प्रसिद्ध पुरुष.

३८ एल्ब और वेजर दोनों नदियां जर्मन देश में हैं.

३९ डेरिअस हिस्टास्पस = ईरान का बादशाह दारा (देखो टॉड साहिब की भूमिका पर हमारा नोट नं. १३).

४० अपसाला = यूरोप के अन्तर्गत स्वेडन देश का एक प्रसिद्ध नगर.

४१ टैसिटस = रोमन इतिहास लेखक, जिस का जन्म ई० सन् ५५ के करीब, और देहान्त ई० सन् १२० के आस पास होना माना जाता है.

४२ एड्डा = उक्त नाम की पुस्तक.

४३ जैनों के अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामि के निर्वाण (मोक्ष) के समय से जैनों में एक संवत् माना जाता है, जिस को वे 'वीर-निर्वाण संवत्' कहते हैं. उस का प्रारंभ वि० संवत् से ४७० वर्ष पूर्व (न कि ४७७ वर्ष पूर्व जैसा कि टॉड साहिब ने लिखा है) अर्थात् ई० सन् से पूर्व ५२७ से माना जाता है.

४४ चीनवाले बौद्ध धर्म्म के प्रचारक शाक्यमुनि (बुद्ध) का निर्वाण (मोक्ष) ई० सन् से पूर्व १०२७ में होना मानते हैं यह उन का भ्रम है, और ऐसा मान कर उन्हों ने ऐतिहासिक पुस्तकों में समय-निर्णय-सम्बन्धी अनेक गलतियां की हैं, बुद्ध के निर्वाण के समय से बौद्धों में एक संवत् माना जाता है, जिस के प्रारम्भ के विषय में उन में बहुत कुछ मतभेद है. सीलोन (सिंहलद्वीप), ब्रह्मदेश और स्याम में बुद्ध का निर्वाण ई० सन् से ५४४ (वि० संवत् से ४८७) वर्ष पहिले होना माना जाता है, और आसाम के बौद्ध राजगुरु भी ऐसा ही मानते हैं. चीनी यात्री फाहियान, जो सन् ४०० ई० में यहां आया, लिखता है कि इस समय बुद्ध के निर्वाण से १०९७ वर्ष गुज़रे हैं. उस के लेख से निर्वाण का समय ई० सन् से पूर्व (१४९७—४०० =) १०६७ के आस पास आता है. उस के विरुद्ध प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएन्संग अपनी यात्रा की पुस्तक के अन्दर कश्मीर के वृत्तान्त में लिखता है कि, निर्वाण से १०० वें वर्ष में अशोक का राज्य दूर दूर

राजा का है, न उस में सालिन्द्रपुर का नाम है; और न वह पांचवीं शताब्दी का है. वह तो मौर्य (मोरी) वंश के राजा धवल के समय का है, जिस के मित्र राजा संकु के पुत्र शिवगण ने वह मन्दिर बनवाया था, जिस के विषय का वह लेख है. उस में जिट अर्थात् जाटों का कहीं नाम निशान तक नहीं है, परन्तु उस के दूसरे श्लोक में ' पान्तु शंभोर्ज्जटा वः ' और तीसरे में ' शंभोर्ज्जटाः पान्तु वः ' लिखा हुआ है. इसी ' जटा ' शब्द से टॉड साहिब ने जेटी या जिट (जाट) राजा की कल्पना कर ली. ऐसे ही तीसरे श्लोक में जो ' भोगीन्द्रस्य फणामणिद्युति.... ' लिखा है, वहां पर ' भोगीन्द्र ' को ' शालीन्द्र ' पढ़ लेने से उन्हों ने अपने अनुमान किये हुए जिट राजा को 'सालिन्द्रपुर' का राजा ठहरा दिया. इसी तरह उक्त लेख का संवत् जो ७९५ खुदा है उस को ५९७ पढ़ लिया, और उस में से फिर अपनी कल्पना के अनुसार १३२ वर्ष घटा कर (देखो उक्त लेख पर का उन का नोट नंबर ६) उस को ई० सन् ४०९ का ठहरा दिया. ऐसे ही उक्त लेख में कहीं तुग्ग जाति का नाम निशान तक नहीं है.

४७ तातार के लामा लोगों की लिपि अब हिन्दुस्तान की प्राचीन लिपि नहीं रही, जिस को टॉड साहिब पाली लिपि कहते हैं, परन्तु वे लोग उन के देश की लिपि का उपयोग करते हैं. अलबत्ता प्राचीन काल में वहां पर भारतवर्ष की ब्राह्मीलिपि का प्रचार अवश्य था, परन्तु वह बहुधा धर्मगुरुओं में ही, जो अपने धर्म के तत्व को जानने के लिये बौद्धग्रन्थों को, जो संस्कृत व प्राकृत (मागधी) में बने थे; पढ़ा करते थे. अब तो चीन, जापान आदि की नाईं वहां (तातार) से भी प्राचीन काल के रक्खे हुए भारतीय लिपि की पुस्तक कहीं कहीं मिल आते हैं.

४८ जिटकैयीडा = इस नाम की कल्पना भी लेख शुद्ध न पढ़े जाने से ही टॉड साहिब ने की हो ऐसा पाया जाता है. बूंदी से ६ मील पूर्व रामचन्द्रपुर से उन को एक प्राचीन लेख मिला था, जिस का अंग्रेज़ी अनुवाद उन्हों ने अपने ' राजस्थान ' की पहिली जिल्द के शेष

और फ़्रेया से मिलाने की खेंचताण में हिन्दुओं की त्रिमूर्त्ति में उन के नाम धर दिये हैं.

५६ मुहूर्त्त की शिकार वसन्त के प्रारंभ में नहीं, किन्तु शीत काल के मध्य में मुहूर्त्त से होती है, और बहुधा मृगशिर में हुआ करती है. राजपूत लोग चातुर्मास में बहुधा शिकार नहीं करते, इस लिये उस के बाद अच्छा दिन देखकर उस का फिर प्रारंभ करते हैं, जिस को मुहूर्त्त की शिकार कहते हैं.

५७ सूर=संस्कृत में यज्ञस्तंभ को सुर वा सूल नहीं कहते, जैसा कि टॉड साहिब ने लिखा है, परन्तु उस को यूप कहते हैं. उन्हों ने महादेव को युद्ध का देवता मान कर उन के त्रिशूल से मिलाने के लिये यूप के स्थान पर सूल मान लिया हो.

५८ हिन्दुओं के युद्ध के देवता कुमार अर्थात् कार्त्तिक स्वामी के सात सिर होना कहीं नहीं लिखा, किन्तु ६ सिर होना सर्वत्र लिखा मिलता है, और उसी से उन का षण्मुख नाम पड़ा है.

५९ किम्ब्री चर्सोनीज़=जटलैण्ड का प्राचीन नाम है.

६० मार्स=युद्ध का देवता.

६१ बरदाई=टॉड साहिब ने इस शब्द का प्रयोग 'भाटों' के लिये किया है. मारवाड़ के राठौड़ों के पूर्वज बरदाईसेन के नाम में 'बरदाई' पद होने से उक्त साहिब ने उस नाम का अर्थ 'सेना का भाट' किया है.

६२ प्रोवेंकल (ट्रावेडर)=फ़ान्स के अन्तर्गत प्रोवेन्स नामक स्थान के रहनेवाले.

६३ न्युस्ट्रिया=यूरोप में प्राचीन फ़्रैंक लोगों के आधीन का म्यूज़ (Meuse), और लोरी (Loire) नदियों के बीच का प्रदेश.

६४ जोव=यूनानी और प्राचीन रोमन लोगों का प्रसिद्ध देवता जुपिटर (देखो प्रकरण पहिले पर हमारा नोट नं० १५.)

६५ ज़र्कसीज़=देखो राजस्थान के भूगोल पर का नोट नं० १५.

६६ अर्बेला=असीरिया देश का एक नगर, जिस को इस समय

अर्बेला वा एर्बिल कहते हैं।' इस से ५० मील पर ई० सन् से पूर्व ३३१ के करीब यूनान के प्रसिद्ध बादशाह सिकन्दर और ईरान के बादशाह दारा के बीच युद्ध हुआ, और उस में दारा की हार हुई थी, यह युद्ध 'अर्बेला का युद्ध' नाम से प्रसिद्ध है.

६७ टेलट = प्राचीन यूनानियों के यहां का एक तोल और द्रव्य-सम्बन्धी मान. वे लोग ६००० द्रम्म के मूल्य को १ टेलंट कहते थे. परन्तु उस का मूल्य सदा एक सा नहीं रहा.

६८ पार्मेनिओ = सिकन्दर का एक बड़ा ही अनुभवी और विश्वास-पात्र सेनापति था, जो एशिया की चढ़ाई के समय उस के साथ था, और अरबेला की लड़ाई में बड़ी वीरता से लड़ा था; परन्तु पीछे से एक प्रसंग पर सिकन्दर को मार डालने का विचार उस के कितने एक सैनिकों ने किया उस में पार्मेनिओ का भी झूठा ही शुबहा किया गया, और उसी से वह वृद्ध सेनापति मरवा डाला गया. यह कृत्य सिकन्दर के उज्वल यश में एक काले दाग सा हो गया.

६९ शाका = राजस्थानी भाषा में उस युद्ध को 'शाका' कहते हैं, जिस में असंख्य वीर राजपूत विजय से निराश हो कर अपनी स्त्रियों को मारने के बाद लड़ कर प्राण देते हैं. टॉड साहिब ने भ्रम से शाखा और शाका को एक ही अनुमान कर लिया है. इसी तरह शक (जाति) और शाखा को भी कहीं कहीं एक सा मान लिया है.

७० पॉटिक समुद्र = काला समुद्र.

७१ ज़ेला = एशिया माइनर का एक शहर.

७२ मध्वा = टॉड साहिब ने मद्य के लिये 'मध्वा' शब्द का प्रयोग किया है, परन्तु राजस्थान में यह शब्द प्रचलित नहीं है. राजपूत लोग सामान्यतः मद्य को दारू कहते हैं, और कोई २ शराब और मद्य भी कहते हैं. राजपूताना में अधिक शराब पी कर उन्मत्त होनेवाले को 'मदवा' कहते हैं इसी से शायद उक्त साहिब ने मद्य को 'मध्वा' लिख दिया हो.

७३ मधु = संस्कृत में मधु शब्द के अर्थ शहद, मद्य आदि है, न कि मधुमक्खी, जैसा कि टॉड साहिब ने लिखा है.

७४ न्यूफ़चैटल = यूरोप के अन्तर्गत स्विट्ज़रलैण्ड प्रदेश के २० जिलों में से एक, जो फ्रान्स की सीमा के निकट है.

७५ वलहल्ला = स्कैंडिनेविया की पौराणिक कथाओं के अनुसार युद्ध में मरे हुए वीरपुरुषों के रहने का स्वर्गस्थान.

७६ हीबी = यूनानियों की पौराणिक कथाओं के अनुसार युवावस्था की देवी, जो जुपीटर तथा जूनों (जुपीटर की स्त्री) की पुत्री, और देवताओं को प्याला पिलानेवाली मानी जाती है.

७७ अहाड़ = यह प्राचीन नगर उदयपुर से करीब १॥ मील पूर्व में है. यहां पर उदयपुर के महाराणाओं का दग्धस्थान है, जिस को महासती कहते हैं. प्राचीन नगर का खंडहर मात्र अवशेष रहा है, जो गुहिल राजा शक्तिकुमार के समय में मेवाड़ की राजधानी था. यहां से कईएक प्राचीन लेख मिले हैं.

७८ सैलिक आईन = फ्रेंच राज्य का पुराना कानून, जो ई० सन् की छठीं शताब्दी के करीब बना था.

७९ अलारिक = पश्चिमी गॉथ लोगों का प्रसिद्ध राजा, जो कई बार इटली राज्य पर आक्रमण कर रोमन राज्य का मालिक बना था. उस का देहान्त ई० सन् ४१० में होना माना जाता है.

८० चंगेज़ खां = तातार का प्रसिद्ध मुगल बादशाह, जिस का जन्म ई० सन् ११६२ में और देहान्त १२२७ में हुआ था. वह १३ वर्ष की अवस्था में मुगलों के राज्य सिंहासन पर बैठा. सन् १२०६ ई० में उस ने उत्तरी चीन देश पर चढ़ाई की, जिस में ५०,००,००० आदमी मारे गये थे. वह उत्तरी चीन, पूर्वी ईरान, और सारे तातार का बादशाह था.

८१ जहाजी लुटेरे = जहाजी लुटेरों से यहां अभिप्राय द्वारिका के आस पास ओखा मण्डल आदि में रहनेवाले वाघेरों से है जो एक प्रसिद्ध लुटेरी क़ौम है, और अपने तईं राठौड़ होना बतलाती है. वि० सं० १९५५ के फाल्गुन महीने में मुझ को भी इन्हीं वाघेरों ने जाम नगर के राज्य में लूट लिया था, जब कि मैं प्राचीन वस्तुओं की खोज करता हुआ ओखा मण्डल से लौट रहा था.

८२ बुद्धत्रिविक्रम = त्रिविक्रम विष्णु का नाम है, जिस के साथ बुद्ध शब्द टॉट साहिब ने अपनी ओर से जोड़ दिया है.

८३ देसिया = यूरोप में डेन्यूब नदी के उत्तर के एक प्रदेश का प्राचीन नाम.

८४ थ्रेस = पूर्वी यूरोप के एक प्रदेश का प्राचीन नाम है, जो इस समय रूम राज्य के अन्तर्गत रोमेलिया ज़िला कहलाता है.

८५ एटीला = हूण (Hun) जाति का प्रतापी राजा, जिस ने यूरोप में बड़ा विजय प्राप्त किया था. उस का जन्म सन् ४०६ ई० में और देहान्त ४५२ ई० में हुआ था.

८६ राजपूत लोग खरगोश का शिकार करते हैं, और उसे खाते हैं.

८७ हंस महादेव के लिये पवित्र नहीं, किन्तु सरस्वती और ब्रह्मा के लिये है.

८८ लीबिया = आफ्रिका खण्ड का प्राचीन यूनानी नाम, लीबिया की मरुभूमि से अभिप्राय आफ्रिका के प्रसिद्ध सहारा अर्थात् रेगिस्तान से है.

के रीत रवाज तथा देवी देवताओं की समानता बतलाने की खींच ताण में ऐसे कई नये नाम घड़ंत किये हैं जो सर्वथा कपोल कल्पित हैं.

९२ बलिदान=टॉडसाहिब इस शब्द का अर्थ सूर्य को सांड चढ़ाना करते हैं, यह भी उन की घड़ंत ही है.

९३ बालिम=यह नाम भी टॉडसाहिब ने सूर्य या महादेव के लिये घड़न्त किया है. राजपूताना में यह कल्पित नाम सर्वथा अज्ञात ; और यही हाल सौराष्ट्र के लिये बलपुर का है. वल्लभीपुर का [illegible] ' बल ' के नाम से पड़ा अनुमान कर उन्हों ने ' बलपुर ' नाम [illegible] कल्पना की हो तो आश्चर्य नहीं.

९४ अर्सासेज़=पार्थिया का एक राजा, जिस ने सन् ई० से पूर्व [illegible]५० के करीब उक्त राज्य पर अपना अधिकार जमाया था.

९५ सेल्युकस=सिकन्दर के प्रसिद्ध सेनापति सेल्युकस का वंशज [illegible]ोना चाहिये, जो सीरिया और ईरान का बादशाह था, और जिस को [illegible]ल्युकस कैलिनिकर कहते थे.

९६ गंडक=सरयू का दूसरा नाम नहीं, किन्तु उस से भिन्न नदी [illegible], जो संयुक्त प्रान्त और बिहार में बहती है. सरयू का दूसरा नाम गोग्रा [illegible]रा पाया है.

९७ कैकय=ईरान का राजा नहीं था. न इस नाम का ईरान के ' कै ' वंश से कोई सम्बन्ध है, और न हिन्दुओं के दोहों में ' कै ' कोई उपाधि मिलती है जैसा कि टॉडसाहिब लिखते हैं. टॉडसाहिब ने यहां के राजाओं और ईरान के ' कै ' वंशी राजाओं का एक होना अनुमान करने की धुन में ' कै ' को उपाधि मान लिया है. कैकय का अर्थ कैकय देश का राजा है. कैकय देश सिन्ध के निकटवर्ती प्रदेश का नाम था.

९८ अंगदेश तिब्बत या आवा का नाम नहीं, किन्तु बंगाल के पश्चिमी हिस्से का नाम था, जिस की राजधानी चंपापुरी थी, जिस को अंगपुरी भी कहते थे.

९९ सौवीर=सिन्धु सौवीर ये दोनों नाम बहुधा साथ ही लिखे मिलते हैं, जो (दोनों मिल कर) सारे सिन्ध देश के सूचक हैं. अतएव सौवीर सिन्ध के एक हिस्से का नाम होना चाहिये.

१०० सोराष्ट्र सारे काठियावाड का नाम नहीं, किन्तु उस के दाक्षिणी हिस्से का नाम था जो अब सोरठ नाम से प्रसिद्ध है.

१०१ पाषाण के बहुत प्राचीन काल के जिन यशस्तंभों का टॉड साहिब देखना लिखते हैं, वे वास्तव में यशस्तंभ नहीं हैं. पाषाण के ज बहुत प्राचीन स्तंभ इस समय इस देश में पाये जाते हैं उन में से कित एक तो मौर्यवंशी राजा अशोक के खड़े किये हुए बौद्धस्तंभ हैं, औ दूसरे मन्दिरों से सम्बन्ध रखते हैं. जैसे टॉड साहिब ने उन प्राचीन स्तंभों को यशस्तंभ माना है वैसे ही अन्तिम चौहान वीर हम्मीर के सभासद राघवदेव के पौत्र शारङ्गधर ने भी फ़ीरोज़शाह की लाट नामक अशोक के स्तंभ को जो फ़ीरोज़शाह के समय देहली में लाया गया था, यशस्तंभ माना है, क्योंकि उस पर खुदे हुए चौहान राजा वीसलदेव (विग्रह राज) के वि॰ संवत् १२२० के तीसरे लेख के दोनों श्लोक उस ने अपनी पुस्तक 'शारङ्गधरपद्धति' में जहां उद्धृत किये हैं (पृ॰ २०५–२०६) वहां पर उन का पाषाण के यज्ञयूप की प्रशस्ति से उद्धृत करना लिखा है (एतौ नृगनृपतिपाषाणयज्ञयूपप्रशस्तेः। पृ॰ २०६), जिस का कारण उस पर खुदे हुए अशोक के लेख का पढ़ा न जानाही है.

१०२ जांबुनद=जांबु नामक फल के रंग जैसे सोने का नाम नहीं, किन्तु जंबू नामक नदी की रेत में से निकले हुए सुवर्ण का नाम है.

१०३ टॉड साहिब ने राजा दशरथ के अश्वमेध यज्ञ का वर्णन रामायण से लिया है उस में कई जगह कुछ का कुछ लिख दिया है. हम ने उस पर जगह जगह टिप्पण देना मुनासिब नहीं समझा. पाठक लोग उस के यथार्थ वर्णन के लिये वाल्मीकि रचित रामायण अथवा उस के हिन्दी अनुवाद के बालकाण्ड के सर्ग १३ और १४ देख लेवें.

१०४ चुने हुए लोगों से यहां अभिप्राय बाइबल में लिखे हुए इज़राइल के मनुष्यों से होना पाया जाता है.

१०५ फ़िनिशिया=सीरिया देश का एक विभाग.

१०६ हेलियोपोलिस (सूर्य का शहर)=मिसर देश का एक प्राचीन नगर, जो सूर्य के मन्दिर के लिये बड़ा ही प्रसिद्ध था. उस की उपमा दूसरे शहरों को दी जाती है.

१०७ बाल्बेक=(इस शब्द का अर्थ वहां की भाषा में सूर्य का नगर है) सीरिया का एक प्राचीन शहर.

१०८ टाडमोर=सीरिया का एक प्राचीन नगर, जिस को यूनानी लेखक 'पलमाइरा' नाम से प्रसिद्ध करते हैं.

१०९ बलपुर=टॉड साहिब ने यह नाम वल्लभीपुर के लिये घड़ंत किया है. उक्त नगर को 'बलपुर' किसी लेखक ने नहीं लिखा, परन्तु उन को उक्त शहर के नाम का सूर्य से सम्बन्ध बतलाना इष्ट था इसी से यह घड़ंत करना पड़ा. बल का अर्थ यहां की भाषा में सूर्य सर्वथा नहीं है.

११० कैम्ब्रिया=इङ्गलैण्ड के वेलस नामक प्रदेश का प्राचीन नाम.

१११ कैलिडोनिया=ब्रिटन के उस विभाग का प्राचीन नाम, जो फर्थ ऑफ़ फ़ोर्थ और क्लाइड नदी के बीच में है.

११२ जुडाह=यहूदियों की धर्मपुस्तकों में लिखे हुए जैकब का चौथा पुत्र, और इसराइल जाति का नाम.

११३ इसराइल=जैकब का दूसरा नाम, जो इसराइल अर्थात् यहूदियों का मूल पुरुष था, और उसी के नाम से उक्त जाति का नाम इसराइल पड़ा है.

११४ करोलिना=पासिफ़िक समुद्र के भीतर का एक टापू जो कैरोलिन नाम से प्रसिद्ध है.

प्रकरण सातवां ।

छत्तीस राजवंशों की नामावली।

राजस्थान की वीर जातियों की प्राचीन वंशावलियों एवम् उन लोगों के गुण और धर्म्म की उन मुख्य मुख्य वातों का, जो प्रारंभिक काल की यूरोपियन जातियों के गुण और धर्म्म विषयक ख़ास ख़ास वातों से समानता रखती हैं, वर्णन करने के पश्चात् [अव] हम छत्तीस राजकुलों की नामावली का वर्णन करते हैं.

वह सूची जो पाठकों के सामने उपस्थित की जाती है, एक ही दृष्टि में उन समस्त प्रमाणों को वतलाती है, जिन के आधार पर कि यह निर्म्मित की गई है. वे प्रमाण जैसे उपयोगी हैं, वैसे ही संख्या में भी अधिक हैं. पहिली नामावली मारवाड़ के अन्तर्गत नाडोल नामक प्राचीन नगर के एक जैन मन्दिर के यती द्वारा प्राप्त एक प्राचीन ग्रन्थ के छूटकर पत्रे से ली गई है. दूसरी देहली के अन्तिम हिन्दू सम्राट के भाट चन्द ० के काव्य से बनाई गई है. तीसरी एक प्रशंसनीय ग्रन्थ से है, जो चन्द की पुस्तक का समकालीन, और जिस का नाम कुमारपाल चरित्र + अर्थात् अनहिलवाड़ा

---

० मेरे पास इस के काव्य की संपूर्ण प्रति मौजूद है, जिसकी कि प्राप्ति हो सकती है.

+ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी को भेट किया।

ही मुख्य मान कर उस का इतिहास लिखा जावे तो वह अनेक पत्रों को भरने के लिये अलम् है.

प्रथम नामावली के प्रारम्भ में माता शाकम्भरी देवी की स्तुति है, जो इन वंशों (शाखाओं) की रक्षा करनेवाली माता है.

प्रत्येक वंश (शाखा) का गोत्रोच्चार * होता है, जो वंशावली सम्बन्धी विषय को संक्षिप्त रूप से प्रगट करता है, जिस में उस वंश की ख़ास ख़ास बातें, धर्म्म विषयक सिद्धान्त, और आदि निवासस्थान दिया होता है. प्रत्येक राजपूत का यह कर्त्तव्य है, कि इस को ज़ाबनी बता सके, यद्यपि अब इसे केवल कुल का पुरोहित वा भाट ही याद रखता है. बहुत से सर्दार, इस अवनति के समय में, यदि, उन्हें उन का गोत्रोच्चार पूछा जावे तो चकित होंगे, और अपने भाट से पूछने को कहेंगे. यह [गोत्रोच्चार] सम्बन्ध की कसौटी और परस्पर विवाह करने के नियम का संरक्षक है. जब कभी उस गोत्र में सम्बन्ध हो जाता है, जिस में कि उस का करना मना है, तो इस [गोत्रोच्चार] के द्वारा वह भूल मालूम हो जाती है; यद्यपि वहां [इस विषय] का अज्ञान ही आनन्ददायक है. †

---

* एक वा दो नमूने इस गोत्रोचार के उचित स्थान पर दिये जावेंगे.

† बूंदी के एक राजा ने मालणें जाति की एक राजपूतानी से, जिस जाति का नाम अब अज्ञात है, विवाह किया था, परन्तु एक

इन वंशोंमें से बहुत से अनेक शाखाओं में* विभक्त हैं, और ये शाखा अगणित प्रशाखाओं (गोत्रों †) में.

भाट के गोत्रोच्चार करने पर मालूम हुआ कि, वह जाति आठ शताब्दी पहिले चौहान वंश की एक शाखा थी, जिस वंश में कि बूंदी के हाड़ा [राजपूत] हैं. इस घटना का परिणाम यह हुआ कि बड़े खेद के साथ वह स्त्री छोड़ दी गई, और प्रायश्चित्त करना पड़ा. इस में और एक स्त्री के अनेक पति करने के अपवित्र रवाज में कितना भेद है, जिस [रवाज] का पाण्डवों, सीथियन जातियों, सिरमोर के वर्त्तमान काल के निवासियों, और सीज़र के समय के ब्रिटन लोगों में भी होने का उल्लेख मिलता है।—इस द्वीप के निवासियों का वर्णन करते समय वह यथार्थ लिखनेवाला कहता है, कि "दस दस बारह बारह पुरुष साझे में पत्नियां रखते थे, विशेष कर भाई मिल कर और माता पिता तथा सन्तान मिल कर ऐसा कर्म करते थे, और जो कुछ सन्तान हो वह उसी की समझी जाती थी जिस के साथ प्रत्येक स्त्री पहिले पहिल कुंवारेपन में ब्याही जाती थी." इस वर्णन में बहुपति तथा बहु पत्नियां रखने की प्रथा का अद्भुत समावेश है.

* गुहलोतों की एक प्राचीन प्रशस्ति में "अपारं शाखं" खुदा है, जिस का अर्थ 'अनन्त शाखावाला' है.

† गोत वा खांप का अर्थ प्रशाखा है. उस की उपशाखाओं के अन्त में "औत", 'आवत', 'सोत' इत्यादि पितृ सूचक प्रत्यय होते हैं, और जिन के व्यवहार करने में केवल उच्चारणमात्र का सुभीता देखा जाता है; जैसे कि सक्तावत, अर्थात् 'सक्ता के सन्तान', कर्म्मसोत, अर्थात् 'कर्म्मा के' मेरावत वा मेरोत, अर्थात् पर्वत निवासी वा पर्वत के सन्तान. ऐसाही यूनानी शब्द मैनोत है, जो मैना, अर्थात् पहाड़ से निकला है. यह शब्द प्राचीन अल्बैनियँन भाषा का है, जो पूर्वी भाषाओं से निकली है.

इन में से जो अत्यन्त प्रसिद्ध हैं वे [यहां पर] दी जायेंगी.

कितने एक कुलों की शाखा नहीं है. उन्हें 'इका' वा अकेला कहते हैं, और क़रीब क़रीब एक तिहाई के इके हैं.

८४ वणिक जातियों की नामावली भी जो विशेष कर राजपूतों ही से निकली हैं. दी जायेंगी, जिस में कितने एक [राजपूत] वंशों की यादगारें अद्यापि रक्षित हैं, [नहीं तो] उन के नाम का पता भी लुप्त हो जाता. आदि काल की निवासी, खेती करनेवाली, और मवेशी चरानेवाली जातियों की सूचियां भी इस विषय को पूर्ण करने के लिये दी जायेंगी.

गॉथिक जाति समझना अनुचित न होगा. सूर्य और चन्द्रवंशी शब्दों के विषय में कुछ विशेष कहने की आवश्यकता नहीं है.

ग्रहिलोत वा गहलोत—"चित्तौड़ के स्वामी [और] छत्तीस कुल के भूषण सूर्य्यवंशी राजकुली राणा" की वंशावली *.

सब लोगों की सम्मति तथा इस वंश के गोत्र [?] से उक्त वंश के राजा सूर्य्यवंशी रामचन्द्र के असली वंशधर माने जाते हैं. इन का वंश रामचन्द्र से निकला है, और पुराणों में दी हुई वंशावलियों के अन्तिम राजा सुमित्र से इस का सम्बन्ध है.

इस कुल की उत्पत्ति और इस की उन्नति के इतिहास का पूरा पूरा वर्णन "मेवाड़ के इतिहास" में किया जायेगा, अतएव हम यहां पर केवल उन्हीं परिवर्त्तनों का उल्लेख करेंगे जो गोत्र के नाम और उन प्रदेशों से सम्बन्ध रखते हैं, जो कनकसेन के समय से उन के आधीन रहे हैं, जिस ने कि दूसरी शताब्दि में अपने असली राज्य कोशल को छोड़ कर सौराष्ट्र में सूर्य्यवंश को स्थापित किया.

विराट के स्थान पर, जो कि पाण्डवों के वनवास समय में उन के रहने का प्रसिद्ध स्थान था, इक्ष्वाकु के

---

* राणा के पुस्तकालय की 'खुमाणरासा' नामक हस्त लिखित पुस्तक से.

उस वंशधर ने अपना वंश स्थापित किया, और उस के वंशधर विजय ने थोड़ी सी पीढ़ियों के उपरान्त विजयपुर * को बसाया.

यदि वे वल्लभी के बसानेवाले नहीं तथापि वहां के राजा अवश्य हुए, जहां का एक जुदाही संवत् चलता था, जो वल्लभी संवत् कहलाता था, और जिस का प्रारंभ विक्रम संवत ३७५ † में हुआ था, अतएव वे बलके राय वा वल्लभी के राजा कहलाये, जिस उपाधि को उक्त समय के पीछे एक हज़ार वर्ष तक सौराष्ट्र के राजवंशों ने क्रमशः धारण किया था, जिस का संतोषदायक प्रमाण प्रामाणिक इतिहासों और शिलालेखों से मिलता है.

गर्ज़नी वा गयनी [उन की] दूसरी राजधानी थी, जहां से अन्तिम राज शिलादित्य (जो मारा गया),

---

* विराट के साथ सदैव मिला कर बोला जाता है—"विजयपुर विराट गढ़".

† सन् ३१९ ई० मैंने उस शिलालेख को, जिस में यह [संवत्] लिखा है, और अन्य शिलालेखों को, जो वल्लभी [नगर] और इस संवत् से सम्बन्ध रखते हैं, सौराष्ट्र में पाया और इस प्राचीन राजधानी के स्थान का पता लगाया था, जो [ठीक] उसी स्थान पर है, जहां कि टॉलेमी" [Ptolemy] कृत भारत के भूगोल में "बाइज़ेन्टियम" [Byzantium] का होना बताया गया है. वे [शिलालेख] रॉयल एशियाटिक सोसाइटी [Royal Asiatic Society] की कार्यवाही में प्रकट किये जायेंगे.

और उस का कुटुम्ब छठीं शताब्दी में पार्थियनें आक्रमणकारियों द्वारा निकाला गया था.

[उस के] ग्रहादित्य नामक पुत्र ने, जो अपने पिता की मृत्यु के बाद उत्पन्न हुआ था, ईडर का छोटा सा राज्य प्राप्त किया. इस [राज्य] परिवर्त्तन के स्मरणार्थ उसी के नाम पर उस वंश का नाम पड़ गया, और राम का सूर्यवंश ग्रहिलोतें कहलानेलगा, जो बिगड़ कर गेहलोत हो गया.

समय के फेरफार एवम् ईडर के जंगलों से आहड़ * में जा बसने के समय से गेहलोत नाम बदल कर अहाड़ियें हो गया. जिस नाम से यह वंश १२ वीं शताब्दी तक प्रसिद्ध रहा, जब कि बड़े भाई राहुपें ने बाहुबल द्वारा मोरी † राजा से छीनी हुई ‡ 'चित्तौड़ की गद्दी' का अपना हक छोड़ कर डूंगरपुर में राज्य स्थापन किया, जो अद्यापि उस के [वंशवालों के] आधीन है, और अहाड़िया की उपाधि भी वे लोग अब तक धारण करते हैं. उस के छोटे भाई माहुपें ने अपनी राजधानी सीसोदा में स्थापित की, जिस से अहाड़िया

* आनन्दपुर आहड़ वा 'आनन्द का स्थान आहड़'. समय के फेरफार से इस वंश को भाग्यवश अपनी अन्तिम राजधानी उदयपुर आहड़ के निकट स्थापन करनी पड़ी.

† परमोरवंश का राजा.

‡ आठवीं शताब्दी के मध्य में.

और गेहलोत दोनों नाम छूट कर इस वंश का नाम सीसोदिया पड़ गया.

सीसोदिया अब इस वंश का साधारण नाम है, परन्तु वह केवल एक उपशाखा होने के कारण कुल नाम गुहिलोत लिखा जाता है.

गहलोत कुल २४ शाखाओं में विभक्त है, जिन में से अब थोड़ी ही विद्यमान हैं.

(१) अहाड़िया........ डूंगरपुर में.
(२) माङ्गलिया........ मरुभूमि में.
(३) सीसोदिया ..... मेवाड़ में.
(४) पीपाड़ा .... मारवाड़ में.
(५) केलावा.
(६) गहोर [?]
(७) धोरणिया.
(८) गोधा.
(९) मगरोपा
(१०) भीमला
(११) कंकोटक
(१२) कोटेचा
(१३) सोरा [?]
(१४) ऊहड़
(१५) उसेया
(१६) निरूप

(५ से १६ तक) ये संख्या में थोड़े ही पाये जाते हैं, और प्रायः अब अज्ञात हैं.

(१७) नादोड्या
(१८) नाधोता [?]
(१९) भोजकरा
(२०) कुचेरा
(२१) दसोद [?] — ये प्रायः लुप्त हो गये हैं.
(२२) भटेवरा
(२३) पाहा [?]
(२४) पूरोत

यादु [यादव] हिन्द की समस्त जातियों में सब से अधिक प्रसिद्ध जाति थी, और चन्द्रवंश के उत्पादक बुध के सन्तानों के कुल का [यही] नाम हो गया.

युधिष्ठिर और बलदेव, कृष्ण का देहान्त होने और अपनी अन्तिम राजधानी देहली और द्वारिका से निकाले जाने पर मुलतान हो कर सिन्धु के उस पार चले गये. जनश्रुति में युधिष्ठिर और बलदेव का वर्णन [इस के उपरान्त] नहीं मिलता, परन्तु कृष्ण के पुत्र, जो उन के साथ गये थे, पांचों नदियों के अगले दुआब * में ठहर कर अन्त में सिन्धु नदी को पीछे छोड़ जाबुलिस्तान में चले गये, [वहां] गज़नीनगर को स्थापित किया, और समरकन्द तक इन देशों को बसाया.

---

* वह स्थान, जहां पर उन्हों ने आश्रय लिया पहाड़ों के समूह में था जिसे अब तक यदु का डाङ्ग अर्थात् ' यदु पहाड़ ' कहते हैं:—रेनेल [Rennell] के भूगोल में लिखा हुआ जोदेस [Joudes].

स्थापित किया, जो कृष्ण के वंशधरभट्टी [भाटी] लोगों की वर्त्तमान राजधानी है.

भट्टी ज़ाबुलिस्तान से निकाला हुआ था, और जैसा कि राजपूत जातियों में उन के इतिहास सम्बन्धी ऐसी किसी घटना से बहुधा [वंश का नाम पलट जाता है] उस के नाम ने अपने वंश के अधिक प्राचीन नाम यदु को दूर कर [भाटी नाम क़ाइम कर] दिया. भट्टियों ने गारह नदी के दक्षिणी सब प्रदेशों को अपने आधीन कर लिया, परन्तु उन का अधिकार राठौड़ों के आने बाद बहुत कम हो गया है. नक़्शे में उन के [राज्य की] वर्त्तमान सीमा दी हुई है, और उन के इतिहास में उन का सविस्तर प्राचीन वृत्तान्त लिखा जायेगा.

भट्टी जाति से दूसरे नम्बर पर यदु वंश की जाड़ेजा जाति बहुतही प्रसिद्ध है. उस का इतिहास भी वैसा ही है. वे [भी] श्रीकृष्ण के वंशधर हैं, और हरिकुलियों के बचे हुए वंशधरों के साथ एकही समय में एक स्थान छोड़ कर दूसरी जगह उन के जा बसने से इस बात पर दृढ़ता से विश्वास किया जा सकता है, कि उन का फैलाव बड़ी (भाटी) शाखा जितना अधिक न था, किन्तु वे सिन्धु नदी की वादी में बस गये; विशेष कर उस के पश्चिमी किनारे सेविस्थान प्रदेश में, और नाम तथा कुल चिन्ह सम्बन्धी मर्यादाओं में सिकन्दर के समय में भी उन में अपने पुरखाओं के चिन्ह विद्यमान थे.

ये शाखा यदुवंश में सब से अधिक प्रसिद्ध हैं. परन्तु ऐसी और भी शाखा हैं जो अभी तक अपनी असली उपाधि को धारण किये हुए हैं, जिन में मुख्य चम्बल नदी पर के करौली के छोटे राज्य का राजा है.

ऐसा प्रतीत होता है कि यदुकुल की यह शाखा अपने पुरखाओं के रहने के स्थान सूरसेनी* की प्राचीन सीमाओं से अधिक दूर कभी नहीं बढ़ी. वे प्रसिद्ध बयाना के अधिकारी थे, जहां से निकाले जाने पर उन्होंने चम्बल के पश्चिम में करौली और पूर्व में सबल गढ़ बसाया. सबलगढ़ के तावे का देश, जो यदुवाटी कहलाता है, सेंधिया ने उस घराने से छीन लिया, श्री मथुरा† करौली राज्य की एक स्वतंत्र जागीर है, जो एक छोटी शाखा के आधीन है.

यदुवंशी, जिन को देशी भाषा में जादू कहते हैं, भारत में फैले हुए हैं, और मरहटों में बहुत से बड़े बड़े सर्दार इसी वंश के हैं.

यदुवंश की आठ शाखा हैं: —

(१) यदु करौली के राजा.

---

* मथुरा के इर्द गिर्द तीस मील तक का व्रज का प्रदेश शूरसेनी कहलाता है.

† यहां के जागीरदार राव मनोहर सिंह को मैं अच्छी तरह जानता था, और मैं कह सकता हूं कि वह मेरा मित्र था. बरसों तक हमारे आपस में पत्र व्यवहार रहा, और उस ने मेरे लिये महाभारत की एक अमूल्य पुस्तक की नक़ल करवाई थी.

युधिष्ठिर का बसाया हुआ प्राचीन इन्द्रप्रस्थ [नगर] है, और जो जनश्रुति के अनुसार आठ शताब्दी तक ऊजड़ पड़ा रहा था, अनंगपाल तंवर द्वारा संवत् ८४८ (सन् ७६२ ई०) में[३७] फिर से निर्माण की जाकर बसाई गई थी, जिस के बाद उस वंश के २० राजा वहां की गद्दी पर बैठे, जिन में से अन्तिम राजा का नाम वही था जो कि उक्त कुल के संस्थापक का था, अर्थात् अनंगपाल. उस ने संवत् १२२० (सन् ११६४ ई०) में राजपूतों के सैलिक (Salic) कानून के विपरीत अपने राज्यासन पर (पुत्र न होने से) अपने दोहिते[३९] चौहान पृथ्वीराज को बिठला दिया.

तंवर लोगों को अब अपने प्राचीन यशपर ही सन्तोष करना चाहिये, क्योंकि अब कोई स्वतन्त्र राज्य इस वंश[४०] के आधीन नहीं है, जो अपने को पाण्डवों की सन्तति बतलाता है, विक्रम का [अपने कुल में होने का] गर्व करता है, और जिस में कि भारत के अन्तिम सम्राट हुए हैं.

फिर से उसी गद्दी पर बैठा, जिस को कि उस [युधि-
ष्ठिर] ने स्थापित की थी. सर्वसाधारण लोग इस
को स्वीकार करते हैं, और यह बात वैसीही सिद्ध है,
जैसी कि ऐसे प्राचीन कालकी बहुतसी दूसरी ऐतिहा
सिक बातें, और न कोई यूरोप का वंश वा परिवार इस
से कम प्राचीन समय का भी वैसा दृढ़ प्रमाण दे सकता
जैसा कि तंवर लोग.

[इस समय] तंवरों के अधिकार के मुख्य ठिकाने
तुंअरगढ़ का इलाक़ा, जो चम्बल नदी के दाहिने किनारे
पर उस के और जमुना के संगम की तरफ़ स्थित है,
और जयपुर राज्य में पाटन तुंअरवाटी की छोटी सी
जागीर है, जहां का जागीरदार अपने को इन्द्रप्रस्थ के
प्राचीन सम्राटों के वंश में होना बतलाता है.[४०]

के वंशधर, कन्नौज के बसाने वाले चन्द्रवंशी कुशनाभ की गद्दी के अधिकारी हुए. वास्तव में कतिपय वंशावली लेखक राठौड़ों को कुर्शिकेवंशी मानते हैं.

राठौड़ों का प्राचीन स्थान गाधिपुर, अर्थात् कन्नौज है, जहां वे पांचवीं शताब्दी में राज्य करते थे, और यद्यपि उस के पूर्व वे अपने वंश को कोशल वा अयोध्या के राजाओं से मिलाते हैं, परन्तु यह केवल कथन मात्र है.

पांचवीं शताब्दी के उपरान्त से उन का इतिहास जुगान जुगों के अंधेर से बाहिर निकलता है, जिस में कि वे उक्त काल के पूर्व लिप्त थे. तातारियों के भारतवर्ष को विजय करने के समय से कुछ पूर्व वे लोग भारत के राजाओं में उच्च पद प्राप्त करने के लिये दिल्ली के अन्तिम तंवर, और चौहान राजाओं तथा अनहिलवाड़ा के बलिकरायों से लड़ रहे थे.

इस माया अर्थात् बड़प्पन के लिये वे सब के सब लड़ते लड़ते नष्ट हो गये. भीतरी झगड़ों से दुर्बल हो कर दिल्ली का चौहान मारा गया, और उस की मृत्यु के कारण उत्तर पश्चिम की सीमा का द्वार खुल गया. इस के बाद कन्नौज का नाश हुआ, और जब यहां का अन्तिम राजा जयचन्द गंगा में डूब कर मर गया तो उस के पुत्र ने मरुस्थली अर्थात् मारवाड़ में शरण ली.

इस पुत्र का नाम सिया जी था जिस ने मगडोर

के वंशधर, कन्नौज के बसाने वाले चन्द्रवंशी कुशनाभ की गद्दी के अधिकारी हुए. वास्तव में कतिपय वंशावली लेखक राठौड़ों को कुशिकवंशी मानते हैं.

राठौड़ों का प्राचीन स्थान गाधिपुर, अर्थात् कन्नौज है, जहां वे पांचवीं शताब्दी में राज्य करते थे, और यद्यपि उस के पूर्व वे अपने वंश को कोशल वा अयोध्या के राजाओं से मिलाते हैं, परन्तु यह केवल कथन मात्र है.

पांचवीं शताब्दी के उपरान्त से उन का इतिहास जुगान जुगों के अंधेरे से बाहिर निकलता है, जिस में कि वे उक्त काल के पूर्व लिप्त थे. तातारियों के भारतवर्ष को विजय करने के समय से कुछ पूर्व वे लोग भारत के राजाओं में उच्च पद प्राप्त करने के लिये दिल्ली के अन्तिम तंवर, और चौहान राजाओं तथा अनहिलवाड़ा के बलिकरायों से लड़ रहे थे.

इस माया अर्थात् बड़प्पन के लिये वे सब के सब लड़ते लड़ते नष्ट हो गये. भीतरी झगड़ों से दुर्बल हो कर दिल्ली का चौहान मारा गया, और उस की मृत्यु के कारण उत्तर पश्चिम की सीमा का द्वार खुल गया. इस के बाद कन्नौज का नाश हुआ, और जब यहां का अन्तिम राजा जयचन्द गंगा में डूब कर मर गया तो उस के पुत्र ने मरुस्थली अर्थात् मारवाड़ में शरण ली.

इस पुत्र का नाम सिया जी था जिस ने मण्डोर

के पडिहारों के नष्ट होने के उपरान्त मारवाड़ में राठौड़ों का वंश स्थापित किया. यहां पर वे लोग अपना प्राचीन वीरत्व साथ लाये, और जैसे वीर सियाजी के सन्तानों में मिल सकते हैं उन से बढ़ कर कोई वीर नहीं है. मुग़ल सम्राटों ने अपनी आधी विजयों को लाख तलवार राठौड़ान अर्थात् एक लाख राठौड़ों की सहायता से प्राप्त किया था, क्योंकि इस में कुछ भी सन्देह नहीं है कि सिया जी के रक्त के ५०००० पुरुष [युद्ध के लिये] एकदम एकत्रित होते थे. परन्तु इस स्थल पर कुलीन राठौड़ों के विषय में इतना ही कहना अलम् है.

राठौड़ों की चौवीस शाखा हैं :-धान्धल, भडेल, चकित, धूहड़िया, खोखरा, बदूरा, छाजीड़ा, रामदेवा, कबरिया, हट्टूंदिया, मालावंत, सुण्डु, कटेचा, मुहोली, गोगादेवा, महेचा, जयसिंहा, मुरसिया, जोधसिया, जोरा इत्यादि.

राठौड़ गोत्राचार—गौतम गोत्र,०—माध्यन्दिनी शाखा,—शुक्राचार्य गुरु,—गार्हपत्य अग्नि †,—पङ्खिनी देवी (कुलदेवी).

---

० इस गोत्र] के कारण मैं राठौड़ों को एक ऐसी जाति (संभवतः शक) का सन्तान बतलाना चाहता हूं, जो बौद्धधर्म की पालनेवाली थी, जिस का अन्तिम बड़ा आचार्य्य गौतम संवत् ४७७ (५३३ सन ईस्वी) में अन्तिम बुद्ध महावीर का चेला था.

† गृहार्थ-' अग्नि द्वारा मिट्टी का बना हुआ रूप ' (अग्नि).

कुशवाहाँ–रामचन्द्र के द्वितीय पुत्र कुश के सन्तान कुशवाहावंश * के लोग हैं. वे भारतवर्ष के कुशवंशी † हैं, जैसे कि मेवाड़ के राजपूत लवंवंशी हैं.

दो शाखा कोशल [देश] से निकलीं, [जिन में से] एक ने सोननदी के किनारे रोहतास को स्थापित किया, और दूसरी लाहर‡ के पास कोहारी के दर्रों में जा बसी.

कुछ काल बीतने पर उन्हों ने निरवर वा नरवर का प्रसिद्ध दुर्ग बनाया, जो कि प्रसिद्ध राजा नल के रहने की जगह थी, जिस के संतान तातारियों और मुग़लों के शासन काल के सारे हेर फेर के समय में उस को अपने अधिकार में रक्खे रहे, जिस के उपरान्त मरहठों ने उन से इस को छीन लिया, और अब नल का वह निवास स्थान सेन्धिया के आधीन है.

---

* अशुद्धता से कछवाहा लिखा और बोला जाता है.

† अयोध्या के कुशाइट [Cushite] रमेश और मिसर के रमेसेस [Rameses] के बीच दृढ़ समानता है. प्रत्येक के साथ सेटायर [Satyr] अनुबिसे [Anubis] और सिनोसिफेलस [Cynocephalus] की सेना थी, जिन में से अन्तिम यूनानी भाषा का कल्पित नाम है; क्योंकि इस नाम का जानवर सीमियन कुल का है, जैसा कि (तूरिन के अजायबख़ाने में की) उस की मूर्त्तियों से जान पड़ता है, और प्रभुभक्त हनुमान का भाई है. सिन्धु नदी (जो नील-आब अर्थात् नीला पानी कहलाती है) और मिसर की नील नदी के प्रदेशों के देवताओं का आपस में मिलान करना विवेचना के योग्य विषय है.

‡ संभवतः यह नाम उन के वंश की बड़ी शाखा लव के सम्मान में है.

के पडिहारों के नष्ट होने के उपरान्त मारवाड़ में राठौड़ों का वंश स्थापित किया. यहां पर वे लोग अपना प्राचीन वीरत्व साथ लाये, और जैसे वीर सियाजी के सन्तानों में मिल सकते हैं उन से बढ़ कर कोई वीर नहीं है. मुग़ल सम्राटों ने अपनी आधी विजयों को लाख तलवार राठौड़ान अर्थात् एक लाख राठौड़ों की सहायता से प्राप्त किया था, क्योंकि इस में कुछ भी सन्देह नहीं है कि सिया जी के रक्त के ५०००० पुरुष [युद्ध के लिये] एकदम एकत्रित होते थे. परन्तु इस स्थल पर कुलीन राठौड़ों के विषय में इतना ही कहना अलम् है.

राठौड़ों की चौबीस शाखा हैं :-धान्धल, भडेल, चकित, भूहड़िया, खोखरा, बडूरा, छाजीड़ा, रामदेवा, कबरिया, हट्टूदिया, मालावंत, सुएडु, कटेचा, मुहोली, गोगादेवा, महेचा, जयसिंहा, मुरासिया, जोबसिया, जोरा इत्यादि.

राठोड़ गोत्राचार—गौतम गोत्र,०—माध्यन्दिनी-शाखा,—शुक्राचार्य गुरु,—गार्हपत्य अग्नि +,—पङ्किनी देवी (कुलदेवी).

---

० इस गोत्र] के कारण मैं राठौड़ों को एक ऐसी जाति (संभवतः शक) का सन्तान बतलाना चाहता हूं, जो बौद्धधर्म को माननेवाली थी, जिस का अन्तिम बड़ा आचार्य्य गौतम संवत् ६७७ (५३३ सन् ईसवी) में अन्तिम बुद्ध महावीर का चेला था.

+ गृहार्थ–' अग्नि द्वारा मिट्टी का बना हुआ रूप ' (अग्नि).

कुशवाहा-रामचन्द्र के द्वितीय पुत्र कुश के सन्तान कुशवाहावंश * के लोग हैं. वे भारतवर्ष के कुशवंशी † हैं, जैसे कि मेवाड़ के राजपूत लववंशी हैं.

दो शाखा कोशल [देश] से निकलीं, [जिन में से] एक ने सोननदी के किनारे रोहतास को स्थापित किया, और दूसरी लाहर† के पास कोहारी के दर्रों में जा बसी.

कुछ काल बीतने पर उन्हों ने निरवर वा नरवैर का प्रसिद्ध दुर्ग बनाया, जो कि प्रसिद्ध राजा नल के रहने की जगह थी, जिस के संतान तातारियों और मुग़लों के शासन काल के सारे हेर फेर के समय में उस को अपने अधिकार में रक्खे रहे, जिस के उपरान्त मरहठों ने उन से इस को छीन लिया, और अब नल का वह निवास स्थान सेन्धिया के आधीन है.

---

* अशुद्धता से कछवाहा लिखा और बोला जाता है.

अयोध्या के कुशाइट [Cushite] रमेश और मिसर के रमेसेस [Rameses] के बीच दृढ़ समानता है. प्रत्येक के साथ सेटायर [Satyr] अनुबिसे [Anubis] और सिनोसिफ़लस [Cynocephalus) की सेना थी, जिन में से अन्तिम यूनानी भाषा का कल्पित नाम है, क्योंकि इस नाम का जानवर सीमियन कुल का है, जैसा कि (तूरिन के अजायबख़ाने में की) उस की मूर्त्तियों से जान पड़ता है, और प्रभुभक्त हनुमान का भाई है. सिन्धु नदी (जो नील-आब अर्थात् नीला पानी कहलाती है) और मिसर की नील नदी के प्रदेशों के देवताओं का आपस में मिलान करना विवेचना के योग्य विषय है.

† संभवतः यह नाम उन के वंश की बड़ी शाखा लव के सम्मान में है.

दसवीं शताब्दी में एक शाखा ने वहां से निकल कर आदि निवासी मीना लोगों को अधिकार से च्युत कर के, और बड़गूजर जाति के राजपूतों से, जिन के आधीन में राजोर और आस पास के बड़े बड़े इलाके थे, [कुछ भूमि] लेकर आंबेर को स्थापित किया. परन्तु बारहवीं शताब्दी में भी कुशवाहा लोग दिल्ली के चौहान राजा के मुख्य सामन्त ही थे, और उन की उन्नति का समय वही है जो कि राजस्थान के अन्य कुलों की (विशेषतः मेवाड़ के राणाओं की) अवनति का है, अर्थात् तीमूरिया ख़ान्दान के दिल्ली के सिंहासन पर बैठने के समय से.

के सन्तान हैं. जैसे कि दूसरे वंशवाले सोल * [Sol=सूर्य], मर्क्यूरियस [Mercurius=बुध], और टेरा [Terra=पृथ्वी] के.

परमार, पडिहार, चालुक्य वा सोलंकी, और चौहान अग्निवंशी हैं.

उन के रूपकमय इतिहास की स्पष्ट व्याख्या करने से विदित होता है कि ब्राह्मणों ने अपनी तरफ़ से युद्ध करने के लिये इन अग्निकुल की जातियों का केवल

---

* यूनान और रोम की देववंशावलियों में मनोहर लावण्यता पाई जाती है, जो हिन्दुओं की देव वंशावली में नहीं मिलती; यद्यपि सुयोग्य विद्वान सर विलियम जोन्स संस्कृत साहित्य को भी मनोरंजक बना सकते थे, और राजस्थान के सर्दारों को आनन्ददायक होने से हम अनुमान करते है कि यह विषय वास्तविक उद्योग के योग्य है. यह ठीक यूनान और रोम के देवताओं की वंशावली के समान ही है, इस बात के दिखाने के लिये हमको केवल नामों के अनुवाद करने की आवश्यकता है. उदाहरण के लिये :—

सूर्यवंशी.		चन्द्रवंशी
मरीचि	(लर्क्स Lux)	अत्रि.
कश्यप	(युरेनस Uranus)	समुद्र (ओशिएनस Oceanus).
वैवस्वत वा सूर्य	(सोल Sol)	सोम वा इन्दु (लूना Luna; अथ लूनस Lunus ?).
वैवस्वतमनु	(फिलियस सोलिस Filius solis)	बृहस्पति (जुपीटर Jupiter)
इला	(टेर्रा Terra)	बुध (मर्क्यूरियस Mercurius)

तक्षक नाग के प्रसिद्ध ग्रन्थ पिङ्गल को ले भागने और कृष्ण के गिद्ध अर्थात् गरुड़ के उस ग्रन्थ को पीछा ले आने की कथा स्पष्टतः रूपकमय है, और इस में पार्श्व और कृष्ण के अनुयायियों के बीच झगड़ों का वर्णन है [जिस में] पार्श्व के अनुयायियों का बोध उन के चिन्ह सर्प से, और कृष्ण के अनुयायियों का बोध उन के चिन्ह गरुड़ से कराया गया है.

सूर्य के उपासकों ने संभवतः चन्द्रकुल की उन भीतरी लड़ाइयों के बाद, जिन में उन का सर्वनाश हो गया, अपना बल पुनः प्राप्त किया; परन्तु अग्निकुल की उत्पत्ति दैत्यों वा नास्तिकों से बल वा ईश्वर की वेदियों के रक्षार्थ होना स्पष्टतः लिखा है.

प्रसिद्ध आबू वा अर्बुदगिरि पर, जो राजस्थान का ओलिम्पस (Olympus) है, सूर्य के पुजारियों और इन दैत्यों के बीच युद्ध होने का स्थल था, और कल्पना की सहायता से उन का वर्णन पश्चिम [यूरोप] के प्राचीन कवियों के वर्णन किये हुए टीटैनिक युद्ध के समान मनोरंजक हो सकता है.

बौद्ध लोग इस [आबू] को अपने प्रथम बुद्ध आदिनाथ का स्थान बतलाते हैं, और ब्राह्मण लोग ईश्वर वा अचलेस * का, जिस नाम से कि वहां की स्थानीय देवमूर्त्ति प्रसिद्ध है.

---

* अचल, ईश-ईश्वर का संक्षेप रूप.

आबू की चोटी पर वह अग्निकुण्ड अभी तक दिखाया जाता है, जहां पर ब्राह्मणों ने अचलेस और अनेकेश्वरवाद के लिये एकेश्वरवादी बुद्धों से, जिन को कि सर्पों वा तक्षकों द्वारा प्रदर्शित किया है, लड़ाई करने के हेतु इन चार वंशों को उत्पन्न किया.

इस परिवर्त्तन का संभावित समय लिखा जा चुका है, परन्तु अग्निवंशी राजाओं में से बहुत से मुसल्मानों की चढ़ाई के समय तक भी बौद्ध वा जैन धर्म्म को मानते थे.

यद्यपि परमार, जैसा कि उस के नाम से विदित होता है, मुख्य युद्ध करनेवाला नहीं था, परन्तु अग्निवंशियों में सब से अधिक प्रभावशाली था. उस से ३५ शाखा निकलीं, जिन में से कईएक के आधीन विस्तृत राज्य रहे थे. 'पृथ्वी परमारों की है'; यह एक पुरानी कहावत है, जिस से प्रगट होता है कि उन का आधिकार बहुत फैला हुआ था, और "नौकोटें * मरुस्थली" [नौकोटी मारवाड़] से उन नव भागों का बोध होता है, जिन में सतलज से लेकर समुद्र तक का देश उन लोगों में बटा हुआ था.

माहेश्वर, धार, मांडू, उज्जैन, चन्द्रभागा, चित्तौड़,

---

* वह सिन्धु से लेकर जमुना के आस पास तक फैला हुआ था जिस के अन्तर्गत समग्र मरू देश अर्थात् नौ कोट, अर्बुद वा आबू, घाट, मन्दोद्री [मंडोर], खेण्ड्, पारकर, लोद्रवा, और पूंगल थे.

आबू, चन्द्रावती, मऊमैदाना, परमावती, उमरकोट, बेखर, लोद्रवा, और पट्टन उन लोगों की बसाई वा विजय की हुई राजधानियों में से अत्यन्त प्रसिद्ध हैं.

यद्यपि परमारवंश द्रव्य में अनहिलवाड़ा के प्रसिद्ध सोलंकी राजाओं के बराबर कभी नहीं था और न चौहानों के समान [उस का प्रताप] चमका था, परंतु उस का अधिकार उन दोनों कुलों की अपेक्षा अधिक दूर तक फैला, और अपना राज्य दृढ़ करने में उस ने बहुत पहिले सफलता प्राप्त की, और पड़िहारों से जो अग्निवंशियों में अन्तिम और अल्प है वह सब बातों में बढ़ कर था, और जिन को उस ने दीर्घ काल पर्यन्त अपने करदेनेवाले बना रक्खा था.

ऐसा जान पड़ता है कि हय [=हैहय] वंश के राजाओं की प्राचीन राजधानी माहेश्वर, परमारों की प्रथम राजधानी थी. पीछे से उन्होंने विन्ध्यपर्वत की चोटी पर धारानगर और मांडू बसाया, और उज्जैन नगर भी जो हिन्दुओं के प्रथम याम्योत्तर वृत्त का स्थान, और विक्रम की राजधानी थी, इन्हीं का बसाया हुआ माना जाता है.

उस वंश के बहुत से लेख हैं, जिन से उन के आधुनिक ऐतिहासिक समयों का निश्चय होता है, और यह आशा की जाती है कि उन शिलालेखों का अर्थ प्रगट होने से. जो अभी तक पढ़े नहीं गये हैं इन

लोगों का पता सातवीं शताब्दी के पहिले तक लगेगा.

मुंज के पुत्र भोज का समय * अच्छी तरह निर्णय हो गया है; और एक कीले के मस्तक जैसे सिरवाले अक्षरों का शिलालेख † उस वंश को और आगे के समय में ‡ ले जाता है, अर्थात् चित्तौड़ के अन्तिम परमार राजा का, और उस के पीछे गुहिलोतों का वहां के राजसिंहासन पर बैठने का समय मालूम होता है.

परमारों के अधिकार की सीमा नर्मदा ही नहीं थी. पूर्वोक्त शिलालेख के समय के ही समीप राम परमार तिलङ्गाना में राज्य करता था, और चौहानों का भाट चन्द उसे भारत के सम्राट होने की प्रतिष्ठा देता है, और बलवान सामन्तसमूह § का स्वामी बतलाता है.

---

* देखो रॉयल एशियाटिक सोसाइटी की कार्यवाही जिल्द १, पृष्ठ २२७

† यह लेख रोआयल एशियाटिक सोसाइटी की कार्यवाही में दिया जायेगा.

‡ संवत् ७७०, वा ई०सन् ७१४.

§ " जब कि तैलङ्ग के परमार ने हर का शरण लिया उस समय उस ने ३६ राजकुलों को पृथ्वी दान में दी. केहर को उस ने कटेर दिया, रायपुहर को सिन्ध का किनारा, और शङ्ख के वीरों को जंगल की भूमि दी. तैलङ्ग के राम परमार ने, जो उज्जैन का चक्रवर्ती राजा था ये दान दिये. उस ने दिल्ली तंवरों को प्रदान की, और पट्टन चावड़ों को, सांभर चौहानों को, और कनौज कमध्वज को, मरुदेश पड़िहारों को, सोरठ यदुवंशियों को, दक्खन जावलों [झालों] को, और कच्छ चारणों को दिया " (चन्द का काव्य).

उस के सामन्त उस की मृत्यु के पश्चात् स्वतंत्र हो गये. वह भाट इस घटना को परमारों का इच्छानुकूल कार्य बताता है; परन्तु गुहिलोतों के चित्तौड़ छीन लेने की घटना के साथ मिलान करने से हम सोच सकते हैं कि राम के उत्तराधिकारी ऐसे आधिपत्य को क़ाइम रखने के योग्य न थे.

जब तक हिन्दू साहित्य क़ाइम रहेगा, भोज परमार, और उस की सभा के "नव रत्नों" का नाम लुप्त नहीं हो सकता; यद्यपि यह कहना कठिन है, कि इस नाम के तीन * राजाओं में से विशेष कर किस [भोज] से तात्पर्य है; क्योंकि प्रतीत होता है कि वे सब विज्ञान के सहायक हुए हैं.

चन्द्रगुप्त, जो सिकन्दर का प्रतिद्वन्द्वी माना जाता है, मोरी [वंश का] था, और पौराणिक वंशावलियों में उस को तक्षकवंशी लिखा है. परमारों के प्राचीन शिलालेखों में, जिन की मुख्य शाखा मोरी है, इस कुल को

---

* शिलालेख में तीसरे भोज का समय संवत् ११०० (सन् १०४४ ई०) दिया है. यह समय उस काल से मिलता है, जो राजाओं की एक संवत् वार प्राचीन सूची में इस राजा के लिये नियत किया हुआ है, जिस में भोज नाम के सब राजाओं का समय भी दिया हुआ है, और इसी से वह प्रामाणिक मानी जा सकती है. इस प्रामाणिक सूची में पहिले और दूसरे भोज के लिये संवत् ६३१ और ७२१ (वा ५७५ और ६६५ सन् ई०) क्रम से दिया है.

यह वंशधर भाग्य की निसेनी की जड़ में है, जिस ने हुमायूं को, जब कि वह तीमूर के राजसिंहासन पर से निकाला गया, शरण दी थी, और जिस की राजधानी ऊमरकोट में प्रतापी अकबर का जन्म हुआ था. उस का राज्यसिंहासन मरुभूमि में बिलोचियों के पांव तले है, जिन की उदारता पर वह अपने भरण पोषण का भरोसा रखता है.

परमार कुल की ३५ शाखाओं में से विहल नाम की शाखा अधिक विख्यात थी, जिस शाखा के राजाओं का चन्द्रावती में राज्य होना पाया जाता है, जो अर्वली पहाड़ की जड़ में है.

बीजोल्यां का राव, जो राणां के दर्बार में उच्च वर्ग के सोला उमरावों में से एक है, प्राचीन धार शाखा का परमार है, और कदाचित् इस कुल का सब से श्रेष्ठ प्रतिनिधि[५] हो.

परमारों की पैंतीस शाखा.

मोरी–जिस शाखा में चन्द्रगुप्त और गुहिलोतों से पहिले के चित्तौड़ के राजा हुए.

सोडा–सिकन्दर के समय के सोगडी, भारत की मरुभूमि में धाट के राजा.

सांखला-पूंगल के जागीरदार, और मारवाड़ में.

खैर-इन की राजधानी केराड़.

चाहुमान वा चौहान-इस जाति के विषय में अन्यस्थल * पर इतना कहा गया है कि यहां पर शीघ्रता से इस का संक्षेप से वर्णन करने के अतिरिक्त और अधिक कहना व्यर्थ होगा.

यह वंश अग्निकुलों में ही नहीं, वरन सारी राजपूत जाति में सब से अधिक वीर है. छत्तीस कुलों में से प्रत्येक के अधिकतर वीरकार्य लिखे जा सकते हैं जो इतिहास के बहुसंख्यक और भिन्न भिन्न वीरता की घटनाओं से पूरित पृष्ठों में किसी जाति के वीरों के चरित्रों से लघुतर न जचेंगे, और यद्यपि 'तलवार राठौड़ान' इस बात पर विवाद करने को प्रस्तुत होगी, परंतु इन की परस्पर योग्यता का विचार कर पक्षपात रहित निर्णय करने से चौहान लोग ही युद्ध विषयक जीवन में सब से प्रधान जान पड़ेंगे.

इस वंश की शाखाओं ने अपने सारे आदि पौरुप को क़ाइम रक्खा है, और हाड़ा, खीची, देवड़ा, सोनगरा, और चौबीस शाखाओं में से दूसरे अपना नाम भाट के गीतों में अमर कर गये हैं.

चौहान शब्द की उत्पत्ति उस के कल्पित जन्म के समकालीन है, अर्थात् चारबांहवाला वीर (चतुर्भुज, चतुर्बाहु वीर). जब दैत्यों से लड़ने के लिये भेजे गये

---

* रायल एशियाटिकसोसाइटी की कार्य्यवाही जिल्द १, पृष्ठ १३३ में एक संस्कृत शिलालेख की टिप्पणी देखो.

तो चौहान के अतिरिक्त सब हार गये; जिसे [चौहान] को ब्राह्मणों ने नास्तिकता के विरुद्ध लड़ने के लिये सब से पीछे उत्पन्न किया था.

मूल ग्रन्थ [पृथ्वीराजरासे] से चौहान की उत्पत्ति के विषय में, जो इस ओलिम्पस [Olympus] याने पवित्र आबू पर भारतीय जीव के अनुष्ठानों के रक्षार्थ उत्पन्न किया गया था, थोड़ासा हाल उद्धृत करके लिखना मनोरंजक होगा. "उस [अर्बुदगिरि] को जो सुमेरु वा कैलास के समान पहाड़ों का गुरु है अचलेस ने अपना निवासस्थान बनाया. उस की चोटी पर केवल एक दिन व्रत करो और तुम्हारे सारे पाप क्षमा हो जायेंगे, एक साल वहां पर निवास करो और तुम मनुष्य जाति के गुरु हो जाओगे."

आबूगिरि के पवित्र होने तथा "अपना समय भक्ति-मार्ग में बितानेवाले, लालसा रहित, और गाय [से प्राप्त वस्तु], एवं कन्द, मूल, फल, फूलों से अपना निर्वाह करनेवाले" वहके उपासक मुनियों की तपस्या भंग करने में कोई लाभ न होने पर भी दैत्य लोगों ने उन के परमानन्द की ईर्षा कर के यज्ञों को भ्रष्ट किया, और देवताओं के [यज्ञ] विभाग का पहुंचना रोक दिया.

"ब्राह्मणों ने यज्ञार्थ नैऋत्यकोण में अग्निकुण्ड खोदा, परन्तु दैत्यों ने * आंधियें उठाईं, जिस से समस्त वायु-

* असुर दैत्य जो अनार्य भील वा सीथियन [शक] जाति के समूह थे.

मण्डल अंधकारमय हो गया, और उसे बालू के बद्दलों से पूरित कर दिया, और उन के यज्ञों में विष्ठा, रक्त, अस्थि और मांस तथा नाना प्रकार की अन्य भ्रष्ट वस्तुओं की वर्षा करने लगे. अतएव उन का यज्ञ कुछ लाभदायक न हुआ."

"पुनरपि उन्हों ने पवित्र अग्नि को प्रज्वलित किया, और होतागण ने अग्निकुण्ड * के चारो ओर एकत्रित हो कर सहायतार्थ महादेव की प्रार्थना की. "

"अग्निकुण्ड से एक पुरुष निकला; परन्तु उस की आकृति योद्धा के जैसी न थी. ब्राह्मणों ने उसे द्वारपाल बना कर बिठा दिया, और इसी से उस का नाम पृथिह द्वार + पड़ा. दूसरा पुरुष फिर निकला और हथेली (चुल्लू) से बनने के कारण उस का नाम चालुक हुआ. और फिर तीसरा पुरुष निकला, और उस का नाम परमार ‡ रक्खा गया. उस ने ऋषियों का आशीर्वाद लिया, और वह दूसरों को साथ लेकर दैत्यों से युद्ध करने को गया, परन्तु वे उन को जीत न सके. "

---

* मै हिन्दुओं के इस पौराणिक प्राचीन स्थान को देख आया हूं. उस के तट पर संगमर्मर के पाखाण की बनी हुई आदिपाल (प्रथमोत्पन्न) की मूर्त्ति सुशोभित है, जो शिल्प चातुरी का एक नमूना है. यह ऐसी प्राचीन पवित्र वस्तु है कि वहां से हटाई नहीं जा सकती.

+ 'पृथ्वी का द्वार.' उस का संक्षेप रूप पृथिहार वा पड़िहार हो गया.

‡ पहिले मारनेवाला.

चौहानों के वंशवृक्ष के देखने से जान पड़ता है कि अनहिल से लेकर, जो प्रथमोत्पन्न चौहान था, पृथ्वीराज तक, जो भारत का अन्तिम हिन्दू सम्राट* था, [१०२] ३९ राजा हुए. परन्तु हम नहीं कह सकते कि वह वंशावली पूर्ण है वा नहीं. अनुमान से वह पूर्णही ज्ञात होती है; क्योंकि यह उत्पत्ति वा पुनस्संस्कार विक्रमादित्य से सैकड़ों वर्ष पहिले होना माना जाता है, और हम विना किसी क्षति के कह सकते हैं कि यह पुनः संस्कार किये हुए लोग तक्षक जाति के थे, जिन्होंने बहुत प्राचीन काल में भारत पर आक्रमण किया था.

अजयपाल चौहानों के इतिहासों में अजमेर के दुर्ग का बनानेवाला प्रसिद्ध है, जो चौहानों की प्राचीन राजधानियों में से एक था.

सांभर,† जो इसी नाम के नमक की विस्तृत झील के किनारे पर है, संभव है कि अजमेर से पहिले बसा था, और उसी से इस जाति के राजाओं की पदवी सांभरीराव हो गई. पृथ्वीराज के दिल्ली के साम्राज्य की गद्दी पर चले जाने तक, जिस से कि वहां के अन्तिम स्वतन्त्र राजा पर जाती हुई तेज प्रभा चमकी थी, ये [अजमेर और सांभर] चौहान राज्य के मुख्य स्थान बने रहे. इस

---

* संवत् १२१५ वा ११५९ ई० में उत्पन्न हुआ था.

† यह नाम शाकंभरी देवी के नाम पर पड़ा है, जो इन जातियों की कुल देवी है, और इस की मूर्ति इस झील के बीच में है.

वंश में कई एक राजा ऐसे थे कि जिन के वीरकार्य्यों ने चौहानों के इतिहास को प्रकाशित कर दिया है. ऐसे राजाओं में से एक मानिकराँय था, जिस ने पहिले पहिल मुसल्मानों की सेना के मार्ग का अवरोध किया था. यहां तक कि विजेताओं [मुसल्मानों] के इतिहासों में लिखा है. कि महमूद गज़नवी से बड़ी वीरता और हठ के साथ अजमेर का राजा ‡ लड़ा, जिस ने उस को इस प्रसिद्ध दुर्ग के पास हरा कर अपमान के साथ सौराष्ट्र के हानि पहुंचानेवाले मार्ग की तरफ़ पीछा हटने के लिये बाध्य किया.

मौदूद[113] के विरुद्ध हुआ होगा, जो महमूद से चौथी पीढ़ी में था; और इसी विजय का उल्लेख दिल्ली के प्राचीन स्तंभ पर के शिलालेख[113] में है. परन्तु ये आक्रमण अन्तिम चौहान राजा के कैद होने तथा उस की मृत्यु के समय तक होते रहे, जिस का राजत्व काल सैनिक जागीरदारी के तरीके का एक उत्तम नमूना दिखाता है.

चौहानों की २४ शाखा हैं, जिन में से बूंदी और कोटा के वर्त्तमान राजवंश सब से अधिक प्रसिद्ध हैं, जो हाड़ौती नाम के विभाग में हैं. उन्हों ने चौहानों की वीरता के यश को भली भांति क़ाइम रक्खा है. ६ राजवंशी भाइयों ने वृद्ध शाहजहां के सहायतार्थ उस के विद्रोही पुत्र औरङ्गज़ेब से लड़ कर एक ही युद्ध क्षेत्र में अपना रक्तपात किया था, और इन छओं में से केवल एक युद्ध में घायल होकर बचा था.

गागरोन और राघोगढ़ के खीची, सिरोही के देवड़े, जालोर के सोनगरे, सूएबाह [?] और सांचोर के चौहान, और पावागढ़ के पावेचे, इन सब लोगों ने अपने नाम को अत्यन्त वीरता और स्वामी भक्ति के कामों से अमर कर डाला है. इन कुलों में से बहुतेरे अब तक वर्त्तमान हैं, और वे वैसे ही बहादुर हैं जैसे कि पृथ्वीराज के समय में थे.

चौहान वंश के बहुतेरे सर्दारों ने अपनी भूमि के रक्षार्थ अपने धर्म्म का परित्याग किया. उन में क़ाइम

वंश में कई एक राजा ऐसे थे कि जिन के वीरकार्य्यों ने चौहानों के इतिहास को प्रकाशित कर दिया है. ऐसे राजाओं में से एक मानिकरायँ था, जिस ने पहिले पहिल मुसल्मानों की सेना के मार्ग का अवरोध किया था. यहां तक कि विजेताओं [मुसल्मानों] के इतिहासों में लिखा है, कि महमूद गज़नवी से बड़ी वीरता और हठ के साथ अजमेर का राजा ‡ लड़ा, जिस ने उस को इस प्रसिद्ध दुर्ग के पास हरा कर अपमान के साथ सौराष्ट्र के हानि पहुंचानेवाले मार्ग की तरफ़ पीछा हटने के लिये वाध्य किया.

वलीद के सेनापति क़ासिम ने मानिक राय पर हिजरी सन् की प्रथम शताब्दी के अन्त में आक्रमण किया हो ऐसा प्रतीत होता है. चौथी शताब्दी के अन्त में दूसरा आक्रमण हुआ. तीसरा वीसलदेव के राजत्व काल में हुआ, जो अपने धर्म के शत्रुओं से लड़ने के लिये राजपूत राजाओं के एक बड़े मण्डल का मुखिया बना था. प्रसिद्ध उदयादित्य परमार का नाम उन राजाओं की गणना में आया है, जो इस अवसर पर चौहान राजा की आधीनता में कार्य करते थे, और उस की मृत्यु प्रामाणिक लेखों से सन् १०८६ ई० में होना निश्चय किया गया है, अतएव यह एका अवश्य मुसल्मान वादशाह

---

‡ वीसल्देव का पिता पर्वापिरें में इस अवसर पर अवश्य, अजमेर को [बचानेवाला रहा होगा.

मौदूद[113] के विरुद्ध हुआ होगा, जो महमूद से चौथी पीढ़ी में था; और इसी विजय का उल्लेख दिल्ली के प्राचीन स्तंभ पर के शिलालेख[113] में है. परन्तु ये आक्रमण अन्तिम चौहान राजा के कैद होने तथा उस की मृत्यु के समय तक होते रहे, जिस का राजत्व काल सैनिक जागीरदारी के तरीके का एक उत्तम नमूना दिखाता है.

चौहानों की २४ शाखा हैं, जिन में से बूंदी और कोटा के वर्त्तमान राजवंश सब से अधिक प्रसिद्ध हैं, जो हाड़ौती नाम के विभाग में हैं. उन्हों ने चौहानों की वीरता के यश को भली भांति क़ाइम रक्खा है. ६ राजवंशी भाइयों ने वृद्ध शाहजहां के सहायतार्थ उस के विद्रोही पुत्र औरङ्गज़ेब से लड़ कर एक ही युद्ध क्षेत्र में अपना रक्तपात किया था, और इन छओं में से केवल एक युद्ध में घायल होकर बचा था.

गागरोन और राघोगढ़ के खीची, सिरोही के देवड़े, जालौर के सोनगरे, सूएवाह [?] और सांचोर के चौहान, और पावागढ़ के पावेचे, इन सब लोगों ने अपने नाम को अत्यन्त वीरता और स्वामी भक्ति के कामों से अमर कर डाला है. इन कुलों में से बहुतेरे अब तक वर्त्तमान हैं, और वे वैसे ही बहादुर हैं जैसे कि पृथ्वीराज के समय में थे.

चौहान वंश के बहुतेरे सर्दारों ने अपनी भूमि के रक्षार्थ अपने धर्म्म का परित्याग किया. उन में क़ाइम

खानी, ◎ सुरवानी. लोवानी, कुरुरवानी, और वैदवान लोग, जो विशेषतः शेखावाटी में निवास करते हैं, बड़े ही प्रसिद्ध हैं. इस प्रकार कम से कम छोटे छोटे बारह राजाओं ने अपने धर्म को छोड़ा, परन्तु यह कार्य राजपूतों के धर्म विश्वास के विरुद्ध नहीं है; क्योंकि यहां तक कि मनु भी कहते हैं कि वे अपनी भूमि के रक्षार्थ अपनी स्त्री तक का परित्याग कर सकते हैं. पृथ्वीराज का भतीजा ईश्वर दास प्रथम पुरुष था, जिस ने यह उदाहरण दिखाया.

चौहानों की २४ शाखा.

चौहान, हाड़ा, खीची, सोनगरा, देवड़ा, पाविया, संचोरा, गोएलवाल, भदोरिया, निर्वाण, मालानी, पूर्विया, मूरा, मादड़ेचा, संकेचा, भूरेचा, बालेचा, तस्सेरा, चाचेरा, रोसिया, चांदू, नर्कुम्प, भावर, और बंकट.

चालुक वा सोलंकी—यद्यपि हम अग्निकुल की इस शाखा के इतिहास का पता उतने प्राचीन कोल तक नहीं लगा सकते, जितना कि परमार और चौहान वंश का, तोभी हम उस को कुछ प्रसिद्धि की कमी के कारण नहीं, किन्तु [ऐतिहासिक] सामग्री के अभाव से इस विषय में उन के बराबर रखने में असमर्थ हुए हैं. भाटों की दन्तकथा सोलंकियों को, राठौड़ों के कन्नौज

◎ सुरवानु हंसनू के निकट.

प्राप्त करने के पहिले गंगा किनारे सोरूं के राजा होना प्रसिद्ध करती है- वंशावली विषयक प्रमाणों * के देखने से जान पड़ता है, कि उन का निवास स्थान लोकोट था, जो लाहौर का प्राचीन नाम माना जाता है, जिस से वे उसी शाखा (माध्यन्दिनी) के होते हैं जिस शाखा के चौहान लोग हैं. यह बात निश्चित है कि आठवीं शताब्दी में लंघो † और तोगर लोग मुल्तान और उस के आस पास के देश में रहते थे, और वे लोग भाटियों के मुख्य शत्रु थे, जो उस समय मरु भूमि में अपना राज्य जमा रहे थे. वे मलबार ‡ के समुद्री किनारे पर कल्यौन के राजा थे, जिस नगर के देखने से [अब भी] उस के प्राचीन वैभव के चिन्ह दिखाई देते हैं. कल्यौन से ही सोलंकी वंश का एक राजकुमार लाया जा कर अनहिलवाड़ा पट्टन के चावड़ा राजकुल का उत्तराधिकारी बनाया गया.

संवत् ६८७ (सन् ६३१) में चावड़ों का अन्तिम राजा भोजरौंजे और भारत का सैलिक कानून ये दोनों

---

* सोलंकी कुल का गोत्रोच्चार यह है:— "माध्यन्दिनी शाखा, भारद्वाज गोत्र, गढ़लोकट से निकास, सरस्वती नदी, सामवेद, कपिलेश्वर देव, कर्दमान ऋषीश्वर, तीन प्रवर, क्योंजदेवी, भैपाल पुत्र.

† मलखानी कहलाते हैं, क्योंकि वे मलखान के पुत्र हैं, जो अपना धर्म छोड़ कर प्रथम मुसल्मान हो गया. हम यह नहीं जानते कि सोलंकियों की ये शाखा अपना धर्म छोड़ने के लिये बाध्य की गई वा उन्हों ने अपनी खुशी से छोड़ा.

‡ बम्बई के निकट.

ख़ानी, * सुरवानी, लोवानी, कुरुरवानी, और वैदवान लोग, जो विशेषतः शेखावाटी में निवास करते हैं, बड़े ही प्रसिद्ध हैं. इस प्रकार कम से कम छोटे छोटे बारह राजाओं ने अपने धर्म को छोड़ा, परन्तु यह कार्य राजपूतों के धर्म विश्वास के विरुद्ध नहीं है; क्योंकि यहां तक कि मनु भी कहते हैं कि वे अपनी भूमि के रक्षार्थ अपनी स्त्री तक का परित्याग कर सकते हैं. पृथ्वीराज का भतीजा ईश्वर दास प्रथम पुरुष था, जिस ने यह उदाहरण दिखाया.

चौहानों की २४ शाखा.

चौहान, हाड़ा, खीची, सोनगरा, देवड़ा, पाविया, संचोरा, गोपलवाल, भदोरिया, निर्वाण, मालानी, पूर्विया, सूरा, मादड़ेचा, संकेचा, भूरेचा, वालेचा, तस्तेरा, चाचेरा, रोसिया, चांदू, नकुम्प, भावर, और वंकट.

चालुक्य वा सोलंकी—यद्यपि हम अग्निकुल की इस शाखा के इतिहास का पता उतने प्राचीन कालँ तक नहीं लगा सकते, जितना कि परमार और चौहान वंश का, तोभी हम उस को कुछ प्रसिद्धि की कमी के कारण नहीं, किन्तु [ऐतिहासिक] सामग्री के अभाव से इस विषय में उन के बराबर रखने में असमर्थ हुए हैं. भाटों की दन्तकथा सोलंकियों को, राठौड़ों के कनौज

* फ़तहपुर झुंझणू के निकट.

प्राप्त करने के पहिले गंगा किनारे सोरूं के राजा होना प्रसिद्ध करती है. वंशावली विषयक प्रमाणों * के देखने से जान पड़ता है, कि उन का निवास-स्थान लोकोट था, जो लाहौर का प्राचीन नाम माना जाता है, जिस से वे उसी शाखा (माध्यन्दिनी) के होते हैं जिस शाखा के चौहान लोग हैं. यह बात निश्चित है कि आठवीं शताब्दी में लंघों + और तोगर लोग मुलतान और उस के आस पास के देश में रहते थे, और वे लोग भाटियों के मुख्य शत्रु थे, जो उस समय मरु भूमि में अपना राज्य जमा रहे थे. वे मलबार ‡ के समुद्री किनारे पर कल्यान के राजा थे, जिस नगर के देखने से [अब भी] उस के प्राचीन वैभव के चिन्ह दिखाई देते हैं. कल्यान से ही सोलंकी वंश का एक राजकुमार लाया जा कर अनहिलवाड़ा पट्टन के चावड़ा राजकुल का उत्तराधिकारी बनाया गया.

संवत् ६८७ (सन् ६३१) में चावड़ों का अन्तिम राजा भोजराज और भारत का सैलिक कानून ये दोनों

---

* सोलंकी कुल का गोत्रोच्चार यह है:— "माध्यन्दिनी शाखा, भारद्वाज गोत्र, गढ़लोकट से निकास, सरस्वती नदी, सामवेद, कपिलेश्वर देव, कर्दमान ऋषीश्वर, तीन प्रवर, क्योंजदेवी, मैपाल पुत्र.

+ मलखानी कहलाते हैं, क्योंकि वे मलखान के पुत्र हैं, जो अपना धर्म छोड़ कर प्रथम मुसल्मान हो गया. हम यह नहीं जानते कि सोलंकियों की ये शाखा अपना धर्म छोड़ने के लिये बाध्य की गई वा उन्हों ने अपनी खुशी से छोड़ा.

‡ बम्बई के निकट.

ख़ानी, * सुरवानी, लोवानी, कुरुरवानी, और वैदवान लोग, जो विशेषतः शेखावाटी में निवास करते हैं, बड़े ही प्रसिद्ध हैं. इस प्रकार कम से कम छोटे छोटे बारह राजाओं ने अपने धर्म को छोड़ा, परन्तु यह कार्य राजपूतों के धर्म विश्वास के विरुद्ध नहीं है; क्योंकि यहां तक कि मनु भी कहते हैं कि वे अपनी भूमि के रक्षार्थ अपनी स्त्री तक का परित्याग कर सकते हैं. पृथ्वीराज का भतीजा ईश्वर दास प्रथम पुरुष था, जिस ने यह उदाहरण दिखाया.

चौहानों की २४ शाखा.

चौहान, हाड़ा, खीची, सोनगरा, देवड़ा, पाविया, संचोरा, गोएलवाल, भदोरिया, निर्वाण, मालानी, पूर्विया, सूरा, मादड़ेचा, संक्रेचा, भूरेचा, वालेचा, तस्सेरा, चाचेरा, रोसिया, चांदू, नर्कुम्प, भावर, और वंकट.

चालुक्य वा सोलंकी—यद्यपि हम अग्निकुल की इस शाखा के इतिहास का पता उतने प्राचीन काल तक नहीं लगा सकते, जितना कि परमार और चौहान वंश का, तोभी हम उस को कुछ प्रसिद्धि की कमी के कारण नहीं, किन्तु [ऐतिहासिक] सामग्री के अभाव से इस विषय में उन के बराबर रखने में असमर्थ हुए हैं. भाटों की दन्तकथा सोलंकियों को, राठोड़ों के कनोज

* फ़तहपुर झंझणू के निकट.

प्राप्त करने के पहिले गंगा किनारे सोरूं के राजा होना प्रसिद्ध करती है. वंशावली विषयक प्रमाणों * के देखने से जान पड़ता है, कि उन का निवास स्थान लोकोट था, जो लाहौर का प्राचीन नाम माना जाता है, जिस से वे उसी शाखा (माध्यन्दिनी) के होते हैं जिस शाखा के चौहान लोग हैं. यह बात निश्चित है कि आठवीं शताब्दी में लंघो + और तोगर लोग मुलतान और उस के आस पास के देश में रहते थे, और वे लोग भाटियों के मुख्य शत्रु थे, जो उस समय मरु भूमि में अपना राज्य जमा रहे थे. वे मलबार ‡ के समुद्री किनारे पर कल्यैन के राजा थे, जिस नगर के देखने से [अब भी] उस के प्राचीन वैभव के चिन्ह दिखाई देते हैं. कल्यैान से ही सोलंकी वंश का एक राजकुमार लाया जा कर अनहिलवाड़ा पट्टन के चावड़ा राजकुल का उत्तराधिकारी बनाया गया.

संवत् ९८७ (सन् ९३१) में चावड़ों का अन्तिम राजा भोजराजे और भारत का सैलिक कानून ये दोनों

---

* सोलंकी कुल का गोत्रोच्चार यह है:- "माध्यन्दिनी शाखा, भारद्वाज गोत्र, गढ़लोकट से निकास, सरस्वती नदी, सामवेद, कपिलेश्वर देव, कर्दमान ऋषीश्वर, तीन प्रवर, क्योंजदेवी, मैपाल पुत्र.

+ मलखानी कहलाते है, क्योंकि वे मलखान के पुत्र हैं, जो अपना धर्म छोड़ कर प्रथम मुसल्मान हो गया. हम यह नहीं जानते कि सोलंकियों की ये शाखा अपना धर्म छोड़ने के लिये बाध्य की गई या उन्हों ने अपनी खुशी से छोड़ा.

‡ बम्बई के निकट.

सोलंकी युवक मूल राज * के लिये अलग कर दिये गये, जिस ने ५८ वर्ष[१२४] तक अनहिलवाड़े का राज्य किया. उस के पुत्र और उत्तराधिकारी चामुण्डराय[१२५]† के शासन काल में महमूद गज़नवी अपनी सर्वनाश करनेवाली सेना को अनहिलवाड़ा के राज्य में ले गया. वहीं का धन प्राप्त कर के उस ने अपनी विजय के उन महान स्मारकों को बनवाया, जिन में 'बिहिश्त की दुलहिन' [नामक मीनार] ऐसा था, जो मनुष्य निर्मित, मूर्खता के किसी भी स्मारक की स्पर्द्धा कर सकता था. उस धन का परिमाण, जिसे यह भारत को बर्बाद करने वाला ले गया, और जिस का हाल विजय करनेवालों [मुसल्मानों] के इतिहास में लिखा है, यद्यपि विश्वास योग्य नहीं समझा जाता, परन्तु अनहिलवाड़ा के व्योपार सम्बन्धी द्रव्य का विचार करने से उस पर विश्वास आवेगा. अनहिलवाड़ा भारत के लिये वैसा ही था, जैसा वेनिस[१३०] [Venice] यूरोप के लिये, अर्थात् वह पूर्वीय तथा पश्चिमीय गोलार्धों में उपजनेवाली वस्तुओं का भण्डार था.

---

* कल्यान से दूसरी जगह जा बसनेवाला यह सोलंकी राजकुमार जयसिंह का पुत्र था, जिस [जयसिंह] ने भोजराज की बेटी से विवाह किया था. ये बातें एक बहु मूल्य छोटे से भौगोलिक और ऐतिहासिक ग्रन्थ से, जो अपूर्ण और बिना नाम का है, ली गई हैं.

† मुसल्मान इतिहासलेखकों ने उस का नाम चामुण्ड लिखा है.

यह नगर उस आघात से अच्छी तरह संभल गया था जो महमूद और उस के उत्तराधिकारियों की डामाडोल लड़ाइयों से पहुंचा था; यहां तक कि सिद्धराज जय सिंह * जो उस [वंश] के संस्थापक से सातवीं पीढ़ी में हुआ, ऐसे राज्य पर शासन करता था, जो अत्यन्त लड़ने वाला नहीं, तो भी हिंदुस्तान में सब से अधिक समृद्धिशाली था. कर्नाटक से ले कर हिमालय पर्वत की तलहटी २२ तक राज्य एक ही समय उस की आधीनता में थे; परन्तु उस के बेसमझ उत्तराधिकारी ने पृथ्वीराज चौहान को अपना परम शत्रु बनाया, जिस के [चौहान] कुल का एक पुरुष कुमारपाल सोलंकियों के इस वंश का उत्तराधिकारी हुआ; और यह एक आश्चर्य की बात है कि बलिकरायों का यह एकही वंश भारत के सैलिक क़ानून के तोड़ने के दो उदाहरण देता है. कुमारपाल अनहिलवाड़ा के राजसिंहासन पर बिठाया गया, जिस ने अपने मस्तक पर सोलंकियों की पगड़ी बांधी. वह उसी कुल का हो गया, जिस कुल में कि वह गोद बिठाया गया. कुमारपाल और सिद्धराज दोनोंही बुद्ध धर्म्म के सहायक थे, और जिन स्मारकों को उन्हों

---

* उस ने संवत् ११५० से लेकर १२०१ तक राज्य किया. इसी के दर्बार में एल इद्रिसी (El Edrise) जिसे बहुधा न्युबियन भूगोलवेत्ता कहते हैं, आया था, जो इस राजा को विशेष कर बौद्ध धर्म का माननेवाला लिखता है.

ने तथा उन के उत्तराधिकारियों ने बनाया वे अपनी सुन्दरता और शिल्पचातुरी की पूर्णता के कारण हमारी प्रशंसा के पात्र हैं; क्योंकि शिल्प विद्या की उन्नति, और किसी काल में ऐसी नहीं हुई जैसी कि अनहिलवाड़ा के राज्य[123] में हुई.

शहाबुद्दीन के सूबेदारों ने कुमारपाल के शासन-काल के अन्त[123] में उस के राज्य में उपद्रव मचाया और उस का वंश उस के वंशज बालमूल[133] देव के साथ संवत् १२८४[124] (सन् १२२८ ई०) में समाप्त हुआ, उस समय बघेल (सिद्धराज के सन्तान गैण[135]) नामक एक नया वंश वीसलदेव[136] की आधीनी में उक्त राज्य का स्वामी हुआ. जो क्षतियां धर्म्म सम्बन्धी द्रोह के कारण हुई उन की पूर्ति की गई. प्राचीन काल के डेल्फ़ोस रूप सोमनाथ का टूटा हुआ मन्दिर फिर से बनाया गया, और बलिकरायों का यह राज्य पुनः अपने प्राचीन महत्व को प्राप्त करही रहा था, ऐसे में चौथे राजा गहलाकर्ण के समय अलाउद्दीन के रूप में विनाशकारी देवदूत प्रगट हुआ, और अनहिलवाड़ा का राज्य जड़ मूल से नष्ट हो गया. दिल्ली के ज़ालिम तातारी [बादशाहों] के सूबेदारों ने गुजरात और सौराष्ट्र के समृद्धिशाली नगरों और उपजाऊ प्रदेशों पर बिना किसी रोक टोक के लालच और असहिष्णुता को खूब ही प्रगट किया, उन के धर्म्म के अनादर के लिये एक मुसलमान फ़कीर की

दरगाह आदिनाथ के मन्दिर के पास उस पहाड़ * पर बनवाई जहां कि उन के सब पवित्र पहाड़ों की अपेक्षा अधिक यात्री जाते हैं, बुद्ध की मूर्तियें फेंक दी गईं, और उन के धर्म्मग्रन्थों की वही गति हुई, जो इस्कन्दरिया के पुस्तकालय की हुई थी; अनहिलवाड़ा की शहरपनाह गिरा दी गई, उस नगर को जड़ मूल से खोद डाला, और फिर उस को उन के प्राचीन मन्दिरों के टूटे फूटे हिस्सों से पूरित कर दिया. †

सोलंकी वंश के बचे हुए लोग देश में इधर उधर फैल गये, और भारत का यह भाग एक शताब्दी से अधिक समय तक बिना किसी प्रधान स्वामी के रहा, जिस के बाद परमेश्वर की आश्चर्यजनक लीला से उसी जाति के एक साहसिक पुरुष द्वारा जिस [जाति] से अग्निकुल वाले पहिले पहिल धर्म्म परिवर्त्तन कर के आये थे, उस [नगर] का प्रताप फिर बढ़ा और वह पुनरपि निर्माण किया गया. यद्यपि [उस का नाम] सहारनटांक

* शत्रुंजय.

† सन् १८२२ ई० में मैंने प्राचीन वस्तुओं की खोज के लिये सौराष्ट्र की यात्रा की थी [उस समय] मैंने प्राचीनपट्टन के एक बाहिरी भाग के खंडहर का पता लगाया, जो अब तक अनहिलवाड़ा अर्थात् नेहरवाला कहलाता है, जिस को डीएनविल "फोर्टएनयुअर-दिरीट्रोवर" ("Fort n c vurde retrouver") लिखता है. मैं इस राज्य और उन वंशों का, जिन्हों ने यहां का शासन किया था, अलग वृत्तान्त लिखने की इच्छा रखता हूं.

था तथापि उस ने नया नाम ज़फ़रखां धारण कर अपना [अस्ली] नाम और जाति छिपा दी, और मुज़फ्फ़र के नाम से गुजरात की गद्दी पर बैठा, और [अन्त में] उस को अपने पुत्र[१३९] के लिये छोड़ गया. यह पुत्र अहमद था, जिस ने अहमदाबाद का नगर बसाया, जिस की अत्यन्त सुन्दर इमारतें उन प्राचीन नगरों के खंडहरों से बनाई गईं, जो उस के चारों ओर थे.

यद्यपि सोलंकी वंश इस प्रकार [वहां] से उखेड़ दिया गया तो भी उखड़ने के पहिले अपने स्वदेशी वट-वृक्ष की नाईं उस [वंश] के दूसरे प्रदेशों में अपनी शाखाओं को दृढ़ कर दिया था. इन शाखाओं में सब से अधिक प्रख्यात बघेल * वंश है, जिस के नाम पर भारत के एक सारे खण्ड का नाम पड़ा, और उस बघेल-खण्ड पर आज अनेक शताब्दियों से सिद्धराज के सन्तान शासन कर रहे हैं.

बांधोगढ़ के अतिरिक्त बघेलवंश के छोटे छोटे ठिकाणे अब तक गुजरात में हैं. इन में पीथापुर और थराद अधिक प्रसिद्ध हैं. मेवाड़ में द्वितीय वर्ग का एक सर्दार सोलंकी है, जो अपना वंश ख़ास सिद्धराज से निकला

---

* इस शाखा का नाम सिद्धराज के पुत्र बाघेराव के नाम पर [बघेल] पड़ा; यद्यपि भाट लोग इस की उत्पत्ति के विषय में दूसरी कहानी कहते हैं.

बतलाता है. यह रूपनगर का जागीरदार * है, जिस का दुर्ग उन पहाड़ी रास्तों [घाटियों] में से एक के ऊपर है, जो मारवाड़ को जाते हैं, और इस [जागीरदार] के कुल की ख्यातों में सीमा संबन्धी लड़ाई झगड़ों की दशा का एक उत्तम चित्र मिलेगा. अभी तक वहां के थोड़े ही जागीरदार स्वाभाविक मृत्यु से मरे हैं.

सोलंकी[१४२] वंश सोलह शाखाओं में विभाजित है.

१ बघेल—बघेलखण्ड के राजा (राजधानी बांधूगढ़), पीथापुर, थराद, और अदलज आदि के राव.

२ वीरपुरा—लूणावाड़ा के राव.

३ बेहिल—मेवाड़ान्तर्गत कल्याणपुर के जागीरदार, जो राव कहलाते हैं, परन्तु वे सलूंबर के उमराव की नौकरी करते हैं.

४ भूरता † } जयसलमेरान्तर्गत बारू, टेकरा
५ कालेचा † } और बाहिर में.

६ लंघा-मुल्तान के निकट रहनेवाले मुसल्मान.

७ तोगरू—पञ्चनद प्रदेश में रहनेवाले मुसल्मान.

८ बिकू—तथा तथा.

---

* मैं इस जागीरदार से भली भांति परिचित था, और यह अपनी जाति का बहुत अच्छा नमूना है. उस के पास जयसिंह का युद्ध समय बजाने का प्रसिद्ध शंख वंशपरंपरागत है.

† ये लोग मरुभूमि के प्रसिद्ध डाकू हैं, और मालदूत कहलाते हैं.

९ सोल्के-दक्षिण में पाये जाते हैं.

१० सिरवरिया *-सौराष्ट्र देश के अन्तर्गत गिरनार में रहते हैं.

११ राओका-जयपुर में टोड़ा के इलाके में रहते हैं.

१२ राणकरा-मेवाड़ान्तर्गत देसूरी में रहते हैं.

१३ खरूरा-मालवा देश में आलोट और जावरा के निवासी हैं.

१४ तांतिया-चन्दभड सकुनवरी + [?]

१५ अलमेचा-भूमिहीन

१६ कलामोर-गुजरात निवासी.

प्रतिहार वा पडिहार-अग्निकुल के इस अन्तिम और स्वल्प वंश के विषय में हम को बहुत थोड़ा हाल मिला है. पड़िहारों ने राजस्थान के इतिहास में कभी कोई नामवरी का काम न किया. ये सदैव मातहती की हालत में पाये गये हैं, और दिल्ली के तंवरों वा अजमेर के चौहानों के जागीरदार होकर कार्य करते रहे. इन के इतिहास में सब से उज्ज्वल वृत्तान्त नाहड़ राव का अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिये पृथ्वीराज से निष्फल युद्ध

---

* आख्यायिका सम्बन्धी इतिहासों में प्रसिद्ध हैं.

+ मिस्टर डाक्. सन् १८०७ ई० में मैंने इस स्थान को गोलों से गिराकर बराबर करते हुए देखा, जिस समय कि प्रसिद्ध पिंडारा करीम को सेंधिया ने कैद किया था. इस के पीछे सन् १८१७ ई० में कुछ अंग्रेज़ी योद्धे भी यहां काम आये.

करने के विषय में है. यद्यपि वह उस में सफलीभूत न हुआ, तो भी उस का नाम उस से अमर हो गया, और अर्वली की एक घाटी, जिस में वह लड़ाई हुई थी उचित प्रसिद्धि पाई है.

मंडोवर * (जिस को संस्कृत में मन्दोद्री कहते हैं) पड़िहारों की राजधानी थी. यह मारवाड़ का मुख्य नगर था, जिस में इस जाति का अधिकार राठौड़ों के आक्रमण और वसने के पहिले था. वर्त्तमान जोधपुर के उत्तर की ओर ५ मील पर वह स्थित है, और उस में प्राचीन[१४७] पाली अक्षरों के चन्द नमूने, शिल्पकारी एवम् जैन मन्दिरों के अवशेष चिन्ह रक्षित हैं.

कन्नौज के राठौड़ वंशी राजा जब वहां से भागे तो पड़िहारों के पास आकर शरण पाये. उस का बदला उन्हों ने विश्वासघात से दिया, और चूड़ा नामी एक प्रसिद्ध राठौड़ ने पड़िहारों के अन्तिम राजा का राज्य [१४८] छीन लिया, और मंडोवर के दुर्ग पर राठौड़ों का झण्डा खड़ा कर दिया.

---

* यद्यपि यह क़िला अब नष्ट हो गया है तो भी उस की दीवारों के देखने से उस की प्राचीनता का प्रमाण मिलता है. वहां का ऐसा काम है, जैसा इस अवनति के समय में नहीं किया जा सकता. उस के खण्डहरों के देखने से वोल्टेरों [Volterra], या कोरटोनों [Cortona] और टस्कैनी (Tuscany] के अन्य प्राचीन नगरों के खण्डहर याद आते हैं. वर्गाकार बड़े बड़े पत्थरों के टुकड़े बिना किसी मसाले के जोड़े हुए वहां पर हैं.

परन्तु पड़िहारों का वल पहिलेही से मेवाड़ के राजाओं ने वहुत घटा दिया था, जिन्हों ने केवल उन का वहुत सा राज्य ही नहीं छीना, किन्तु उन की उपाधि 'राणा'[१४९] † तक स्वयं धारण कर ली.

पड़िहार वंश के लोग सारे राजस्थान में विखरे हुए हैं; परन्तु वहां पर मुझे उन, के किसी स्वतंत्र जागीर का होना ज्ञात नहीं है. कोहारी, सिन्धु और चम्वल नदियों के संगम पर इस वंश की एक वस्ती है, जिस से इन नदियों के मध्यवर्ती दरों के छोटे छोटे ग्रामों के अतिरिक्त २४ वड़े वड़े गांवों के समूह का नाम इसी वंश के नाम से पड़ा है. वे सव नाम मात्र को सेंधिया की प्रजा थे; परन्तु चम्वल के किनारे की देशरक्षा के लिये यह आवश्यक समझा गया कि वह स्थान अंग्रेज़ सर्कार की हद में मिला लिया जावे, जिस के अनुसार वह स्थान हमारी [सर्कार अंग्रेज़ी की] हद में मिल जाने से हम लोगों ने वड़े वदमाश चोरों के गिरोह को अपने शासन में लिया, जो ठगों के इतिहास में प्रसिद्ध है.

[१५०] पड़िहारों की १२ शाखा थीं, जिन में से मुख्य इंदा और सिन्धल थीं. अव दोनों शाखाओं के थोड़े से लोग लूनी नदी के किनारों के आस पास पाये जाते हैं. चावड़ा

† यह घटना तेरहवीं शताब्दी में हुई, जब कि चित्तौड़ के रावल ने मंडोवर को जीत कर वहां के राजा को मार डाला था.

वा चावरा-यह वंश किसी समय में भारत के इतिहास में प्रसिद्ध था, यद्यपि अब उस का नाम लोग कम जानते हैं, अथवा केवल भाट के इतिहासों में ही उस का नाम पाया जाता है. उस की उत्पत्ति का वृत्तान्त हम को ज्ञात नहीं है. न वह सूर्य वंश से और न चन्द्रवंश से सम्बन्ध रखता है. अतएव हम उस का सीथियन लोगों से उत्पन्न होना अनुमान कर सकते हैं. यह नाम हिन्दुस्तान [उत्तरी भारतवर्ष] में अज्ञात है, और बहुत सी दूसरी जातियों की नाईं, जिन की उत्पत्ति सिन्धु पार के देशों से है, उस का नाम सौराष्ट्र के प्रायद्वीप में सुना जाता है. यदि हिन्दुस्तान में ये लोग बाहर से आये हैं तो बहुत प्राचीन समय से यहां आने चाहियें; क्योंकि हम इस वंश के लोगों को मेवाड़ के वर्तमान राजाओं के सूर्यवंशी पुरुषों के साथ परस्पर विवाह शादी उस समय करते हुए पाते हैं, जब कि यह वंश बल्लभी का स्वामी था.

चावड़ों की राजधानी सौराष्ट्र के समुद्री किनारे के पास दीव बन्दर का टापू था, और सोमनाथ का प्रसिद्ध मन्दिर, तथा इस समुद्री किनारे के बहुत से दूसरे मन्दिर, जो बलनाथ वा सूर्य के हैं, इस सौर [153] * अर्थात्

* बाख्ट्रिया के विषय में लिखनेवाले यूनानी लेखकों का सुरोई [Suroi] [154] अपोलोडोरस [155] [Apollodorus] के आधीनस्थ बाख्ट्रियन राज्य की सीमा के आस पास का प्रदेश था. इस विषय में रॉयल

सूर्य उपासक जाति के बनवाए हुए कहे जाते हैं. अधिकतर संभव है कि उस नाम पर से इस जाति एवम् इस सौर्यद्वीप का नाम पड़ा हो. ⊛

स्वाभाविक दुर्घटना के कारण, अथवा जैसा कि मिथ्या विश्वास करने वाले हिन्दू इतिहास लेखक लिखेंगे, दीव के राजा की उस की समुद्री डकैती के लिये दंड देने के वास्ते समुद्र ने, जिस के अधिकार को उक्त राजा ने नहीं माना, चढ़ाई कर के उस [राजा] की राजधानी को नष्ट कर दिया. ऐसी घटना का होना असंभव तो नहीं है, क्योंकि यह सारा किनारा बहुत नीचा है; अगर्चे चावड़ों को अरब लोगों की चढ़ाइयों के कारण दीव छोड़ना पड़ा होगा, जो इस समय इन प्रदेशों में व्यापार करते थे, और उन [अरबों] की कुछ जहाज़ों को लूट लेने के कारण ही उन [चावड़ों] को

एशियाटिक सोसाइटी की कार्यवाही जिल्द १ में यूनानी मुद्राओं के विषय का लेख देखो।

⊛ भारत के दक्षिणीय और पश्चिमीय निवासियों में से बहुतेरे 'श' का उच्चारण नहीं कर सकते हैं, और इस के स्थान पर सदा 'स' का प्रयोग करते हैं, जैसे प्रसिद्ध पिंडारी सर्दार चीतू को सदैव दक्षिणी लोग सीतू कहते थे. इसी तरह मरुस्थली की अनेक जातियां 'स' का उच्चारण नहीं कर सकतीं, जिस से अनेक आश्चर्यजनक अशुद्धियां होती हैं. जैसे जैसलमेर को, जिस का अर्थ "जैसल का पहाड़" है, वे लोग 'जेहलमेर' बोलते हैं, जिस का अर्थ "मुर्दों का पहाड़" होता है.

यह संज़ा भोगनी पड़ी होंगी. यह बात किसी ऐसी ही राजकीय आपत्ति के कारण हुई थी ऐसा विश्वास करने के लिये हम को और भी प्रमाण मेवाड़ की ख्यातों से मिले हैं, जिन में लिखा है, कि वहां के राजाओं ने सौराष्ट्र के प्रायद्वीप और उस के आसपास के देश के उन स्थानों को, जिन्हें चावड़ों ने त्याग दिया था, फिर से उन्हें दिलवा दियें[९].

यह तो निश्चय है कि दीव के राजा ने संवत् ८०२ (सन् ७४६ ई०) में अनहिलवाड़ा पट्टन की नींवें[६०] डाली जो उस समय से बल्लभीपुर[६१] के स्थान पर भारत के इस भाग का मुख्य नगर हुआ. उसी [बल्लभीपुर] से यहां के राजाओं की उपाधि बलिकैराय[६२] हो गई थी, जिस की प्राचीन काल के अरब यात्रियों ने एवम् उन्हीं के अनुसार यूरोप के भूगोलवेत्ताओं ने वलहँरा नाम से लिखा है.

वेनराज (वा देशी भाषा में वनराज) उस की नींव डालनेवाला था, और उस के वंश ने एकसौ चौरांसी वर्ष तक राज्य किया, जिस के उपरान्त जैसा की सोलंकी जाति के संक्षिप्त इतिहास में वर्णन कर आये हैं, भोज-राज, जो इस वंश के स्थापक से सातवीं पीढ़ी में उत्पन्न हुआ था, अपने भांजे द्वारा गद्दी से उतार दिया गया. इसी वंश के शासनकाल में अरब के यात्री ⊛ इस दर्बार

⊛ ' Relations anciennes les Voyageurs, par Renaudot. '

में आये जिस का कि वे अस्पष्ट वृत्तान्त छोड़ गये हैं. तो भी हम चावड़ा वंश के विषय में सम्पूर्णतः अन्धकार में नहीं हैं, क्योंकि खुम्माणरासे में जो मेवाड़ की एक ख्यात है, इतिहास में लिखे हुए मुसल्मानों के प्रथम आक्रमण से चित्तौड़ को बचाने के लिये चतंनंसी नामी [चावड़ा] सर्दार की आधीनता में कुछ सहायक सेना का आना लिखा है.

जब महमूदग़ज़नवी ने सौराष्ट्र पर आक्रमण कर उस की राजधानी अनहिलवाड़ा को अपने हस्तगत किया उस समय उस ने वहां के राजा को गद्दी से उतार दिया और फ़िरिश्ता के लेखानुसार उस पर पहिले वंश के एक राजा को जो अपने प्राचीन घराने और कुल की शुद्धता के लिये प्रसिद्ध था, बिठाया, जिस का नाम दावशिलिम लिखा है. यह एक ऐसा नाम है जिस ने सब यूरोपियन टिप्पणकारों की बुद्धि चकरा दी है. परन्तु डाबी एक प्रसिद्ध जाति थी, जिसे कुछ लोग चावड़ा वंश की एक शाखा कहते हैं, और इस लिये यह शब्द [दावशिलिम] डाबी और चावड़ा के समास से बना होगा, अथवा चूड़ासमा के [समास से] जिसे कुछ लोग प्राचीन यदुकुल की एक शाखा होना बतलाते हैं.

सूर्यवंशी राजाओं और सौराष्ट्र के चावड़ों वा सौरों के बीच यह प्राचीन सम्बन्ध एक हज़ार से अधिक वर्ष बीतने पर भी अबतक क़ाइम है; क्योंकि यद्यपि राणा

के घराने के साथ सम्बन्ध होना एक हिन्दू राजा के लिये सब से बड़ी प्रतिष्ठा समझी जाती है, क्योंकि वह [राणा का] घराना राजस्थान में अव्वल दरजे का है, तौभी दीन चावड़ा वंश, जो अत्यन्त ही गिरी हुई अवस्था में है, राम के वंश को चलाने के लिये [कन्या लेने के लिये] पसन्द किया जाता है. राजकुमार जवानसिंह, जो एक सौ राजा वाले वंश का वर्त्तमान युवराज है, गुजरात के एक छोटे ठिकाने के चावड़ा सर्दार की कन्या से उत्पन्न हुआ है.

इस [चावड़ा] नाम को धारण करने वाले ठिकानों की वर्त्तमान दशा का कुछ भी वर्णन करना व्यर्थ है. उन को अपने गत दिनों के यश पर ही निर्भर रहना पड़ेगा; [इस लिये] यहीं तक हम उन का वृत्तान्त लिखते हैं.

टांक वा तक्षक—तक्षक उस वंश का जातीय नाम जान पड़ता है, जिस से प्राचीन काल में भारत पर आक्रमण करने वाली भिन्न भिन्न सीथियन जातियां निकली थीं. यह नाम जेटी की अपेक्षा, जिस से अनगणित शाखाएं निकली हैं, अधिक प्राचीन काल में व्यवहार किया जाता हो ऐसा प्रतीत होता है. इन दोनों नामों को विलग करना बुद्धिमानी का काम न होगा, यद्यपि यह कहना कल्पना मात्र होगा कि उन जातियों का आदि नाम [दोनों में से] कौन सा था, जो अपने देश

सक्ताई, वा शाकद्वीप अर्थात् बड़े जेटी के देश के अनुसार सीथिक कहलाती थी।

अबुल्गाज़ी * तॉनिक को तुर्क वा तर्गेताई का पुत्र बतलाता है, जो पुराणों का तुरुष्क, चीनी इतिहास लेखकों का तक्युक्स एवम् स्ट्रेबो लिखित भ्रमणकारी टोचरी [जाति का] प्रतीत होता है, जिस ने बाक्ट्रिया के यूनानी राज्य को बर्बाद करने में सहायता दी, और उस के नाम से एशिया के बड़े भाग का नाम टोच-

---

* अबुल्गाज़ी कहता है कि जब नूहने नौका छोड़ दी तो उस ने पृथ्वी को अपने तीन पुत्रों में बांट दिया. शाम ने ईरान पाया, जैफ़ेटने "कुत्तए शेमैक" का देश पाया, जो कास्पियन समुद्र और भारत के मध्यवर्ती प्रदेशों का नाम है. वहां पर वह [जैफ़ेट] ढाई सौ वर्ष तक जीवित रहा. उस ने अपने पीछे आठ पुत्र छोड़े, जिन में से तुर्क बड़ा और कमरी सातवां था, जो ईसाइयों की धर्म्म पुस्तक में लिखा हुआ गोमर समझा जाता है.

तुर्क के चार लड़के थे जिन में से सब से बड़ा तॉनक था, जिस की चौथी पीढ़ी में मुग़ल हुआ, जो मंगल का अपभ्रंश है, और जिस का अर्थ उदास है. उस के उत्तराधिकारियों ने अज़्ताईज [के निकट-वर्ती देशों] को अपना शीतकाल का निवास स्थान बनाया. उस के शासनकाल में सत्यधर्म्म का लेश मात्र भी पता नहीं चलता था. मूर्त्तिपूजा सर्वत्र विजयी हो गई थी. उस का उत्तराधिकारी ओगज़ खां हुआ.

प्राचीन किम्ब्री लोग जो ओडिन की जिट, कट्टी, और सूजातियों की सेना के साथ पश्चिम में गये थे, सम्भव है कि तुर्क के पुत्र कमरी के वंश की जातियों के थे.

रिस्तान * वा तुर्किस्तान हुआ, और उस आश्चर्यजनक ताजक † जाति के तक्षक वंशी होने का प्रत्येक लक्षण प्रतीत होता है, जो इन देशों में अबतक बिखरी हुई है, और जिस के विषय में कुछ भी ऐतिहासिक वृत्तान्त ज्ञात नहीं हुआ है.

यह पहिले कहा जा चुका है कि राजस्थान के

---

* कारज्मै (खोरास्मिया) के बड़े खांन लोगों का नाम तकश उस समय तक होता चला आता था जब कि उन्हों ने मुहम्मद का धर्म स्वीकार किया. जलाल का बाप, जो चंगेज़ खां का शत्रु था, तकश नामधारी था. जगज़ार्टीज़ [वा सेहून] के किनारे पर स्थित तुर्किस्तान की राजधानी ताशकन्द नगर का नाम भी इसी जाति के नाम से पड़ा होगा.

बेयर (Bayer) कहता है, कि "टोचारिस्तान टोचरी लोगों का देश था, जो प्राचीन टोचरोई वा टचरोई थे." अम्मियानस मार्सेलिनस [Ammianus Marcellinus] कहता है कि, "अनेक जातियां बाक्ट्रियन लोगों की आज्ञा पालन करती हैं, जिन में टोचरी मुख्य हैं."— Hist. Reg Bact, P. 7

† एल्फिन्स्टन (Elphinston] साहिब ने अपने काबुल राज्य के प्रशंसनीय वृत्तान्त में इस अद्भुत ताजक जाति के विषय में कई बार लिखा है. "वायेज डि ऑरेन् वर्ग ए बुखारा" [Voyage, d' Orenbourga Bokhara=ऑरेन् वर्ग और बुखारा की जलयात्रा] नामक मनोहर ग्रन्थ में इन लोगों के बुखारा राज्य व्यापार सम्बन्धी कारबार को केवल अपने ही हाथ में ले रखने के विषय में विशेष रूप से लिखा है. उक्त ग्रन्थ के साथ जो नक्शा दिया गया है उस में पहिले पहिल प्रामाणिक रूप से ऑक्सस और जगज़ार्टीज़ के उत्पत्तिस्थान और बहाव को दिखाया है.

अनेक भागों में उस जाति के, जो तुस्टा, तक्षक और टांक कहलाती है, पाली वा बौद्ध अक्षरों में प्राचीन शिलालेख मिले हैं, जो मोरी, परमार, और उन के सन्तानों से सम्बन्ध रखते हैं. नाग और तक्षक संस्कृत में सर्प के नाम हैं, और तक्षक भारत के प्राचीन वीरता सम्बन्धी इतिहास का प्रसिद्ध नागवंश है. महाभारत में अपनी सदा की रूपकमय शैली के अनुसार इन्द्रप्रस्थ के पाण्डुवंशियों और उत्तर के तक्षक लोगों के मध्य की लड़ाई का वर्णन किया है. परीक्षित के तक्षक के हाथ से मारेजाने, और उस के पुत्र एवम् उत्तराधिकारी जनमेजय का उन लोगों का विनाश करने के लिये युद्ध चलाने, और उन लोगों को अन्त में ख़िराजगुज़ार बनने के लिये बाध्य करने की कथा अपने रूपक * से अलग करने पर साफ़ ऐतिहासिक घटना जान पड़ती है.

---

* महाभारत में स्पष्ट रूप से सर्पों के साथ इस लड़ाई के होने का वर्णन किया गया है, जिन में से बीस सहस्र को उस (जनमेजय) ने एक ही आक्रमण में पकड़ कर होम दिया. यह आश्चर्य है, कि हिन्दू लोग इन बातों को ज्यों की त्यों स्वीकार करते हैं. यह कहा जा सकता है कि उस के केवल कठिन कार्यों में से कोई एक पसन्द करना था. बीस हज़ार मनुष्यों को एकट्ठा कर के जंगलीपने से हवन कर देना किसी मनुष्य के लिये उतना ही असंभव है, जितना कि बीस हज़ार सर्पों को इस कार्य के लिये प्राप्त करना. जंगलीपने से क्या क्या [निष्ठुरता के] कार्य हो सकते हैं उस के अनुसार से अन्यकर्त्ता मनुष्य के हवन को, यद्यपि इतने परिणाम तक तो कदाचित् नहीं, तथापि बिल्कुल असंभव भी नहीं समझता. सन् १८१७ ई० में उसे

जब कि सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया तो उस ने पैरिटॉकी [Paraetakæ] अर्थात् पहाड़ी टांक लोगों को पैरोपैमिसन पर्वतश्रेणी पर बसा हुआ पाया; और न यह किसी प्रकार असंभव है कि मैसिडोनिया [=मकूदुनिया] के बादशाह का सहायक टैक्सीइ-लिस ⊛ [Taxiles] टांक लोगों का सर्दार (ईश)

सर्कारी कार्यवश चम्बल नदी के दर्रों में गूजरगढ़ नामक प्रदेश की पैमाइश करनी पड़ी, जहां गूजरजाति के लोग बसते हैं, जो इसाऊ [Esau] के पुत्रों की नाईं झगड़ालू और स्वतन्त्र स्वभाववाले हैं, और उन का हाथ औरों के ऊपर प्रत्येक समय उठा रहता था, और लोगों का हाथ उन पर उठा रहता था। उन के नाम मात्र के राजा सूरजमल ने, जो भरतपुर का जाट राजा था, ठीक उसी रीति का अवलम्बन इन गावों के रहनेवालों के लिये किया, जो जनमेजय ने तक्षक लोगों के लिये किया था, अर्थात् रात्रि को छापा मारकर उन्हें पकड़ लिया, और जलने योग्य पदार्थों के साथ उन को खड्डों में ढकेल कर वास्तव में उन्हें उसी तरह जला दिया। इस घटना को हुए पौन शताब्दी भी नहीं हुई है।

⊛ एरियन कहता है कि उस का नाम ओम्फिस (Omphis) था और उस के पिता के इस समय मर जाने से उस ने सिकन्दर की आधीनता स्वीकार करली, इसलिये सिकन्दर ने उस के बाप की उपाधि और राज्य उस को दे दिया। इसी से कदाच (टक से) सिन्धु का नाम अटक है। हाल के अर्थ के अनुसार अटक वा रोक नहीं, यह अर्थ केवल उस समय से हुआ है जब से मुसल्मान धर्म्म ने कुछ काल तक इस नदी को [हिन्दू और इस्लाम] दोनों धर्म्मों के मध्य की सीमा बना दी थी।

था; और जैसलमेर के भाटी राजाओं के प्राचीन इतिहास में [लिखा है कि] जब वे लोग ज़ाबुलिस्तान से निकाल दिये गये तो उन्हों ने टांक लोगों से सिन्धु नदी के किनारे पर के देशों का राज्य छीन लिया, और उन लोगों के देश में स्वयम् जम गये, जिस की राजधानी शलभनपुर थी, और जो कि इस घटना का समय युधिष्ठिर के संवत् का ३००८वां वर्ष दिया है, अतएव यह किसी भांति असंभव नहीं है कि तुवरवंशी विक्रम को विजय करनेवाला शालिवाहन वा सालवाहन (जो तक्षक था) उसी कुल का था, जिस को भाटी लोगों ने अधिकार च्युत कर के दक्षिण की ओर चले जाने के लिये बाध्य किया.

शेषनाग की आधीनता में तक्षक वा नागवंश की चढ़ाई का समय गणना करके ईसवी सन् से लगभग ६ वा सात शताब्दी पहिले माना गया है, जिस काल में " अश्वारोही तोगरमाह के लड़कों द्वारा " (अश्व वा असि) मिसर और सीरिया पर सीथियन लोगों के आक्रमण का हाल पैगम्बर इजेकील और डायाडोरस [दोनों] ने समान रूप से लिखा है. आबू माहात्म्य में तक्षकों को " हिमाचल के पुत्र " बतलाये हैं, जिन सब बातों से वे सीथियन लोगों के ही सन्तान प्रमाणित होते हैं, और २३ वें बुद्ध पार्श्वनाथ के अपने धर्म को भारत में चलाने

और अपने निवासस्थान को सरनेत * के पवित्र पहाड़ों में नियत करने की घटना भारत के चन्द्रवंश में इस परिवर्त्तन के होने से केवल आठ पीढ़ी पूर्व हुई थी.

तक लोगों के प्राचीन इतिहास के विषय में इतना ही बहुत है. अब हम उन के और पीछे के समय का वृत्तान्त संक्षेप से लिखेंगे. हम पहिले ही लिख चुकेहैं कि तक्षक मोरी बहुत प्राचीन काल सेही चित्तौड़ के स्वामी थे; और गुहिलोतों के मोरियों को यहां से निकाल देने से थोड़ी ही पीढ़ियों के बाद हिन्दुओं की स्वतंत्रता के इस रक्षित स्थान पर मुसल्मानों की सेना ने आक्रमण किया. उन अनगणित लोगों में से, जिन्हों ने चित्तौड़ की रक्षा का काम अपना ही मान रक्खा था, हम लोग "आसेरगढ़ † के टाके[२] लोगों" को भी पाते हैं. प्रतीत होता है कि इस वंश ने आसेर पर अपना अधिकार इस घटना के बाद कम से कम दो शताब्दी तक रक्खा. क्योंकि वहां का सर्दार पृथ्वीराज की सेना का एक अत्यन्त प्रसिद्ध सेनापति था. चन्द के

---

* विहार में, रिपुंजय के उत्तराधिकारी प्रद्योत के शासनकाल में पार्श्व का चिन्ह सर्प वा तक्षक है, उस के सिद्धान्त भारत के दूर दूर के प्रदेशों में फैल गये, और बल्लभीपुर, मन्द्रोद्री, एवम् अनहिलवाड़ा इन सब स्थानों के राजा बौद्ध[१] धर्मावलंवी थे.

† यह प्रसिद्ध क़िला खान देश में है जो अब अंग्रेज़ों के अधिकार में है.

काव्य में उसे 'झण्डा वदार आसेर का टांक' कहा है. *

इस प्राचीन वंश ने, जो जनमेजय का शत्रु और सिकन्दर का मित्र था, उज्ज्वल प्रताप के मध्य अपनी समाप्ति की, वर्त्तमान काल के टांक लोगों की अप्रसिद्धि की क्षति गुजरात के बादशाहों की प्रसिद्धि पूर्ण करदेगी, जिन का एक राजवंश मुज़फ्फर की अभिमानी पदवी के साथ प्रारंभ और समाप्त हुआ, जिस में १४ बादशाह एक दूसरे के बाद क्रम से हुए. प्रथम तुगलक [बादशाह] के पुत्र मुहम्मद † के शासनकाल में उस के भतीजे फीरोज़ पर एक दैवी घटना के आपड़ने से टांकों के भाग्य का उदय हुआ. परन्तु वह नाम और धर्म के बदलने से ही प्राप्त हुआ. इस वंश का प्रथम अपना धर्म परिवर्त्तन करनेवाला पुरुष सहारन नामी टांक था, जिस नें अपनी उत्पत्ति और जाति दोनों वजेह-उल-मुल्क नाम रखकर छिपादी. उस का पुत्र ज़फ़रखां अपने प्रतिपालक फीरोज़ द्वारा गुजरात का शासक उस समय के लग भग नियत हुआ, जब कि तीमूर ने भारत पर आक्रमण किया था. ज़फ़र ने अपने मालिक की निर्बलता और समय के गड़बड़ से लाभ उठाया,

---

* कन्नौज की लड़ाई में जुझारू होनेवालों की नामावली में उस का नाम "चटो टांक" करके लिखा है.

† इस ने सन् १३२५ ई० से सन् १३५१ ई० तक राज्य-शासन किया.

और वह मुज़फ्फ़र * नाम से गुजरात के राजसिंहासन पर बैठा. वह अपने पोते अहमद के हाथ से मारा गया, जिस ने प्राचीन राजधानी अनहिलवाड़ा को बदल कर अपने बसाये हुए नगर अहमदाबाद को, जो [यूरोप से] पूर्व के देशों के नगरों में से एक बड़ा ही रौनक़दार नगर है, अपनी राजधानी बनाया.

टांक † लोगों के धर्म परिवर्त्तन करने के समय से इन लोगों का नाम राजस्थान की जातियों से मिट गया, और न मेरी खोज से इस नाम के एक भी मनुष्य के वर्त्तमान होने का पता लगेगा.

जिट [जाट]–भारत के छत्तीस राजकुलों की सब प्राचीन सूचियों में जिट ने भी स्थान पाया है; परन्तु न तो कोई इन्हें राजपूत बताता है, और न मैं किसी राजपूत का जिट के साथ विवाह होने का कोई उदाहरण जानता हूं. यह एक ऐसा नाम है, जिस के धारण

---

* विजयी.

† मिराति सिकन्दरी में २३वीं पीढ़ी तक इस धर्म्म परिवर्त्तन करनेवाले के पूर्व पुरुषों के नाम दिये हैं, जिन में पहिला पुरुष सेर्ष था, जो वही [नाम] है, जिस ने सन् ईसवी से सात शताब्दी पूर्व नाग वंश को भारत में दाखिल किया था. इस ग्रन्थ का बनानेवाला टाक व टॉक नाम की खेंचाखेंच तर्क से बतलाता है, जिस का अर्थ जाति के 'बाहिर निकालना' है. उक्त जाति का नाम वह खत्री बताता है, जिस से उस (ग्रन्थकार) की इस प्राचीन वंश के विषय में अनभिज्ञता प्रगट होती है.

करनेवाले भारत भर में फैले हुए हैं, वे लोग विशेष कर खेती बाड़ी का काम करते हैं, इस कारण अब यहां के निवासियों में उन का उच्च पद नहीं रहा.

पंजाब में अब तक वे अपना पुराना नाम जिटही धारण किये हुए हैं. गंगा और यमुना के किनारे वे जाट कहे जाते हैं, जिन में भरतपुर का राजा बड़ा प्रसिद्ध है. सिन्धु नदी के किनारे और सौराष्ट्र में इन्हें जट कहते हैं. राजस्थान में खेती करनेवालों में अधिकांश जिट हैं. सिन्धु उस पार अनगणित जातियां, जो अब इसलाम धर्म्म की अनुयायी हैं, अपनी उत्पत्ति इसी वर्ग के लोगों से बताती हैं.

इस के प्राचीन इतिहास के विषय में अजमरीति पर पहिले ही कहा जा चुका है. अब हम को केवल इतना ही और कहना है, कि जेटी के राज्य ने, जिस की राजधानी जगज़ार्टीज [सेहन] नदी पर थी, अपनी अखण्डता और नाम को साइरस के समय से लेकर १४ वीं शताब्दी तक क़ायम रक्खा, जब कि यह [राज्य] मूर्त्ति-पूजा से इस्लाम धर्म्म में परिवर्त्तित हो गया. हेरोडॉटस कहता है, कि जेटी लोग ईश्वरवादी थे, और आत्मा की अविनाशता के सिद्धान्त को मानते थे; और डिगिगनीज़ ० चीनी ग्रन्थकारों के अनुसार कहता है कि

---

० "तुर्कों पर चीनियों का दबदबा बढ़ता देख यदेग़ान ने भ्रमणकारी जेटीलोगों के मावरुन्नहर (ऑक्सस नदी के पार का देश)

बहुत प्राचीनकाल ही में उन लोगों ने फो वा बुद्ध के धर्म्म को ग्रहण कर लिया था.

जिटों की दन्तकथाओं में उन की जाति का आदि निवासस्थान सिन्धु नदी के पश्चिम तरफ़ के देश माने गये हैं, और उन को यदुवंश से निकला हुआ बतलाया गया है. इस तरह वे यदुवंशियों के इतिहासों को पुष्ट करते हैं, जिन में उन का ज़ाबुलिस्तान से निकलकर आना लिखा है, और [उन्हीं दन्तकथाओं से] हमारी इच्छा इस जाति को, कृष्ण से उत्पन्न हुई न मानकर, यूची, यूटी, वा जिट लोगों का मुख्य दल कहने की विशेष कर होती है. इस जाति के प्रथम वार मध्य एशिया से निकलकर सिन्धु नदी के भीतरी प्रदेशों में आने का हमारे पास कोई लेख नहीं है. वह घटना साइरैस वा उस के पूर्व पुरखाओं की लड़ाइयों के कारण तक्षक लोगों के साथ साथ एक ही समय में हुई होगी.

यह पहिले ही लिखा जा चुका है, कि जिट और तक्षक लोग भारत पर आक्रमण करनेवाली भिन्न भिन्न सीथिक जातियों के उत्पादक होने का समान भाव से दावा रखते हैं, और इस वक्त ग्रन्थकार के पास पांचवीं

पर चढ़ाई की, जो यूची के वंश में थे, और जेहून वा ऑक्सस नदी के किनारे पले थे, जहां से वे लोग सिन्धु के किनारे एवम् गंगा नदी तक फैल गये, और वहां अब तक पाये जाते हैं. इन जेटी लोगों ने बुद्ध का धर्म्म स्वीकार किया था।"—Hist. Gen. des Huns, tom, I P.375.

शताब्दी का एक शिलालेख मौजूद है, जिस में ये दोनों नाम एक ही राजा * के लिये प्रयोग में लाये गये हैं, और इस राजा में सूर्य की उपासना करने का सीथियन गुण भी विद्यमान होना उस लेख में बतलाया गया है. उस में उसी प्रकार यह भी लिखा है कि इस जिट वंशी राजा की माता यदुकुल की थी, जिस से छत्तीस राजकुलों में स्थान होने के विषय का उन का दावा, एवम् उन का यदुवंशी होना पुष्ट होता है.

---

* मेरे शत्रु को प्रणाम ! इस शत्रु का वर्णन मैं कैसे करूंगा ? जिट कटिर्द्दई के वंश का, जिस का पूर्वज महादेव के गले की माला बननेवाला वीर तक्षक था.

यद्यपि यह आलंकारिक उल्लेख सृष्टिकर्त्ता [महादेव] की सर्पमाला के विषय में है, तो भी उस में जिट जाति का तक्षक की सन्तान होना स्पष्टतः बतलाया है. परन्तु अन्य स्थल पर सीथियन जातियों की उत्पादक सर्प जाति के विषय में यथेष्ट कहा गया है, जिस का वर्णन, जान पड़ता है कि, ईश्वरभक्त मिल्टन ने डायाडोरस लिखित सीथी जाति की जननी के वृत्तान्त से लिया है ;

" Woman to the waist, and fair ;
" But ended foul in many a scaly fold ? "

Par Lost, Book II

"कमर तक सुन्दर स्त्री के आकार में ;
"परन्तु अन्तिम भाग मलिन और सर्प की शक्ल का था ? "

पैरेडाइस लॉस्ट, पुस्तक २.

जिट कट्टी दा [Jit Catti da] जिट वा कैथे (Cathay) के जेटी है ('दा' सम्बन्धकारक की विभक्ति होने से) वा नहीं, यह बात हम [पाठकों के] विचार पर छोड़ते हैं.

ईसवी सन् की पांचवीं शताब्दी, जिस से कि यह शिलालेख सम्बन्ध रखता है, जिटों के इतिहास में एक उपयोगी समय है. डिगिग्नीज़ असली ग्रन्थों के प्रमाण से कहता है, कि यूची वा जिटलोग पांचवीं और छठीं शताब्दी में पंजाब में बस गये थे, और वह शिलालेख जिस को अभी उद्धृत किया है, उस राजा के विषय में है जिस की राजधानी इन देशों में सालिन्द्रपुरें कहलाती है, और इस में सन्देह नहीं है कि यह सालिवाहनपुर * ही है, जहां पर टांक लोगों के निकाले जाने पर यदुवंशी भाटियों ने अपना अधिकार जमाया था.

इस से कितने समय पहिले जिट लोगों ने राजस्थान में प्रवेश किया इस का निर्णय अधिक प्राचीन शिलालेखों पर छोड़ना चाहिये. इतना कहना काफ़ी है, कि हम सन् ई० ४४० में उन को राज करते हुए पाते हैं. †

---

* यह स्थान १२वीं शताब्दी में राजधानी की नाईं वर्धमान था, क्योंकि अनाहिलवाड़ा के राजकुमार पाल का एक शिलालेख देखने से ज्ञात होता है, कि यह राजा अपनी विजयपताका "सालिपुरें तक भी" ले गया था. रेनेल [साहिब] के भूगोल में सालकोट नामक एक स्थान दिया हुआ है, और विल्फ़र्ड लिखता है, कि " सग्गल नामक प्रसिद्ध नगर के खंडहर वर्तमान हैं, जो लाहौर से पश्चिम उत्तर कोण की ओर ६० मील पर एक जंगल में है, जिसे पुरु का बसाया हुआ कहते हैं. "

† इस समय (सन् ४४९ ई० में) दो जट भाइयों ने जिन के नाम

जब यादव लोग सालिवाहनपुर से निकाल दिये गये, और उन्हें सतलज [नदी] उतर कर भारत के मरुस्थल में दाहिया और जोहिया राजपूतों के बीच आश्रय लेना पड़ा, तो वहां उन्हों ने अपनी प्रथम राजधानी देरावेंले स्थापित की, और बहुतेरों ने दबाव के कारण मुसल्मानी धर्म्म ग्रहण कर लिया, उसी अवसर पर उन्हों ने जाट * का नाम धारण किया, जिस की

हेंगिस्ट और होर्सा थे, अपनी जाति के एक दल को जटलैण्ड से लाकर केण्ट का राज्य स्थापित किया (प्रश्न—क्या [यह] संस्कृत का कण्ठी [शब्द] है, जिस का अर्थ समुद्री किनारा है, ऐसे ही गॉथिक का कोण्ट शब्द है) वे क़ानून जिन को उन्हों ने चलाया, [और] विशेष कर वे जो पैतृकभूमि विभाग के विषय में थे, अद्यापि वहां पर प्रचलित हैं, जिस के अनुसार वहां पर सारे पुत्र, सिवाय छोटे के जिस को औरों से दुगना भाग दिया जाता है, [पिता के धन में] बराबर भाग पाते हैं. ये कानून साफ सीथियन हैं, और इन को प्राचीन काल के गॉथ लोग जगज़ार्टीज़ [सेहून] के किनारे से लाये थे.

अलॉरिक का जीवन शेष हो गया था, और थियोडोरिक [Theodoric] और जेन्सेरिक [Genseric] (रिक का अर्थ संस्कृत में 'राजा' है) अपनी सेना स्पेन और आफ्रिका में लेजा रहे थे.

* इन अन्य धर्म्म के स्वीकार करनेवालों, यदि वे वास्तव में यदु थे तो, जाट नाम क्यों ग्रहण किया ? इस का कारण यही होना चाहिये, कि या तो यदु स्वयम् सीथियन यूटी वा यूची थे, अथवा उन की शाखाओं ने जिट लोगों के साथ विवाह शादी का सम्बन्ध किया था, अतएव वे बिगड़े हुए यदु हो गये, और दोनों कुलों से मिलकर जो सन्तान उत्पन्न हुए वे मोनों के नाम की जाति से कहलाने लगे.

कम से कम वीस भिन्न भिन्न शाखा यदुकुल के इतिहासों में गिनाई गई हैं.

जिट लोट सिन्धु नदी के पूर्वी किनारे पर और पंजाब में उस समय से पूरे पांच सौ वर्ष पीछे तक, जिस समय का वृत्तान्त हमारे शिलालेखों, और उन के इतिहासों से पाया जाता है, एक वलवान जाति के लोग बने रहे [क्योंकि] हम को [इस जाति का] बड़ा ही मनोरंजक वृत्तान्त भारतवर्ष के विजेता महमूद के इतिहास में लिखा मिलता है, जिस के मार्ग को उन लोगों ने ऐसी रीति से रोका, जिस का उदाहरण महाद्वीप [यूरोप] की लड़ाइयों में नहीं मिला. हिजरी सन् ४१६ (सन् १०२६ ई०) में महमूद ने जिटों के विरुद्ध एक सेना रवाना की थी [क्योंकि] उन्हों ने उसे सौराष्ट्र के पहिले की चढ़ाई से लौटते समय मार्ग में वहुत ही सताया, और उस का अपमान भी किया था. वह वृत्तान्त रोचक होने से हम उस को मुख्य ग्रन्थ से ले कर यहां पर देते हैं :–

" जिट लोग मुल्तान की सीमा के समीपी प्रदेश में उस नदी के किनारे रहते थे जो जौद * के पहाड़ों के पास हो कर वहती है. जब महमूद मुल्तान में

* जदू का डांग वा यदु का पहाड़, जिस को इस वंश [यादव] के संक्षिप्त वर्णन में एक मध्यवर्ती स्थान लिख आये हैं, जहां पर वे लोग महाभारत के पीछे भारत से निकाले जाने पर ठहरे थे.

पहुंचा तो उस ने जिट लोगों के देश को बड़ी बड़ी नदियों से रक्षित पा कर १५०० नौका * तय्यार कीं, जिन में से प्रत्येक में लोहे के छः छः सूल लगाये गये, जो उन [नौकाओं] के आगे के भाग की तरफ़ निकले हुए थे, ताकि शत्रु लोग, जो ऐसी लड़ाइयों में निपुण थे, उन पर चढ़, न आवें. प्रत्येक नौका में उस ने बीस बीस धनुष धारण करनेवालों, एवं कितने एक नफ़्थों [Naphtha] के आग लगानेवाले गोले फेंकनेवालों को जिट लोगों के नौकासमूह को जला देने के निमित्त विठला दिया. बादशाह उन लोगों का नाश कर देना निश्चय ठान मुलतान में ठहर कर परिणाम की अपेक्षा करने लगा. जिट लोगों ने अपनी स्त्रियां, बालबच्चे और माल अस्वाब सिन्धसागर † को भेज दिया, और चार हज़ार वा दूसरों के कथनानुसार आठ हज़ार

* उसी स्थान के निकट, जहां पर कि सिकन्दर ने अपनी नौकाओं का बेड़ा तय्यार किया, जो [बेड़ा] १३ सौ वर्ष पहिले बैबिलन तक पहुंचा था।

† डो [Dow] साहिब के अनुवाद में 'एक द्वीप' लिखा है. सिन्धसागर पंजाब के दोआबों में से एक है. मैंने डो साहिब कृत तारीख़ फ़िरिश्ता के आरंभिक भाग के अनुवाद को मुख्य ग्रन्थ से मिलाया है, और वह जैसा कि लोगों का ख़याल है, उस की अपेक्षा बहुत ही अधिक प्रामाणिक है. उस ने अधिकतर अशुद्धियां अंक, तोल, और माप के सम्बन्ध में की हैं, और यही कारण है कि उस ने उस धन को, जो भारत से बलपूर्वक लिया गया था, इतना अधिक बतलाया है कि जिस पर विश्वास नहीं होता.

सुसज्जित नावें गज़नवियों से लड़ने के लिये जल में छोड़ीं. फिर एक भयानक युद्ध हुआ, परन्तु आगे को निकलेहुए शूलों ने जिटलोगों की कईएक नौकाओं को डुबो दिया, और शेष में आग लगा दी. इस आपत्ति के स्थल से थोड़े ही लोग भाग कर बचे, और जो इस प्रकार बचे उन को कैद होने का महा दुर्भाग्य भोगना पड़ा." *

निस्सन्देह बहुतेरे भाग कर बचे और यह विशेष कर संभव है कि जिट जाति के दल, जिन के पराजय होने पर बीकानेर का राज्य स्थापित हुआ, इसी लड़ाई में के बचे बचाये लोग थे.

इस घटना के थोड़े दिनों के बाद जेटी लोगों का असली राज्य [भी] जाता रहा, और उस समय उस जाति के बहुत से भागे हुए लोगों ने भारत में आकर शरण लिया. सन् १३६० ई० में तोग़लताश तीमूर जेटी जाति का बड़ा ख़ान था, जो [जाति] उस समय तक मूर्त्तिपूजक थी. उसने खुरासान को विजय करके ट्रान्स-ऑक्सियाना पर आक्रमण किया, जिस का राजा भाग गया, परन्तु उस के भतीजे अमीर तीमूर ने उस स्थान को पराधीन होने से बचाया, तोग़लताश से मैत्री की, और वह जेटी जाति के एक लक्ष १००००० योद्धों का सेनापति हो गया. सन १३६९ ई० में जब जेटियों

---

* फ़िरिश्ता, जिल्द पहिली.

का ख़ांन मृत्यु को प्राप्त हुआ, उस समय तीमूर अपनी प्रजा पर इतना अधिकार प्राप्त किये हुए था कि कोरलटाई [Couraltai], अर्थात् सार्वजनिक सभा ने बड़े ख़ान की उपाधि जेटी लोगों से लेकर चग़ताई तीमूर को दे दी. सन् १३७० में उस ने जेटी जाति की एक राजकन्या के साथ विवाह किया, और अपने पैतृक राज्य ट्रान्सऑक्सियाना में कोजेण्ड [Kogend] और समरक़न्द को भी मिला लिया. जेटियों के अपनी स्वतन्त्रता को छोड़ने के पूर्व राजविद्रोह और क़त्ल से मनुष्य जाति का यह प्रथम निवासस्थान प्रायः ऊजड़ हो गया, और वह [तीमूर] सन् १३८८ ई० तक अपने को सुरक्षित न समझ सका जब कि उस ने ६ आक्रमण कर के उन के नगरों को जला दिया, उन के धन को [अपने देश में] ले आया, और उन की जाति का क़रीब क़रीब सत्यानाश कर दिया.

यूरोप के अधिकतर भाग पर आक्रमण करने के बाद, जिस में " उस ने मॉस्को [Moscow] नगर को ले लिया, और असभ्य ऊरूज़ [Ooroos] के सिपाहियों को कत्ल किया ", उस ने भारत पर चढ़ाई की उस समय उस ने अपने पुराने शत्रु " जेटी लोगों से मुक़ाबला किया, जो तोहीम [Toheem] के मैदानों में रहते थे, वहां पर उस ने दो हज़ार मनुष्यों को तलवारों से मार काट कर मरुस्थली तक उन का पीछा

किया, और कग्गर * के निकट और भी अनेकों की हत्या की."

तो भी जिट लोगों ने अपने तईं पंजाब में काइम रक्खा, और आज दिन भारत में महा प्रतापी और स्वतन्त्र राजा लाहौर का जिटवंशी रींझा ही है, जिस का अधिकार उन्हीं प्रदेशों पर है, जहां पांचवीं शताब्दी में यूची लोग बसे थे, और जहां पर गज़नी से निकाले जाने पर यदुवंशियों ने टांक लोगों का नाश होने पर अपना अधिकार जमाया था. जिट जाति के घुड़ सवार में सीथियन रीत भांत का कुछ अंश पाया जाता है, और उन में चक्र का प्रयोग जारी है, जिस का व्यवहार भारत [युद्ध] के प्राचीन काल में यदुवंशी कृष्ण करते थे. [२०४]

हन वा हूण—उन सीथियन जातियों के मध्य, जिन

---

* अबुलग़ाज़ी का पुस्तक, जिल्द २, अध्याय १६. दिल्ली के सुलतान महमूद से लड़ाई करने के बाद तीमूरने, उसी के इतिहास लेखक के लेखानुसार "एक लाख काफ़िर गुलामों को काट डालने के लिये' आज्ञा दी. "वहां मस्जिद में आग लगा दी गई, और काफ़िरों की आत्मा नर्क कुण्ड में भेजी गई. उन के मस्तकों का मिनार खड़ा किया गया, और उन की लाशें हिंसक पशु पक्षियों के भक्षणार्थ फेंक दी गईं. मेरता में काफ़िर गुबरीज़ों [२०३] [Guebris] की जीते जी खाल खिंचवा ली गई." यह कार्य तीमूरलंग की आज्ञा से हुआ, जिस में यूरोप के मनोहर इतिहास लिखनेवाले प्रत्येक बड़े और उत्तम गुण का होना मानते हैं.

को ३६ राजकुलों में स्थान मिला है, हूण भी हैं. हम लोगों को यह ज्ञात नहीं है, कि किस समय इस जाति ने, जो यूरोप में अपने उपद्रवों और वस्तियों के कारण ऐसी प्रसिद्ध है, भारत पर आक्रमण किया. इस में सन्देह नहीं है, कि इन लोगों ने बहुत सी दूसरी जातियों के साथ साथ भारत पर आक्रमण किया था, जो अद्यापि सौराष्ट्र के प्रायद्वीप में पाई जाती हैं, जैसे कट्टी [काठी], वल्ला [वाला], और मकवाणा आदि. तथापि इस जाति का नाम उसी प्रायद्वीप की वंशावलियों में ही पाया जाता है; क्योंकि यद्यपि हम हूणों का नाम भारत के इतिहासों और शिला लेखों में बहुत ही प्राचीन काल में पाते हैं, तो भी ये लोग उत्तरीय भाटों की सूचि में स्थान न पा सके.

इस जाति का सब से पुराना हाल एक शिलालेख ८ में मिलता है, जिस में विहार के एक राजा के पराक्रम का वर्णन है, जिस ने अपनी अन्य विजयों के मध्य "हूण लोगों के गर्व को भी गंजन किया." मेवाड़ के प्राचीन इतिहास के वर्णनान्तर्गत उन राजाओं की सूचि में जिन्हों ने उस समय, जब कि मुसलमानों ने अपने प्रथम [भारत] आक्रमण में चित्तौड़ पर हल्ला किया था, समस्त राजपूतों के इस सर्दार [=मेवाड़ के राजा] का साथ देकर [उस को बचाना] अपना

टि० एशिक रिसर्चेज़ जिल्द १, पृष्ठ १३६.

कर्त्तव्य माना था, हूणों के सर्दार अँगँरसी [का नाम] भी है, जो इस समय अपनी सेना का नायक था. डिगिगनीज़ * साहिब अंगत को हूण वा मुग़लों के एक बड़े दल का नाम बतलाते हैं; और अबुलग़ाज़ी कहता है, कि जो तातार जाति चीन की बड़ी दीवार की रक्षा करती थी उस का नाम अंगची था, उस का एक जुदा राजा था, जिस की बड़ी तन्खा और प्रतिष्ठा थी. जिन देशों में हियांगनौ और औहुओन अर्थात् तुर्क और मुग़ल जाति के लोग बसते थे, जो 'तातार' कहलाते थे, [और] यह नाम तातान देश से पड़ा, जिस का विस्तार इर्टिश नदी के किनारों से अल्ताई पहाड़ों के बराबर बराबर पीत सागर के किनारों तक था; उन देशों का वर्णन हूण जाति के इतिहास लेखक ने विस्तारपूर्वक किया है. इसी हूण जाति के इतिहास लेखक का अनुकरण करके तथा अन्य स्वतंत्र साधनों से रोम के विनाश का इतिहास लिखनेवाले [गिबन] ने उन के यूरोप पर चढ़ आने के वर्णन को बड़ा रोचक बना दिया है. परन्तु जिन लोगों की इच्छा उन सारी बातों के जानने की है, जो इन लोगों के पूर्व समय के इतिहास और रीत भांत से सम्बन्ध रखती हैं, उन्हें उस पाण्डित्य और अन्वेषण के स्मारक को अवश्य देखना चाहिये, जिस का नाम माल्टे

---

* Hist, Gen des Huns tom III. P 238

ब्रन * का भूगोल [Geography of Malte Brun] है.

डिऐन्विल, † कॉस्मॅस नामी यात्री के ग्रन्थ से उद्धृत करके सूचित करता है कि श्वेत हूण लोगों (Leukoi Ounnoi) ‡ का अधिकार भारत के उत्तरी भाग में था; और यह अधिक संभव है, कि इन लोगों का एक दल सौराष्ट्र और मेवाड़ में भी बसा हो.

दन्तकथा हूणों का निवासस्थान चम्बल के पूर्वी किनारे बॅाड़ोली नामक प्राचीन स्थान में बतलाती है, और इस जगह के प्रसिद्ध मन्दिरों में से एक, जिस का नाम सिंगार चौरी है, उस हूण जाति के राजा का विवाह मंडप है, जिस का अधिकार [उक्त नदी के] दूसरे किनारे पर भी होना कहते हैं, जहां पर कि आजकल भैंसरोड़ का कुस्बा स्थित है. १२ वीं शताब्दी में हूणों का ऐसा प्रताप अवश्य रहा होगा कि जिस

---

* Precis de Geographie universelle. माल्टब्रन साहिब हंगेरियन और स्कैंडिनेवियन लोगों के मध्य, भाषा की समानता के कारण सम्बन्ध होने का पता लगाते हैं. "इन पुरातन समयों में जब कि हूण, गॉथ, जट, और एसिस लोग, तथा बहुत से दूसरे लोग ओडिन की प्राचीन वेदियों के गिर्द एकत्रित होते थे." कई एक शब्द जो उन्हों ने हम को बतलाये हैं वे संस्कृत से निकले हुए हैं. जिल्द छठी, पृष्ठ ३७०.

† Eclaircissemens Geographiques sur la Carte de l' Inde, P.43.

‡ यह ऐसा अक्षर विन्यास है जो हूण [Huon] या उन [Oun] के हिन्दुओं के उच्चारण से इन की अपेक्षा अधिक मिलता है.

से उन को वह स्थान प्राप्त हुआ, जो गुजरात के राजाओं के इतिहास में दिया गया है. यह जाति अभी नष्ट नहीं हुई है. भारत के बड़े बुद्धिमान जीवित भाटों में से एक ने ग्रन्थकार को विश्वास दिलाया कि वे अभी तक विद्यमान हैं, और एक दौरे में जिस में वह भाट भी ग्रन्थकार के साथ था, उस ने अपना प्रण पूरा किया, अर्थात् कतिपय हूणों लोगों के निवासस्थानों को माही नदी के मुहाने पर एक गांव में दिखला दिया, यद्यपि वे लोग बिगड़े हुए तथा अन्य जातियों में मिले हुए थे. *

हम यह अनुमान कर सकते हैं कि मध्य एशिया में कुछ उलट फेर हुए जिस से ज़ायद जनसंख्या के इन दलों को यूरोप में जीविका खोजने के लिये जाना पड़ा; भारत ने ऐसी [मनुष्यों की] बाढ़ में भाग न लिया. आश्चर्य की बात केवल यही है, कि वे लोग किस भांति से हिन्दू कहलाने लगे, यद्यपि बहुत ही हलकी जाति के. शूद्र तो हम उन्हें कहही नहीं सकते; क्योंकि यद्यपि कट्टी [काठी] और बल्ला [बाला] न राजपूत समझे वा गिने जा सकते हैं तो भी वे शूद्र के दरजे से घृणा ही करेंगे.

---

* वही भाट कहता है कि बड़ौदा से तीन कोस पर निसोंदी में इन हूणों के तीन चार घर हैं; और खीची जाति का भाट मोगजी कहता है, कि उन की दन्त कथाओं में हूण जाति के बहुत से पराक्रमशाली राजाओं का भारत में होना लिखा है.

कट्टी [काठी] इन लोगों की प्राचीन हालात के विषय में पहिले ही बहुत कुछ कहा जा चुका है, और राजस्थान एवम् सौराष्ट्र दोनों के समस्त वंशावली लिखनेवाले इन को भारत के राजकुलों में स्थान देने के लिये सहमत हैं. यह पश्चिमी प्रायद्वीप की अत्यन्त प्रसिद्ध जातियों में से एक है, और जिस ने सौराष्ट्र के नाम को बदल कर काठियावाड़ कर दिया है.

वहां [काठियावाड़] के निवासियों में से कट्टी जाति ही ने अपनी असलियत को अधिकतर क़ाइम रक्खा है; उस का धर्म्म, उस की रीत भांत, और उस का चिहरा मोहरा सब का सब निश्चित रूप से सीथियन है. सिकन्दर के समय में इस जाति के लोग पंजाब के उस कोण पर अधिकार जमाये हुए थे, जो पांचों नदियों के संगम के निकट है. इन्हीं लोगों से लड़ने के लिये सिकन्दर स्वयम् गया, जिस में उस के प्राण जाते जाते बचे, [२१२] और जहां पर उस ने अपने बदला लेने की यादगार का अपूर्व चिन्ह छोड़ा था. कट्टी लोगों का पता इन स्थलों से लेकर उन के वर्त्तमान निवासस्थान तक लग सकता है. जेसलमेर के इतिहास के आरंभिक भाग में वहां वालों के कट्टी लोगों के साथ के युद्ध का वर्णन किया है, और स्वयम् उन्हीं की दन्त कथाएं *

* भूत पूर्व कप्तान मैक्मर्डो, जिन की मृत्यु से [सर्कारी] सेवा और साहित्य की हानि हुई, कट्टी लोगों के स्वभाव का एक जोरदार

आठवीं शताब्दी के लगभग उन का सिन्धु नदी की वादी के दक्षिण पूर्व भाग से आकर इस प्रायद्वीप में वसना निरूपण करती हैं.

१२ वीं शताब्दी में कट्टी लोग पृथ्वीराज के साथ की लड़ाइयों में प्रसिद्ध थे; क्योंकि इस जाति के कईएक सर्दार उस की तथा उस के शत्रु कन्नौज ※ के राजा की सेना से सम्बन्ध रखते थे. यद्यपि इस समय किसी कदर वे अनहिलवाड़ा के राजा के आधीनस्थ कार्य करते थे, तोभी ऐसा जान पड़ता है कि यह बात किसी दवाव की अपेक्षा अधिकतर उन की स्वेच्छा से ही थी.

कट्टी लोग अभी तक सूर्य्य की पूजा करते हैं, शान्तिप्रिय हुनरों से घृणा करते हैं, और अपने पूर्वकाल के लुटेरेपन के उद्यम की अनिश्चित कमाई की अपेक्षा शान्तिपूर्वक श्रम कर के अपना निर्वाह करने से वहुत ही कम सन्तुष्ट हैं. कट्टी लोग घोड़े पर चढ़े हुए, वर्छा हाथ में लिये, शत्रु एवम् मित्र से अपने ब्लैक मेल [Black mail]

वृत्तान्त लिखते हैं. इस जाति के विषय में उन की राय मेरी राय से सम्पूर्णतः मिलती है. देखो वाम्बे सोसाइटी की कार्य्यवाही, जिल्द १ पृ० १२०.

※ उन का यहां पर विशेष वृत्तान्त देना अनावश्यक है. चन्द के काव्य के कुछ पर्वों का मैंने अनुवाद किया है, और उस को सर्वसाधारण के आगे उपस्थित करने का मेरा विचार है, उस से वे प्रसिद्ध कार्य जो कट्टियों ने स्वयम् किये प्रकाशित होंगे.

अर्थात् उपद्रवों का कर उगाहते रहने के सिवाय और किसी अवस्था में प्रसन्न नहीं रहते थे.

हम इस संक्षिप्त वृत्तान्त को, कप्तान मैकमर्डो लिखित इस जाति के चालचलन विषयक लेख को यहां पर उद्धृत कर के, समाप्त करेंगे. "कट्टी [जाति] किसी किसी बात में राजपूत [जाति] से भिन्न है. वह स्वभाव में अधिक निर्दयी है; परन्तु वीरता के गुण † में वह राजपूत से बहुत बढ़कर है; और कट्टी से अधिक शक्तिसम्पन्न मनुष्य कोई नहीं है. उस का कद साधारण लोगों की अपेक्षा बहुत बड़ा है, प्रायः ६ फीट से अधिक [ऊंचा] होता है. कभी कभी वह चमकीले बाल और नीलवर्ण नेत्र वाला भी देखने में आता है. उस का शरीर कसरती और मज़बूत हड्डी वाला होता है, और विशेष कर उस की जीवन प्रणाली के ठीक अनुकूल होता है. उस का मुख प्रकाशमान होता है, परंतु बुरी तरह का, क्योंकि उस से कट्टरपन झलकता है, और प्रायः एक भी लक्षण मृदुता का उस में नहीं होता[313]." *

---

* कप्तान मैकमर्डो (Macmurdo) काठियावाड़ के राजपूतों का उल्लेख करता है, न कि राजस्थान के राजपूतों का.

† उन के चिहरे मोहरे और नीले नेत्र के विषय में, जिन से वे गॉथिक वा जेटी वंश के प्रतीत होते हैं, ग्रन्थकार को विशेष कर कहने का अवसर पर्सनल नैरेटिव [Personal narrative=निज वृत्तान्त] में मिलेगा.

बल्ला [वाला]–समस्त, प्राचीन तथा आधुनिक, वंशावली लिखनेवाले बल्ला जाति का नाम राजकुलों में शामिल करते हैं. भाट लोग अपने विरुद वा आशिस देने में इन को "ठट्ठा मुलतान का राव" कहते हैं, जिस से उन का सिन्धु नदी के किनारे पर असली निवासस्थान प्रगट होता है. परन्तु वे सूर्य्यवंशी होने का दावा करते हैं, और कहते हैं कि उन का बड़ा पुरखा बल्ला वा बैर्या[२१४] रामचन्द्र के ज्येष्ठ पुत्र लव का सन्तान था; और सौराष्ट्र में उन की पहिली बस्ती प्राचीन स्थान टांक में थी, जो अधिक प्राचीन काल में मोंगी पट्टन कहलाता था, और उस के निकटवर्त्ती देशों को जीतकर उन्होंने उस देश का नाम बल्लक्षेत्र (उन की राजधानी वल्लभीपुर) रक्खा, और बल्लोराय की उपाधि धारण की. इस बात में वे मेवाड़ के गेहलोत [गुहिलोत] वंश से समानता रखने का दावा करते हैं, और यह बात असम्भव नहीं है कि वे [बल्ला] इस कुल की एक शाखा हों, जिस का अधिकार सौराष्ट्र देश में दीर्घ काल पर्यन्त रहा था. गेहलोतों के महादेव की पूजा ग्रहण करने के पूर्व, जिस का समय उन के इतिहास से प्रगट होता है, उन के उपासना का मुख्य देवता सूर्य्य था, जिस से उन की सीथियन लोगों के साथ वह समानता[२१५] पाई जाती है, जिस का दावा बल्ला लोग हर सूरत से रखते हैं.

इस के विपरीत सौराष्ट्र प्रायद्वीप में बल्ला लोग अपने को इन्दु वंश से निकला हुआ बतलाते हैं, और कहते हैं कि वे बलिके[31] पुत्र हैं, जो सिन्धु नदी के किनारे आरोर के प्राचीन राजा थे. इन दावों का निर्णय करना अनुचित साहस होगा. परन्तु मैं यह अनुमान करने का साहस करता हूं कि वे आरोर के बसाने वाले सेहेल [शल] के सन्तान होंगे, जो महाभारत के राजाओं में से एक था.

कट्टी, बल्ला लोगों से निकलने[32] का दावा करते हैं जो उन का असली निवासस्थान उत्तर में होने का और भी एक प्रमाण है, और जिस से भाटों की तरफ़ की उपाधि "मुलतान और ठट्ठा के राजा" पर उन का सत्व पुष्ट होता है. तेरहवीं शताब्दी में बल्ला लोग मेवाड़ पर आक्रमण करने के लिये यथेष्ट बलवान थे. और चोटीला के बल्ला सर्दार को मारना प्रसिद्ध राणा हम्मीर का पहिला साहस कर्म था. टांक का वर्त्तमान राजा बल्ला है, और इस जाति की प्रतिष्ठा अभी तक उस प्रायः द्वीप में बनी हुई है[33].

देशों से निकली हुई बतला सकते हैं. उस जाति के लोग हिन्दुस्तान वा राजस्थान में भी बहुत कम प्रसिद्ध हैं, यद्यपि राजस्थान में वे लोग सब तरह से सौराष्ट्र के प्राचीन राजा अर्थात् मेवाड़ के वर्त्तमान राजकुल के ज़रीए से ही प्रवेश हुए हैं, जिस [कुल] की अनुमति से सारे दोष छिप जाते हैं. झाला सर्दार के स्वामी भक्ति के एक दीप्तिमान कार्य के कारण [जो उस ने उस समय किया] जब कि राणा प्रताप अकबर के सम्पूर्ण [सैनिक] बल के बोझ से दबाया गया था, इस राजा [प्रताप] की ओर से उस को कृतज्ञता के सिवाय सब से बढ़कर आदर सन्मान प्राप्त हुआ, जिस का देना उस [राजा] के अधिकार में था, अर्थात् [उस ने] अपनी कन्या उस को व्याह दी, और उसे अपनी दाहिनी ओर बैठक दी. उस सर्दार को यह प्रतिष्ठा उस के कार्य से प्राप्त हुई थी, ३६ राजकुलों में उस का ऊंचा दरजा समझे जाने के कारण नहीं; इस बात का स्पष्ट प्रमाण हम लोगों को पिछले समय में प्राप्त हुआ, जब कि वर्त्तमान राना [भीम सिंह] का अपने वंश की एक दूरवर्त्ती शाखा की कन्या को कोटा के झाला शासक [=प्रधान] के साथ व्याहने की अनुमति * देना बड़ी भारी कृपा का चिन्ह समझा गया था.

---

* उस का पुत्र माधव सिंह, जो वर्त्तमान प्रधान है, प्रसिद्ध ज़ालिम [सिंह] और एक राणावत सर्दार की पुत्री का सन्तान है, जिस से

इस जाति से सौराष्ट्र के सब से बड़े भागों में से एक का नाम झालावाड़ हो गया है, जिस में कई एक बड़े बड़े नगर हैं. उन में वांकानेर, हलवद, और ध्रांगदरा मुख्य हैं.

झाला वहां पर कब बसे और उन का प्राचीन इतिहास क्या है ? इस विषय में दन्तकथा से कुछ हाल नहीं मिलता. परन्तु मुसलमानों के प्रथम आक्रमणों के समय राणा को इस [जाति] की ओर से [सैनिक] सहायता मिली थी, और पृथ्वीराज के वीरतामय इतिहास में हम को वार वार झाला जाति के सर्दारों का वर्णन मिलता है, जिन्हों ने उस की एवम् उस के शत्रु की ताबेदारी में नामवरी प्राप्त की थी, और चन्द भाट लिखित इन [सर्दारों] में से एक का नाम मैंने पवित्र गिरनार पर के ग्रेनाइट पत्थर के चटानपर खुदाहुआ देखा है, जिस [गिरनार] के निकट वे अति प्राचीन

उस की (माधव सिंह की) सन्तति का विवाह अपने [जाति सम्बन्धी] दरजे के क्रम से बहुत ऊंचे कुल में करने का अधिकार प्राप्त हुआ है. राजपूत को कुल की ऊंचाई का विचार समस्त संसारिक विचारों से इतना अधिक रहता है, कि यद्यपि ज़ालिम सिंह सब से अधिक वैभव सम्पन्न और उत्तम प्रबन्ध युक्त राजस्थान की रियासत के प्रबन्ध को हाथ में लिये हुए था, तो भी उस ने कछवाहा जाति के एक छोटे जागीरदार की पुत्री को अपनी पौत्र वधु प्राप्त करने से अपने कुल का गौरव समझा.

क़ाल में निवास करते थे. हम उन के वृत्तान्त को यहीं पर छोड़ते हैं.

झाला[२२३] जाति की अनेक शाखा हैं, जिन में से मकवाणा मुख्य है.

जेठवा, जेटवा, वा कमरी—यह एक प्राचीन जाति है, और सारे इतिहास लेखकों ने इसे राजपूत लिखा है; यद्यपि झालों की नाईं ये लोग भी सौराष्ट्र के बाहिर कम प्रसिद्ध हैं, तथापि उस के एक विभाग का नाम इस जाति के नाम पर जेठवाड़ पड़ा है. इस जाति के अधिकार के वर्त्तमान स्थान इस प्रायद्वीप [सौराष्ट्र] के पश्चिमी किनारे पर हैं. इस जाति के राजा का निवासस्थान, जो राणा कहलाता है, पोरबन्दर है.

प्राचीन काल में उन की राजधानी गूमली था, जिस के खंडहर उन के बड़े प्रताप का प्रमाण देते हैं, और वहां की शिल्पसम्बन्धी कारीगरी में यूरोप की सेक्सन नाम की [शिल्प] प्रणाली की अपूर्व समानता पाई जाती है. जेठवों के भाट १३० गद्दीनशीन राजाओं की नामावली बतलाते हैं, और आठवीं शताब्दी में अपने राजा का विवाह दिल्ली को पुनः बसानेवाले तँवर राजा के यहां होना उन्हों ने लिखा है. इस समय में जेठवा वंश का नाम कमेर[२२४] था, और कहते हैं कि जिस राजा को १२वीं शताब्दी में उत्तर की तरफ़ से आक्रमण करनेवालों ने गूमली से निकाल दिया उस का नाम

सेहल कमर था. इस परिवर्त्तन के साथ ही कमर नाम का लोप हो कर जेठवा नाम हो गया, और इसी से उत्साहित हो कर ग्रन्थकार ने उन को कमरी लिखा है, और वे लोग इस प्रायद्वीप के अन्य निवासियों की तरह सम्पूर्ण रूप से सीथियन लोगों के सन्तान जान पड़ते हैं, और भारत की प्राचीन जातियों के साथ अपना सम्बन्ध जतलाने के लिये कोई दावा नहीं करते हैं, इस लिये वे उत्तर एशिया की प्रसिद्ध जाति किमेरी [Cimmerii], एवम् यूरोप की किम्ब्री [Cimbri] जाति की एक शाखा में होंगे.

उन के आख्यान जैसे विचित्र हैं वैसे ही कल्पित हैं. वे अपने को वानरदेव हनुमान की सन्तान बतलाते हैं, और इस बात को अपने राजाओं की रीढ़ [पीठ की हड्डी] लम्बी होना बतला कर पुष्ट करते हैं, जिन [राजाओं] की उपाधि पुंछड़िया वा लम्बी पूंछ वाले सौराष्ट्र के राणा है. इस जाति की रीत भांत, और दन्त कथाओं का अधिक विस्तारपूर्वक वर्णन ग्रन्थकार की उन लोगों के मध्य की यात्रा के वर्णन में किया जायेगा.

गोहिल – यह एक नामवर वंश था. ये लोग सूर्यवंशी होने का दावा किंचित ऊपरी दिखाव के साथ करते हैं. गोहिलों का प्रथम निवासस्थान मारवाड़ में लूनी नदी के मोड़ के निकट जूना खेड़गढ़ था. हम

को यह ज्ञात नहीं है कि वे लोग यहां पर कितने समय से अधिकार रखते थे. उन्हों ने यह स्थान खेरवा नामक आदि निवासी भील सर्दार से लिया था, और वीस पीढ़ी तक उस को अपने अधिकार में रखने के उपरान्त १२ वीं शताब्दी के अन्त में राठौड़ों ने उन को वहां से निकाल दिया. वहां से वे सौराष्ट्र की तरफ़ जा कर पीरमगढ़ में ठहरे. जब वह भी नष्ट हो गया तो एक शाखा बगवा में जाबसी, और उस के राजा ने नन्दनगर[२२६] वा नान्दोद [के राजा], की कन्या से विवाह कर अपने ससुर का राज्य बलपूर्वक छीन लिया, वा प्राप्त किया ; और सोमपाल से ले कर नरसिंह तक, जो नान्दोद का वर्त्तमान राजा है २७ पीढ़ी गिनी जाती है. दूसरी शाखा सीहोर में ठहरी और वहीं से भावनगर और गोघा का नगर बसाया. यह नगर [भावनगर] माही की खाड़ी पर गोहिल लोगों का निवासस्थान है, जिन से सौराष्ट्र के प्रायद्वीप का पूर्वी भाग गोहिलवाड़ा कहलाता है. –

यहां का वर्त्तमान राजा वाणिज्य करता है, और उस के जहाज़ हैं जो सोफालों[२२७] (Sofala) के सुवर्णीय किनारे (Gold coast) के साथ व्यापार करते हैं.[२२८]

सर्वेया वा सरिअस्प–इस वंश के विषय में दन्तकथाओं द्वारा केवल इतना पता लगता है, कि वह किसी समय में प्रसिद्ध था, क्योंकि यद्यपि भाट की नामा-

वलियों में उस को "क्षत्रिय जाति का सार" ⊗ कर के लिखा है, तो भी उस की वर्त्तमान अवन्नति के विषय में केवल थोड़ी सी कहानियां हम को मिली हैं. उस का नाम एवम् भाट की दी हुई यह उपाधि ऐसा विश्वास उत्पन्न कराती है, कि वह अश्व[२२९] लोगों ही की एक शाखा है, जिस के नाम में 'सार' उपसर्ग सत वा आयता का द्योतक है. परन्तु एक नाम (मात्र) पर ही कल्पना करना व्यर्थ है.[२३०]

सिलार वा सुलार—पहिले नाम का नाईं हम को यहां भी केवल एक नाम की छाया मात्र मिली है; यद्यपि यह नाम ऐसा है जिस से सम्पूर्ण रूप से सम्भव है कि[२३१] लारिक (Larike) नाम निकला है, जिस नाम से कि सौराष्ट्र का प्रायद्वीप टॉलेमी [Ptolemy] और प्राचीन यूरोप के भूगोलवेत्ताओं में प्रसिद्ध था. लौरि[२३२] जाति एक समय सौराष्ट्र में प्रसिद्ध थी, और अनहिलवाड़ा के इतिहासों में यह लिखा है कि, सिद्धराज जयसिंह ने उन को अपने राज्य भर में से निर्मूल कर दिया था. अतएव सलार वा सिलार स्पष्ट रूप से लार[१] ही होंगे, निस्सन्देह कुमारपाल चरित्र के कर्त्ता ने इसे राजतिलक अर्थात् राजकुमार लिखा है, परन्तु यह नाम अब

⊗ "सर्वेषा क्षत्रियवनसार".

१ सु, जैसा कि पहिले लिखा चुके हैं 'उत्तम' अर्थवाची एक स्पष्ट उपसर्ग है.

केवल उन वणिक्[२३३] जातियों में विद्यमान है, जो बौद्ध धर्म को मानती हैं, और जिन की ८४ जातियों में से एक यह [लार] दर्ज है. इन चौरासी जातियों में से अधिकांश राजपूतों से निकली हैं.[२३४]

डाबी—इस जाति के विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता, सिवाय इस के कि वह एक समय सौराष्ट्र में प्रसिद्ध थी. कुछ लोग उस को यदुवंश की एक शाखा कहते हैं, यद्यपि समस्त वंशावली लेखक इसे एक जुदीही प्रसिद्ध जाति मानते हैं. अब इस जाति का न तो राज्य है, और न लोग हैं.[२३५]

गौड़—गौड़ जाति की किसी समय राजस्थान में प्रतिष्ठा थी, यद्यपि वहां पर वह [जाति] कभी बहुत नहीं बढ़ी. बंगाल के प्राचीन राजा[२३६] इसी जाति के थे, और उन्हीं के नाम से उन की राजधानी लखनौती का नाम पड़ा.

हमारे पास यह विश्वास करने के लिये अनेक कारण हैं, कि वे उस भूमि के अधिकारी थे, जिस को पीछे से चौहानों ने ले लिया ; क्योंकि उन को सारे पुराने इतिहासों में 'अजमेर के गौड़' लिखा है. पृथ्वीराज की लड़ाइयों के सम्बन्ध में वार वार उन के बड़े बड़े प्रसिद्ध सर्दारों का वर्णन आया है, जिन में से एक ने, भारत के बीच में एक छोटा सा राज्य स्थापित किया, जो मुग़लों के सात सौ वर्ष के शासनकाल में बना रहा,

और उस के उपरान्त अन्त में अंग्रेज़ों के मरहटों पर अनेक वार विजय प्राप्त करने से वह राज्य किसी तरह विगड़ गया, अर्थात् सेंधिया ने सन् १८०६ ई० में गौड़-वंश का * अधिकार नष्ट कर के उस की राजधानी शोपुर पर अपना अधिकार कर लिया. एक छोटा सा प्रदेश, जिस की वार्षिक आय अनुमान ५०००० रुपया है, इस लुटेरी सर्कार के अत्यन्त लोभी अधिपति ने इन गौड़ जाति के लोगों के लिये उन के बारह लाख

---

* सन् १८०७ ई० में ग्रन्थकार इन प्रदेशों का अन्वेषण करने के लिये, जो उस समय अज्ञात थे, घूमता हुआ इस देश में हो कर निकला; और यद्यपि वह केवल एक नौजवान छोटा ओहदेदार था, तो भी उस का स्वागत और आतिथ्य बड़ौदा तथा शोपुर दोनों स्थानों में सभ्यता के साथ किया गया. सन् १८०९ ई० में उस ने अत्यन्त भिन्न अवस्था में उस देश में प्रवेश किया, अर्थात् उस अंग्रेज़ी एल्ची के सहचर वर्ग में, जो सेंधिया के दर्बार में रहता था, और उस [ग्रन्थकार] को शोपुर के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही और उस के पतन को देख कर महान् शोक प्राप्त हुआ, क्योंकि वह अपने मित्रों की सहायता करने को समर्थ न था.

उस गौड़ राजा ने वीरता के गुणों को छोड़ दिया था. वह विष्णु की उपासना में अत्यन्त अनुरक्त हो गया, उस ने मांस खाना छोड़ दिया, निरंतर उस देवता की मूर्ति के आगे नृत्य करता था और कृष्ण एवम् उन की प्यारी राधा के गोप्य भजनों में भाट के वीर रसात्मक गीतों की अपेक्षा बहुत अधिक निपुण था. उस का नाम राधिकादास था, और जहां तक उस के शरीर से सम्बन्ध है, हमलोगों को इस बात का रंज करना छोड़ देना चाहिये कि वह अपने वंश का अन्तिम पुरुष था.

रुपये साल की आमदनी वाले इलाक़े में से छोड़ा है. [२३८]गौड़ जाति की पांच शाखा हैं, जिन के नाम ये हैं :- अन्तहिर, सिलूहाला, तूर, दुसेना, और बोडाना.

डोड वा डोडा—इस वंश के विषय में हम को बहुत ही कम कहना है. समस्त वंशावलियों में स्थान मिलने पर भी उन का गत इतिहास विषयक वृत्तान्त समय के प्रभाव से नष्ट हो गया है. उन पर विजय प्राप्त करना पृथ्वीराज ने इस योग्य समझा कि उस का शिलालेख में उल्लेख कियौ जावे. ⊛

गेहरवाल—गेहरवाल राजपूत को राजस्थान में उस के राजपूत भाई कठिनता से जानते हैं; क्योंकि वे लोग उस के अशुद्ध रक्त को अपने में मिलाना स्वीकार नहीं करेंगे, यद्यपि वीर योद्धा होने के कारण वह उन का साथी होने के योग्य है. गेहरवाल लोगों का असली देश काशी का प्राचीन राज्य है. † उन का बड़ा पुरखा खोर[२४१]तेंजदेव था, जिस की सातवीं पीढ़ी में जेसैं[२४२]न्द ने विन्ध्यवासिनी देवी के स्थान पर कोई बड़ा यज्ञ करने के कारण अपनी सन्तति को बुंदेला की उपाधि दी. बुन्देलों[२४३] ने अब गेहरवाल का नाम मिटा दिया है,

---

⊛ देखो रॉयल एशियाटिक सोसाइटी की कार्यवाही जिल्द १ पृ० ११३.

† बनारस.

और [बुन्देला] उस महान् प्रदेश का नाम हो गया जिस में उस की अनेक शाखा बुंदेल खण्ड में चन्देल के विनिष्ट स्थान पर रहती हैं, जिन के मुख्य नगर कालिंजर, मोहिनी, और महोवा को उन्हों ने अपने अधिकार में ले लिया.

चन्देल लोग, जिन की गणना कई एक वंशावली लेखकों ने ३६ राजकुलों में की है, १२ वीं शताब्दी में पराक्रमशाली थे; उन के अधिकार में वह सारा देश था, जो यमुना और नर्बदा के बीच में है, और जिस पर अब बुंदेला और बघेला जाति का दखल है. पृथ्वीराज के साथ उन लोगों की लड़ाइयों से, जो उसके वीर कार्यों में से सब से अधिक मनोरंजक है, परिणाम यह हुआ कि चन्देला लोगों को नीचा देखना पड़ा, और उन पर गेहरवाल लोगों के विजय प्राप्त करने का मार्ग सुगम हो गया. बुंदेला मानवीर का आधिपत्य काल लगभग सन् १२०० ई० था. उस से १३ वीं पीढ़ी में मधुकर शाह ने बेत्वा नदी के किनारे ओर्छा नगर बसाया, जिस के पुत्र बरसिंह देव ने बड़ा अधिकार प्राप्त किया. ओर्छा अनेक बुंदेला राज्यों में मुख्य हो गया; परन्तु उस के बसानेवाले की चिरस्थाई अपकीर्ति बुद्धिमान अबुल्फज्ल * के मारने से हुई, जो

* अकबर के पुत्र शाहज़ादे सलीम की उत्तेजना से, जो पीछे जा-

महात्मा अकबर का मित्र एवम् इतिहास लिखनेवाला, और हिन्दू जाति का प्रशंसक एवम् पक्षपाती था.

अकबर के समय से लेकर [मुगलों के] राज्य के अन्त तक बुंदेलों ने तमाम बड़ी बड़ी लड़ाइयों में नामवरी के साथ काम दिया था; और न राजस्थान के बहादुर राजाओं में से किसी ने ओर्छा और दतिया के राजाओं की अपेक्षा अधिकतर वीरता और स्वामी भक्ति के साथ सेवा की. ओर्छा का [राजा] भगवान शाहजहां की सेना के हरावल का सर्दार था. उस का पुत्र शुभकरण दक्षिण में औरङ्गज़ेब का अत्यन्त प्रसिद्ध सेनापति था, और दलपत जाजओ के मैदान में राज्य पाने के लिये जो युद्ध हुआ उस में मारा गया. उस की सन्तान बलहीन नहीं हुये हैं, और न पश्चिमी देश के वीरतामय इतिहासों में कोई बात वर्त्तमान राजा के पिता के गौरव सम्पन्न और वीर कार्य की अपेक्षा अधिक उत्तम मिलती है. *

कर सम्राट जहांगीर हुआ, मारा गया. इस घटना का वर्णन स्वयम् उक्त सम्राट की तुज़क [तुज़क-जहांगीरी] में देखो.

* माधोजी सेंधिया की मृत्यु के उपरान्त उस के कुटुम्ब की स्त्रियों ने उस के उत्तराधिकारी (दौलतराव) के भय से दतिया के राजा की शरण में आश्रय लिया. [दौलतराव की तरफ़ से] सेना भेजकर उन को वापस सौंप देने के लिये कहलाया गया, और उस के अस्वीकार का परिणाम यह हुआ, कि युद्ध की सूचना दी गई. इस वीर पुरुष ने [अपने ऊपर] हमला होने की वाट तक न देखी, किन्तु

इस समय बुंदेला वंश के लोग अनगणित हैं, और गेहरवाल नाम तो उन के अस्ली निवासस्थानों में रह गया है.

बड़गूजर—यह वंश सूर्यवंशी है, और गुहिलोतों को छोड़कर केवल यही एक वंश ऐसा है, जो अपने को रामचन्द्र के बड़े पुत्र लव से निकला बतलाता है. बड़-गूजर लोगों के बड़े बड़े इलाके ढूंढाड़ * में थे, और मा-चेड़ी के राज्य में राजोर + का पहाड़ी क़िला उन की राजधानी थी. राजगढ़ और अलवा भी उन के इलाके थे. बड़गूजर लोगों को कछवाहों ने इन निवासस्थानों

बर्छे लिये हुए २०० सवारों की स्वामी भक्त जमाअत साथ लेकर आक्रमण करने वालों का संहार करना प्रारंभ कर दिया, जिस में न तो प्राण दान दिया, न मांगा, और इस प्रकार वह शरणागत की रक्षा और मान के नियमों का पालन करता हुआ युद्ध में गिरा. उस समय भी जब कि वह भयानक रूप से घायल होगया था उस ने सहायता स्वीकार न की, और लड़ाई के मैदान को छोड़ना अस्वीकार किया, किन्तु सुलह की सारी बातों से घृणा करके अपने मृत्यु की बाट जोहता रहा. ग्रन्थकार उस स्थल पर ठहरा है, जहां पर कि यह वीर कर्म हुआ था; और उस के पुत्र वर्त्तमान राजा से [ग्रन्थकार को] इस कुल की ख्यात प्राप्त हुई थी.

* आम्बेर वा जयपुर, एवम् माचेड़ी भी ढूंढाड़ में शामिल थे, जो [ढूंढाड़] प्राचीन भौगोलिक नाम है.

+ राजौर के खंडहर राजगढ़ से लगभग १५ मील पश्चिम में हैं. ग्रन्थकर्त्ता ने एक मनुष्य को वहां भेजा था जिस ने नीलकण्ठ महादेव के मंदिर में शिलालेखों के होने की सूचना दी.

से निकाल दिया. इस वंश के एक दल ने गंगा किनारे जाकर शरण ली, और वहीं पर नया निवासस्थान अनूप शहर बसाया[२४५].

सेंगर–इस वंश के विषय में थोड़ा ही वृत्तान्त ज्ञात है, और न ऐसा जान पड़ता है, कि इस ने कभी बड़ी नामवरी प्राप्त की हो. सेंगर[२४६] लोगों का एक ही राज्य जगमोहनपुर जमुना के किनारे पर है.

सीकरवाल–ऐसा जान पड़ता है कि यह वंश भी उपरोक्त वंश की नाईं राजस्थान के राजाओं के मध्य कभी बड़ा नामवर न हुआ; और न इस जाति का एक भी स्वतंत्र राजा अब अवशेष है, यद्यपि एक छोटा सा इलाक़ा चम्बल के दाहिने किनारे पर यदुवाटी से मिला हुआ उन के नाम से सीकड़वाड़ कहलाता है, और यह भी अब जदुवाटी की नाईं सेंधिया के राज्यान्तर्गत ग्वालियर के इलाके में मिल गया है.

उन का यह नाम सीकरी नगर (फ़तहपुर) से पड़ा है, जो पूर्व काल में एक स्वतंत्र राज्य था.

बैस[२४७]–बैस लोगों को छत्तीस राजकुलों के बीच में स्थान मिला है, यद्यपि ग्रन्थकार इस वंश को सूर्य्यवंश की केवल एक शाखा मानता है; क्योंकि इस जाति का नाम न तो चन्द की और न कुमारपाल चरित्र की सूचि में मिलता है. इस वंश में इस समय असंख्य मनुष्य हैं, जिन के नाम से एक विस्तृत प्रदेश बैस-

वाड़ा कहलाता है, जो दो आब अर्थात् गंगा यमुना के बीच के देश में है.

दाहिया-यह एक प्राचीन जाति है, जिस का निवासस्थान सिन्धु नदी के किनारे सतलज के संगम के निकट था; और यद्यपि वे छत्तीस राजकुलों में स्थान पाये हुए हैं तो भी उन की जाति के एक भी मनुष्य का इस समय कहीं पर होना हम को ज्ञात नहीं है. जैसलमेर के भाटियों के इतिहास में उन का उल्लेख है, और उन के नाम तथा निवासस्थान से हम अनुमान करते हैं कि कदाचित् वे सिकन्दर के समय के दाँही (Dahee) लोग हों.

जोहियाँ-ये लोग भी उन्हीं स्थानों में रहते थे, जहां दाहिया निवास करते थे, और सदा उन्हीं के साथ उन का नाम मिलता है. लेकिन वे लोग गारह नदी के दूसरी तरफ़ भारत की उत्तरीय मरुस्थली में फैल गये और प्राचीन इतिहासों में उन को "जंगल देश के स्वामी" की पदवी प्राप्त हुई है, जिस देश के अन्तर्गत हरियाणा, भटनेर, और नागोर थे. इस जाति के सम्बन्ध में, जो दाहिया की नांई अब नष्ट हो गई है, ग्रन्थकर्त्ता के पास एक ग्रन्थ है.

मोहिल-वंशावली लिखनेवालों ने जिन सत्वों के लिहाज से जो स्थान इस वंश को दिया है उन (सत्वों) के विषय में निर्णय करने का कोई उपाय हमारे पास

नहीं है. इस जाति के गत इतिहास के विषय में जो कुछ हम जान सकते हैं वह यह है कि बीकानेर के वर्त्तमान राज्य के स्थापित होने के समय तक वे लोग एक बड़े प्रदेश में बसे हुए थे, और उक्त राज्य की नीव डालनेवाले राठौड़ों ने मोहिलों का यदि सर्वनाश नहीं किया तोभी उन्हें [वहां से] निकाल [अवश्य] दिया. मालैण, मालाणी और मल्लिया जातियां भी अब नष्ट हो गईं, उन की नांई मोहिल[२५१] जाति भी सिकन्दर की शत्रु प्राचीन मल्ली [Malli] जाति की सन्तान होने की इज्जत का दावा कर सकती है, जिस का निवासस्थान मुलतान था. (प्रश्न. मोहिल-थान ?)

निकुंम्प–इस वंश के विषय में, जिस की प्रसिद्धि सारी वंशावलियों में दी हुई है, हम इतनाही मालूम कर सकते हैं, कि वे गुहिलोतों से पहिले माण्डलगढ़ ज़िले के स्वामी थे.

राजपाली–इस वंश के विषय में किसी बात का मालूम करना कठिन है, जिस का उल्लेख समस्त वंशावली लिखनेवालों ने राजपालिक, वा केवल पालके नाम से किया है; विशेषकर सौराष्ट्रवालों ने, जिस देश में वे लोग, सम्पूर्ण रूप से संभव है कि, रहते थे. इस से इस वंश की उत्पत्ति सीथियन लोगों से ही जान पड़ती है; इस बात की पुष्टता उन के नाम की उत्पत्ति से भी होती है, जिस का अर्थ राजकीय गैंडरिया[२५२] है.

यह जाति संभवतः प्राचीन पालि* जाति की एक शाखा थी.

दाहिरिया—केवल कुमार पाल चरित्र के आधार पर ही हम इस जाति की छत्तीस राजकुलों में गणना करते हैं. हम उसके इतिहास के विषय में कुछ नहीं जानते हैं. उन राजाओं के मध्य जो चित्तौड़ के रक्षार्थ उस समय आये जब कि पहिले पहिल इस्लामी सेना ने उस पर आक्रमण किया, "देविल का राजा दाहिर[२५४] देशपति+" भी था. गुहिलोतों की ख्याति की नक़ल करनेवाले के अज्ञान से देविल के स्थान में देहली लिखा गया है ; परन्तु हम केवल तंवर वंश के सारे [राजाओं के] नामों को ही नहीं किन्तु यह भी जानते हैं कि इस समय देहली विद्यमान ही नहीं थी. चित्तौड़ की ख्यातों में इस राजा का अणुमात्र उल्लेख होने पर भी वह बहु-

था, और उस के साथ बड़ी ही निर्दयता का व्यवहार किया था. दाहिर[२५५] इस राजा का अथवा उस की जाति का नाम था, यह बात अनुमान पर छोड़ी जाती है.

दाहिमा—दाहिमा वंश ने अपने बड़े नाम की बर्बादी मात्र बाकी छोड़ी है. सात शताब्दियों के बीतने पर एक ऐसी जाति का स्मरण लोप हो गया है, जिस ने एक समय में [चन्द] भाट को उस की कविता के लिये बड़ा ही अभिमान पूरित विषय दिया था. दाहिमा, बयाने का स्वामी, और चौहान सम्राट पृथ्वीराज के बड़े ही प्रबल सामन्तों में से एक था. इस घराने के तीन भाई इस सम्राट के आधीन सब से बड़े उहदों पर थे, और वह समय जब कि बड़ा भाई कैमास पृथ्वीराज का मंत्री था, चौहानों के इतिहास में परम उज्वल था; परतु वह किसी अन्ध ईर्षा[२५६] के कारण मारा गया. दूसरा भाई पुण्डीर लाहौर में सीमा प्रांत का सैनिक अधिकारी था. तीसरा चावण्डराय उस अन्तिम युद्ध में प्रधान सेनानायक था, जिस में पृथ्वीराज अपने सारे वीरों के साथ कग्गर के किनारे पर मारा गया. शहाबुद्दीन के इतिहासलेखकों ने भी वीर दाहिमा चावंडराय के नाम को क़ाइम रक्खा है, जिस को उन्हों ने खांडेरायँ लिखा है, और जिस की वीरता से, उन्हीं के कथनानुसार, स्वयम् शहाबुद्दीन क़रीब क़रीब मारे जाने की दशा को पहुंच गया था. उस

यह जाति संभवतः प्राचीन पालि® जाति की एक शाखा थी.

दाहिरिया—केवल कुमार पाल चरित्र के आधार पर ही हम इस जाति की छत्तीस राजकुलों में गणना करते हैं. हम उस के इतिहास के विषय में कुछ नहीं जानते हैं. उन राजाओं के मध्य जो चित्तौड़ के रक्षार्थ उस समय आये जब कि पहिले पहिल इस्लामी सेना ने उस पर आक्रमण किया, "देविल का राजा दाहिर देशपति+" भी था. गुहिलोतों की ख्याति की नकल करनेवाले के अज्ञान से देविल के स्थान में देहली लिखा गया है; परन्तु हम केवल तंवर वंश के सारे [राजाओं के] नामों को ही नहीं किन्तु यह भी जानते हैं कि इस समय देहली विद्यमान ही नहीं थी. चित्तौड़ की ख्यातों में इस राजा का अणुमात्र उल्लेख होने पर भी वह बहु-

था, और उस के साथ बड़ी ही निर्दयता का व्यवहार किया था. दाहिर[२५५] इस राजा का अथवा उस की जाति का नाम था, यह बात अनुमान पर छोड़ी जाती है.

चौहान के साथ ही इस वंश का क्षय हो गया ऐसा जान पड़ता है. उस [पृथ्वीराज] का इकलौता पुत्र रेणसी[२५८] चावण्डराय की बहिन से उत्पन्न हुआ था, परन्तु वह दिल्ली पर [मुसल्मानों का] दखल होने तक जीता न रहा. चन्द भाट ने इस विवाह का वर्णन अपने महाकाव्य के एक पूरे पर्व में किया है, और जितनी वाक्पटुता उस ने वाहिमा ॐ की प्रशंसा में दिखाई है उस से अधिक उस ने कभी नहीं दिखाई.

जंगली जातियां.

घागरी, मेर, कात्रा, मीना, भील, सेरिया, थोरी, खांगर, गौंड, भड़, जंवर और सरूद.

खेती करनेवाली और चरवाहा जातियां.

अभीर वा अहीर, ग्वाला, कुर्मी वा कुनंबी, गूजर और जाट.

राजपूत जातियां जिन की कोई शाखा नहीं दी हुई हैं.

जालिया, पेशानी, सोहागनी, चाहिर, रान, सिमाला बोटीला, गोचर, मालण, ओहिर, हूल, बाचक, बटुर, केड़च, कोटक, बूसा और बिरगोता.

बणिज करनेवाली चौरासी जातियों की सूचि.

श्री श्रीमाल, श्रीमाल, ओसवाल, बगेरवाल, डींडू, पुष्करवाल, मेरतावाल, हर्सोरुह, सुरूरवाल, पल्लीवाल, मम्बू, खंडेलवाल, दोहिलवाल, केदरवाल, डीसावाल,

गूजरवाल, सोहरवाल, अग्गरवाल, जाइलवाल, मानतवाल, कजोटीवाल, कोर्टवाल, चेत्रवाल, सोनी, सोजतवाल, नागर, मोड,जल्हेरा, लाड़, कपोल, खरेता, वरूड़ी, दसोरा, बम्बरवाल, नागद्रा, करबेरा, भटेवरा, मेवाड़ा, नरसिंहपुरा, खतेरवाल, पंचमवाल, हुनरवाल, सरकैरा, वैश्य, स्तुग्वी, कम्बोवाल, जीरणवाल, भगेलवाल, ओरचितवाल, वामणवाल, श्रीगौड़, ठाकुरवाल, वाक्षमीवाल, टिपोरा, टीलोना, अतवर्गी, लादिसका, वद्नोरा, खीचा, गुसोरा, बाम्रोहर, जाइमा, पद्मोरा, मेहेरिया, ढाकरवाल, मह्नोरा, गोयलवाल, मोहरवाल, चीतोड़ा, काकलिया, भारेजा, अन्दोरा, साचोरा, भूंगरवाल, मन्दहुलू, ब्रामणिया, बागड़िया, डींडोरिया, वोरवाल, सोरविया, ओरवाल, नफाग और नागोरा. (एक नाम की कमी है).

पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा कृत

सातवें प्रकरण के टिप्पण.

१—नाडोल—जोधपुर राज्य के गोडवाड़ ज़िले का एक प्राचीन नगर. यह नगर सांभर के चौहानों की एक शाखा की राजधानी था.

२—कुमारपाल चरित्र—अनहिलवाड़ा पट्टन के इतिहास सम्बन्धी जिस संस्कृत पुस्तक में ३६ राजवंशों की नामावली दी है उस का नाम 'कुमारपाल चरित्र' नहीं, किन्तु 'कुमारपाल प्रबन्ध' है. वह ईसवी सन् की बारहवीं शताब्दी में नहीं, वरन विक्रम संवत् १४९२ (ई० सन् १४३५) में बना था. उस के कर्त्ता का नाम जिनमण्डनोपाध्याय मिलता है, जो सोमसुन्दरसूरि का शिष्य था. 'कुमारपाल चरित्र' नाम के तीन पुस्तक मिले हैं, जिन में से किसी में ३६ राजवंशों की नामावली नहीं है.

३—मालण—चौहानों की अनेक शाखाओं में से एक. कर्नेल टॉड ने अपने पुस्तक राजस्थान में चौहानों की शाखाओं की जो नामावली दी है उस में मालण (माल्हण) नाम नहीं है, परन्तु मूता नेणसी की ख्यात में, जो वि० सं० १७०५ और १७२५ (ई० स० १६४८ और १६६८) के बीच में संग्रह की गई थी, यह नाम मिलता है.

४—सीज़र (जूलिअस सीज़र)—रोम के एक श्रीमंत का पुत्र था. उस का जन्म ई० स० से पूर्व १०० में हुआ था. ई० स० पूर्व ६३ के आस पास उस ने रोम की राज्य सभा में प्रवेश कर प्रतिष्ठा पाई, और पीछे से उस ने फ्रान्स तथा इंग्लैंड पर चढ़ाई कर विजय प्राप्त की, जिस की ईर्षा से रोम के कितने एक बड़े राज्याधिकारी उस के शत्रु बन गये, परन्तु उस ने अपने सैन्य के साथ रोम में प्रवेश कर उन को वहां से भगाया, और वहां का राज्य प्रबन्ध अपने हाथ में लिया. ई० स० पूर्व ४४ में वह रोम नगर में मारा गया था.

५—अपारं शार्खं (अपार शांखं)—टॉड साहिब गुहिलोतों की जिस प्राचीन प्रशस्ति में 'अपारंशार्खं' खुदा बतलाते हैं, वह चित्तौड़ के किले पर राणा कुंभकरण के बनवाये हुए प्रसिद्ध कीर्त्ति स्तंभ में लगा है

समाधीश्वर (समिद्धेश्वर) के मन्दिर के अहाते के एक प्राचीन दर्वाज़े में लगी हुई है. वह मेवाड़ के रावळ समर सिंह के समय की वि० संवत् १३३१ की है—(*मत्यार्थं वामनयना नयनांबुधारा संवर्द्धितः क्षितिभृतां शिरसि प्ररूढः। यः कुंठितारिकरवाळकुठारधारस्तं ब्रूमहे गुहिलवंशमपारशाखं॥ ५॥*).

६–मेरावत या मेरोत का अर्थ टॉड साहिब 'पर्वत निवासी' या 'पर्वत के सन्तान' करते हैं, परन्तु उस का ठीक अर्थ मेरा नामक पुरुष के वंशज होना चाहिये. (मेरु का अर्थ पर्वत होता है, परन्तु पर्वत निवासियों को राजपूतों में कोई मेरावत या मेरोत नहीं कहता).

७–अल्बैनियन–अल्बैनिया की. अल्बैनिया रूम के एक विभाग का नाम है.

८–वल्कन–रोमन लोगों की पौराणिक कथाओं के अनुसार अग्नि का अधिष्ठाता देवता, जो उन के यहां जुपीटर (इन्द्र), और जूनो का पुत्र माना जाता है.

९–सोल–सूर्य,

१०–लूनस (लूना)—चन्द्र.

११–खुमाण रासा–इस पुस्तक को वि० सं० १७०० के आस पास उदयपुर के एक जैन साधु ने बनाया था. उस में खुम्माण के इतिहास सम्बन्धी जो वृत्तान्त लिखा है वह अधिकतर कल्पित है.

१३–सन् १९०२ में हमने टॉड साहिब का जीवनचरित्र लिखा उस समय तक टॉड साहिब के लेखानुसार हम भी यही मानते थे कि मेवाड़ के राजा वल्लभी के खानदान से निकले हुए हैं, परन्तु उस के पीछे के शोध से कितने एक प्रमाण ऐसे मिले, जिन से पाया जाता है कि मेवाड़ के राजाओं का वल्लभी के राजाओं से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है. मेवाड़ में गुहिल वंश का राज्य स्थापन करनेवाला गुहिल वा गुहदत्त गुजरात के आनन्दपुर नामक नगर से आया था, ऐसा लिखा मिलता है.

१४–वल्लभी संवत् के सविस्तर वृत्तान्त के लिये देखो प्राचीन लिपिमाला पृ० ३४ से ३६ तक.

१५–टॉलमी (क्लोडियस टॉलमी)–मिसर देश के अलेग्जैंड्रिया नगर का रहनेवाला प्रसिद्ध खगोल और भूगोलवेत्ता था. उस ने भूगोल का जो पुस्तक लिखा वह प्राचीन काल में उक्त विषय का एक प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता था, परन्तु उस ने अलेग्जैंड्रिया में बैठे बैठे ही वह पुस्तक यात्रियों और नाविकों से सुनी हुई बातों तथा पहिले के पुस्तकों के आधार पर ई० सन् की दूसरी शताब्दी के मध्य लिखा था, जिस से उस ने हिन्दुस्तान के नगर, नदियों आदि के जो स्थान नियत किये हैं उन में से बहुतसों में बड़ा गड़बड़ कर दिया है. यदि उस के लेखानुसार नक्शा तय्यार किया जावे तो महानदी को स्याम, और गंगा को चीन तक ले जाना होगा.

१६–बाइजैंटियम–टॉलमी ने जो बाइजैंटियम नामक नगर का नाम लिखा है उस को टॉड साहिब वल्लभीपुर अनुमान करते हैं और उसी अनुमान के आधार पर आगे चल कर मेवाड़ के इतिहास में उन्हों ने कई ऊटपटांग बातें लिखी हैं, परन्तु उन का अनुमान सर्वथा स्वीकार करने योग्य नहीं है. टॉलमी ने बाइजैंटियम नाम लिखा है वह वैजयंती नगर (दक्षिण में) का सूचक है, न कि वल्लभीपुर का. (वैजयंती का यूनानी लिपि में बैजें-टिअं होना संभव है, और उस के उच्चारण की तरफ़ देखा जावे तो भी उस की वल्लभीपुर से कुछ भी समानता नहीं पाई जाती.)

१७–बलकराय–वल्लभी के राजाओं के लिये यह उपाधि भी टॉड साहिब की कल्पना मात्र है. किसी शिला लेख अथवा प्राचीन

पुस्तक में वल्लभी या सौराष्ट्र के राजाओं के लिये यह उपाधि नहीं मिलती.

१८—गज़नी–टॉड साहिब गज़नी को वल्लभी राज्य की दूसरी राजधानी बतलाते हैं, परन्तु वल्लभीपुर के अतिरिक्त वहां के राजाओं की कोई दूसरी प्रसिद्ध राजधानी का होना पाया नहीं जाता. गज़नी नाम का किला जो काठियावाड़ से उत्तर-पश्चिम में खंभात के निकट था वह वल्लभी के राज्य के अंतर्गत हो यह संभव है.

१९—वल्लभी या वल्लभीपुर का नाश ई० सन् की छठी शताब्दी में पार्थियन आक्रमणकारियों द्वारा नहीं, किन्तु ई० सन् की आठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सिन्ध के अरबों द्वारा हुआ था. वल्लभी के अन्तिम राजा शिलादित्य छठे का एक दानपत्र वल्लभी (गुप्त) संवत् ४४७ (ई० सन् ७६६) का मिला है, जिस से स्पष्ट है, कि उक्त संवत् तक तो वल्लभी का राज्य कायम था, उस से कुछ समय बाद उस का नाश हुआ हो. एक जैन लेखक वीर संवत् ८२६ में वल्लभी का नाश होना लिखता है, परन्तु उस ने विक्रम संवत् के स्थान पर भूल से वा भ्रम से वीर संवत् लिख दिया हो ऐसा पाया जाता है. वि० संवत् ८२६ (ई० सन् ७६९-७०) में वल्लभी का नाश होना संभव है.

२०—ग्रहिलोत—यह नाम भी टॉडसाहिब का गढ़न्त किया हुआ है. किसी शिलालेख या प्राचीन पुस्तक में यह नहीं मिलता, और न मेवाड़ में यह नाम प्रसिद्ध है. लोगों में इस वंश का नाम गुहिलोत या गेहलोत प्रसिद्ध है.

२१—आनन्दपुर—प्राचीन शिलालेखों तथा पुस्तकों में आहड़ के वास्ते आघाटपुर लिखा मिलता है (एक लेख में आटपुर भी लिखा है, जो आघाटपुर का ही अपभ्रंश मालूम होता है), आनन्दपुर कहीं नहीं. आनन्दपुर गुजरात के एक प्राचीन नगर का नाम है, जहां से मेवाड़ के राजाओं का इस देश में आना लिखा मिलता है., गुजरात में उक्त नाम, के दो नगरों का होना पाया जाता है, एक तो आनन्द, (आनन्द भरूचवाला), और दूसरा वड़ नगर भी आनन्दपुर कहलाता था.

२२—असादिया—टॉड साहिब ने ऐसा माना है, कि ईडर के जंगलों

से आहड़ में जाबसने के समय से मेवाड़ के राजवंश का नाम, गेहलोत बदल कर अहाड़िया हो गया, परन्तु हम उन के इस कथन को स्वी. नहीं कर सकते, क्योंकि उक्त नाम के इतने प्राचीन समय से प्रचलित होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता, और न अल्लट के पहिले के मेवाड़ के राजाओं का आहड़ में रहना पाया जाता है, उन की राजधानी नागदा थी। हमारा अनुमान है, कि विक्रम संवत् १००८ (ई० सन् ९५१) के आस पास अल्लट ने आहड़ में रहना इख्तियार किया था, उस समय से अहाड़िया नाम की उत्पत्ति हुई होगी।

२३—राहप न तो बड़ा भाई था, और न उस ने चित्तौड़ की गद्दी का अपना हक छोड़ कर डूंगरपुर का राज्य स्थापन किया था। राजा विक्रम सिंह के उत्तराधिकारी रण सिंह से, जिस को करण सिंह भी कहते थे, दो शाखा फंटी, जिन में से बड़ी रावल, और छोटी राणा नाम से प्रसिद्ध हुई। रावल शाखा में चित्तौड़ का अन्तिम राजा रत्न सिंह हुआ, जो अलाउद्दीन खिल्जी के साथ की लड़ाई में विक्रम संवत् १३६० (ई० सन् १३०३) में काम आया, और चित्तौड़ पर मुसल्मानों का अधिकार हो गया, जिस से रत्न सिंह के वंशजों ने, डूंगरपुर का राज्य स्थापन किया, और वे वहीं रहे। राणा नाम की दूसरी शाखा का पहिला पुरुष राहप हुआ, जिस का वंशज लक्ष्मण सिंह (गढ़ लक्ष्मण सिंह) अलाउद्दीन के हमले के समय रावल रत्न सिंह के पक्ष में लड़कर अपने सात पुत्रों सहित काम आया। उस के पौत्र हमीर ने चित्तौड़ का किला लेकर वहां पर फिर अपने वंश का राज्य कायम किया, तब से राणा शाखावाले मेवाड़ के स्वामी हुए।

२४—टॉड साहिब चित्तौड़ के मोरी (मौर्यवंशी) राजाओं को परमार मानते हैं, इस विषय में हम उन से सहमत नहीं हैं। मोरी और परमार दो भिन्न वंश हैं। परमारों के प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र, और ऐतिहासिक पुस्तकों में कहीं उन का मोरी होना नहीं लिखा। यदि वे मोरी होते तो उक्त वंश के प्रतापी राजा चन्द्रगुप्त, अशोक आदि के वंशज होना वे अवश्य लिखते। (चौहानों के भाट मोरियों को चौहान बतलाते हैं यह भी स्वीकार नहीं हो सकता)।

२५–गुहिल वंशी राजा (बापा रावल) ने चित्तौड़ का क़िला मोरियों से लिया ऐसी प्रसिद्धि चली आती है. (देखो वंश वृक्ष दूसरे पर हमारा टिप्पण नं० ८).

२६–माहप—सीसोदा गांव में अपनी राजधानी क़ाइम करनेवाला माहप नहीं, किन्तु उपर्युक्त राणा शाखा का प्रथम पुरुष राहप या उस का कोई वंशज होना चाहिये. उक्त स्थान के नाम से ही गुहिल के वंशज सीसोदिये कहलाये.

२७–गुहिलोतों की २४ शाखाओं के जो नाम टॉड साहिब ने अपने राजस्थान में दिये हैं उन में और मूता नेणसी की ख्यात में जो नाम मिलते हैं उन में फ़र्क़ है. यही हाल टॉड साहिब के गुरु ज्ञानचन्द्र यति के यहां से मिली हुई गुहिलोतों की २४ शाखाओं की नामावली का भी है. इसलिये हम यहां पर परस्पर के मिलान के लिये मूता नेणसी की ख्यात में दी हुई तथा टॉड साहिब के गुरु के यहां से मिली हुई गुहिलोतों की २४ शाखाओं की नामावली दर्ज करते हैं.

मूतानेणसी की ख्यात से—१ गेहलोत, २ सीसोदिया, ३ अहाड़ा, ४ पीपाड़ा, ५ हुल, ६ मांगलिया, ७ आसायच, ८ केलवा, ९ मंगरोपा, १० गोधा, ११ दाहलिया, १२ मोटसिरा, १३ गोदारा, १४ भीवला, १५ मोर, १६ टीवणा, १७ मांहिल, १८ तिवटकिया, १९ बोसा, २० चंद्रावत, २१ धोरणिया, २२ बूटीवला, २३ बूटिया, २४ गोतमा.

टॉड साहिब के गुरु के यहां के काग़ज़ से—१ गुहिलोत, २ अहाड़ा, ३ सीसोदिया, ४ पीपाड़ा, ५ मांगलिया, ६ अजबरिया, ७ केलवा, ८ मंगरोपा, ९ कुडेचा, १० धोरणा, ११ भीमला, १२ हुल, १३ गोधा, १४ सेहाड़िया. १५ कोठारा, १६ आसेचा, १७ नादोढ्या, १८ ओट-लिया, १९ पालरा, २० दुवासा, २१ कुचेरा, २२ मटेवरा, २३ धुंध-रापना, २४ बूसा.

रामपुरा पर राज्य करनेवाली सीसोदियों की प्रसिद्ध चंद्रावत शाखा नाम केवल मूता नेणसी की ख्यात में मिलता है. राजवंशों की इस प्रकार की अनेक शाखाओं की उत्पत्ति या तो किसी प्रसिद्ध पुरुष के नाम से (जैसा कि गुहिल से गुहिलोत, चन्द्रा से चन्द्रावत आदि), या

उन के निवासस्थान से (जैसा कि सीसोदा गांव से सीसोदिया, आहड़ से अहाड़िया आदि) हुई है. इस प्रकार की शाखा प्राचीन काल में प्रसिद्ध नहीं थीं. अन्य राजवंशों की शाखाओं की नामावली भी ख्यात की भिन्न भिन्न पुस्तकों में एकसी नहीं मिलती.

आज तक के शोध के अनुसार शुद्ध की हुई गुहिल से राणा हमीर सिंह तक की मेवाड़ के राजाओं की वंशावली :—

१—गुहिल वा गुहदत्त.
२—भोज.
३—महेन्द्र.
४—नाग.
५—शील वा शीलादित्य—इस राजा का एक शिला लेख वि० सवंत् ७०३ (ई० सन् ६४६) का मिला है.
६—अपराजित—वि० सं० ७१८ (ई० स० ६६१) में विद्यमान होना एक शिला लेख से पाया जाता है.
७—महेन्द्र (दूसरा)
८—काल भोज (बापा)—मेवाड़ का प्रसिद्ध राजा बापा या पापा रावल यही होना चाहिये, जिस को डूंगरपुर इलाके से मिले हुए कितने एक शिला लेखों में खुम्माण का पिता लिखा है, और ऐसा ही मेवाड़ की ख्यातों में लिखा मिलता है. राणा राय मल्ल के समय के एक लिंग महात्म्य से पाया जाता है कि उस ने वि० सं० ८१० (ई० स० ७५३) में राज्य छोड़ा था.
९—खुम्माण.
१०—मत्तट.
११—भर्तृभट.
१२—सिंह.
१३—खुम्माण (दूसरा)
१४—महायक.
१५—खुम्माण (तीसरा)

१६–भर्तृभट (दूसरा)—इस की राणी महालक्ष्मी राठौड़ वंश की थी; जिस से अल्लट का जन्म हुआ था.

१७–अल्लट—इस राजा के समय का शिलालेख वि० सं० १०१० (ई० स० ९५३) का मिला है. इस की राणी हरिया देवी हूण राजा की पुत्री थी.

१८–नरवाहन—इस के समय का एक शिलालेख वि० सं० १०२८ (ई० स० ९७१) का मिला है. इस की राणी चौहान राजा जेजय की पुत्री थी.

१९–शालिवाहन.

२०–शक्ति कुमार—इस के समय का एक शिलालेख वि० सं० १०३४ (ई० स० ९७७) का मिला है.

२१–अंबाप्रसाद.

२२–शुचिवर्म्मा.

२३–नरवर्म्मा.

२४–कीर्तिवर्म्मा.

२५–योगराज.

२६–वैरट.

२७–हंसपाल.

२८–वैरिसिंह.

२९–विजय सिंह—इस राजा का विवाह मालवा के प्रसिद्ध परमार राजा उदयादित्य की पुत्री श्यामल देवी से हुआ था, जिस से आल्हण देवी नामक कन्या उत्पन्न हुई थी, जिस का विवाह चेदी देश के हैहय (कलचुरि) वंशी राजा गयकर्ण देव से हुआ था. राजा विजय सिंह का एक ताम्रपत्र वि० सं० ११६४ (ई० स० ११०७) का (?) मिला है.

३०–अरि सिंह.

३१–चौड़ सिंह.

३२–विक्रम सिंह.

३३ रणसिंह या करणसिंह—इस राजा से दो शाखा फटी.

रावल शाखा.	राणा शाखा.
३४ क्षेमसिंह.	राहप.
३५ सामन्तसिंह.	नरपति.
३६ कुमारसिंह.	दिनकर.
३७ मथनसिंह.	जशकरण.
३८ पद्मसिंह.	नागपाल.
३९ जैत्रसिंह. *	पूर्णपाल.
४० तेजसिंह. †	पृथ्वीपाल.

---

* रावल जैत्रसिंह (नं० ३९) के समय के दो शिलालेख मिले हैं, जो वि० सं० १२७० और १२७९ (ई० स० १२१३ और १२२१) के हैं, और वि० सं० १३०९ (ई० स० १२५२) तक इस के विद्यमान होने का पता इस के समय के लिखे हुए ताड़पत्र की पुस्तकों से मिलता है. इस ने नाडोल को बर्बाद किया, और मुसल्मानों को परास्त किया था. यह राणा त्रिभुवनपाल (गुजरातवाले) से लड़ा था. इस के राज्यसमय में मुसल्मानों की चढ़ाई से नागदा शहर, जो उस समय तक मेवाड़ की राजधानी था, टूटा, और चित्तौड़ राजधानी हुई. मुसल्मानों की यह चढ़ाई दिल्ली के सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद की होनी चाहिये; क्योंकि तारीख़ फ़िरिश्ता से पाया जाता है कि, सुल्तान महमूद ने अपने भाई जलालुद्दीन को हिज्री सन् ६४६ (ई० सन् १२४७=वि० संवत् १३०४) में कन्नौज से देहली बुलाया, लेकिन् उस को प्राणहानि का सन्देह होने से वह भाग कर चित्तौड़ के पहाड़ों में चला गया. सुल्तान ने वहां तक उस का पीछा किया परन्तु आठ महीने बाद निराश हो कर उस (सुल्तान) को लौटना पड़ा. इस लड़ाई में नागदा टूटा होगा.

† तेजसिंह (नं० ४०) के समय के लेखादि वि० सं० १३१७ से १३२४ (ई० स० १२६० से १२६७) तक के मिले हैं.

(रावल शाखा)	(राणा शाखा)
४१ समरसिंह.*	भुवनसिंह.
४२ रत्नसिंह.†	भीमसिंह.
	जयसिंह.
	लक्ष्मणसिंह.

लक्ष्मणसिंह के पुत्र: अरिसिंह. अजयसिंह.

४३ हमीरसिंह.

चाटसू के गुहिलोत.

जयपुर राज्य के चाटसू गांव से मिले हुए वि० सं० ११०० के आसपास के शिलालेख में वहां पर राज्य करनेवाले गुहिलोतों की वंशावली नीचे लिखे अनुसार दी है :—

---

* समरसिंह (नं० ४१) के समय के लेख वि० सं० १३३० से १३४५ (ई० स० १२६० से १२६७) तक के मिले हैं, और तीर्थकल्प नामक जैनपुस्तक का कर्त्ता, जो इस का समकालीन था, लिखता है कि वि० सं० १२५६ (ई० स० १२९९) में सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के भाई उलू खां (उलगखां) ने चित्तौड़ के स्वामी समरसिंह के समय मेवाड़ पर चढ़ाई की, परन्तु समर सिंह ने उस समय मेवाड़ की रक्षा की थी.

† रत्नसिंह (नं० ४२) के समय वि० सं० १३६० में अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की, जिस में रत्नसिंह काम आया. इसी हमले में राणा शाखा का लक्ष्मणसिंह, जिस को मेवाड़ की ख्यातों में अकसर गढ़लक्ष्मणसिंह लिखा है, अपने सात पुत्रों सहित लड़ कर मारा गया, और चित्तौड़ पर अलाउद्दीन का अधिकार हो गया. मेवाड़ की ख्यातों में ऐसा लिखा मिलता है कि लक्ष्मणसिंह का ज्येष्ठ पुत्र अरिसिंह भी इसी लड़ाई में मारा गया था, और छोटा पुत्र अजयसिंह घायल हो कर बचा था, जिस के देहान्त के बाद अरिसिंह के पुत्र हमीरसिंह ने चित्तौड़ का क़िला छीन लिया था.

१ भर्तृभट.
२ ईशानभट (नं० १ का पुत्र).
३ उपेन्द्रभट (नं० २ का उत्तराधिकारी).
४ गुहिल (नं० ३ का पुत्र).
५ धनिक (नं० ४ का पुत्र).
६ आउक (नं० ५ का पुत्र).
७ कृष्णराज (नं० ६ का उत्तराधिकारी).
८ शंकरगण (नं० ७ का पुत्र)—इस ने गौड़ों को जीता था.
९ हर्षराज (नं० ८ का पुत्र).
१० गुहिल दूसरा (नं० ९ का पुत्र)—इस का विवाह परमार वंश के राजा वल्लभराज की पुत्री रज्जा से हुआ था.
११ भट्ट (नं० १० का पुत्र).
१२ बालादित्य (नं० ११ का पुत्र)—इस को बालार्क तथा बालभानु भी कहते थे. इस का विवाह चौहान शिवराज की पुत्री रट्टबा से हुआ था. इस के तीन पुत्र वल्लभराज, विग्रहराज और देवराज थे.

इस लेख का भर्तृभट (नं० १) मेवाड़ का राजा भर्तृभट पहिला होना चाहिये.

२८—बलदेव—इन का देहान्त श्रीकृष्ण से पूर्व हुआ था. टॉड साहिब ने श्रीकृष्ण के स्वधाम पधारने बाद इन (बलदेव) का युधिष्ठिर के साथ सिन्धु के उस पार के प्रदेशों में जाना लिखा है यह उन का भ्रम है.

२९—जाबुलिस्तान—इस के लिये देखो प्रकरण छठे पर हमारा टिप्पण नं० २५.

३०—संवस—जिस संवस नाम के राजा पर सिकन्दर ने चढ़ाई की थी वह हरिकुलि, अर्थात् यदुवंशी था या नहीं इस विषय का कुछ भी प्रमाण नहीं मिलता. सिकन्दर के इतिहास लिखनेवालों के लेखों से इतना ही पाया जाता है, कि वह सिंदिमन का राजा था.

यूनानियों का लिखा हुआ संवस नाम-सांव से मिलता हुआ है, और सिंदिमन शायद सेवान (सिहवान) के वास्ते हो जो सिन्ध में है.

३१-सामपुत्र यह नाम भी टॉड साहिब का घड़न्त किया हुआ है. जाड़ेजा जाति के लोग अपने तई सामपुत्र नहीं, किन्तु सम्मा (उन की शाखा का प्रसिद्ध नाम) कहते हैं. सम्मा शब्द की उत्पत्ति के विषय में अनेक विद्वानों ने अनेक कल्पनाएं की हैं. कोई श्रीकृष्ण के पुत्र सांब से, और कोई नूह के सन्तान साम से सम्मा कहलाना अनुमान करते हैं; और कोई ऐसा भी मानते हैं, कि यदुवंश का देवेन्द्र नामी पुरुष शोणितपुर (हिमालय प्रदेश में) का राजा हुआ. उस के तीसरे पुत्र नरपत का बेटा सामन्त हुआ, जिस के वंशज सम्मा कहलाये. सिन्ध की तवारीख तुहफतुल्‌किराम में उक्त नाम की उत्पत्ति के विषय में और और कल्पनाओं के साथ यह भी लिखा है, कि 'लाखा का बेटा उन्नड़, और उन्नड़ का लाखा (दूसरा) हुआ, जिस के बेटे का नाम सम्मा था' (इलियट साहिब की तवारीख जिल्द १, पृष्ठ ३३८). आश्चर्य नहीं कि उस के नाम से उस के वंशज सम्मा कहलाये हों.

३२-जाड़ेजा (=जाड़ा के वंशज; ऐसेही सामेजा=सम्मा के वंशज) रामपुत्र न तो शाम या सीरिया से अपना आना, और न ईरान के जमशेद के वंश में होना मानते हैं. ये अपनी उत्पत्ति इस प्रकार बतलाते हैं :—

'यदुवंश में श्रीकृष्ण हुए, जिन के जाम्बुवती नामक राणी से साम्ब नामक पुत्र उत्पन्न हुआ. उस का विवाह शोणितपुर के राजा बाणासुर के प्रधान मंत्री कौभांड की पुत्री से हुआ था. सांब के उष्णीक नामी पुत्र हुआ जो यादवस्थली के समय अपने ननिहाल शोणितपुर में था. बाणासुर के बाद शोणितपुर की राजगद्दी पर कौभांड बैठा, जिस के निःसन्तान मरने पर उष्णिक वहां का राजा हुआ, जिस के वंश में देवेन्द्र हुआ' (देखो ऊपर का टिप्पण नं० ३१). उस के वंश में जाड़ेजा हैं. अलबत्ता

वे अपने अज्ञान के कारण शोणितपुर को मिसर देश की राजधानी मानते हैं, परन्तु यह उन का भ्रम है. शोणितपुर मिसर में नहीं, किन्तु हिन्दुस्तान के हिमालय प्रदेश में केदारनाथ के निकट ऊखीमठ के पास है, जहां से देवेन्द्र के पुत्र गजपत का पश्चिम की ओर अफ़ग़ानिस्तान में जाकर अपने नाम से गज़नी नगर बसाना भी वे लोग मानते हैं.

३३–जाम–इस शब्द की उत्पत्ति का ठीक ठीक पता नहीं मिलता; जाड़ेजों के इतिहासलेखक ऐसा भी प्रगट करते हैं, कि देवेन्द्र के पुत्र गजपत ने अफ़ग़ानिस्तान पर अपना अधिकार जमाया, उस समय से उस ने 'जाम' पद धारण किया था, जो बड़े राजा का सूचक है.

३४–जामराज–काठियावाड़ के अन्तर्गत जामनगर का राज्य, जिस को नवानगर भी कहते हैं.

३५–यदुवंश–इस वंश की प्राचीन वंशावली वंशवृक्ष नं० १ में ऊपर दी हुई है. प्राचीन काल में यादवों का राज्य उत्तरी हिन्दुस्तान के बड़े हिस्से में एवम् काठियावाड़ आदि में होना पाया जाता है, परन्तु ये अन्त में आपस की लड़ाई में गारत हो मिटे. पिछले समय में, अर्थात् मुसल्मानों के पूर्व इन के राज्य दक्षिण, काठियावाड़, कच्छ, राजपूताना आदि में थे, जिन की वंशावलियां यहां पर दी जाती हैं :—

यादवों का द्वारिका की तरफ़ से दक्षिण में जाना लिखा मिलता है. उन के प्राचीन ताम्रपत्र, शिलालेख आदि से पाया जाता है, कि सुबाहु नामी यादव राजा ने अपने आधीन का सारा प्रदेश अपने ४ पुत्रों में बांट दिया, जिस से उस के दूसरे पुत्र दृढ़प्रहार को दक्षिण का राज्य मिला. दृढ़प्रहार के पुत्र सेउणचन्द्र के आधीन का देश सेउण देश कहलाता था, इसलिये हम उन को सेउणदेश के यादव कहेंगे.

(१) सेउण देश के यादव.

१ दृढ़प्रहार–इस की राजधानी का नाम प्रसिद्ध हेमाद्रि पंडित ने श्रीनगर लिखा है. परन्तु एक ताम्रपत्र में उस का नाम चन्द्रादित्यपुर मिलता है (शायद ये दोनों एक ही नगर के नाम हों) जो बंबई

इलाके के नासिक ज़िले का चादोर होना चाहिये. इस से आठवां राजा शक संवत् ९२२ (वि॰सं॰१०५७=ई॰सन् १०००) में विद्यमान था, अतएव इस के राज्य का प्रारम्भ वि॰सं॰९०० (=ई॰ स॰८४३) के आस पास होना अनुमान किया जा सकता है.

२ सेउणचन्द्र (नं॰१ का पुत्र)–इस ने अपने नाम से सेउणपुर नगर बसाया, और उसी के नाम से उस के आधीन का देश सेउण देश (नासिक से लगाकर देवगिरि अर्थात् दौलताबाद तक का प्रदेश) कहलाया.

३ धाड़ियप्प (नं॰ २ का पुत्र).

४ भिल्लम (नं॰ ३ का पुत्र).

५ राज या राजुगि (नं॰ ४ का पुत्र).

६ वद्दिग वा वादुगि (नं॰५ का पुत्र)–यह राष्ट्रकूट के राठौड़ राजा कृष्णराज (तीसरे) का सामन्त था. इस की राणी वोद्दि यव्वा, राजा धोरप्प की पुत्री थी.

७ धाड़ियप्प दूसरा (नं॰ ६ का पुत्र).

८ भिल्लम दूसरा (नं॰ ७ का भाई)–इस की स्त्री लक्ष्मी राठौड़ झञ्झ राज की पुत्री थी. यह सोलंकी वंश के राजा तैलप का सामन्त था. तैलप और मालवा के परमार राजा मुंज के साथ की लड़ाई में यह तैलप के सैन्य में रह कर बड़ी वीरता से लड़ा था. उस लड़ाई में मुंज कैद हुआ था. इस (भिल्लम) का एक दानपत्र शक सं॰९२२ (वि॰स॰१०५७ ई॰स॰१०००) का मिला है.

९ वेसुगि या वेसुक (नं॰ ८ का पुत्र)–इस की राणी नायलदेवी चालुक्य महामंडलेश्वर गोगि की पुत्री थी.

१० भिल्लम तीसरा (नं॰९ का पुत्र)–इस का विवाह कल्याण के सोलंकी राजा जयसिंह (दूसरे) की पुत्री अव्वल देवी (हाम्मा) से हुआ था. यह उक्त सोलंकी राजा का सामन्त था, और कई लड़ाइयां लड़ा था. इस का एक दानपत्र शक सं॰९४७ (वि॰ स॰ १०८२=ई॰स॰१०२५) का मिला है.

११ वाद्दुगि दूसरा (नं० १० का पुत्र).
१२ वेम्मुगि दूसरा.
१३ भिल्लम चौथा.
१४ सेउणचन्द्र दूसरा—यह कल्याण के सोलंकी राजा परमर्दिदेव, अर्थात् विक्रमादित्य (छठे) का सामन्त था. पंडित हेमाद्रि लिखता है कि 'इस ने सोलंकी कुलदीपक परमर्दिदेव को शत्रुओं से बचा कर कल्याण के राजसिंहासन पर बिठलाया था'. इस का एक ताम्रपत्र शक सं० ९९१ (वि० सं० ११२६=ई० सन् १०६९) का मिला है.
१५ परम्मदेव (नं० १४ का पुत्र).
१६ सिंघण या सिंहराज (नं० १५ का छोटा भाई)—यह सोलंकी विक्रमादित्य (छठे) का सामन्त होना चाहिये.
१७ मल्लुगि (नं० १६ का पुत्र)—इस ने अपने शत्रुओं का पर्णखेट नगर, तथा उत्कल (उड़ीसा) के राजा से कई हाथी छीने थे.
१८ अमरगांगेय (नं० १७ का पुत्र).
१९ गोविन्दराज (नं० १८ का पुत्र).
२० अमरमल्लुगि (नं० १८ का भाई).
२१ कालियवल्लाल (नं० २० का पुत्र)—इस के पीछे राज्य का मालिक भिल्लम हुआ, जो अमर गांगेय (नं० १८) के भाई कर्ण का पुत्र था. कालियवल्लाल तक के राजा स्वतंत्र नहीं, किन्तु राठौड़ों और सोलंकियों के सामन्त थे. सोलंकी राजा जगदेकमल्ल (दूसरे) के समय से ही कल्याण के सोलंकियों का राज्य कमज़ोर होने लगा था, और उस के उत्तराधिकारी तैल (तीसरे) के समय उस के सामन्त कलचुरिवंशी विज्जल ने उस का राज्य छीन लिया. फिर विज्जल के पुत्र सोमदेव से तैल (तीसरे) के पुत्र सोमेश्वर (चौथे) ने कल्याण का राज्य फिर ले लिया. इस बखेड़े के समय भिल्लम ने सोलंकियों के महाराज्य का उत्तरी हिस्सा छीन एक स्वतंत्र और बड़ा राज्य स्थापन किया, और

देवगिरि (दौलताबाद) नगर बसा कर उस को अपनी राजधानी बनाया, जिस से उस के आधीन का देश देवगिरि का राज्य कहलाने लगा.

(२) देवगिरि के यादव.

१ भिल्लम—पहिला प्रतापी राजा हुआ, जिस ने सोलंकियों की राजधानी कल्याण की, राजा अंतल से श्रीवर्द्धनपुर छीना, प्रत्यडंक के राजा को परास्त किया, मंगलवेष्टक के राजा बिल्हण को तथा होयशल (यादव) वंशी राजा (वीरवल्लाल के पिता नरसिंह) को मारा, तथा मुंज और अन्न को पराजित किया था. इस प्रकार विजय प्राप्त कर यह कृष्णा नदी के उत्तर के बड़े प्रदेश का स्वामी बना, और इस ने देवगिरि नगर बसा कर उस को अपनी राजधानी बनाया था. इस का राज्याभिषेक वि० सं० १२४४ (ई० स० ११८७) के आसपास हुआ. वि० सं० १२४८ (ई० स० ११९१) में यह कृष्णानदी के दक्षिण के देश अपने आधीन करने के लिये यादव राजा वीरवल्लाल से लक्कुंडि (बम्बई इहाते के धारवाड़ ज़िले में) के पास लड़ा था, जिस में इस (भिल्लम) की हार हुई, और उसी अरसे में इस का देहान्त हुआ हो ऐसा पाया जाता है.

२ जेतुगि या जैत्रपाल (नं० १ का पुत्र)—इस ने तैलंग देश के स्वामी (काकतीयवंशी) रुद्र को मारा, और राजा गणपति को क़ैद से छुड़ा कर आंध्र देश के राज्यसिंहासन पर बिठलाया था. प्रसिद्ध ज्योतिषी भास्कराचार्य का पुत्र लक्ष्मीधर इस का आश्रित था, जिस को इस ने अपने दर्बार का मुख्य पंडित बनाया था. यह (जेतुगि) वेद, न्याय, और मीमांसा का ज्ञाता था. वि० सं० १२६७ (ई० सन् १२१०) में इस का देहान्त हुआ.

३ सिंघण (नं० २ का पुत्र)—यह बड़ा ही प्रतापी राजा था. इस ने जाजल्लदेव (हैहयवंशी), होयसल (यादव) वंशी बल्लाल (दूसरे), राजा ककल्ल, और मालवा के राजा अर्जुनवर्मा को हराया,

कोल्हापुर के राजा भोज दूसरे (शिलारा वंशी) को हराकर उस के आधीन का देश अपने राज्य में मिला लिया, और मथुरा तथा काशी के राजाओं को युद्ध में मारा था. इस ने गुजरात पर सोलंकी भीमदेव के समय दो चढ़ाइयां की थीं. पहिली चढ़ाई वि० सं० १२९५ (ई० सन् १२३८) से कुछ पूर्व हुई थी, जिस में धोलका का राणा (बघेल) लवणप्रसाद, और उस का पुत्र वीरधवल गुजरात की सेना के मुखिया थे. उस में सिंघण का ब्राह्मण सेनापति राम मारा गया था. दूसरी चढ़ाई वि० सं० १२९५ (ई० स० १२३८) में हुई, जिस में सिंघण और लवणप्रसाद के बीच सुलह होकर यह शर्त हुई, कि वे एक दूसरे के मुल्क पर चढ़ाई न करें. सिंघण के दर्बार के मुख्य ज्योतिषी चांगदेव (भास्कराचार्य का पौत्र), और अनन्तदेव (भास्कराचार्य के भाई श्रीपति का पुत्र)थे. उस (सिंघण) का पुत्र जैत्रपाल उस की विद्यमानता में गुज़र गया था. वि० सं० १३०४) ई० सन् १२४७) में सिंघण का देहान्त हुआ.

४ कृष्ण या कन्हर (नं० ३ का पौत्र, जैत्रपाल का पुत्र)—यह मालवा तथा कोंकण के राजाओं से लड़ा, और गुजरात के बघेल (सोलंकी) राजा वीसल के सैन्य को इस ने हराया. यह विद्यारसिक था. इस के समय में जल्हण ने सूक्तिमुक्तावली नामक ग्रन्थ संग्रह किया था. इस (कृष्ण) का देहान्त वि० सं०१३१७ (ई० सन् १२६०) में हुआ.

५ महादेव (नं० ४ का छोटा भाई) इस ने राजा सोमेश्वर को जीत कर कोंकण देश को अपने राज्य में मिला लिया, और यह कर्णाटक के राजा तथा गुजरात के बघेल (सोलंकी) राजा वीसलदेव से लड़ा था. चतुर्वर्गचिन्तामणि नामक ग्रन्थ का कर्ता प्रसिद्ध विद्वान् हेमाद्रि उस का मुख्य मन्त्री था. हेमाद्रि का आश्रित बोपदेव पंडित था, जिस ने हरिलीला नामक पुस्तक रची, जो भागवत का सारांश रूप है. महादेव का देहान्त वि०

सं० १३२८ (ई० सन् १२७१) में हुआ. उस का पुत्र आमण था, जो अपने पिता के राज्य का मालिक होने नहीं पाया.

६ रामचन्द्र या रामदेव (नं० ४ का पुत्र)—महादेव के पीछे यह देवगिरि के राज्य का मालिक बन बैठा. आमण ने अपने पिता का राज्य प्राप्त करने का यत्न किया, परन्तु इस में उस को सफलता प्राप्त नहीं हुई. यह (रामचन्द्र) मालवा तथा तिलंगाना के राजाओं से लड़ा था. इस के समय दिल्ली के बादशाह जलालुद्दीन फ़ीरोज़ शाह खिल्जी के भतीजे अलाउद्दीन खिल्जी ने, जो दक्षिण में था, वि० सं० १३५१ (ई० स० १२९४) में ८००० सेना सहित देवगिरि पर अचानक हमला किया, जिस से रामचन्द्र को क़िले की शरण लेनी पड़ी. अलाउद्दीन ने देवगिरि को लूटने बाद क़िले पर घेरा डाला. रामचन्द्र का पुत्र शंकर, जो बड़ी सेना के साथ अपने पिता की सहायता के लिये आ रहा था, वह भी अलाउद्दीन से हारा, और अन्त में बहुत कुछ मोती व जवाहिरात और चांदी वग़ैरा तथा एलिचपुर का सारा इलाक़ा देने पर सुलह हुई, और रामचन्द्र को बादशाह की आधीनता स्वीकार करनी पड़ी. वि० सं० १३५३ (ई० स० १२९६) में जलालुद्दीन खिल्जी को मारकर अलाउद्दीन खिल्जी दिल्ली के तख़्त पर बैठा. रामचन्द्र ने कई बरसों तक खिराज न भेजा, जिस पर अलाउद्दीन ने मलिक काफ़ूर को ३०००० सवारों के साथ देवगिरि पर भेजा, जो वि० सं० १३६३ (ई० स० १३०७) के अन्त में वहां पहुंचा. उस ने रामचन्द्र को लड़ाई में क़ैद कर देहली भेजा; छः महीने तक वहां रखने बाद बादशाह ने इस को देवगिरि का राज्य लौटा दिया. वि० सं० १३६५ (ई० स० १३०९) में रामचन्द्र का देहान्त हुआ.

७ शंकर (नं० ६ का पुत्र)-इस ने राज्य पाने के बाद शाही खिराज भेजना फिर बन्द कर दिया, जिस पर वि० सं० १३६९ (ई० सन् १३१२) में मलिक काफ़ूर फिर दक्षिण को भेजा गया, जिस ने इस को मार कर इस के राज्य को बर्बाद कर दिया, और

देवगिरि में रहना इख्तियार किया. शंकर के साथ देवगिरि के यादव राज्य की समाप्ति हुई. अलाउद्दीन के मरने पर रामचन्द्र के जमाई हरपालदेव ने बखेड़ा मचाया, और कई इलाक़े मुसल्मानों से छीन लिये, जिस पर देहली के बादशाह मुबारकशाह खिल्जी ने वि० सं० १३७५ (ई० सन् १३१८) में दक्षिण पर चढ़ाई की, और हरपालदेव को क़ैद कर उस की खाल खिंचवाई.

(३) द्वारसमुद्र के यादव.

द्वारसमुद्र के यादव होयशल नाम से प्रसिद्ध हैं. (होयशल नाम की उत्पत्ति के लिये देखो सोलंकियों का प्राचीन इतिहास, प्रथम भाग के पृ० १०५ का नोट). ये भी देवगिरि के यादवों की नाईं द्वारिका (काठियावाड़) से अपना दक्षिण में आना मानते थे. विष्णुवर्द्धन के समय से द्वारसमुद्र (दोरसमुद्र) उन की राजधानी हुई, जिस को इस समय हलेबीड कहते हैं, जो माइसोर राज्य के हसन ज़िले में बेलूर से १० मील पूर्व में है. उन की शृंखलाबद्ध वंशावली विनयादित्य से मिलती है.

१ विनयादित्य—इस के पिता का नाम कामनृप या पेरा पाया जाता है. विनयादित्य का ख़िताब 'महामंडलेश्वर' मिलता है, जिस से निश्चित है कि वह स्वतंत्र राजा नहीं था, कदाचित् सोलंकियों के मातहत हो. इस का एक लेख वि० सं० १०९६ (ई० स० १०४०) का मिला है.

२ एरेयंग या एरग (नं. १ का पुत्र)—इस की स्त्री एलचदेवी से तीन पुत्र बल्लाल, विष्णुवर्द्धन, और उदयादित्य हुए थे.

३ बल्लाल (नं० २ का पुत्र)—इस ने राजा जगदेकमल्ल को परास्त किया था, जो पश्चिमी सोलंकी राजा जगदेकमल्ल (जयसिंह दूसरे) का सामन्त होना चाहिये. वि० सं० ११६० (ई०स० ११०३) में यह विद्यमान था. इस के समय तक राजधानी बेलापुर (बेलूर, द्वारसमुद्र से दस मील पश्चिम में) थी.

४ विष्णुवर्द्धन (नं० ३ का छोटा भाई)—द्वारसमुद्र के यादवों में प्रथम यही प्रतापी हुआ. यह पहिले सोलंकियों के मातहत था, परन्तु पश्चिमी सोलंकी विक्रमादित्य (छठे) के राज्य के पिछले समय में इस ने स्वतंत्र हो कर विक्रमादित्य के राज्य पर चढ़ाई की थी, परन्तु उस में इस को विजय प्राप्त नहीं हुई. इस ने गंगावंशियों को जीत कर उन की राजधानी तलवनपुर को जला दिया था; मालवा, कांची, गंगवाडी, हांगल, कोइंबाटूर, और सप्तकोंकण पर चढ़ाइयां की थीं. इस ने पट्टिपोंबुचपुर के राजा जगदेव को, गोवा के कदंबवंशी जयकेशी (दूसरे) को, एवम् राजा नरसिंह, तथा पाण्ड्य, और तुलुदेश के राजाओं को जीता था ऐसा लिखा मिलता है. इस की दो राणियों के नाम शांतलदेवी, और लक्ष्मीदेवी थे. इस के समय के कितने एक लेख मिले हैं, जो शक सं० १०३७ से १०६० (वि० सं० ११७२ से ११९५= ई० सन् १११५–११३८) तक के हैं.

५ नरसिंह (नं० ४ का पुत्र)—वि० सं० १२३०=ई० सन् ११७३ में इस का देहान्त हुआ था.

६ वीरबल्लालदेव या बल्लाल दूसरा (नं० ५ का पुत्र)—द्वारसमुद्र के यादवों में यही पहिले पहिल पूर्णरूप से स्वतंत्र हुआ था. इस का राज्याभिषेक वि० सं० १२३० (ई० सन् ११७३) श्रावण शुक्ला ११ को हुआ था. इस ने पश्चिमी सोलंकी राजा सोमेश्वर (चौथे) के सेनापति ब्रह्म को पराजित कर सोलंकियों के महाराज्य का दक्षिणी हिस्सा लेलिया. देवगिरि के यादव राजा भिल्लम को लक्कुंडी के युद्ध में हराया; और जैत्रसिंह (शायद देवगिरि के यादव राजा भिल्लम का पुत्र जैतुगि हो) को परास्त कर कुंतल देश पर अपना अधिकार जमाया था. इस ने 'महाराजाधिराज', और 'प्रतापचक्रवर्ती' बिरुद धारण किये थे. इस की राणी पद्मलदेवी थी. इस (वीरबल्लाल) का देहान्त वि० सं० १२७७ (ई० स० १२२०) में हुआ था.

७ नरसिंह दूसरा, या वीर नरसिंह (नं० ६ का पुत्र)—इस का राज्याभिषेक वि० सं० १२७७ (ई० स० १२२०) वैशाख शुक्ला १३ को हुआ था. इस के राज्य समय में इस के आधीन का कितना एक प्रदेश (वरदा और तुंगभद्रा के उत्तर का) देवगिरि के यादवों ने छीन लिया था. चोल देश के राजा राजराज तीसरे (सोलंकी) को उसी के पल्लववंशी सामन्त कोप्पेरुंजिंग ने कैद कर लिया, उस समय वीर नरसिंह ने उस की सहायता की, और उसे कैद से छुड़ा कर पीछा चोल के राज्यसिंहासन पर बिठला दिया था, परन्तु इस (वीरनरसिंह) ने चोल देश का कुछ हिस्सा दबा भी लिया था. इस के समय के लेख श० सं० ११४५ से ११५७ (वि० सं० १२८० से १२९२=ई० स०१२२३ से १२३५) तक के मिले हैं.

८ वीरसोमेश्वर या सोम (नं०७ का पुत्र)—यह अपने पिता की विद्यमानता में ही शासन करने लग गया था, और देवगिरि के यादव राजा कृष्ण से लड़ा था, और इस ने चोल देश का और भी हिस्सा दबा कर वहां पर विक्रमपुर नामक नगर बसाया था, परन्तु पांड्य देश का राजा सुन्दरपांड्य (जटावर्म) चोल देश को अपने आधीन करना चाहता था जिस से इस के और वीरसोमेश्वर के बीच युद्ध हुआ, जिस में सुन्दर पांड्य ने इस का श्रीरंगनगर छीन लिया इतनाही नहीं, किन्तु चोल देश पर से इस का अधिकार उठा कर उक्त देश को अपने आधीन कर लिया. इस के समय के लेख शक सं० ११७५ (वि सं० १३१०=ई० स० १२५३) तक के मिले हैं.

९ वीर नरसिंह दूसरा, या नरसिंह तीसरा (नं०८ का पुत्र)— इस के महाप्रधान पेरुमलदेव ने रत्नपाल नामक राजा को परास्त कर मारा था. वि० सं० १३४८ (ई० सं० १२९२) में नरसिंह का देहान्त हुआ.

१० वीर वल्लाल या वल्लाल तीसरा (नं० ९ का पुत्र)—इस का राज्या-

षिषेक वि० सं० १३४८ (ई० सन् १२९२) माघ शुक्ला ११ को हुआ था. हिजरी सन् ७१० (वि० सं० १३६७=ई० स० १३१०) में अलाउद्दीन खिल्जी ने मलिक काफूर और ख्वाजह हाजी को बड़ी सेना के साथ द्वारसमुद्र पर भेजा, जिन के साथ की लड़ाई में बल्लाल हार कर क़ैद हुआ. मुसल्मानों ने मन्दिरों को तोड़ा, और बहुतसा द्रव्य उन के हाथ लगा ऐसा फ़िरिश्ता ने लिखा है. बल्लाल के क़ैद होने का जो उल्लेख फ़िरिश्ता ने किया है उस की सत्यता में सन्देह है, क्योंकि वह फिर उस के छूटने का ज़िक्र कुछ भी नहीं करता. परन्तु उक्त संवत् के बाद बहुत बरसों तक बल्लाल का द्वारसमुद्र में राज्य करना पाया जाता है. सम्भव है कि मुसल्मानों का सैन्य मुल्क को लूट कर चला गया हो, क्योंकि हि० सन् ७२७ (वि०सं० १३८४= ई० स० १३२७) में द्वारसमुद्र का पूर्णरूप से आधीन होना यही लेखक (फ़िरिश्ता) मुहम्मद तुग़लक के हाल में लिखता है. उक्त संवत् के पीछे बल्लाल हॉडनूर (टोन्नूर-श्रीरंगपट्टन के निकट) में जारहा था. शक संवत् १२५२ (वि० सं० १३८७=ई० स० १३३०) तक के इस के लेख मिलते हैं, और उस के पीछे करीब ५० वर्ष तक इस के तथा इस के वंशजों के अधिकार का पता लगता है. शक संवत् १२६५ (वि० सं० १४००=ई० स० १३४४) के एक शिलालेख में वीरविरूपाक्षबल्लाल का नाम मिलता है, जो शायद इस (बल्लाल) का उत्तराधिकारी हो.

(४) विजय नगर के यादव.

इब्नबतूता के और फ़िरिश्ता के लेख से पाया जाता है, कि दिल्ली के सुल्तान मुहम्मद तुग़लक के भतीजे बहाउद्दीन (गुर्शास्प) ने, जो दक्षिण में सागर (कुलबर्गा के निकट) का हाकिम था, बग़ावत की, जिस पर सुल्तान ने बड़ी सेना के साथ उस पर चढ़ाई की. सुल्तान से हारकर वह कांपली के राजा की शरण में जा रहा तो सुल्तान ने वहां भी उस का पीछा किया, जिस से वहां का राजा आनेगुंदी के

किले में चला गया. उस ने बहादीन को तो द्वारसमुद्र के होयसल (यादव) राजा बल्लाल के पास भेज दिया, जो उन दिनों टोन्नूर में रहता था, और आप अपनी, सर्दारों की तथा प्रधान आदि की स्त्रियों को अग्नि में जलाने के बाद शाही फ़ौज के मुक़ाबले में अपने पुत्रों सहित ई० सन् १३३४ (वि० सं० १३९१) में लड़कर काम आया, (इब्नबतूता के अनुसार ई० सन् १३३४, और फ़िरिश्ता के लेखानुसार ई० सन् १३३८). सुलतान ने इस क़िले पर अपना अधिकार कर मलिक नाइब को वहां का हाकिम नियत किया, परन्तु सुलतान के लौटने बाद वहां के लोगों ने फिर बग़ावत की, और मलिक ने उस मुल्क को अपने अधिकार में रखना मुश्किल समझा, जिस से सुलतान ने वहां के पहिले के राजा के मन्त्री देवराज को वहां का राज्य दे दिया. मुसल्मान लेखक देवराज को राज्य देना लिखते हैं, परंतु देवराज के वंशजों के लेखानुसार सुलतान को हरा कर राज्य लेना पाया जाता है. चाहे सुलतान ने देवराज को वहां का राज्य दिया हो, अथवा उस ने मलिक नाइब को निकाल कर वह राज्य लिया हो, परन्तु इतना निश्चित है, कि वह विजयनगर के राज्य का संस्थापक हुआ. शिलालेख तथा ताम्रपत्रों में उस का नाम हरिहर लिखा मिलता है, अतएव संभव है, कि देवराज और हरिहर दोनों एकही राजा के नाम हों. विजयनगर के यादव द्वारसमुद्र के होयसल (यादव) वंशी राजाओं के वंशज हों ऐसा पाया जाता है.

१ संगम—इस के पांच पुत्र हरिहर (देवराज), कंप, बुक्क, मारप्प, और मुद्दप थे.

२ हरिहर वा देवराज (नं० १ का पुत्र)—इस को हरिअप्प भी कहते थे. इस ने आनेगुंडी का राज्य प्राप्त किया. इस के छोटे भाई कंप को नेल्लोर इलाक़े में बड़ी जागीर मिली हो ऐसा पाया जाता है. कंप का पुत्र संगम हुआ, जिस का एक दानपत्र शक संवत् १२७८ (वि० सं० १४१३=ई० स० १३५६) का मिला है. वि० संवत् १४०३ (ई० स० १३४६) तक हरिहर के विद्यमान होने का पता लगा है.

३ बुक या बुक्कराय (नं० २ का छोटा भाई) हरिहर के पीछे राज्य का मालिक बुक्क हुआ, जिस ने अपने बाहुबल से आसपास का बहुत सा प्रदेश अपने राज्य में मिला कर एक बड़ा राज्य क़ाइम किया. इस का मंत्री ब्राह्मण माधव (विद्यारण्य) था, जिस ने सर्वदर्शनसंग्रह, न्यायमाला आदि ग्रन्थ रचे थे. बुक्क ने विद्यारण्य के नाम से आनेगुंदी के निकट तुंगभद्रा नदी पर विद्यानगरी नाम का शहर बसा कर उसे अपनी राजधानी बनाया, जो पीछे विजयनगर नाम से प्रसिद्ध हुआ, और जिस को मुसल्मान इतिहास लेखक बीजानगर कहते हैं (कोई कोई ऐसा भी मानते हैं कि इस नगर को हरिहर ने बसाया था). वि० सं० १४३३ (ई० सन् १३७६) के क़रीब तक तो बुक्क विद्यमान था. इस के तीन पुत्र हरिहर, वीरविरुपण्ण, और कंपण थे. कंपण का पुत्र जम्मण था.

४ हरिहर दूसरा (नं० ३ का पुत्र)—इस को वीर हरिहर, और वीर प्रताप हरिहर भी कहते थे. बहमनी ख़ानदान के बादशाह फ़ीरोज़शाह के राज्य पर इसी ने चढ़ाई की थी, जिस के हाल में फ़िरिश्ता लिखता है, कि 'हि० सन् ८०१ (ई० स० १३९८—९९=वि०सं० १४५५) में बीजानगर के राजा देवलराव ने तीस हज़ार सवार, और बहुत बड़ी पैदल सेना के साथ मुद्गल और रायचूर के क़िलों को लेने के लिये शाही मुल्क पर हमला किया था.' फ़िरिश्ता का लिखा हुआ देवलराय हरिहर का पुत्र देवराय था, जो अपने पिता की सेना का मुखिया होना चाहिये. वेदों पर भाष्य लिखनेवाला प्रसिद्ध सायणाचार्य (उपर्युक्त माधव का भाई), जो पहिले कंप के पुत्र संगम का मंत्री था, पीछे से हरिहर का प्रधान मंत्री बना, और अन्त में संन्यासी होकर शृंगेरी मठ में ई० स० १३८७ (वि० सं० १४४४) के क़रीब मरा था. हरिहर दूसरे का देहान्त वि० संवत् १४६१ (ई० स० १४०४) के भाद्रपद मास में हुआ था. इस के तीन पुत्र बुक्क, देवराज, और विरूपाक्ष थे.

५ बुक (नं० ४ का पुत्र)—इस को बुकराय, और वीर प्रताप बुक महाराज भी कहते थे. वि० सं० १४६१ में इस ने राज्य पाया, और वि० सं० १४६३ (ई० स० १४०६) तक इस ने राज्य किया.

६ देवराज (नं० ५ का भाई)—इस को प्रतापदेवराय, और वीर प्रताप-देवराय भी कहते थे. वि० सं० १४६३ (ई० स० १४०६) में इस का राज्याभिषेक हुआ. इस ने मुद्कल के रहनेवाले एक काश्तकार की लड़की की खूबसूरती का हाल सुन कर उस के लिये मुद्कल पर चढ़ाई की, जिस पर बहमनी बादशाह फ़ीरोज़ ने हि० स० ८०९ (ई० स०१४०६=वि० सं० १४६३) में बीजानगर पर चढ़ाई की. वह चार महीने तक उस शहर के निकट पड़ा रहा और घायल हुआ, परन्तु उस शहर को फ़तह न कर सका, लेकिन् आसपास का मुल्क लूटता रहा. अन्त में दोनों के बीच सुलह हो गई. वि० सं० १४६९ (ई० स० १४१२) के क़रीब तक इस ने राज्य किया.

७ वीर विजय (नं० ६ का पुत्र)—इस को विजय तथा प्रताप वीर विजय भी कहते थे. इस के वि० सं० १४८९ (ई० स० १४२२) तक के लेख मिले हैं.

८ देवराज दूसरा (नं० ७ का पुत्र)—इस को वीर देवराज, तथा वीर प्रतापदेवराज भी कहते थे. इस ने बहमनी राज्य पर चढ़ाई कर मुद्कल को जा घेरा, और सागर तथा बीजापुर तक का मुल्क लूटा, जिस पर अलाउद्दीन अहमदशाह बहमनी ने इस पर चढ़ाई की. उस के साथ कई लड़ाइयां हुईं, जिन में पहिले तो देवराज की विजय हुई, परन्तु अन्त में इस को अलाउद्दीन की आधीनता स्वीकार कर सुलह करनी पड़ी. ई० स० १४२० (वि० सं० १४७७) के क़रीब निकोलोडी कान्टी नामक इटली देश का निवासी देवराज के राज्यसमय में विजयनगर आया था, जहां का उस ने बहुत कुछ हाल लिखा है. वह देवराज के विषय में लिखता है, कि इस के ज़नान-

जाने में १२००० स्त्रियां हैं, जिन में से ४००० तो जहां कहीं वह जाता है, पैदल साथ रहती हैं, और २००० या ३००० हज़ार पालकियों में बैठ कर जाती हैं. ई० सन् १४४३ में ईरान के बादशाह शाहरुख का एल्ची अब्दुर्रजाक विजयनगर के दर्बार में आया था. उस ने अपनी पुस्तक में वहां की समृद्धि और सुन्दरता की बहुत कुछ प्रशंसा की है. वह लिखता है कि बीजानगर का राज्य सिंहलद्वीप से गुलबर्गा, और बंगाल से मलबार तक, अर्थात् एक हजार फर्सग (एक फर्सग=करीब ३½ मील) से अधिक विस्तार में है. उस की हद में ३०० अच्छे बन्दरगाह हैं. वहां की सेना में ११००००० आदमी, और १००० हाथी हैं. हिन्दुस्तान में ऐसा बड़ा राज्य दूसरा कोई नहीं है. देवराज के समय के लेख शक संवत् १३६८ (वि० सं० १५०३=ई० स० १४४६) तक के मिले हैं. इस के दो पुत्र मल्लिकार्जुन और विरूपाक्ष थे. देवराज के पीछे का हाल सन्तोषदायक नहीं मिलता.

९ मल्लिकार्जुन (नं० ८ का पुत्र)--इस को वीरप्रतापप्रौढ इंमडिराज भी कहते थे. वि० सं० १५१० (ई० स० १४५३) तक यह विद्यमान था.

१० विरूपाक्ष (नं० ९ का भाई)—वि० सं० १५३५ ई० स० १४७८) तक इस के विद्यमान होने का पता मिलता है.

११ राजशेखर (नं० ९ का पुत्र)—वि० सं० १५४३ (ई० स० १४८६) में यह विद्यमान था.

१२ विरूपाक्ष दूसरा (नं० ११ का छोटा भाई)—फर्नाओ नूनिज़ नामी पुर्तगीज़ इतिहासलेखक, जो विजयनगर में रहा था, अपनी पुस्तक में, जो ई० स० १५३६=वि० सं० १५९३ के करीब बनी थी, लिखता है, कि "विरूपाक्ष कमज़ोर, ज़ालिम, अय्याश, और शराबी राजा था, जिस का बहुत सा इलाक़ा मुसल्मानों ने दबा लिया, और उस की प्रजा उस से नाराज़ थी, जिस से उस के बड़े पुत्र ने उस को मार डाला. फिर उस (बड़े पुत्र) को मार

कर विरूपाक्ष का छोटा पुत्र राजा बना." इस छोटे पुत्र का नाम उक्त लेखक ने पडिआ राव (Padearao) लिखता है, शुद्ध नाम उस का क्या था यह इस से मालूम नहीं हो सकता. ऐसी दशा देख उस के सेनापति नरसिंह ने, जो उस का रिश्तेदार था, दूसरे सर्दारों से मिलावट कर राज्य छीनने के लिये विजयनगर में प्रवेश किया, जिस से वह (Padearao) शहर छोड़ भाग गया, और नरसिंह विजयनगर की गद्दी पर बैठ गया. यह नरसिंह सालुवा वंश का था. उस के विजयनगर का राज्य छीनने का ठीक समय ज्ञात नहीं हुआ, परन्तु वह घटना ई० सन् १४९० (वि०सं० १५४७) के पूर्व हुई थी. विरूपाक्ष के साथ विजयनगर के यादव राज्य की समाप्ति हुई. नूनिज़ जिस विरूपाक्ष का अपने पुत्र के हाथ से मारा जाना लिखता है, वह विरूपाक्ष प्रथम था, या दूसरा इस का ठीक निश्चय नहीं हुआ. यदि वह उक्त नाम का पहिला राजा हो तो हम को यह मानना पड़ेगा कि राजशेखर (नं० १०), और विरूपाक्ष दूसरा (नं० ११) के अधिकार में कुछ इलाका रह गया हो.

(५) गिरनार (जूनागढ़) के चूड़ासमा यादव.

काठियावाड़ में जूनागढ़ (गिरनार पर्वत के पास) में यादवों का राज्य रहा था, जहां के यादव चूड़ासमा कहलाते थे. उन के चूड़ासमा कहलाने का कारण ऐसा मिलता है, कि गजपत (देखो ऊपर टिप्पण नं० ३३) के वंश में नगर ठट्ठे का राजा चूड़ाचन्द्र हुआ, जिस के वंशज चूड़ासमा कहलाये. परन्तु हमारा अनुमान यह है कि समा शाखा के चूड़ाचन्द्र के वंशज चूड़ासमा कहलाये हों. उस (चूड़ाचन्द्र) के लिये यह प्रसिद्ध है कि वह वामनस्थली के चावडा वंशी राजा धलराम का भानजा था, जिस ने उस (चूड़ाचन्द्र) को वामनस्थली का राज्य दिया था.

जूनागढ़ के दीवान अमरजी रणछोड़जी ने करीब १०० वर्ष पहिले तारीख़ सोरठ नामक फ़ारसी किताब लिखी, जिस में गिरनार (जूनागढ़) के चूड़ासमा राजाओं की वंशावली और उन की गद्दीनशीनी

के संवत् नीचे लिखे अनुसार दिये हैं, परन्तु उन में से कितने एक संवत् विश्वास योग्य नहीं है, और राजाओं की नामावली में भी कुछ गड़बड़ है.

नंबर	राज्यपानेका संवत् विक्रमी.	नाम.
१		रा दयात (द्यास)–चूड़ाचन्द्र के पौत्र गारिया से तीसरा वंशधर था. ('रा' इन राजाओं का खिताब था जो राजा का सूचक है).
२	८९४	नवघण (नं०१ का पुत्र).
३	९१६	खंगार (नं० २ का पुत्र).
४	९५२	मूलराज (नं०३ का पुत्र).
५	९८२	राजाजखरा (नं०४ का पुत्र .
६	१००९	नवघण दूसरा (नं० ५ का पुत्र).
७	१०४७	मंडलीक (नं०६ का पुत्र)–महमूद गज़नवी की सोमनाथ की चढ़ाई के वक्त यह (मंडलीक) गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव के साथ रह कर लड़ा था.
८	१०९५	हम्मीरदेव (नं०७ का पुत्र).
९	११०८	विजयपाल (नं० ८ का पुत्र).
१०	११६२	नवघण तीसरा (नं०९ का पुत्र).
११	११८४	मंडलीक दूसरा (नं०१० का पुत्र).
१२	११९५	आल्हन सिंह (नं०११ का पुत्र).
१३	१२०९	धनेड़ या गणेश (नं०१२ का पुत्र).
१४	१२१४	नवघण चौथा.
१५	१२२४	खंगार दूसरा.

१६	१२७०	मंडलीक तीसरा (नं॰ १५ का पुत्र).
१७	१३०२	महीपालदेव, वा रा कवाट (नं॰ १६ का पुत्र
१८	१३३६	खेंगार तीसरा (नं॰ १७ का पुत्र) —इस ने दीवबेट व शंखोद्धार आदि कई एक टापू विजय किये, और सोमनाथ के मन्दिर की मरम्मत करवाई, जिस को मुसल्मानों ने तोड़ डाला था.
१९	१३९०	जयसिंह देव (नं॰ १८ का पुत्र).
२०	१४०२	मुगतसिंह, या मोक्लसिंह (नं॰ १९ का पुत्र).
२१	१४१२	मधुपत्त (नं॰ २० का पुत्र).
२२	१४२१	मंडलीक चौथा (नं॰ २१ का पुत्र).
२३	१४६९	मेलग (नं॰ २२ का भाई).
२४	१४६८	जयसिंह देव (नं॰ २३ का पुत्र).
२५	१४८६	खेंगार चौथा (नं॰ २४ का पुत्र)—सुल्तान अहमद शाह गुजराती ने इस के समय में जूनागढ़ को लूटा.
२६	१४८९	मंडलीक पांचवा—गुजरात के सुल्तान महमूद बेगड़ा ने (वि॰सं॰ १५२८=ई॰ सन् १४७१ में इस को अपने आधीन किया।
२७	१५२९	भूपत (नं॰ २६ का पुत्र).
२८	१५६०	खेंगार पांचवां (नं॰ २७ का पुत्र).
२९	१५८१	नवघण पांचवां (नं॰ २८ का पुत्र).
३०	१६०८	श्रीसिंह (नं॰ २९ का पुत्र).

३१ १६४२ खंगार छठा (नं० ३० का पुत्र)—इस के समय में सुल्तान मुज़फ्फ़र गुजराती ने जूनागढ़ का राज्य तातार खां गोरी के बेटे अमीर ख़ां को जागीर में देदिया, जिस से वहां से यादवों का अधिकार उठगया।

इन्हीं राजाओं के थोड़े से शिलालेख मिले हैं, जिन में वंशावली इस तरह मिलती है :—

१—मंडलीक ; २—नवघण ; ३—महीपाल ; ४—खंगार ; ५—जयसिंह ; ६—मुक्तसिंह या मोकलसिंह, वि० सं० १४४५ में विद्यमान था ; ७—मंडलीक ; ८—मेलिग (मंडलीक का भाई) ; ९—जयसिंह, वि० सं० १४७३ में विद्यमान था ; १०—महीपाल ; और ११—मंडलीक. शिलालेखों का मंडलीक (नं० १), ऊपर लिखी हुई वंशावली का मंडलीक तीसरा (नं० १६) है, और ऊपर लिखी वंशावली में मंडलीक तीसरे के पीछे नवघण का नाम छोड़ दिया है, ऐसे ही मधुपत्त (नं० २१) का नाम सिवाय लिख दिया है. खंगार चौथा शायद महीपाल का दूसरा नाम हो. मंडलीक पांचवें (नं० २६) का विवाह मेवाड़ के प्रसिद्ध महाराणा कुंभा की पुत्री रमाबाई के साथ हुआ था. रमाबाई ने वि० सं० १५५४ (ई० सन् १४९७) में मेवाड़ के जावर नामक नगर में, जो इस समय ऊजड़ पड़ा है, एक कुंड बनवाया था, जो अब तक विद्यमान है, और रमाकुंड कहलाता है.

(६) कच्छ और काठियावाड़ के जाडेजा (जाडेचा) यादव.

जाडेजों के विषय में ऐसी प्रसिद्धि चली आती है कि, ऊपर लिखे हुए शोणितपुर के यादव राजा देवेन्द्र का पौत्र और नरपत का बेटा सामन्त ग़ज़नी छोड़ कर सिन्ध में चला आया. उस के वंश में जामजाडा हुआ, जिस के वंशज जाडेचे या जाडेजे कहलाये. जाडेजों

का विशेष प्राचीन हाल नहीं मिलता. पिछला हाल हिन्द राजस्थान आदि कई पुस्तकों में प्रसिद्ध हो चुका है, इसलिये यहां उस के लिखने की आवश्यकता नहीं है. यादवों की इस जाडेजा शाखा के आधिपत्य में मुख्य कच्छ का राज्य है, और काठियावाड़ में जामनगर (नवानगर), मोरवी, ध्रोल, राजकोट, और गोंडल के राज्य तथा कई छोटे छोटे ठिकाने हैं.

(७) जयसलमेर के भाटी यादव.

इन के विषय में हम जयसलमेर के इतिहास के प्रसंग में लिखेंगे.

(८) करौली के यादव.

प्राचीन काल में मथुरा के यादवों का राज्य दूर दूर तक फैला हुआ था, परन्तु इस वक्त उन का प्राचीन हाल नहीं मिलता. कामवन (कमा) की एक मसजिद में (जो पहिले एक मन्दिर था) ई० सन् की नवीं शताब्दी के आसपास का एक शिलालेख लगा हुआ है, जिस में शूरसेन वंशी यादवों के ये नाम लिखे हैं:—१—फक, २—कुलभट, ३—अजित, ४—दुर्गभट, ५—दुर्गदामा, ६—देवराज, ७—वत्सदामा. आगे और भी नाम हों, परन्तु पत्थर टूट जाने से मालूम नहीं हो सके. मथुरा और महावन से मिले हुए दो शिलालेखों से वि॰सं॰ १२०७ (ई॰ स॰ ११५०) में अजयपाल का, और वि॰ संवत् १२२७ (ई॰स॰ ११७०) में हरिपाल का विद्यमान होना पाया जाता है, परन्तु सिलसिलेवार हाल नहीं मिलता. करौली के यादव मथुरा के यादवों के ही वंशधर हैं. उन की ख्यातों से पाया जाता है, कि राजा विजयपाल मथुरा छोड़ कर मनी पहाड़ को चला गया (जो बयाना के पास है), और वहां पर वि०सं०१०५२ (ई० स० ९९५) में एक क़िला बनवाया (बयाना के बाहिर भिटारी मसजिद में विजयाधिराज का एक शिलालेख वि॰ सं० ११०० (ई॰ स० १०४३) का लगा हुआ है, जो शायद उसी विजयपाल का हो. विजयपाल का ज्येष्ठ पुत्र तवनपाल था, जिस ने तवनगढ़ का क़िला बनाया, और डांग के इलाक़े पर कबज़ा कर लिया. उस का पुत्र धर्मपाल, और उस का कुंवरपाल हुआ,

(१) दिल्ली का तंवर वंश.

नंबर	अबुल्फ़ज़्ल, सय्यद अहमद, और बीकानेर की हस्तलिखितपुस्तकसे-	ग्वालियर की ख्यातसे	कमाऊं, गढ़वाल की ख्यातों से	राज्यसमय. वर्ष.	मास.	दिन.	गद्दीनशीनी ई० सन्
१	अनंगपाल	बीलनदे	०	१८	०	०	७२६
२	वसुदेव	०	०	१९	१	१८	७५४
३	गंगेय	गंगेय	०	२१	३	२८	७७३
४	पृथिवीमल्ल	प्रथम	महीपाल	१९	६	१९	७९४
५	जयदेव	सहदेव	जदुपाल	२०	७	२८	८१४
६	नीरपाल या हीरपाल	इन्द्रजित	नयपाल	१४	[illegible]	९	८३४
७	उदिराज या अदरेह	नरपाल	जयदेव	२६	७	११	८४९
८	विजय या वछ	इन्द्रजित	अमरपाल	२१	२	१३	८७५
९	विच्छ या अनेक	वछराज	विवसपाल	२२	३	१६	८९७
१०	रिक्षपाल	वीरपाल	सुक्तपाल	२१	६	५	९१९
११	सुखपाल या नेकपाल	गोपाल	तेकपाल	२०	४	४	९४०
१२	गोपाल	तिलनदे	महिपाल	१८	३	१५	९६१
१३	सल्लक्षणपाल	सुवरि	सूरसेन	२५	१०	१०	९७९
१४	जयपाल	ओसपाल	जैतपाल	१६	[illegible]	३	१००१
१५	कुंवरपाल	कुमारपाल	०	२९	९	१८	१०२१
१६	अनंग (२रा) या अनेक	अनंगपाल	अनेकपाल	२९	६	१८	१०५१
१७	विजयपाल	तेजपाल	तेजपाल	२४	१	६	१०८१
१८	महत्सल, महीपाल	महीपाल	लूणपाल	२५	२	२३	११०५
१९	अर्कपाल, अजय	मुकुन्दपाल	अनेपाल	२१	२	१५	११३०
२०	पृथिवीराज	पृथिवीराज	०	दिल्ली छीन ली			
				२२	२	१६	११५१

ऊपर जितनी वंशावलियां दर्ज की हैं वे सब भाटों की ख्यातों से ली हुई हैं. अबुलफ़ज़्ल ने भी राजवंशों की जो वंशावलियां अपनी पुस्तक (आईनि अक्बरी) में दर्ज की हैं वे भी भाटों की ख्यातों से ही ली हुई हैं. भाटों की ये ख्यातें इतिहास के लिये कितनी प्रामाणिक हैं यह ऊपर दी हुई वंशावलियों का परस्पर मिलान करने से पाठकों को स्पष्ट हो जायगा. एक वंशावली के नाम दूसरी से ठीक ठीक न मिलने से ही हम उन को विश्वास योग्य नहीं मान सकते, तो भी उन में से कितने एक नाम सही हैं. मिराति मसऊदी में लिखा है कि सालार मसऊद ने दिल्ली पर चढ़ाई की ((ई० स० १०२७ से १०३० के बीच) उस समय वहां का राजा महीपाल था, जिस के पास बड़ी सेना और बहुत से हाथी थे. महीपाल का पुत्र गोपाल उस के साथ की लड़ाई में मारा गया था. दिल्ली बसानेवाले अनंगपाल (दूसरे) के तांबे के सिक्के मिले हैं. अनंगपाल दूसरे के बाद पृथ्वीराज चौहान का दिल्ली पर राज्य होना पृथ्वीराज रासे में लिखा मिलता है. परन्तु मेवाड़ इलाके के बीजोल्यां के पास के एक चटान पर चौहान राजा सोमेश्वर के समय का वि० सं० १२२६ (ई० स० ११७०) का लेख खुदा है. उस में सोमेश्वर के बड़े भाई बीसलदेव का दिल्ली विजय करना लिखा है. चौहानों ने गोद जाकर दिल्ली का राज्य नहीं पाया, किन्तु वि० सं० १२२० में अपने बाहुबल से छीना था.

कुरुक्षेत्र में सरस्वती नदी के निकट पृथुदक (पिहोआ) गांव से एक शिलालेख मिला है. उस में लिखा है, कि 'तोमर (तंवर) वंश में राजा जाऊल हुआ, उस के वंश में वज्रट हुआ, जिस की स्त्री मंगल देवी से जज्जुक नामी पुत्र हुआ, उस के तीन पुत्र गोग्ग, पूर्णराज, और देवराज हुए. इन तीनों भाइयों ने मिल कर महेन्द्रपाल के राज्यसमय में वहां पर विष्णु का मन्दिर बनवा कर तीन गांव उस के भेंट किये थे', महेन्द्रपाल कन्नौज का पड़िहार राजा था, जो वि० स० ९६४ (ई० स० ९०७) तक तो विद्यमान था, अतएव वह मन्दिर उसी समय के क़रीब बना होगा.

जिस के समय में शहाबुद्दीन गोरी ने हि॰ सन् ५९२ (ई०स०११९६= वि॰ सं०१२५३) में बयाना विजय किया, जिस से कुंवरपाल तवनगढ़ (बयाना से १५ मील पर) को चला गया, तवनपाल के वंश में क्रमशः धर्मपाल, कुंवरपाल, सहनपाल, नागार्जुन, पृथ्वीपाल, तिलोकपाल, विपळदेव, सांसदेव, अरसलदेव, और गोकुळदेव हुए. गोकुलदेव के पीछे वि०सं०१३८४ (ई०स०१३२७) में अर्जुनपाल गद्दीनशीन हुआ. उस ने वि॰सं० १४०५ में करौली शहर की नींव डाली. दूसरी ख्यात में विजयपाल से लगाकर अर्जुनपाल तक ये नाम मिलते हैं:—विजयपाल, तहनपाल, धर्मपाल, कुंवरपाल, अजयपाल, हरिपाल, सोहपाल, अनंगपाल, पृथ्विपाल, राजपाल, त्रिलोकपाल, विपलपाल, आसलपाल, गुगोलपाल, और अर्जुनपाल.

यादवों के प्राचीन राज्यों का सविस्तर इतिहास लिखा जावे तो एक बृहत पुस्तक बनजावे. हमारा उद्देश यहां पर उन की वंशावली मात्र देने का है, परन्तु प्रसंगवशात् कहीं कहीं कुछ कुछ ऐतिहासिक वृत्तान्त भी आ गया है.

३६–विक्रमादित्य—प्रसिद्ध विक्रमादित्य किस वंश का था यह निश्चित नहीं है. कोई उस को तंवर और कोई परमार मानते हैं. (देखो प्रकरण पांचवें पर हमारा टिप्पण नं॰ १२).

३७—दिल्ली के बसाये जाने के समय के विषय में मतभेद है. फ़िरिश्ता हि०सन् ३०७ (वि॰ सं॰ ९७७=ई॰ स॰ ९२०) में, और अबुल्फ़ज़ल संवत् ४२९ में उस का बसना मानता है. लेकिन प्रसिद्ध कुतुब मीनार के पास के लोहस्तंभ पर यह लेख खुदा है—"संवत् दिल्ली ११०९ अनंगपाल वही" और उसी मीनार के पास के अनंगपाल के बनवाये हुए मन्दिर के एक स्तंभ पर उस (अनंगपाल) का नाम खुदा हुआ है. इस लिये संभव है, कि अनंगपाल (दूसरे) ने वि॰ सं॰ ११०९ में दिल्ली बसाई हो, और उसी समय वह प्रसिद्ध लोहस्तम्भ (इस स्तम्भ के लिये देखो प्रकरण दूसरे पर हमारा टिप्पण नं ३३), जिस पर गुप्त वंश के प्रतापी राजा चन्द्रगुप्त दूसरे) का लेख खुदा हुआ है, वहां पर खड़ा किया गया हो.

३८—सैलिक क़ानून=फ्रान्स देश का एक प्राचीन क़ानून, जिस के अनुसार स्त्री जाति किसी प्रकार वरासत में जागीर नहीं पा सकती थी. राजपूतों के सैलिक क़ानून का तात्पर्य यही है, कि दौहित्र (पुत्री का सन्तान) अपने नाना के राज्य का मालिक नहीं हो सकता.

३९—पृथ्वीराज अनंगपाल का दौहित्र नहीं था. पृथ्वीराज रासे से पाया जाता है, कि दिल्ली के अन्तिम तंवर राजा अनंगपाल की पुत्री कमलादेवी का विवाह अजमेर के चौहान सोमेश्वर के साथ हुआ, जिस से पृथ्वीराज पैदा हुआ था, जिस को अनंगपाल ने गोद रख दिल्ली का राज्य दे दिया; परन्तु यह सारी कथा कल्पित है. पृथ्वीराज की विद्यमानता में बने हुए पृथ्वीराजविजय काव्य से, जो चौहानों के प्राचीन इतिहास की प्रामाणिक पुस्तक है, पाया जाता है कि सोमेश्वर का विवाह चेदी देश के हैहय (कलचुरि) वंशी राजा की पुत्री कर्पूरदेवी से हुआ था, और इसी कर्पूरदेवी से उस के दो पुत्र पृथ्वीराज, और हरिराज उत्पन्न हुए थे. हमीर महाकाव्य में भी पृथ्वीराज की माता का नाम कर्पूर देवी लिखा है.

४०—तंवरवंश—तंवर को संस्कृत लेखक तोमर लिखते हैं. जातिसूचक तोमर नाम बहुत प्राचीन काल से मिलता है. तंवरों के प्राचीन शिलालेख ताम्रपत्रादि नहीं मिले, जिस से उन की प्राचीन शुद्ध वंशावली तय्यार करने का यत्न सफल नहीं हो सका. प्राचीन काल में उन का राज्य दिल्ली के आसपास के प्रदेश पर था, परन्तु वे बहुत समय तक क़न्नौज के प्रतापी पड़िहार राजाओं के आधीन रहे थे ऐसा पाया जाता है. दिल्ली से उन का राज्य छूटने के बहुत पीछे उन का राज्य ग्वालियर में रहा था. दिल्ली के तंवरों की जो वंशावली जेनरल कनिंगम साहिब ने अपनी पुस्तक आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया की पहिली जिल्द के पृष्ठ १४९ में दी है उसी को हम यहां पर उद्धृत करते हैं.

(२) ग्वालियर के तंवर.

ग्वालियर के तंवर दिल्ली के तंवरों के ही वंशज हैं. दिल्ली का राज्य चौहानों के हाथ में चले जाने बाद वे ग्वालियर के इलाके में जा रहे हों यह संभव है. वहां के तंवर राजाओं की वंशावली नीचे लिखे अनुसार मिली है:—

१ वीरसिंह—यह दिल्ली के बादशाह की सेवा में रह कर ग्वालियर का क़िलेदार नियत हुआ था; परन्तु वहां के सय्यद क़िलेदार ने इस को क़िला सौंपने से इनकार किया, जिस पर इस (वीरसिंह) ने उस से मित्रता बढ़ाने का यत्न किया, और उस को अपने यहां मिहमान कर नशीली चीज़ें मिली हुई भोजन कराया; और जब वह बेहोश हो गया तो उस को क़ैद कर क़िले पर अपना अधिकार कर लिया. इस का समय सं० १४३२ मिलता है.

२ उद्धरण (नं० १ का पुत्र).

३ वीरम (नं० २ का पुत्र) इस के समय हि० सन् ८०५ (वि० सं० १४६२=ई० स०१४०५) में मल्लू इक़्बाल ख़ां ने ग्वालियर पर चढ़ाई की, परन्तु उस को निराश होकर दिल्ली लौटना पड़ा. उस ने दूसरी बार फिर ग्वालियर पर घेरा डाला, परन्तु दूसरी बार भी आसपास के मुल्क को लूट कर दिल्ली का रास्ता लेना पड़ा.

४ गणपति (नं० ३ का पुत्र)–इस ने वि० सं० १४८१ से १५११ (ई० सन् १४२४ से १४५४) तक राज्य किया होगा.

५ डूंगरसिंह (नं० ४ का पुत्र) इस ने मांडू के सुलतान महमूद ख़िल्जी के आधीन के नरवर के क़िले को छीनने की इच्छा से उस पर घेरा डाला, जिस से सुलतान ने ग्वालियर पर चढ़ाई की. यह ख़बर सुन कर डूंगरसिंह ग्वालियर को चला, परन्तु इस के पहुंचने के पहिले ही सुलतान ग्वालियर को विजय किये बिना मांडू को लौट गया. इस के समय के लेख वि० सं० १४९७ से १५१० (ई० स० १४४० से १४५३) तक के मिले हैं.

६ कीर्तिसिंह—हि० स० ८५६ (वि० सं० १५०९=ई० स० १४५२) में जौनपुर के सुलतान महमूदशाह शर्की और दिल्ली के बादशाह बहलोल लोदी के बीच लड़ाई हुई, उस में यह (कीर्तिसिंह), और इस का भाई पृथ्वीराज बहलोल लोदी के सहायक थे. इस लड़ाई में पृथ्वीराज महमूदशाह के सेनापति फ़तहखां हार्वी के हाथ से मारा गया था ; परन्तु महमूदशाह की सेना के भागने के समय कीर्ति सिंह ने अपने भाई के बैर में फ़तह खां का मस्तक काट बहलोल लोदी के पास भेजा था. हि० स० ८७० (वि० सं० १५२२=ई० स० १४६५) में उक्त महमूदशाह के पुत्र सुलतान हुसेनशाह ने ग्वालियर पर बड़ी सेना भेजी, उस समय से कीर्तिसिंह दिल्ली का पक्ष छोड़ जौनपुरवालों का सहायक बन गया. हि० स० ८८३ (वि० सं० १५३५=ई० स० १४७८) में सुलतान हुसैनशाह बहलोल लोदी से हार कर अपना माल असबाब व स्त्री आदि को छोड़ भागता हुआ कीर्तिसिंह की शरण में ग्वालियर आया तो इस ने द्रव्यादि से उस की बहुत कुछ सहायता की इतना ही नहीं, किन्तु उस को कालपी तक कुशलता के साथ पहुंचा आया था. इस के समय के दो लेख वि० सं० १५२५ और १५३० (ई० स० १४६८ और १४७३) के मिले हैं. इस का देहान्त वि० सं० १५३६ (ई० स १४७९) में हुआ.

७ कल्याणमल्ल (नं० ६ का पुत्र)—इस ने वि० संवत् १५४३ (ई० स० १४८६) तक राज्य किया.

८ मानसिंह (नं० ७ का पुत्र)—इस को मानसाही भी कहते थे. इस के समय बहलोल लोदी ने एक बार, और उस के पुत्र सिकन्दर लोदी ने दो बार ग्वालियर पर चढ़ाई की, परन्तु वे वहां के राजा को पूरे तौर से आधीन न कर सके. मान सिंह के देहान्त के थोड़े ही दिनों पूर्व इब्राहीमलोदी ने भी ग्वालियर पर चढ़ाई की, उसी अरसे में मानसिंह का देहान्त हो गया. यह राजा बुद्धिमान, बड़ा बहादुर, शिल्प की उन्नति करनेवाला, और संगीत शास्त्र

का अद्वितीय ज्ञाता था. अपनी एक राणी गूजरी के नाम पर इस ने गूजरी, बहुलगूजरी, मालगूजरी, और मंगलगूजरी नाम की चार रागिनियां बनाई ऐसा प्रसिद्ध है.

९ विक्रमादित्य (नं० ८ का पुत्र)—इस को विक्रम साही भी कहते थे. यह राज्यसिंहासन पर बैठा उस समय ग्वालियर का क़िला शाही प्रबल सैन्य से घिरा हुआ था. एक वर्ष तक लड़ते रहने के बाद विक्रमादित्य अपने अनुकूल शर्तें स्वीकार होजाने से शरण होगया, तब बादशाह इब्राहीमलोदी ने शम्साबाद का इलाक़ा इस को जागीर में दिया, और ग्वालियर पर पीछा मुसल्मानों का अधिकार हो गया. ई० सन् १५२६ (वि० सं० १५६९) में विक्रमादित्य इब्राहीम लोदी की मदद पर पानीपत की लड़ाई में बाबर बादशाह से लड़कर काम आया. बाबर ने पानीपत की लड़ाई में विजय पाकर दिल्ली पर अपना अधिकार जमाया, और अपने पुत्र हुमायूं को आगरे भेजा, जहां पर विक्रमादित्य की राणियां व बालबच्चे वग़ैरा थे. उन को वहां से भागने की कोशिश करते हुए हुमायूं ने पकड़ लिया, परन्तु उन प्राचीन घराने के राजकुटुंबियों के साथ उस ने बहुत ही अच्छा बर्ताव किया, जिस के बदले में राणियों ने बहुत से रत्न उस के नज़र किये, जिन में एक बड़ा हीरा ३२० रत्ती का था, जिस के विषय में ऐसी प्रसिद्धि है, कि यह हीरा पहिले मांडू के सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के पास था.

१० रामसाह (नं० ९ का पुत्र)—विक्रमादित्य ने ग्वालियर का क़िला छोड़ दिया था, परन्तु कीर्तिसिंह (नं० ६) का छोटा पुत्र (शायद वंशज) मंगलराय, जो तोमरगढ़ आदि १२० गांवों का जागीरदार था, उस के लिये बराबर लड़ता रहा. रामसाह भी उस पर पीछा अपना अधिकार करना चाहता था; परन्तु उस में सफलता प्राप्त न होने से ही यह (रामसाह) हुमायूं के शत्रु शेरशाह का सहायक बना, और इसी (रामसाह) की सहायता से शेरशाह के सेनापति शुजाख़ां ने मालवा विजय किया था. अकबर की गद्दीनशीनी

के वक्त ग्वालियर का हाकिम सुहेलखां था, जिस को शेरशाह के पुत्र इस्लामशाह ने नियत किया था. ई० स० १५५६ (वि० सं० १६१३) में अकबर ने ग्वालियर पर चढ़ाई करने का प्रबन्ध किया, जिस से घबरा कर सुहेल खां ने ग्वालियर का क़िला रामसाह के सुपुर्द करना चाहा. रामसाह उस के लिये वहां गया, लेकिन् अकबर के सर्दार इक़बाल खां से हारकर अपने तीन पुत्रों (शालिवाहन, भवानी सिंह, और प्रतापसिंह) सहित मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह के पास चला गया, और वि० सं० १६३३ (ई० स० १५७६) में महाराणा प्रताप सिंह के पक्ष में रहकर हलदीघाटी की प्रसिद्ध लड़ाई में अकबर की सेना से लड़कर अपने दो पुत्रों सहित काम आया, केवल उस का एक पुत्र शालिवाहन बचने पाया. शालिवाहन के दो पुत्र श्यामसाह और मित्रसेन अकबर की सेवा में थे, ऐसा रोहतासगढ़ से मिले हुए वि० सं० १६८८ (ई० स० १६३१) के लेख से पाया जाता है. श्याम-साह के दो पुत्र संग्रामसाही, और नारायणदास हुए. संग्रामसाही का पुत्र किशन सिंह, और उस (किशन सिंह) के दो पुत्र विजय सिंह और हरिसिंह हुए, जो मेवाड़ के महाराणा के पास जा रहे थे. विजय सिंह का देहान्त वि० सं० १७८१ में हुआ था.

४१–टिटन—पुरानी कथाओं के अनुसार महाकाय पुरुष; राक्षस.

४२–कुशिक—विश्वामित्र का दादा. राठौड़ अपने तई रामचन्द्र के ज्येष्ठ पुत्र कुश के वंशज मानते हैं, नकि कुशिक के.

४३–राठौड़ों का ई० सन् की पांचवीं शताब्दी में क़नौज पर राज्य करना नहीं पाया जाता. ग्यारहवीं शताब्दी में उन का राज्य क़नौज पर हुआ था (देखो प्रकरण चौथे पर हमारा टिप्पण नं० १७).

४४–बल्लिकराय–टॉड साहिब यहां पर बल्लिकराय नाम (ख़िताब) का प्रयोग अनहिलवाड़ा के सोलंकियों के लिये करते हैं, परन्तु वहां के सोलंकियों ने कभी यह नाम धारण नहीं किया था. टॉड साहिब ने वल्लभीपुर (काठियावाड़ में) के राजाओं के लिये भी इस शब्द का

प्रयोग किया है, और वहां पर पीछे से जिन जिन का राज्य रहा उन को भी बलिकराय लिख दिया है; परन्तु ऐसा मानने के लिये कोई प्रमाण नहीं है.

४५–कन्नौज के अन्तिम राजा जयचन्द के पुत्र का नाम ख्यातों में कहीं बरदाई सेन और कहीं सिया मिलता है, परन्तु जयचन्द के ताम्रपत्रों में उस का नाम हरिश्चन्द्र मिलता है. टॉड साहिब यहां तो सिया को जयचंद का पुत्र लिखते हैं, परन्तु दूसरे स्थल में उन्हों ने पौत्र माना है.

४६–राठौड़वंश—संस्कृत शिलालेखों, ताम्रपत्रों, और पुस्तकों में राठोड़ों के लिये बहुधा राष्ट्रकूट शब्द मिलता है, और कहीं रट्ट या राष्ट्रौड़. राठौड़ों का प्रथम उत्तर से दक्षिण में जाना, और फिर वहां से उत्तर में आना पाया जाता है, और ऐसा ही राठौड़ मानते हैं. दक्षिण के राठोड़ों के कितने एक ताम्रपत्रों में उन का यादववंशी होना लिखा है, और ऐसा ही हलायुध पंडित अपनी कविरहस्य नामक पुस्तक में लिखता है, कन्नौज के अन्तिम और प्रसिद्ध राजा जयचन्द के पूर्वजों के ताम्रपत्रों में उन का सूर्यवंशी होना लिखा है, परन्तु उन में उन के वंश का नाम राष्ट्रकूट (राठौड़) नहीं, किन्तु गाहडवाल (गहरवाल) लिखा है. (गाहडवाल राठौड़ों की एक शाखा मानी जाती है, जैसे कि देवड़ा, हाड़ा, सोनिगरा आदि चौहानों की). प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र आदि से राठौड़ों के भिन्न भिन्न राज्यों की जो वंशावलियां प्राप्त होती हैं उन्हें हम यहां पर उद्धृत करते हैं :—

(१) दक्षिण के राठौड़.

सोलंकियों के लेखादि से पाया जाता है, कि दक्षिण में सोलंकियों का राज्य कायम करनेवाले जयसिंह राठौड़ कृष्ण के पुत्र इन्द्र से दक्षिण का राज्य छीना था, जिस (इन्द्र) के सैन्य में ८०० हाथी थे. इस से निश्चित है कि जयसिंह के पूर्व अर्थात् ई० सन् की पांचवीं शताब्दी के अन्त के आस पास दक्षिण में राठौड़ राज्य करते थे, परन्तु उन का राज्य सोलंकियों के हाथ में चला गया. इन्द्र के पीछे की

कईएक पीढ़ियों के नाम नहीं मिलते. फिर दन्तिवर्मा से उन की वंशावली शृंखलाबद्ध मिलती है, जो नीचे लिखे अनुसार है:—

१ दन्तिवर्मा (उपर्युक्त कृष्ण के पुत्र इन्द्र का वंशज)-ई० सन् की सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इस का होना अनुमान किया जाता है.

२ इन्द्रराज (नं० १ का पुत्र).

३ गोविन्दराज (नं० २ का पुत्र)-दक्षिण के सोलंकी प्रतापी राजा पुलकेशी दूसरे के राज्य पाने के समय गोविन्दराज ने अपने पूर्वजों का राज्य लौटा लेने का उद्योग किया हो ऐसा पाया जाता है.

४ कर्कराज या कक्कराज (नं० ३ का पुत्र)-इस के दो पुत्र इन्द्रराज, और कृष्णराज थे.

५ इन्द्रराज दूसरा—इस की राणी सोलंकीवंश की थी.

६ दन्तिदुर्ग (नं० ५ का पुत्र)—यह प्रतापी राजा हुआ. इस ने वि० संवत् ८१० (ई० सन् ७५३) से कुछ पहिले सोलंकी राजा कीर्त्तिवर्मा (दूसरे) से उस के राज्य का बड़ा हिस्सा छीन कर दक्षिण में राठौड़ों का राज्य फिर से स्थापन किया. उत्तर में लाट देश (दक्षिणी गुजरात) तक का सारा प्रदेश अपने आधीन किया, और 'राजाधिराज' तथा 'परमेश्वर' बिरुद धारण किये. दक्षिण के सोलंकियों का मुख्य बिरुद 'वल्लभ' था, जिस को उन का राज्य छीनने बाद राठौड़ों ने धारण किया था. इसी से राठौड़ों के राज्य समय में जो अरब मुसाफिर हिन्दुस्तान में आये उन्हों ने राठौड़ों को 'बलहारा' कर के लिखा है, जो 'वल्लभराज' के लौकिक रूप 'वल्लराय' का बिगड़ा हुआ रूप है.

७ कृष्णराज (नं० ६ का उत्तराधिकारी)—इस के खिताब अकाल-वर्ष, और शुभतुंग थे. इस ने दक्षिण के सोलंकियों का रहा सहा राज्य भी अपने आधीन कर लिया, और राहप्प नाम के राजा को विजय किया था. दक्षिण की प्रसिद्ध इलोरा की गुफा में

जो कैलॉस नामक भव्य मन्दिर पर्वत को काट कर बनाया गया है वह इसी (कृष्णराज) का बनवाया हुआ है, और शिल्पकारी का एक उत्तम नमूना है. इस के दो पुत्र गोविन्दराज और ध्रुवराज थे. .

८ गोविन्दराज दूसरा (नं० ७ का पुत्र)—यह भोगविलास में लीन रहता था, जिस से इस के छोटे भाई ध्रुवराज ने इस का राज्य छीन लिया. शक सं० ७०१ (वि० सं० ८३६=ई० स० ७७९) तक इस के राज्य करने का निश्चितरूप से पता चलता है. इस के पीछे किसी समय में ध्रुवराज के इस का राज्य छीना हो.

९ ध्रुवराज (नं०८ का छोटा भाई)—इस के बिरुद निरुपम और धारावर्ष थे. इस ने गौड़ों पर विजय पानेवाले पडिहार वत्सराज को मारवाड़ में भगाया था. इस ने उत्तर में अयोध्या तक और दक्षिण में कांची तक विजय प्राप्त की थी. इस के कई पुत्र थे, जिन में बड़ा गोविन्दराज, और दूसरे पुत्रों में से एक इन्द्रराज था.

१० गोविन्दराज तीसरा (नं० ९ का पुत्र)—इस ने जगत्तुंग, और प्रभूतवर्ष खिताब धारण किये थे. यह वीरप्रकृति का राजा था. इस ने अपने कुंवरपदे के वक्त भी कई लड़ाइयों में विजय पाई थी. इस ने लाटदेश का राज्य अपने छोटे भाई इन्द्रराज को दिया था. लाट से लगा कर दक्षिण में करीब करीब रामेश्वर तक का प्रदेश इस के अधिकार में था. वि० सं० ८७२ (ई० सन् ८१५) तक इस ने राज्य किया.

११ अमोघवर्ष, या शर्व (नं० १० का पुत्र)—इस के बिरुद वीरनारायण, नृपतुंग आदि मिलते हैं. इस ने बाल्यावस्था में राज्य पाया था. पूर्वी सोलंकी राजा विजयादित्य से, जो राठौड़ राज्य को लेना चाहता था, अमोघवर्ष कई लड़ाइयां लड़ा था. अमोघवर्ष ने मान्यखेट (मालखेट-निज़ामराज्य में) नगर को अपनी राजधानी बनाया था, और ६३ वर्ष के करीब इस ने राज्य किया था. यह स्वयम् विद्वान, और विद्वानों का आश्रय-

दाता था। इस की बनाईहुई प्रश्नोत्तररत्नमालिका नामक पुस्तक छोटी होने पर भी वास्तव में रत्नमाला के समान कंठ में धारण करने योग्य है. कोई इस पुस्तक को शंकराचार्य की रचना, और कोई श्वेतांबर जैन विमलाचार्य कृत बतलाते हैं; परन्तु एक दिगंबर जैन भंडार से मिली हुई हस्तलिखित प्रति में स्पष्ट लिखा है, कि 'विवेक (वृद्धावस्था में) से राज्य छोड़नेवाले राजा अमोघवर्ष ने इस की रचना की थी.' प्राचीन समय में इस पुस्तक का तिब्बती भाषा में अनुवाद हुआ था, उस में भी उस के कर्त्ता का नाम राजा अमोघवर्ष मिलता है. इस ने कविराज मार्ग नामक अलंकार की एक पुस्तक कनाड़ी भाषा में भी बनाया था, जिस में कई जगह अपना मत भी प्रगट किया है। इस के राज्यसमय में दिगम्बर जैन विद्वानों का बहुत कुछ सम्मान हुआ। आदिपुराण, तथा पार्श्वाभ्युदय आदि जैनग्रन्थों का कर्त्ता, जिनसेन अपने तईं अमोघवर्ष का परम गुरु लिखता है. वि० सं० ९३४ (ई० सन् ८७७) तक इस का विद्यमान होना पाया जाता है.

१२ कृष्णराज दूसरा (नं० ११ का पुत्र)—इस का खिताब अकालवर्ष था। यह अपने पिता की विद्यमानता में वि० सं० ९३२ (ई० स० ८७५) के पूर्व से राज्य करने लगा था। इस ने गंगों तट तक के मुल्कों पर चढ़ाइयां की थीं. इस का विवाह चेदीदेश के हैहय (कलचुरि) वंशी राजा कोकल्ल की पुत्री से हुआ, जिस से जगत्तुंग नामक पुत्र हुआ था, जिस का देहान्त कृष्णराज की मौजूदगी में ही हो गया था। वि० सं० ९६८ (ई० स० ९११) तक के उस के लेख मिले हैं.

१३ इन्द्रराज तीसरा (नं० १२ का पौत्र, और जगत्तुंग का पुत्र)—इस का खिताब नित्यवर्ष मिलता है. यह वि० सं० ९७१ (ई० स० ९१४) के पूर्व राज्यसिंहासन पर बैठा था। इस ने कन्नौज के पड़िहार राजा महीपाल (क्षितिपाल) को हराकर उस की राजधानी कन्नौज छीन ली थी; परन्तु महीपाल दूसरे राजाओं

की मदद पाकर पीछा कन्नौज का राजा बन गया था. इन्द्रराज का विवाह हैहय (कलचुरि) वंशी राजा कोकल्ल के पौत्र, और अर्जुन के बेटे अम्मण की पुत्री विजांबा से हुआ था. वि० सं० ९७३ (ई० स० ९१६) के आसपास इस का देहान्त हुआ था.

१४ अमोघवर्ष दूसरा (नं० १३ का पुत्र)—इस ने एक वर्ष ही राज्य किया.

१५ गोविन्दराज चौथा (नं० १४ का छोटा भाई)—इस को प्रभूतवर्ष, सुवर्णवर्ष, और साहसांक भी कहते थे. यह राजा विषयासक्त था. वि० सं० ९९० (ई० सन् ९३३) तक इस के विद्यमान होने का पता चलता है.

१६ अमोघवर्ष तीसरा (नं० १३ का छोटा भाई)-इस को वद्दिग भी कहते थे. इस का विवाह हैहय (कलचुरि) वंशी राजा युवराज की पुत्री कुंदक देवी से हुआ था. इस के चार पुत्र कृष्णराज, जगत्तुंग, खोट्टिग, और निरुपम थे.

१७ कृष्णराज तीसरा (नं० १६ का पुत्र) – इस का विरुद अकालवर्ष मिलता है. यह बड़ा पराक्रमी राजा हुआ. इस ने दंतिग, और वप्पुग को मारा; गंगावंशी राचमल्ल को पदच्युत कर उस के स्थान पर बूतग (भूतार्य) को राजा बनाया; पल्लववंशी अण्णिग को हराया, तक्कोल की लड़ाई में चोल के राजा राजादित्य को मारा, और चेदी देश के राजा सहस्रार्जुन को जीता था. इस के समय के लेखादि वि० स० ९९७ से १०१८ (ई० स० ९४० से० ९६१) तक के मिले हैं.

१८ खोट्टिग (नं० १७ का छोटा भाई)—इस को नित्यवर्ष भी कहते थे. मालवा के परमार राजा श्रीहर्ष (सीयक) ने वि० सं० १०२९ (ई० स० ९७२) में इस को परास्त कर इस की राजधानी मान्यखेट को लूटा, और उसी अरसे में इस (खोट्टिग) का देहान्त हुआ.

१९ कर्कराज दूसरा (नं० १८ के छोटे भाई निरुपम का पुत्र)-इस को

वल्लभ, नृपतुंग, और अमोघवर्ष भी कहते थे. वि० सं० १०३० (ई० स० ९७३) में सोलंकी तैलप ने इस का राज्य छीन लिया.

अरब मुसाफ़िरों ने मान्यखेट के इन राठौड़ राजाओं को 'बलहरा' कर के लिखा है. सिलसिलुत्तवारीख़ नाम की किताब जो सुलैमान नामी एक व्यापारी ने हि० स० २३७ (वि० सं० ९०८=ई० स० ८५१) में लिखी उस में वह बलहराओं (राठौड़ों) के विषय में लिखता है, कि "हिन्दुस्तान और चीन के लोग मानते हैं, कि दुन्या में चार बड़े बादशाह हैं, उन में पहिला अरबों का बादशाह (बग़दाद का ख़लीफ़ा), दूसरा चीन का, तीसरा यूनान का और चौथा बलहरा गिना जाता है. बलहरा हिन्दुस्तान के राजाओं में सब से अधिक प्रसिद्ध है. जब वह अपने वकीलों को दूसरे राजाओं के यहां भेजता है, तो बलहरा की इज़्ज़त के ख़ातिर वे वकीलों का बड़ा सम्मान करते हैं. अरबों की नाईं वह अपनी फ़ौज की तन्ख़ाह वक़ पर दे देता है. उस के पास बहुत से हाथी, घोड़े और बड़ी दौलत है. बलहरा किसी का ख़ास नाम नहीं है, किन्तु उस ख़ानदान के सब राजाओं का ख़िताब है. बलहरा का राज्य कोंकण से लगा कर चीन की सरहद तक फैला हुआ है." (इस में अतिशयोक्ति है). यह वृत्तान्त राजा अमोघवर्ष पहिले के समय का लिखा हुआ है. इब्निख़ुर्दाद ने हि० स० ३०० (वि० सं० ९६९=ई० स० ९१२) में 'किताबुलमसालिकवुल ममालिक' लिखी जिस में लिखा है, कि हिन्दुस्तान में सब से बड़ा राजा बलहरा है. इस की अंगूठी में यह खुदा रहता है, कि 'जो काम दृढ़ता के साथ प्रारंभ किया जाता है वह सफलता के साथ समाप्त होता है'. अलमसऊदी ने हि० स० ३३२ (वि० सं० १००१=ई० स० ९४४) में 'मुरूजुल्ज़हब' नामक किताब बनाई, जिस में वह लिखता है, कि 'इस समय हिन्दुस्तान के राजाओं में सब से बड़ा मानकेर (मान्यखेट) नगर का राजा बलहरा है. हिन्दुस्तान के बहुत से राजा उस को अपना मालिक मानते हैं. उस के पास हाथी और लश्कर असंख्य हैं. लश्कर अधिकतर पैदल है, क्योंकि उस की राजधानी पहाड़ों में है."

नहीं मिला, जिस से पाया जाता है, कि देवगिरि के यादव राजा सिंघण ने इस का राज्य छीन लिया हो.

(३) लाट देश के राठौड़.

पहिली शाखा :—

दन्तिदुर्ग ने सोलंकी कीर्त्तिवर्म्मा दूसरे का राज्य छीना उस समय से लाट (दक्षिणी गुजरात) देश पर भी राठौड़ों का अधिकार हो गया था. दंतिदुर्ग ने अपने कुटुंबी कर्कराज (दूसरे) को वहां पर भी जागीर दी हो, ऐसा उस (कर्कराज) के ताम्रपत्र से अनुमान होता है. उस में उस के पूर्वजों की नामावली इस तरह मिलती है.

१ कर्कराज (ऊपर लिखे हुए दक्षिण के राठौड़ों की वंशावली का कर्कराज, जो नं० ४ पर है, होना चाहिये).

२ ध्रुवराज नं० १ का पुत्र).

३ गोविन्दराज (नं० २ का पुत्र)—नागवर्मा की पुत्री से इस का विवाह हुआ था.

४—कर्कराज दूसरा—वि० सं० ८१४ (ई० स० ७५७) में विद्यमान था. इस के पीछे इस के वंश का पता नहीं चलता.

दूसरी शाखा :—

दक्षिण के राठौड़ राजा गोविन्दराज तीसरे (नं० १०) ने अपने छोटे भाई इन्द्रराज को लाट देश का राज्य दिया. उस के वंशजों की नामावली नीचे लिखे अनुसार मिलती है :—

१ इन्द्रराज.

२ कर्कराज (नं० १ का भाई)—इस का खिताब सुवर्णवर्ष था. पढिहारों की चढ़ाई से मालवा के राजा को बचाने के लिये यह गया था, और दक्षिण के बालक राजा अमोघवर्ष (प्रथम) का राज्य पूर्वी सोलंकी तथा राठौड़ सामन्त दबाना चाहते थे उन के साथ की लड़ाइयों में इस (कर्कराज) ने अमोघवर्ष की अच्छी सेवा की थी. वि० सं० ८७३ (ई० स० ८१६) तक इस के विद्यमान होने का पता चलता है.

३ गोविन्दराज (नं० २ का छोटा भाई)—इस का बिरुद प्रभूतवर्ष मिलता है. इस के बड़े भाई कर्कराज के देहान्त समय उस के पुत्र ध्रुवराज के बालक होने के कारण यह राजा बन गया हो ऐसा अनुमान होता है. इस का आखरी ताम्रपत्र वि० सं० ८८४ (ई० सन् ८२७) का मिला है.

४ ध्रुवराज (नं० २ का पुत्र)-इस के बिरुद निरुपम, और धारावर्ष मिलते हैं. इस का एक ताम्रपत्र वि० सं० ८९२ (ई० स० ८३५) का मिला है.

५ अकालवर्ष (नं० ४ का पुत्र)-इस का खिताब शुभतुंग मिलता है. इस के तीन पुत्र ध्रुवराज, दन्तिवर्मा, और गोविन्दराज थे.

६ ध्रुवराज दूसरा (नं० ५ का पुत्र)-इस ने धारावर्ष, और निरुपम बिरुद धारण किये थे. यह बड़ा पराक्रमी राजा हुआ. कन्नौज के पड़िहार राजा भोजदेव को, जिसे मिहिर भी कहते थे, इस ने हराया था. इस का एक ताम्रपत्र वि० सं० ९२४ (ई० स० ८६७) का मिला है.

७ दन्तिवर्मा (नं० ६ का छोटा भाई)—इस ने अपरिमितवर्ष बिरुद धारण किया था. इस ने अपने बड़े भाई ध्रुवराज के समय वि० सं० ९२४ (ई० स० ८६७) में एक गांव कांपिल्यतीर्थ के बौद्ध मठ को भेट किया था.

८ कृष्णराज (नं० ७ का पुत्र)—इस का बिरुद अकालवर्ष मिलता है. इस का एक ताम्रपत्र वि० सं० ९४५ (ई० स० ८८८) का मिला है. इस के समय में दक्षिण के राठौड़ राजा कृष्णराज दूसरे ने गुजरात के राठौड़ों का राज्य अपने राज्य में मिला लिया हो ऐसा पाया जाता है.

(४) राजपूताना के पहिले के राठौड़.

कन्नौज के अन्तिम राठौड़ (गाहड़वाल) राजा जयचन्द के वंशजों ने राजपूताना में राठौड़ों के राज्य की नीव डाली ऐसी प्रसिद्धि है. परन्तु इस के बहुत पूर्व राठौड़ों का राजपूताना में हस्तुंडी (जोधपुर राज्य

में), और धनोप (शाहपुरा के पट्टे में) में राज्य करना पाया जाता है. ये राठोड़ गुजरात के राठोड़ों की नाईं दक्षिण के राठोड़ों के ही वंशज हों ऐसा अनुमान होता है.

हटुंदी के राठोड़ :—

१ हरिवर्मा.

२ विदग्धराज (नं० १ का पुत्र)--वि० सं० ९७३ (ई० स० ९१६) में यह विद्यमान था.

३ मम्मट (नं० २ का पुत्र)—वि० सं० ९९६ (ई० स० ९३९ में यह मौजूद था.

४ धवल (नं० ३ का पुत्र)–मालवा के परमार राजा मुंज ने मेवाड़ पर चढ़ाई की उस समय यह लड़ा था, दुर्लभराज (सांभर के चौहान) से महेन्द्र (नाडोल के चौहान) को बचाया, और धरणीवराह (मारवाड़ का परमार राजा हो) को आश्रय दिया था, जिस को मूलराज (गुजरात का सोलंकी राजा) जड़ से उखेड़ना चाहता था. इस ने वृद्धावस्था के कारण अपना राज्य अपने पुत्र बालप्रसाद को सौंप दिया था, और वि० सं० १०५३ तक यह विद्यमान था. इस की राजधानी हस्तिकुंडी (हथूंडी) थी.

५ बालप्रसाद (नं० ४ का पुत्र).

कितने एक वर्षों पहिले धनोप से राठोड़ों के दो शिलालेख मिले थे, जिन का अब पता नहीं है. उन में से एक वि० सं० १०६३ पौष शुक्ला ५ का था. उस में लिखा है कि राठोड़ वंश में राजा भल्लील (यह नाम शुद्ध पढ़ा नहीं गया) हुआ उस का पुत्र दन्तिवर्मा था, जिस के दो पुत्र बुद्धराज, और गोविन्द थे. बंबई इहाते के धारवाड़ ज़िले के गदग तअल्लुके के नीलगुंड नामक गांव से मिले हुए दक्षिण के राठोड़ राजा अमोघवर्ष पहिले के समय के वि०सं० ९१३ के लेख में उस (अमोघवर्ष) के पिता गोविन्दराज तीसरे के वर्णन में लिखा है कि 'उस ने केरल, मालव, गौड़, गुर्जर, और चित्रकूट (चित्तौड़) के पहाड़ी किले तथा कांची के राजा को जीता था.' इस से अनुमान

होता है कि धनोप के राठौड़ दक्षिण के राठौड़ के वंशज हों, और उन के नाम भी इसी की पुष्टि करते हैं.

(५) सेंट्रल इंडिया और मध्यप्रान्तों के राठौड़.

मध्यप्रान्तों के बेटूल पर्गने के मूलताई गांव से एक ताम्रपत्र राठौड़ राजा नन्दराज का मिला है, जिस में उस के पूर्वजों की नामावली इस तरह मिलती है:—

१ दुर्गराज.
२ गोविन्दराज (नं० १ का पुत्र).
३ स्वामिकराज (नं० २ का पुत्र).
४ नंदराज (नं० ३ का पुत्र)—इस को युद्धशूर भी कहते थे. वि० सं० ७६६ (ई० स० ९०७) में यह विद्यमान था.

ये राठौड़ भी दक्षिण के राठौड़ों के वंशज होने चाहियें.

एक ताम्रपत्र राठौड़ राजा अभिमन्यु का मिला है, जिस में संवत् नहीं है, परन्तु उस की लिपि ई० सन् की सातवीं शताब्दी की हो ऐसा पाया जाता है. उस में नीचे लिखे हुए नाम मिलते हैं:—

१ मानांक.
२ देवराज (नं०१ का पुत्र)—इस के तीन पुत्र थे.
३ भविष्य (नं० २ का पुत्र).
४ अभिमन्यु (नं० ३ का पुत्र)—यह मानपुर में रहता था. इस ने जटामार साधु को उंडिकवाटिका गांव दिया था. उक्त ताम्रपत्र में लिखा हुआ मानपुर शायद बांधोगढ़ (रीवांराज्य में) के पास का मानपुर हो. सेंट्रल इंडिया की भोपाल एजेन्सी के पथारी गांव से एक बिगड़ी हुई दशा का शिलालेख राठौड़ परबल का वि० सं० ९१७ का मिला है, जिस में जेज्ज, कर्कराज (नागावलोक राजा को हरानेवाला), और परबल के नाम पढ़े जाते हैं.

(६) बदायूं के राठौड़.

बदायूं के पुराने किले के पास से राठौड़ों का एक शिलालेख

मिला है, जिस की लिपि ई० सन् की तेरहवीं शताब्दी की पाई जाती है. उस में वहां के राठौड़ों की वंशावली इस प्रकार मिलती है:—

१ चन्द्र.
२ विग्रहपाल (नं १ का पुत्र .
३ भुवनपाल (नं० २ का पुत्र).
४ गोपाल (नं० ३ का पुत्र)—इस के तीन पुत्र त्रिभुवनपाल, मदनपाल, और देवपाल हुए.
५ त्रिभुवनपाल (नं० ४ का पुत्र).
६ मदनपाल (नं० ५ का छोटा भाई —इस के पराक्रम से हमीर (=अमीर अर्थात् मुसलमान बादशाह) गंगातट पर आने नहीं पाया था.
७ देवपाल (नं० ६ का भाई).
८ भीमपाल (नं० ७ का पुत्र)
९ शूरपाल (नं० ८ का पुत्र).
१० अमृतपाल (नं० ९ का पुत्र).
११ लखणपाल (नं० १० का छोटा भाई).

बदायूं पर मुसलमानों का अधिकार कुतुबुद्दीन ऐबक के समय में हुआ, और वहां का पहिला हाकिम शम्सुद्दीन अल्तिमश था, जो पीछे से दिल्ली का बादशाह हुआ. बदायूं की जुमा मसजिद के दर्वाजे पर शम्सुद्दीन के राज्यसमय का हि०स० ६२० (वि०सं०१२८०=ई०स० १२२३) का लेख है; अतएव वह राठौड़ों का शिलालेख वि०सं० १२८० (ई० स० १२२३ के पूर्व का होना चाहिये.

(७) बुद्धगया के एक लेख में दिये हुए राठौड़ों के नाम.

बुद्धगया से एक लेख विना संवत् का मिला है, जिस में राठौड़ों के नीचे लिखे नाम मिलते हैं:—

१ नम (गुणावलोक).
२ कीर्तिराज (नं० १ का पुत्र).
३ तुंग वा धर्मावलोक (नं० २ का पुत्र).

ये राठौड़ कहां के राजा थे, और किस समय हुए इस का कुछ

हाल लिखा हुआ नहीं मिलता. बंगाल के पालवंशी राजा नारायणपाल के पुत्र राज्यपाल की राणी भाग्यदेवी राठोड़ तुंग की पुत्री थी, ऐसा उस के वंशज महीपालदेव के ताम्रपत्र से पाया जाता है. शायद भाग्यदेवी बुद्धगया के लेख के राठोड़ तुंग की पुत्री हो.

यहां तक (१-७ तक) राठोड़ों की जितनी वंशावलियां लिखी हैं उन सब के शिलालेख और ताम्रपत्रों में उन के वंश का नाम राष्ट्रकूट या रट्ट लिखा मिलता है, परन्तु नीचे लिखे हुए कन्नौज के राजाओं, अर्थात् प्रसिद्ध जयचन्द के पूर्वजों को गाहड़वाल लिखा है, राष्ट्रकूट या रट्ट नहीं.

(८) कन्नौज के गाहड़वाल (राठोड़).

कन्नौज पर वि० सं० १०८४ तक पड़िहारों का राज्य रहने का तो पता चलता है, और जिस के बाद भी कुछ बरसों तक उन का राज्य वहां रहा हो यह संभव है. फिर गाहड़वाल (राठोड़) वंशी चन्द्रदेव ने कन्नौज पर अपना अधिकार जमाया था. चन्द्रदेव के वंशजों के ताम्रपत्र बहुत से मिले हैं जिन में उन की वंशावली नीचे लिखे अनुसार मिलती है :—

१ यशोविग्रह (सूर्यवंश में हुआ).

२ महीचन्द्र (नं० १ का पुत्र)—इस का नाम महीयल, और महीतल भी लिखा मिलता है.

३ चन्द्रदेव (नं० २ का पुत्र)—इस ने अपने बाहुबल से कन्नौज का राज्य प्राप्त कर प्रजा की पीड़ा मिटाई, और कई सुवर्ण तुलादान किये. वि० सं० ११५४ में इस के विद्यमान होने का उल्लेख मिलता है.

४ मदनपाल (नं० ३ का पुत्र)—इस को मदनदेव भी कहते थे. इस ने कई लड़ाइयों में शत्रुओं का संहार किया था. वि० सं० ११६१ से ११६६ (ई० स० ११०४ से ११०९) तक के इस के ताम्रपत्र मिले हैं.

५ गोविन्दचन्द्र (नं० ४ का पुत्र)—यह गौड़ देशवालों से लड़ कर विजयी हुआ था, और मुसलमानों से भी लड़ा था, जिनकी चढ़ाइयां उस समय हिन्दुस्तान पर हुआ करती थीं. यह राजा

विद्वान्, विद्वानों का आश्रयदाता, और बड़ा ही दानी था. इस के ताम्रपत्रों में इस को 'विविधविद्या विचारवाचस्पति' लिखा है. इस की आज्ञा से इस के सांधिविग्राहिक लक्ष्मीधर ने 'व्यवहारकल्पतरु' नामक पुस्तक बनाई थी. वि० सं० ११७१ (ई० स० १११४) से १२११ (ई० स० ११५४) तक के इस (गोविन्दचंद्र) के क़रीब ४० दानपत्र मिल चुके हैं. किसी अन्य वंश के एक ही राजा के इतने दानपत्र अब तक नहीं मिले. इस के तीन पुत्र विजयचन्द्र, राज्यपाल, और आस्फोटचन्द्र थे.

६ विजयचन्द्र (नं० ५ का पुत्र)—यह मुसल्मानों से लड़ा था. वि० सं० १२२६ (ई० स० ११६९) में इस का देहान्त हुआ.

७ जयचन्द्र (नं० ६ का पुत्र)—यह कन्नौज का अन्तिम हिन्दू राजा था. इस का राज्याभिषेक वि० सं० १२२६ आषाढ़-शुक्ला ६ को हुआ था. वि० सं० १२३२ में इस के कुंवर हरिश्चन्द्र का जन्म हुआ था. इस के पास सेना बहुत होने से इस को दळपंगुळ कहते थे. यह भी विद्वानों का सम्मान करनेवाला था. नैषधीय चरित (नैषध) काव्य का कर्त्ता प्रसिद्ध कवि श्रीहर्ष इस के दर्बार का कवि था, जिस का यह बड़ा सम्मान करता था. हि० स० ५९० (वि० स० १२५०) में शहाबुद्दीन ग़ोरी ने चंदवाल की लड़ाई में जयचन्द्र को पराजित किया, जिस से यह गंगा में डूब मरा, और कन्नौज के राज्य पर मुसल्मानों का अधिकार हो गया.

जयचन्द्र के पुत्र हरिश्चन्द्र का क्या हुआ, इस का कुछ हाल नहीं मिलता. जोधपुर के राठौड़ों की ख्यातों में लिखा मिलता है, कि जयचन्द्र का पुत्र वरदाईसेन, उस का सेतराम, और उस का सीहा हुआ, जो मारवाड़ में चला गया. ख्यातों में कहीं सीहा को जयचन्द्र का पुत्र भी लिखा है. इस के पुत्र आस्थान ने खेड़ वग़ैरा बहुत सा मुल्क अपने आधीन किया. अबुल्फ़ज़्ल लिखता है कि राजा जयचन्द्र शहाबुद्दीन ग़ोरी से शिकस्त पाकर गंगा में डूब मरा.

उस का भतीजा सीहा, जो शम्साबाद (कन्नौज के पास) में रहता था, वह भी बहुत से आदमियों के साथ काम आया. उस (सीहा) के तीन बेटे सौतिक, अश्वत्थामा (आस्थान), और अज थे, जो गुजरात की तरफ़ जाकर पाली में ठहरे, और गोहिलों से खेड़ का मुल्क छीन लिया.

उक्त सीहा के वंशजों के अधिकार में इस समय जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़, ईडर, रतलाम, सीतामऊ, सेलाना आदि रियासतें तथा अनेक छोटे बड़े ठिकाने हैं.

४७–टॉड साहिब गौतम गोत्र पर से राठौड़ों को शकों का सन्तान अनुमान करना चाहते हैं, परन्तु यह उन का भ्रम है, क्योंकि क्षत्रियों का ऋषिगोत्र वही माना जाता है, जो उन के ब्राह्मण पुरोहित का होता है, अतएव राठौड़ों के गौतम गोत्र से इतना ही तात्पर्य है कि उन का पुरोहित गौतम ऋषि (ब्राह्मण) का वंशज था.

४८–गार्हपत्य–यज्ञसंबन्धी तीन अग्नियों (आवसथ्य, आहवनीय, और गार्हपत्य) में से एक.

४९–कुशवाहा–यह नाम भी टॉड साहिब का घड़ंत किया हुआ है. (देखो प्रकरण पांचवें पर हमारा टिप्पण नं० २).

५०–रमेसेस–मिसर के प्राचीनकाल के बादशाह का नाम.

५१–सेटायर–यूनानियों की पौराणिक कथाओं के अनुसार देव योनी जन्य जीवधारी. इस के कान जानवरों के जैसे ललाट पर दो सींग, और घोड़े या बकरे के जैसी पूंछ होना माना जाता था.

५२–अनुबिस—मिसरवालों का एक देवता जिस का सिर गीदड़ का सा और बाक़ी सारा शरीर मनुष्य के समान होना माना जाता था.

५३–सिनोसीफ़ेलस—बन्दर की सी शक्ल का एक कल्पित जीवधारी.

५४–टुरिन— यूरोप के इटली देश के उत्तरी विभाग का एक नगर.

५५–मेवाड़ के राजा अपने को लवंवंशी नहीं, किन्तु कुश के वंशज मानते हैं.

५६—नरवर—सेंट्रल इंडिया में. इस का नाम नळपुर लिखा मिलता है. इस का प्राचीन नाम पद्मावती था, और महाकवि भवभूति के मालती-माधव नाटक में इस की सुन्दरता का वर्णन मिलता है. नलपुर नाम पीछे से प्रसिद्ध होना चाहिये. कछवाहों की ख्यातों में कछवाहा लक्ष्मण के दादा, और ढोला के पिता नळ का वहां पर क़िला बनाना लिखा है. नलपुर पद्मावती का ही दूसरा पर्याय हो ऐसा भी अनुमान हो सकता है-क्योंकि नल और पद्म दोनों कमल के सूचक हैं.

५७—नल—कछवाहों की ख्यातों के अनुसार लक्ष्मण का दादा और ढोला का पिता. इस का समय सन ई० की दसवीं शताब्दी अनुमान किया जा सकता है, क्योंकि लक्ष्मण के पुत्र वज्रदामा का एक लेख वि०सं०१०३४ (ई० स० ९७७) का मिला है.

५८—कछवाहों ने नरवर से नहीं, किन्तु ग्वालियर से आकर राजपूताना में अपना अधिकार जमाया था, और वह भी ई० स० की दसवीं शताब्दी में नहीं, किन्तु ग्यारहवीं शताब्दी में (देखो प्रकरण पांचवें पर हमारा टिप्पण नं० ३). आम्बेर शायद कछवाहों के राजपूताना में आने से पूर्व विद्यमान हो, क्योंकि वहां के एक मन्दिर में संवत् १०११ भाद्रपद वदि ११ का लेख मिला है.

५९—**कछवाहावंश**—इस वंश का नाम लोगों में कछवाहा, कछवा, वा कछावा प्रसिद्ध है, और संस्कृत लेखों में कच्छपघात या कच्छपारि लिखा मिलता है. कच्छपघात का अर्थ कछुओं को मारना, और कच्छपारि का कछुओं का शत्रु है. कछुओं को मारना राजपूत जाति के लिये कोई गौरव की बात नहीं है. हमारा अनुमान है कि उक्त वंश के किसी पुरुष का नाम कछवाह या कछवाहा होगा, (जिस के नाम से उक्त वंश का नाम पड़ा हो), जिस को संस्कृत की शैली का बनाने के लिये पंडितों ने कच्छपघात कर दिया हो, जैसे कि मुसल्मानों के समय में अमीर का हमीर, और सुल्तान का सुरत्राण बना दिया. टॉडसाहिब ने उस का शुद्ध रूप कुशवाहा माना है, परन्तु कछवाहों के प्राचीन लेखों में कहीं उस का प्रयोग नहीं मिलता.

उक्तवंश के राजाओं के विशेष प्राचीन शिलालेख या ताम्रपत्र नहीं मिलते, और न उन का नाम विशेष प्राचीन लेखों में मिलता है. प्राचीन काल में उन का कोई प्रतापी राज्य रहा हो ऐसा नहीं पाया जाता. कछवाहों की ख्यातों में ऐसा लिखा मिलता है कि 'उक्त वंश के राजा नल ने नरवर का किला बनवाया, जिस का पुत्र ढोला, और उस का लक्ष्मण हुआ. लक्ष्मण के पुत्र वज्रदामा ने ग्वालियर का किला बनवाया'. राजा नल के पूर्व के बहुत से राजाओं के नाम भाटों की ख्यातों में मिलते हैं, परन्तु वे विश्वास योग्य नहीं हैं. ख्यातों में वज्रदामा ने ग्वालियर का किला बनाया ऐसा लिखा मिलता है वह भी विश्वास योग्य नहीं है, क्योंकि वहां का किला पहिले से बना हुआ था, और कन्नौज के पडिहारों के आधीन था, जिन से वज्रदामा ने लिया. कछवाहे पहिले कन्नौज के पडिहारों के मातहत थे, जिन का राज्य कमज़ोर होने पर वे स्वतंत्र हो गये हों ऐसा पाया जाता है. शिलालेखों में लक्ष्मण से उन की वंशावली मिलती है जो नीचे दर्ज की जाती है.

(१) ग्वालियर के कछवाहे.

१ लक्ष्मण.

२ वज्रदामा (नं० १ का पुत्र)—इस के विषय में ऐसा लिखा मिलता है, कि 'गाधिपुर (कन्नौज) के राजा का प्रताप मिटाकर उस ने अपने बाहुबल से गोपाद्रि (ग्वालियर) का किला विजय किया.' उस समय कन्नौज का राजा पडिहार विजयपाल होना चाहिये, जिस के समय में कन्नौज का राज्य कमज़ोर हो गया था, जिस से उस के सामन्त स्वतंत्र होने लगे थे, और उस के पुत्र राज्यपाल को महोबा के चन्देल, और दूबकुण्ड (चडोभ) के कछवाहों ने मिलकर मारा था. अतएव विजयपाल के समय वज्रदामा ने ग्वालियर का किला उस से छीन कर स्वतंत्रता इख्तियार की हो. वज्रदामा का एक शिलालेख वि० सं० १०३४ (ई० स० ९७७) का मिला है.

३ मंगलराज (नं० २ का पुत्र)—इस के छोटे पुत्र सुमित्र के वंश में जयपुर, और अलवर के कछवाहे हैं.

४ कीर्त्तिराज (नं० ३ का पुत्र)—इस के विषय में यह लिखा मिलता है कि ' इस ने मालवा के राजा को परास्त किया था. ' इस के समय में मालवा का राजा परमार भोज होना चाहिये, जो गुजरात तथा दक्षिण के सोलंकियों से लड़ता रहा था. हि० स० ४१३ (वि० सं० १०७८=ई० सं० १०२१) में सुलतान महमूद ग़ज़नवी ने ग्वालियर पर चढ़ाई की थी, परन्तु ४ दिन बाद ३५ हाथी लेकर वहां से चल दिया था. यह चढ़ाई कीर्त्तिराज के समय के आस पास होनी चाहिये.

५ मूलदेव (नं० ४ का पुत्र)—इस को भुवनपाल और त्रैलोक्यमल्ल भी कहते थे.

६ देवपाल (नं० ५ का पुत्र)—इस को अपराजित भी लिखा है.

७ पद्मपाल (नं० ६ का पुत्र).

८ महीपाल (नं० ६ के भाई सूर्य्यपाल का पुत्र)—इस को पृथ्वीपाल और भुवनैकमल्ल भी कहते थे. ग्वालियर के क़िले पर, जिस सुन्दर मन्दिर को लोग सासबहू का मन्दिर कहते हैं, वह विष्णु का मन्दिर है. उस को पद्मपाल ने बनवाना शुरू किया था, परन्तु उस के हाथ से संपूर्ण न होने पाया, जिस से महीपाल ने वि० सं० ११५० (ई० स० १०९३) में उस को पूर्ण कराकर उस का नाम ' पद्मनाथ ' का मन्दिर रक्खा.

९ त्रिभुवनपाल (नं० ८ का पुत्र)—वि० सं० ११६१ (ई० स० ११०४) में यह विद्यमान था.

१० विजयपाल (नं० ९ का पुत्र)—इस के समय का एक शिलालेख वि० सं० ११९० (ई० स० ११३३) का मिला है.

११ सूरपाल (नं० १० का पुत्र)—वि० सं० १२१२ (ई० स० ११५५) में यह विद्यमान था.

१२ अनंगपाल (नं० ११ का पुत्र)—सूरपाल के समय के वि० सं०

१२१२ (ई० स० ११५५) के लेख में उस को कुंवर लिखा है. अनंगपाल तक की कछवाहों की शृंखलाबद्ध वंशावली शिलालेखों से मिलती है.

अनंगपाल के पीछे भी कछवाहों का राज्य वहां पर रहा हो. हि० स० ५९२ (वि० सं० १२५३=ई० स० ११९६) में शहाबुद्दीन गौरी ने ग्वालियर पर चढ़ाई की उस समय वहां का राजा सोलंखपाल था, जो अनंगपाल का उत्तराधिकारी होना चाहिये. ताजुलमआसिर नामक फ़ार्सी तवारीख़ में लिखा है, कि—हि० स० ५९२ (वि० सं० १२५३= ई० स० ११९६) में सुलतान शहाबुद्दीन की फ़ौज ने ग्वालियर पर चढ़ाई की तो वहां के राजा सोलंखपाल ने ख़िराज देना स्वीकार किया, और १० हाथी देकर सुलह करली. परन्तु तब क़ातिनासरी व फ़िरिश्ता से पाया जाता है कि—'बहाउद्दीन तुग़रल को ग्वालियर फ़तह करने के लिये नियत कर सुलतान ग़ज़नी को लौट गया. एक साल तक बहाउद्दीन लड़ता रहा, लेकिन क़िला फ़तह न हुआ, परन्तु सामान बीत जाने पर राजा ने क़िला कुतुबुद्दीन ऐबकको सौंप दिया.' इस से पाया जाता है, कि वि० सं० १२५३ (ई० स० ११९६) तक कछवाहों का राज्य ग्वालियर पर रहा था. कछवाहों की ख्यातों में लिखा है, कि ग्वालियर के कछवाहा राजा ईशा सिंह (ईश्वरी सिंह) ने वहां का राज्य अपने दोहिते जेसा तंवर को दे दिया. उस (ईशा सिंह) के पुत्र सोढ़देव ने वि० सं० १०२३ में बड़गूजरों से धौसा छीनकर वहां पर अपना नया राज्य क़ाइम किया. परन्तु तंवरों को वहां का राज्य देना भी विश्वास योग्य नहीं, क्योंकि उसी संवत् के आसपास तो ग्वालियर पर कछवाहों का अधिकार हुआही था, और शहाबुद्दीन के समय तक वे वहां पर मौजूद थे. जयपुर के कछवाहे ग्वालियर के कछवाहों की छोटी शाखा में, अर्थात् ऊपर लिखे हुए मंगलराज (नं० ३) के छोटे पुत्र सुमित्र के वंशज हैं. मंगलराज के बड़े पुत्र कीर्तिराज के वंशज तो मुसल्मानों के समय तक ग्वालियर के स्वामी बने रहे, और छोटे पुत्र सुमित्र के वंशजों ने प्रथम धौसा में, और वहां से आंबेर में अपना

राज्य जमाया; फिर जयसिंह के समय से जयपुर राजधानी हुई. सुमित्र से लगाकर पज्जून तक, जो पृथ्वीराज चौहान के सामन्तों में से एक माना जाता है, नीचे लिखे नाम मिलते हैं:—

सुमित्र, मधुब्रह्म (मुधिब्रह्म), कहान, देवानीक, ईश (ईशसिंह), सोढ, दूलहराय (दुर्लभराज), काकिल, हणु (हनुमान), जानड, और पज्जून.

(२) दूबकुंड के कछवाहे.

ग्वालियर से १६ मील दक्षिण पश्चिम में दूबकुंड (चडोभ) नामक गांव के एक जैन मन्दिर में वि० सं० ११४५ (ई० स० १०८८) का एक शिलालेख मिला है, जिस में वहां के कछवाहों के ये नाम लिखे हैं:—

१ युवराज.

२ अर्जुन (नं० १ का पुत्र)-इस के विषय में लिखा है कि ' इस ने विद्याधरदेव की सेवा में रह कर राज्यपाल को मारा था.' विद्याधर महोबा के चन्देल राजा गंड का पुत्र था, जिस ने अपने पिता के राज्य समय में मुसल्मानों की आधीनता स्वीकार करने के कारण कन्नौज के पडिहार राजा राज्यपाल को मारा था. अर्जुन महोबाके चंदेलों का सामन्त होना चाहिये.

३ अभिमन्यु (नं० २ का पुत्र) यह घोड़े का चढ़ैय्या, और शस्त्र विद्या में कुशल था. इस के उक्त गुणों की प्रशंसा राजा भोज (मालवा के परमार) ने की थी.

४ विजयपाल (नं० ३ का पुत्र).

५ विक्रम सिंह (नं० ४ का पुत्र) वि० सं० ११४५ (ई० स० १०८८) में यह विद्यमान था.

(३) नरवर के कछवाहे

ऐसा प्रसिद्ध है कि कछवाहों ने नरवर से जाकर ग्वालियर लिया था, अतएव उनकी पहिली राजधानी नरवर होना संभव है. ग्वालियर राजधानी हुई उस समय से ये दोनों स्थान एकही राजा के आधीन

रहे या वहां पर अलग अलग राजा रहे इस का ठीक ठीक हाल मालूम नहीं हो सका, परन्तु ई० सन् की १२ वीं शताब्दी में नरवर और ग्वालियर पर कछवाहावंश के भिन्न भिन्न राजा राज्य करते थे यह तो निश्चित है, क्योंकि नरवर से एक शिलालेख वि० सं० ११७७ का मिला है, जिस में लिखा है कि 'कछवाहा वंश में गगन सिंह हुआ. इस का पुत्र शरद सिंह था, जिस की राणी लक्ष्मी देवी से वीरसिंह उत्पन्न हुआ था, जो उक्त संवत् में वहां का राजा था.' इन राजाओं के खिताब परम भट्टारक, महाराजाधिराज और परमेश्वर थे, अतएव निश्चित है कि वे स्वतंत्र राजा थे।

वीरसिंह के पीछे की वंशावली शृंखलाबद्ध नहीं मिलती. नरवर से मिले हुए पिछले लेखों में चाहडदेव से लगाकर गणपति तक पांच राजाओं के नाम और मिलते हैं, परन्तु उक्त लेखों में उन राजाओं के वंश का नाम नहीं दिया, जिस से यह निश्चित नहीं हो सकता, कि वे राजा कछवाहे थे, या किसी अन्य वंश के. उन के नाम नीचे लिखे अनुसार हैं:—

१ मलयवर्मदेव—नरवर से इस के सिक्के मिल आते हैं, जो वि० सं० १२८० से १२९० तक के हैं. यह भी नरवर का राजा हो ऐसा अनुमान होता है.

२ चाहडदेव (*शायद यह नं० १ का उत्तराधिकारी हो*)—*इस का जन्म* नरवर में हुआ था ऐसा इस के वंशज गणपति के समय के शिलालेख से पाया जाता है, जिस से अनुमान होता है, कि इस का पिता भी नरवर का राजा था. चाहडदेव बड़ा प्रतापी राजा था. तबक़ातिनासिरी नामक फ़ार्सी तवारीख़ में लिखा है, कि मालवा तथा उस के आसपास के राणाओं (राजाओं) में सब से बड़ा जाहरदेव (चाहडदेव) था, जिस के पास ५००० सवार, और २००००० पैदल थे, और उस ने नरवर का गढ़ बनाया था. सुल्तान शम्सुद्दीन अल्तमश के समय हि० स० ६३२ (*वि० सं०* १२९१ = ई० स० १२३४) में प्रसिद्ध सेनापति मलिक नसरुद्दीन

की मातहती में बड़ी सेना कालिंजर पर भेजीगई, जहां से लौटते समय सिन्धु नदी (नरवर के निकट) के पास राणा (राजा) जाहरदेव (चाहड़देव) ने उस पर हमला कर उसे भगाया था. उक्त तारीख़ के कर्ता ने नसरुद्दीन को यह कहते हुए सुना था, कि उस हिन्दू राणा (राजा) ने मुझ पर इस तरह हमला किया, जैसा कि भेड़िया भेड़ों के झुंड पर टूटता है, जिस से लाचार मुझ को पीठ दिखाना पड़ा. दूसरी चढ़ाई में सुलतान ने नरवर को लूटा, लेकिन् वह चाहड़देव को अपना मातहत बना सका हो ऐसा नहीं पाया जाता. इस (चाहड़देव) के वि० सं० १२९ [–] से लगाकर वि० सं० १३११ तक के सिक्के मिलते हैं.

३ नृवर्मा (नं० २ का पुत्र).

४ आसल्लदेव (नं० ३ का पुत्र)–यह वि० सं० १३२७ (ई० स० १२७०) में विद्यमान था.

५ गोपाल (नं. ४ का पुत्र)–महोबा के चंदेल राजा वीरवर्मा ने वि० स० १३३७ (ई० स. १२८०) के पूर्व इस पर चढ़ाई की थी.

६ गणपति (नं० ५ का पुत्र)–इस ने कीर्तिगिरि (देवगढ़-बेतवा नदी के पास) को विजय किया था. इस के समय के दो शिलालेख मिले हैं, जो वि० सं० १३४८, और १३५५ (ई० स. १२९१, और १२९८) के हैं. इस के सिक्के भी मिले हैं.

इस के पीछे नरवर पर वि० सं० १३७७ (ई० स. १३००) के क़रीब मुसल्मानों का अधिकार हुआ हो ऐसा पाया जाता है. ग्वालियर पर तवरों का राज्य होने बाद उन्होंने उस (नरवर) को अपने राज्य में मिला लिया था. फिर वि० सं० १५६५ (ई० स. १५०८) में सुल्तान सिकन्दर लोदी ने नरवर को फतह किया, और बादशाह हुमायूं ने आंबेर के कछवाहा राजा पृथ्वीराज के बेटे आसकरण को दे दिया, तब से पीछा वहां पर कछवाहों का राज्य हुआ, जिन से ई० स० की १८ वीं शताब्दी के अन्त में सेंधिया ने नरवर ले लिया.

६०—परमार, पड़िहार, सोलंकी, और चौहान ये चारों वंश

आजकल अग्निवंशी माने जाते हैं; परन्तु ई० स० की १५ वीं शताब्दी के पूर्व पडिहार, सोलंकी और चौहान अपने को अग्निवंशी नहीं मानते थे. पहिले सोलंकी और चौहान अपने तई चन्द्रवंशी, और पडिहार रघुवंशी या ब्राह्मण हरिश्चन्द्र के वंशज मानते थे. केवल परमार ठेठ से ही अपने मूल पुरुष का आबू पर वशिष्ठ ऋषि द्वारा अग्निकुंड से पैदा होना मानते चले आते हैं.

६१—ब्राह्मणों ने अपनी तरफ़ से युद्ध करने के लिये अग्निकुल की इन जातियों का केवल संस्कार मात्र से परिवर्त्तन किया था ऐसा मानने के लिये कोई प्रमाण नहीं है. यह केवल कल्पना मात्र है.

६२—तुष्टा (त्वष्टा) शब्द से तक्षक मानना टॉड साहिब का भ्रम है. उस का अर्थ तक्षक नहीं, किन्तु विश्वकर्मा है. परमार, पडिहार, सोलंकी, और चौहानों के प्राचीन लेखों में उन का तक्षक वंशी होना कहीं नहीं लिखा है. केवल चित्तौड़ के पास के मानसरोवर के लेख में टॉड साहिब त्वष्टा शब्द का होना बतलाते हैं, परन्तु उस लेख का न तो इन चार वंशों से कोई सम्बन्ध है (वह लेख मोरियों का है), और न वह टॉड साहिब के गुरु से ठीक ठीक पढ़ा गया.

६३—क्रस—यूनानियों की पौराणिक कथाओं के अनुसार एक देवांशी पुरुष.

६४—यूरेनस—यूनानियों की पौराणिक कथाओं के अनुसार आकाश (या स्वर्ग) का अधिष्ठाता देवता ; जिस को कभी इस को सूर्य, और कभी पृथ्वी का पति मानते थे.

६५—फिलियस सोलिस—सूर्यपुत्र.

६६—टेरा—पृथ्वी.

६७—एकेश्वरवाद—टॉड साहिब बौद्ध (जैन) मत के प्रचारकों को एकेश्वरवादी मानते हैं परन्तु बौद्ध और जैन ये दोनों मत निरीश्वरवादी हैं. उन के यहां ईश्वर को सृष्टि का कर्त्ता हर्त्ता नहीं माना है.

६८—टॉड साहिब बौद्ध मत का मध्य एशिया से इस देश में आना मानते हैं, यह भी उन का भ्रम है, हिन्दुस्तान से ही उक्त धर्म्म का प्रचार मध्य एशिया में हुआ था.

६९—टॉडसाहिब ने जैन और बौद्धमत में कुछ भेद ही नहीं समझा. वे उन दोनों के लिये बुद्ध शब्द का ही प्रयोग करते हैं, और जहां कहीं बुद्ध नाम मिला उसी को बौद्ध धर्म का प्रचार करनेवाला मान लिया, क्योंकि उन्हों ने चन्द्र वंश के मूल पुरुष बुध को भी बौद्ध धर्म्म का प्रचारक समझ लिया है, परन्तु उन का यह अनुमान केवल भ्रम पूरित है.

७०–पिंगल–तक्षक नाम के प्रसिद्ध ग्रन्थ पिंगल को लेभागने और गरुड़ के उस ग्रन्थ को पीछा लेआने की कथा टॉडसाहिब ने कहां से ली इस का कुछ पता नहीं लगता. केवल 'प्राकृतपिंगलसूत्र' की लक्ष्मीनाथ रचित टीका में ऐसा लिखा मिलता है, कि 'एक दिन शेशनाग को यह जानने की इच्छा हुई, कि मेरे पर कितनी पृथ्वी है, इस लिये वह पिंगल नामक ब्राह्मण के भेष में पृथ्वी पर उतरा, परन्तु अपने वैर के कारण गरुड़ उस को मारने के लिये दौड़ा, जिस पर पिंगल ने उस को कहा कि, हे! गरुड़ तू मेरा कौशल तो देख, यदि एक बार लिखाहुआ जो मैं फिर लिखूं तो मुझ को खाजाना. जब गरुड़ ने यह स्वीकार किया, तो वह एक से २६ अक्षर तक का प्रस्तार कर समुद्र के तट तक पहुंच गया, और इस तरह से वह गरुड़ को ठग कर जल में पैठगया.'

७१– ओलिम्पस– यूनान देश का एक पर्वत, जो यूनानियों की पौराणिक कथाओं में देवताओं का निवास स्थानमाना जाता है.

७२– टॉडसाहिब आबू पर्वत को सूर्य के पुजारियों, और दैत्यों वा नास्तिकों के बीच के युद्ध का स्थल अनुमान करते हैं, जो खाली अनुमान मात्र है. उस के लिये वे कोई प्रमाण नहीं देते, और न कोई प्रमाण मिलता है.

७३– टीटैनिक युद्ध– यूनानियों की पौराणिक कथाओं के अनुसार टीटन, अर्थात् महाकाय पुरुषों का युद्ध. उन की कथाओं में टीटन आकाश और पृथ्वी के पुत्र माने जाते थे; और ऐसा प्रसिद्ध है कि वे लोग दस बरस तक जुपीटर (इन्द्र) से लड़ने के बाद परास्त हुए थे.

७४—नवकोट मरुस्थली—राजपूताना के मरुस्थल के प्रसिद्ध नव-स्थान. राजपूताना में ऐसा प्रसिद्ध है, कि परमार राजा धरणीवराह के नव भाई थे, जिन को उस ने अपना पैतृक राज्य बांट दिया था. उन की नव राजधानियां 'नवकोट मरुस्थली' या 'नवकोटी मारवाड़' कहलाती हैं.

॥ छप्पय ॥

मंडोवर सामंत हुवो अजमेरै सिद्ध सुव ।
गढपूंगलै गजमल्ल हुवो लोद्रवे भाणभुव ॥
अल्ह पल्ह अरबद्द भोज राजा जालंधर ।
जोगराज धरधाट हुवो हांसू पारक्कर ॥
नवकोट किराडू संजुगत थिर पंवार हर थप्पिया ।
धरणीवराह धर भाइयां कोट बांट जू जू किया ॥१॥
(प्राचीन पद्य).

धरणीवराह परमार का होना तो प्रसिद्ध है, परन्तु ऊपर के छप्पय में उस के भाइयों को जो जो स्थान देने का उल्लेख है वह संशय-रहित नहीं है, क्योंकि धरणीवराह का वि० सं० १००० के आस-पास होना माना जाता है, उस समय अजमेर तो बसा ही नहीं था, और आबू पर अल्ह और पल्ह का होना पाया नहीं जाता. संभव है, कि किसी कवि ने बहुत पीछे से उक्त छप्पय की रचना की हो.

७५—परमारों का राज्य सोलंकियों और चौहानों की अपेक्षा अधिक दूर तक फैला हो ऐसा मानने के लिये कोई प्रमाण नहीं है. सोलंकियों का राज्य रामेश्वर से गुजरात तक के बड़े हिस्से पर फैलने के प्रमाण मिल सकते हैं, परन्तु परमारों का इतना विस्तृत राज्य रहा हो ऐसा मानने के लिये कोई प्रमाण नहीं है.

७६—परमारों का नवीं शताब्दी के पूर्व कोई बड़ा राज्य होना पाया नहीं जाता, परन्तु सोलंकियों का छठी शताब्दी के प्रारंभ में प्रबल राज्य दक्षिण में क़ायम हो चुका था.

७७—टॉड साहिब ने परमारों को पड़िहारों से सब बातों में बढ़कर माना है; परन्तु यदि कन्नौज के पड़िहारों के प्रताप का हाल उन को मालूम होता तो वे ऐसा कभी नहीं लिखते.

७८—परमारों के जितने लेख आज तक मिले हैं उन से ई० सन् की नवीं शताब्दी के पूर्व उन का पता नहीं चलता.

७९—भोज मुंज का पुत्र नहीं, किन्तु उस के छोटे भाई सिंधुराज का पुत्र था. वह वि० सं० १०७८ (ई० स० १०२१) के पूर्व राज्य-सिंहासन पर बैठ गया था, और वि० सं० ११२२ (ई० स० १०५५) के पूर्व उस का देहान्त हो चुका था.

८०—जिस शिलालेख का यहां पर टॉड साहिब ने उल्लेख किया है वह चित्तौड़ के निकट के मानसरोवर का लेख है. वह परमारों का नहीं किन्तु मोरी राजा मान का है.

८१—तिलंगाना में परमारों का राज्य होना नहीं पाया जाता. टॉड साहिब ने पृथ्वीराज रासा पर भरोसा कर परमारों का तिलंगाना में राज्य होना लिख दिया है जो सर्वथा विश्वास योग्य नहीं है.

८२—राम परमार को पृथ्वीराज रासे में भारत का सम्राट लिखा है, जो प्राचीन इतिहास के लिये सर्वथा निरुपयोगी पुस्तक है.

८३—उज्जैन, अर्थात् मालवा के परमारों के शिलालेख और ताम्रपत्रों में कहीं राम परमार का नाम नहीं मिलता.

८४— राम परमार का तंवरों को दिल्ली, चावड़ों को पाटण, चौहानों को सांभर, राठोड़ों को कन्नौज आदि देना लिखा है वह सर्वथा निर्मूल है. राठोड़ चन्द्रदेव ने ई० सन् की ग्यारहवीं शताब्दी में अपने बाहु बल से कन्नौज का राज्य छीना था; चौहान आठवीं शताब्दी के आसपास सांभर के राजा थे; और चावड़ा वंश के राजा वनराज ने ई० सन् की आठवीं शताब्दी में पाटण (अणहिलवाड़ा) बसाकर उस को अपनी राजधानी क़ायम की थी.

८५— नवरत्न—धन्वंतरि, क्षपणक, अमर सिंह, शंकु, वेताल भट्ट, घटखर्पर, कालिदास, वराहमिहिर, और वररुचि, ये राजा

विक्रम की सभा के नवरत्न थे ऐसा ज्योतिर्विदाभरण नामक ग्रन्थ के कर्त्ता ने लिखा है. उस ग्रन्थ का कर्त्ता अपने को इन नवरत्नों में से प्रसिद्ध कालिदास बतलाता है, परन्तु उस का यह लिखना विश्वास योग्य नहीं है, क्योंकि उस ने वह पुस्तक वि० सं० के प्रारंभकाल में नहीं किन्तु विक्रमसंवत् की सातवीं शताब्दी से बहुत पीछे बनायी थी (देखो प्राचीनलिपिमाला पृ० २८--२९). भोज विद्वानों का आश्रयदाता, और स्वयम् विद्वान था, और उस के दर्बार में भी कई अच्छे अच्छे विद्वान थे, लेकिन् वे नवरत्न कहलाते हों ऐसा लिखा नहीं मिलता. भोजप्रबन्ध के कर्त्ता को जितने पंडितों के नाम मालूम हो सके उन सब का भोज के समय में विद्यमान होना उस ने लिखा है वह भी विश्वासयोग्य नहीं है.

८६— भोज नाम के अनेक राजा हिन्दुस्तान में हुए हैं, परन्तु मालवा के परमारों में तो उक्त नाम का एकही राजा होना पाया जाता है.

८७-संवत् ६३१ और ७२१ (आ ई० स० ५७५ और ६६५ में भोज नाम के जिन राजाओं का होना टॉडसाहिब लिखते हैं वे परमार नहीं किन्तु अन्य वंशों के होने चाहियें.

८८-मौर्य (मोरी) वंशी चन्द्रगुप्त को पुराणों में कहीं तक्षक-वंशी होना नहीं लिखा. मोरियों के पहिले शिशुनागवंशियों का राज्य रहा था. शिशुनाग को शेषनाग समझ कर उस वंश का शेष-नाग देश से भारत में आना टॉडसाहिब ने अनुमान कर लिया, और उसी अनुमान के आधार पर उस वंश के राजाओं का तथा उन के पीछे राज्य करनेवाले मौर्यों का तक्षकवंशी होना लिख दिया, जिस के लिये कोई प्रमाण नहीं है. प्राचीन बौद्ध लेखक मौर्यों का सूर्यवंशी होना लिखते हैं, और सिकन्दर के समय के तथा पिछले यूनानी-लेखकों ने चन्द्रगुप्त की वृत्तान्त के विषय में अन्य बातें लिखी हैं, परन्तु तक्षकवंशी होना तो उन्हों ने भी नहीं माना.

८९—परमारों की मुख्य शाखा मोरी नहीं है; मोरी परमारों से भिन्न ही वंश है.

९०–परमारों के प्राचीन शिलालेखों में मोरियों या परमारों के कुल का नाम तुष्टा (त्वष्ट्रा), वा तक्षक नहीं लिखा, और न तुष्टा (त्वष्ट्रा) का अर्थ तक्षक है. तक्षक और तुष्टा (त्वष्ट्रा) दोनों में पहिला अक्षर 'त' अवश्य है, उसी से दोनों का एक होना अनुमान कर लिया हो तो आश्चर्य नहीं.

९१–तक्षशिला–चित्तौड़ का नाम तक्षशिला कभी रहा हो ऐसा पाया नहीं जाता. तक्षशिला पंजाब के एक प्राचीन शहर का नाम था.

९२–शालिवाहन और विक्रमादित्य एक समय में नहीं हुए, तिस पर भी पिछले जैन लेखकों ने शालिवाहन का विक्रमादित्य का जीतना लिखा है, परन्तु उन्हों ने विक्रम से १२०० वर्ष अधिक समय पीछे ऐसा लिखा है, और उस की सत्यता के लिए कोई अन्य प्रमाण नहीं है. ऐसेही शालिवाहन को तक्षक कुल का मानने के लिये कोई आधार नहीं है.

९३–सोगडीलोग–देखो भूगोल के प्रकरण पर हमारा टिप्पण नं० ७.

९४–चन्द्रावती के परमारों का शिथिल शाखा में होना उन के लेखों में नहीं लिखा. परमारों की उत्पत्ति आबू से मानी जाती है. इसलिये आबू (चन्द्रावती) के परमार परमारों में मुख्य होने चाहियें.

९५–बीजोल्या के परमार मालवा के परमारों के वंशजों में अपने को मुख्य मानते हैं, और उन का यह दावा मालवा के परमार लोग भी स्वीकार करते हैं.

९६–**परमारवंश**–परमारों का आदि स्थान आबू माना जाता है. वि० सं० ६८२ (ई० स० ६२५) में आबू का इलाका भीनमाल के राजा वर्मलात के अधिकार में था, और उस के सामन्त वज्रभट (सत्याश्रय) का पुत्र राज्जिल वहां (आबू) का मालिक था. राज्जिल किस वंश का था इस विषय में कुछ भी लिखा नहीं मिलता. उस के पीछे परमारों का राज्य वहां होना पाया जाता है. परमारों के लेखों में उक्त वंश के पहिले राजा का नाम धूमराज मिलता है.

आबू के परमारों का अधिकार दूर दूर तक था. उन की वंशावली शिलालेखादि से नीचे लिखे अनुसार मिलती है :—

१ उत्पलराज (परमारवंश में).
२ आरण्यराज (नं० १ का पुत्र).
३ कृष्णराज (नं० २ का पुत्र).
४ धराह (नं० ३ का पुत्र).
५ महिपाल (नं० ४ का पुत्र)-इस को देवराज भी कहते थे.

६ धंधुक (नं० ५ का पुत्र)-यह गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव के साथ विरोध होने पर धारानगरी के राजा भोज के पास चला गया, जिस से भीमदेव ने पोरवाड़ महाजन विमल (विमलशाह) को आबू का दंडपति नियत किया, जिस ने वि० सं० १०८० (ई० स० १०२३) में वहां पर देलवाड़ा गांव में आदिनाथ का बहुत सुन्दर मन्दिर बनवाया. धंधुक के दो पुत्र पूर्णपाल और कृष्णराज थे, जिन में से बड़ा भीमदेव की आधीनता में आबू का राजा हुआ, और कृष्णराज को भीनमाल का इलाक़ा जागीर में मिला हो ऐसा पाया जाता है, क्योंकि वह वि० सं. १११७ (ई० स० १०६०) में उक्त प्रदेश का स्वामी था ऐसा वहां के लेख से पाया जाता है. धंधुक की पुत्री लाहिनी का विवाह वल्लभराज के पौत्र और धरराज के पुत्र विग्रहराज के साथ हुआ था, जिस (विग्रहराज) के देहान्त के पीछे वह अपने भाई पूर्णपाल के यहां चली आई थी, और संवत् १०९९ में उस ने वसन्तगढ़ में सूर्य के एक मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया. और अपने नाम से एक बावड़ी बनवाई, जो अबतक लाणवाव के नाम से प्रसिद्ध है.

७ पूर्णपाल (नं० ६ का पुत्र)-यह वि० सं. ११०२ में विद्यमान था. यहां तक की वंशावली उपर्युक्त लाणवाव की प्रशस्ति से मिलती है. इस के पीछे की वंशावली संशयरहित नहीं है. आबू पर के वस्तुपाल तेजपाल के मंदिर की प्रशस्ति में लिखा है, कि धूमराज के वंश में धंधुक, ध्रुवभट आदि राजा होने के बाद रामदेव नामक

राजा हुआ. उसी लेख के आधार पर हम पूर्णपाल के बाद ध्रुवभट आदि के नाम लिखते हैं.

८ ध्रुवभट.

९ रामदेव.

१० विक्रम सिंह—उपर्युक्त वस्तुपाल तेजपाल के मन्दिर के लेख में विक्रम सिंह का नाम नहीं है, परन्तु हेमचन्द्ररचित द्व्याश्रय महाकाव्य से पाया जाता है कि गुजरात के सोलंकी राजा कुमारपाल ने अजमेर के चौहान राजा अर्णोराज (आनाजी) पर चढ़ाई की उस समय, अर्थात् वि० सं० १२०६ में विक्रमसिंह आबू का राजा था, जो कुमारपाल की सेना के शरीक हुआ था. जिन मंडनोपाध्याय अपनी 'कुमारपालप्रबंध' नामक पुस्तक में लिखता है कि विक्रमसिंह लड़ाई के समय अर्णोराज से मिल गया, जिस से कुमारपाल ने उस को कैद कर आबू का राज उस के भतीजे यशोधवल को दिया था.

११ यशोधवल—इस ने गुजरात के सोलंकी राजा कुमारपाल के शत्रु मालवा के राजा बल्लाल को विजय किया था. इस के दो पुत्र धारावर्ष, और प्रहाददेव थे.

१२ धारावर्ष (नं० ११ का पुत्र)—यह बड़ा वीर प्रकृतिवाला राजा था, और अब तक आबू के आसपास के प्रदेश में यह धार परमार नाम से प्रसिद्ध है. इस ने कुमारपाल के समय में कोंकण के राजा (शिलारावंशी) को हराया था. ताजुलमआसिर नामक फ़ार्सी तवारीख से पाया जाता है, कि हि० स०५९३ सफ़र (वि० सं० १२५४ = ई० स० ११९७) में नहरवाला (अणहिलवाड़ा) के राजा को बर्बाद करने के लिये कुतुबुद्दीन ऐबक ने चढ़ाई की, उस समय आबू के नीचे बड़ी लड़ाई हुई. जिस में धारावर्ष गुजरात की सेना के दो मुख्य सेनापतियों में से एक था. इस लड़ाई में गुजरात की फ़ौज को शिकस्त हुई, परन्तु उक्त संवत् से पूर्व (वि० सं० १२३५) में आबू के नीचे एक लड़ाई और हुई

थी, जिसमें शहाबुद्दीन गोरी घायल हुआ था. धारावर्ष के समय के कई शिलालेख मिले हैं, जो सं० १२२० (ई० स० ११६३) के पूर्व से लगा कर सं० १२६५ (ई० स० १२०८) के पीछे तक के हैं। धारावर्ष का भाई प्रह्लाददेव विद्वान और कवि था. उस का बनाया हुआ 'पार्थपराक्रमव्यायोग' नामक एक नाटक मिला है. उस की विद्वत्ता की प्रशंसा सोमेश्वर कवि ने कीर्त्ति-कौमुदी नामक पुस्तक तथा वस्तुपाल तेजपाल के मन्दिर की प्रशस्ति में की है. पृथ्वीराज रासा में चौहान पृथ्वीराज के समय आबू पर सलख और जैत परमार का होना लिखा है, परन्तु वह सारा क़िस्साही घढन्त है, क्योंकि पृथ्वीराज के समय में आबू का राजा धारावर्ष परमार था.

१३ सोमसिंह (नं० १२ का पुत्र)– यह शास्त्र और शस्त्र विद्या का ज्ञाता था. इस के राज्यसमय वि० सं० १२८७ में आबू पर का प्रसिद्ध वस्तुपाल तेजपाल का मंदिर बना था.

१४ कृष्णराज (नं० १३ का पुत्र)– इस को कान्हड़देव भी कहते थे. इस के वंश में दांता (आबू के नीचे अंबाभवानी के निकट) के परमार हैं, परन्तु अपने प्राचीन इतिहास से परिचित न होने के कारण उन्हों ने अपने तई मालवा के परमार राजा उदयादित्य के पुत्र जगदेव के वंशज मानने के अतिरिक्त और भी बहुत सी निर्मूल बातें अपने इतिहास में दर्ज की हैं (देखो हिन्दराजस्थान गुजराती में दांते का इतिहास).

१५ प्रतापसिंह (नं० १४ का पुत्र)—इस के समय का एक शिलालेख वि० सं० १३४५ (ई० सं० १२८८) का मिला है. इस के पीछे आबू का राज्य जालोर के चौहानों के वंशज देवड़ाराव लुंभा ने ले लिया.

(२) जालोर के परमार.

जालोर के क़िले से परमारों का एक शिलालेख वि० सं० ११७४

(ई० स० ११९७) का मिला है, जिस में वहां के परमारों के ये नाम मिलते हैं:—

१—वाक्पतिराज, २—चंदन, ३—देवराज, ४—अपराजित, ५—विज्जल, ६—धारावर्ष, और ७—वीसल. वीसल की राणी ने सिन्धुराजेश्वर के मन्दिर पर उक्त संवत् में सुवर्ण का कलश चढ़ाया था. ये परमार आबू के परमारों के वंशज होने चाहियें.

(३) केण्ड के परमार.

जोधपुर राज्य के केण्ड नगर के एक मन्दिर से एक बिगड़ी हुई स्थिति का वि० सं० १२१८ (ई० स० ११६१) का शिलालेख मिला है, जिस से पाया जाता है, कि अनलकुंड से उत्पन्न होनेवाले परमारवंश में अनेक राजा हुए. मरुदेश (मारवाड़) में उक्त वंश का राजा १— सिन्धुराज हुआ (जालौर का सिन्धुराजेश्वर का मन्दिर शायद इसी सिन्धुराज का बनवाया हुआ है); इस के पीछे २—'सुर-राज, ३— देवराज, ४— दुर्लभराज, ५— सोढराज (शायद प्रसिद्ध सोढा राणा यही हो, जिस के विषय के गीत राजपूताना की स्त्रियां गाती हैं), और ६— उदयराज. उदयराज गुजरात के सोलंकी कुमार-पाल का सामन्त था. जिस लेख से यह नामावली ली गई है वह बहुत खंडित है, अतएव कोई नाम छुट भी गया होतो आश्चर्य नहीं; जो नाम उस में पढ़ेगये वे दर्ज किये गये हैं. केण्ड के परमार आबू के परमारों के वंशज होने चाहियें.

(४) मालवा के परमार.

मालवा के परमार अपनी उत्पत्ति आबू पर के अनल (अग्नि)-कुंड से बतलाते चले आये हैं. अतएव वे आबू की तरफ़ से मालवे में गये होंगे. इस समय परमार लोग अपने को उज्जैन के प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य के वंशज बतलाते हैं; परन्तु पहिले के परमारों ने, जिन की वंशावली नीचे लिखी गई है, अपने को विक्रमादित्य के वंश में होना नहीं लिखा. उन की वंशावली इस प्रकार मिलती है :—

१ कृष्णराज—इसको उपेन्द्र भी कहते थे. इसके विषयमें ऐसा लिखा

मिलता है, कि यह अपने पराक्रम से बड़ा राजा हुआ था, जिस से अनुमान होता है कि मालवा के परमारों में यही प्रथम स्वतंत्र राजा हुआ हो, अथवा इस ने मालवा का राज्य प्राप्त किया हो.

२ वैरिसिंह (नं० १ का पुत्र).

३ सीयक (नं० २ का पुत्र).

४ वाक्पतिराज (नं० ३ का पुत्र)—इस के दो पुत्र वैरिसिंह, और डंबरसिंह थे; छोटे डंबरसिंह को वागड़, सौंथ आदि प्रदेश जागीर में मिला हो ऐसा पाया जाता है.

५ वैरिसिंह दूसरा (नं० ४ का पुत्र)—इस को वजट भी कहते थे.

६ श्रीहर्ष (नं० ५ का पुत्र)—इस का लोकप्रसिद्ध नाम सीयक था. इस ने मान्यखेट के राठौड़ राजा खोट्टिग पर चढ़ाई कर उस की राजधानी को वि० सं० १२२९ (ई० स० ११७२) में लूटा, और हूणों को परास्त किया था. इस के दो पुत्र, मुंज और सिंधुराज थे. इस के समय में धारानगरी के रहनेवाले धनपाल कवि ने 'पाइयलच्छी नाममाला' नामक प्राकृत कोश रचा था.

७ मुंज (नं० ६ का पुत्र)—इस को वाक्पतिराज, अमोघवर्ष और उत्पलराज भी कहते थे. यह कर्णाटक, लाट, केरल, और चोल के राजाओं से लड़ा था, और चेदी देश के राजा युवराजदेव (दूसरे) के सेनापति को मार उस की राजधानी त्रिपुरी (तेवर, जबलपुर के निकट) को लूटा था. इस ने कर्णाटक के सोलंकी राजा तैलप पर चढ़ाई की, जिस में यह हारा, और वि० सं० १०५० और १०५४ (ई०

भोज को मारना चाहा था, परन्तु यह सारी कथा कपालकल्पित है; क्योंकि मुंज के मारे जाने बाद उस का छोटा भाई सिन्धुराज राजा हुआ था, जिस के बाद भोज को राज्य मिला था. भोज के समय में धनपाल ने 'तिलकमंजरी' नामक पुस्तक रची, जिस में वह स्पष्ट लिखता है, कि मुंज ने भोज पर प्रीति होने के कारण उस को अपने राज्य पर अभिषिक्त कर दिया था (गोद लिया था). मुंज के मारे जाने के समय भोज के बालक होने के कारण ही सिंधुराज राजा हुआ था.

८ सिन्धुराज (नं० ७ का छोटा भाई)—इस को नवसाहसांक तथा कुमारनारायण भी कहते थे. यह वीर राजा था. इस ने हूणों को, तथा कोसल (दक्षिण कोसल), वागड़, लाट तथा मुरल देशवालों को विजय किया था. इस के समय में राजधानी उज्जैन थी.

९ भोज (नं० ८ का पुत्र)—राजा भोज का नाम हिन्दुस्तान भर में प्रसिद्ध है. उदयपुर (ग्वालियर राज्य में) से मिले हुए एक शिलालेख में लिखा है, कि "भोज ने कैलास से लगा कर मलय पर्वत (दक्षिण में) तक के देशों पर राज्य किया; चेदीश्वर, इन्द्ररथ, तोग्गल, और भीम आदि को; कर्णाट, लाट व गुजरात के राजाओं को, तथा तुरुष्कों को जीता था. इस के काम, दान, और ज्ञान की समानता कोई नहीं करता था. यह कविराज कहलाता था. इस ने केदार, रामेश्वर, सोमनाथ, सुंडीर (?), काल (महाकाल), अनल, और रुद्र के मन्दिर बनवाये थे. और इस के देहान्तसमय धारानगरी (इस की राजधानी) पर शत्रु रूप अंधकार छागया था."
उक्त वर्णन में अतिशयोक्ति अवश्य है, क्योंकि इस में बतलाया हुआ सारा प्रदेश भोज के आधीन न था; परन्तु भोज ने गुजरात के सोलंकी राजा भीम पर प्रथम विजय पाई थी, इस की पुष्टि सोलंकियों के इतिहास से भी होती है. *'प्रबन्धचिन्तामणि'* में स्पष्ट लिखा है, कि " भीमदेव सिन्धु देश को विजय करने में लगा था, उस समय भोज ने दिगम्बर कुलचंद्र को सेना

इस (उदयादित्य) की पुत्री श्यामलदेवी का विवाह मेवाड़ के गुहिल राजा विजय सिंह से हुआ था. इस के समय के शिलालेख वि० सं० ११३६ से ११४३ (ई० स० १०५९ से १०८६) तक के मिल चुके हैं. इस के छोटे पुत्र जगदेव की वीरता तथा दानशीलता की प्रसिद्धि राजपूताना, गुजरात, मालवा आदि में अब तक चली आती है.

लक्ष्मदेव (नं० ११ का पुत्र)–यह त्रिपुरी के कलचुरियों (हैहयवंशियों) से लड़ा था.

नरवर्मा (नं० १२ का छोटा भाई)–यह विद्वान राजा था. इस पर गुजरात के सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह ने चढ़ाई की थी. इस का देहान्त वि० सं० ११९० के आसपास हुआ हो ऐसा अनुमान होता है.

यशोवर्मा (नं० १३ का पुत्र)–यशोवर्मा ने गुजरात पर चढ़ाई की उस समय वहां का राजा सिद्धराज जय सिंह सोमनाथ की यात्रा को गया हुआ था, वहां (सोमनाथ) से लौटने पर उस ने मालवे पर चढ़ाई की, और यशोवर्मा को कैद कर 'अवंतीनाथ' खिताब धारण किया; परन्तु मालवे पर उस का अधिकार हुआ हो ऐसा नहीं पाया जाता.

जयवर्मा (नं० १४ का पुत्र)—इस के राज्य समय में मालवा के परमारों में आपस का बखेड़ा खड़ा हुआ हो ऐसा पाया जाता है.

अजयवर्मा (नं० १५ का छोटा भाई)—इस ने अपने बड़े भाई का राज्य छीन लिया हो ऐसा अनुमान होता है.

विंध्यवर्मा (नं० १६ का पुत्र).

सुभटवर्मा (नं० १७ का पुत्र)—इस को सोहड़ भी कहते थे. इस ने सोलंकी भीमदेव के समय में गुजरात पर चढ़ाई की थी.

अर्जुनवर्मा (नं० १८ का पुत्र)–यह विद्वान, कवि, और संगीतशास्त्र का ज्ञाता था. इस ने गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव का राज्य छीननेवाले सोलंकी जयसिंह (जयतसिंह) को,

जिस ने 'अभिनव सिद्धराज' नाम धारण किया था, लड़ाई में पराजित किया, और राजा भोज की बनाई हुई 'सरस्वती कंठाभरण' पाठशाला में पारिजात मंजरी नाटक आदि पुस्तकों को बड़ी बड़ी शिलाओं पर खुदवाकर रखाया, तथा अमरूशतक पर टीका की थी. वि० सं० १२७२ और १२७५ के बीच किसी वर्ष में इस का देहान्त होना चाहिये.

२० देवपालदेव (नं० १९ का उत्तराधिकारी)–इस के समय में हि० स० ६२९ (वि० सं० १२८८=ई० सन् १२३१) में दिल्ली के सुल्तान शम्सुद्दीन अल्तिमश ने मालवे पर चढ़ाई की, महाकाल के मन्दिर को तोड़ा, और इस से ग्वालियर का क़िला–भी छीन लिया.

२१ जयसिंहदेव (नं० २० का पुत्र) इस को जेतुगिदेव भी कहते थे. इस के समय के शिलालेख वि० सं० १३२६ (ई० स० १२६९) तक के मिले हैं. एक शिलालेख वि० सं० १३६६ (ई० स० १३०९) का जयसिंहदेव का मिला है, वह इसी जयसिंह का है, अथवा उक्त नाम के अन्य राजा का यह निश्चित नहीं है.

जयसिंहदेव के पीछे थोड़े ही अरसे बाद मालवे पर मुसल्मानों का कबज़ा होना चाहिये. हि० स० ६९० (वि० सं० १३४८=ई० स० १२९१) में जलालुद्दीन फ़ीरोज़शाह खिल्जी ने उज्जैन को फतह कर वहां के कई मन्दिर तोड़ डाले. दो बरस बाद उस ने फिर मालवे पर चढ़ाई कर उसे लूटा, और उस के भतीजे अलाउद्दीन ने भेलसा तथा मालवे का पूर्वी हिस्सा भी विजय कर लिया. फिर मुहम्मद तुग़लक़ ने हि० स० ७४४ (वि० सं० १४०१=ई० स० १३४४ के क़रीब अज़ीज़ हिमार के सुपुर्द मालवे का सारा इलाक़ा कर दिया, जो पहिले केवल धार पर नियत हुआ था. मालवा के परमारों के वंश में इस वक़्त छमटवाड़ा में नरसिंहगढ़, तथा राजगढ़ के राजा, और मेवाड़ में बीजोलियां के सर्दार हैं.

(२) वागड़ के परमार.

मालवा के परमार राजा वैरिसिंह के छोटे भाई डंबरसिंह को वागड़ का इलाक़ा (डूंगरपुर बांसवाड़ा वग़ैरा) जागीर में मिला था. उस के वंशज बहुत पीछे तक उक्त प्रदेश पर राज्य करते रहे थे. उन की राजधानी अर्थूणा थी, जो इस समय बांसवाड़ा के राज्य में है. अर्थूणा से मिले हुए लेखों से उनकी नामावली नीचे लिखे अनुसार मिलती है:—

१ डंबरसिंह— उज्जैन के परमार राजा वैरिसिंह का छोटा भाई.

२ कंकदेव (नं० १ का वंशज)— मालवा के परमार राजा श्रीहर्ष (सीयक) ने मान्यखेट के राठौड़ राजा खोट्टिग पर चढ़ाई की जिस में यह (कंकदेव) नर्मदा के तट पर राठौड़ों से लड़कर मारा गया था.

३ चंडप (नं० २ का पुत्र).

४ सत्यराज (नं० ३ का पुत्र).

५ मंडन (नं० ४ का पुत्र)—इस को मंडलीक भी कहते थे.

६ चामुंडराज (नं० ५ का पुत्र)—इस ने सिन्धुराज को परास्त किया, और कन्ह के सेनापति को मारा था. इस ने वि० सं० ११३६ में अपने पिता के नाम से मंडलेश्वर का मन्दिर मठसहित बनवाया था. वि० सं० ११५७ (ई० स० ११००) तक इस के विद्यमान होने का पता लगता है.

७ विजयराज (नं० ६ का पुत्र)—इस के समय का एक शिलालेख वि० सं० ११६६ (ई० स० ११०९) का मिला है.

विजयराज के पीछे का अर्थूणा के परमारों का हाल नहीं मिलता. सूंथ के राजा इन परमारों के वंशज हैं.

९७—चौहान शब्द के लिये प्राचीन शिलालेख आदि में बहुधा चाहमान शब्द मिलता है, और पृथ्वीराजविजय काव्य में चापमान या चापहरि शब्द से उक्त नाम की उत्पत्ति होना लिखा है, जो धनुर्धर का सूचक है, नकि चतुर्भुज का. हमारा अनुमान यह है, कि उक्त वंश के

आदिपुरुष का नाम चौहान, चाहमान या चापमान हो, जिस से उस के वंशज चौहान, चवाण, या चाहमान कहलाये हों.

९८—टॉड साहिब- आबू पर के अचलेश्वर के मन्दिर के निकट महाराणा कुंभा के बनवाये हुए कुंभ स्वामी के मन्दिर के पासवाले बड़े कुंड (घाटों सहित जलाशय) को, जिस के तटपर एक पुरुष की धनुष सहित मूर्त्ति, और उस के आगे पूरे कद के पत्थर के तीन भैंसे खड़े हुए हैं, अग्निकुंड बतलाते हैं. परन्तु आबू के लोग वहां से कोई मील दूर वशिष्ठ के मन्दिर के सामने अग्निकुंड का होना प्रगट करते हैं; और जिस मूर्त्ति को टॉड साहिब आदिपाल की मूर्त्ति कहते हैं उस को वहां के लोग परमार धारावर्ष की मूर्त्ति बतलाते हैं. उक्त मूर्त्ति के नीचे कई पंक्तियों में खुदा हुआ एक लेख था, जिसपर वर्षा का जल गिरतेर वह ऐसा बिगड़ गया है, कि अब ठीक ठीक पढ़ा नहीं जाता, जिस से यह निर्णय नहीं हो सकता कि वास्तव में वह मूर्त्ति किस की है. उक्त मूर्त्ति के हाथ में धरे हुए धनुष के नीचे एक दूसरा लेख खुदा हुआ है, जिस में " ॐ संवत् १५२९ वर्षे फाल्गुनमासे कृष्ण पक्षे ६ बुधवासरे देवड़ा पैमा भाखरसिंघोत ...." पढ़ा जाता है. चित्तौड़ के कीर्त्तिस्तंभ के लेख से पाया जाता है, कि महाराणा कुंभा ने आबू पर अचलेश्वर के मन्दिर के पास कुंभ स्वामी का मन्दिर तथा उस के पास एक कुंड बनवाया था, अतएव आश्चर्य नहीं कि जिस कुंड को टॉड साहिब अग्निकुंड बतलाते हैं वह महाराणा कुंभा का बनवाया हुआ हो, और पीछे से उस की पाल पर देवड़ों ने वह मूर्त्ति तथा भैंसे बनवाये हों.

९९—टॉड साहिब ने पड़िहार नाम का शुद्ध रूप पृथिह+द्वार मान कर उस का अर्थ पृथ्वी का द्वार किया है, जो स्वीकार करनेयोग्य नहीं है, क्योंकि पड़िहारों के शिलालेखों में उन के वंश का नाम 'प्रतिहार' मिलता है, जिस का अर्थ द्वारपाल है.

१००—टॉड साहिब परमार शब्द का अर्थ पहिले मारनेवाला करते हैं, परन्तु उक्त शब्द का ठीक अर्थ शत्रुओं को मारनेवाला है, और परमारों के शिलालेख आदि में भी उक्त शब्द का यही अर्थ बतलाया गया है.

१०१—अनहिल—टॉड साहिब चौहानों के मूलपुरुष का नाम अनहिल लिखते हैं, परन्तु पृथ्वीराजविजय तथा हमीर महाकाव्य आदि में उस का नाम चाहमान लिखा मिलता है.

१०२–टॉड साहिब पृथ्वीराज का जन्म वि० सं० १२१५ में होना मानते हैं जो स्वीकार करने योग्य नहीं है (देखो प्रकरण पांचवें पर हमारा टिप्पण नं० १८)

१०३–टॉड साहिब चौहानों के मूलपुरुष से लगा कर पृथ्वीराज तक ३९ राजा होना लिखते हैं, परन्तु चौहानों के शिलालेख और पृथ्वीराजविजय आदि से ३० या ३१ नाम मिलते हैं.

१०४–मानिकराय का नाम राजपूताना में प्रसिद्ध है, परन्तु चौहानों के शिलालेख तथा पृथ्वीराजविजय, और हमीर महाकाव्य में उस का नाम नहीं मिलता. आबू पर अचलेश्वर के मन्दिर में लगे हुए चौहान राजा लुंढ (लुंभा) के समय के वि० सं० १३७७ के शिलालेख में नाडौल पर चौहानों का राज्य काइम करनेवाले लक्ष्मण (रावलाखणसी) का दूसरा नाम माणिक्य (माणिकराज) लिखा है, जो सांभर के चौहान राजा वाक्पतिराज का पुत्र और सिंहराज का छोटा भाई था. सिरोही की ख्यात में माणिकराज को सिंहराज का भाई लिखा है (परन्तु लाखणसीको सिंघराव का पुत्र मान लिया है), अतएव मानिकराय (मानिक राज) नाडौल के पहिले चौहान राजा लक्ष्मण (राव लाखणसी) का दूसरा नाम होना चाहिये.

१०५—धर्माधिराज-वीसलदेव (विग्रहराज) नाम के राजाओं में से किसी के पिता का नाम धर्माधिराज होना चौहानों के शिलालेखों अथवा पृथ्वीराजविजय से नहीं पाया जाता. शायद यह नाम भाटों का घडंत किया हुआ हो तो आश्चर्य नहीं.

१०६— सुलतान महमूद गज़नवी के समय में अजमेर बस गया हो ऐसा नहीं पाया जाता. पृथ्वीराजविजय से पाया जाता है कि आनाजी (अर्णोराज) के पिता, और वीसलदेव तथा सोमेश्वर के दादा अजयदेव ने अजमेर का किला बनवाया था. तारीखफिरिश्ता में महमूद गज

नवी का अजमेर विजय करना लिखा है; परन्तु फ़िरिश्ता ने उस समय से कई सौ वर्ष पीछे यह बात लिखी है. सुल्तान महमूद गज़नवी की सोमनाथ की चढ़ाई का हाल इब्न असीर ने कामिलुत्तवारीख में, जो ई० सन् १२३० में समाप्त हुई थी, लिखा है वह फ़िरिश्ता की अपेक्षा अधिक विश्वासयोग्य है, उस में अजमेर का नाम नहीं है.

१०७--वलीद-बग़दाद का खलीफ़ा, जिस ने ई० स० ७०५ से ७१५ तक राज्य किया था.

१०८—मुहम्मद क़ासिम ने हि० स० ९३ (ई० स० ७१२) में सिन्ध पर चढ़ाई की थी, और हि० स० ९६ (ई० स० ७१५) में वह मारडाला गया था. उक्त सनों के बीच में उस का मानिकराय पर आक्रमण करना किसी प्रकार संभव नहीं है, और न चाचनामे में, जिस में कि उस की चढ़ाइयों का हाल है, ऐसा लिखा मिलता है.

१०९— मुसल्मानों का तीसरा हमला यदि बीसलदेव के समय में हुआ हो, और उदयादित्य परमार चौहानों के साथ रहकर लड़ा हो तो वह अजमेर का क़िला बनानेवाले अजयदेव के दादा बीसलदेव (विग्रहराज तीसरे) के समय में होना चाहिये, क्योंकि उदयादित्य परमार का उक्त बीसलदेव के बड़े भाई दुर्लभ (दूसल) का समकालीन होना लिखा मिलता है.

११०—उदयादित्य मालवे का प्रसिद्ध परमार राजा था.

१११—ईसवी सन् १०९६ (वि० सं० ११५३) में उदयादित्य का देहान्त होना लेखों से निश्चय किया जाना टॉडसाहिब ने लिखा है, परन्तु लेखों से अबतक जो कुछ जाना गया है वह यही है, कि वि० सं० ११४३ (ई० स० १०८६) तक उदयादित्य विद्यमान था, उस के बाद किसी समय उस का देहान्त हुआ होगा, और वि० सं० ११६१ (ई० स० ११०४) में उस का दूसरा पुत्र नरवर्मा राज्य कर रहा था.

११२—मौदूद-गज़नी के सुल्तान महमूद गज़नवी का प्रपौत्र था; इस ने ई० स० १०४२ (वि० सं० १०९९) से १०४८ (वि० सं०

११०५) तक ग़ज़नी की बादशाहत की थी. इस के सैन्य ने हिन्दुस्तान पर चढ़ाई की थी; परन्तु सांभर तक इसका आना हुआ या नहीं यह निश्चय नहीं है.

११३—दिल्ली के जिस प्राचीन स्तंभ पर अशोक की धर्माज्ञाओं के नीचे चौहान बीसलदेव के तीन लेख खुदे हुए हैं वह बीसलदेव ऊपर लिखे हुए (टिप्पण नं० १०९ में) बीसलदेव से भिन्न था. वह अजमेर बसानेवाले अजयदेव का पौत्र, अर्णोराज (आनाजी) का पुत्र, और प्रसिद्ध पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर का बड़ा भाई था. वह (बीसलदेव) न तो मालवा के परमार राजा उदयादित्य का समकालीन था, और न मौदूद का. ऐसेही उदयादित्य भी मौदूद का समकालीन नहीं था; क्योंकि मौदूद ने वि० सं० ११०५ (ई० स० १०४८) तक राज्य किया था, और उदयादित्य ने वि० सं० १११२ के पीछे राज्य पाया था.

११४—ज़मीन के लिये धर्म का परित्याग करना राजपूतों के धर्मविश्वास के विरुद्ध है; परन्तु किसी किसी ने स्वार्थवश हो कर धर्म के विरुद्ध ऐसा काम किया है, जिन की तरफ़ राजपूत लोग बहुतही घृणा की दृष्टि से देखते हैं.

११५—चौहानवंश—इस समय चौहान अपने को अग्निवंशी बतलाते हैं, और अपने मूलपुरुष का आबू पर ऋषि वशिष्ठ द्वारा अग्निकुण्ड से उत्पन्न होना मानते हैं, परन्तु १६ वीं शताब्दी के पूर्व के चौहानों के शिलालेख तथा ताम्रपत्र मिला कर ६० से अधिक हम को मिले हैं, उन में कहीं उन का अग्निवंशी होना नहीं लिखा, और न उन का वशिष्ठ से कोई संबंध बताया है. वे अपने गोत्रोच्चार में भी अपने तईं चन्द्रवंशी, और वत्सगोत्री (न कि वशिष्ठ) होना प्रगट करते हैं. चौहान राजा पृथ्वीराज दूसरे का एक शिलालेख वि० सं० १२२४ (ई० स० ११६७) का टॉड साहिब को हांसी के क़िले से मिला, उस में उक्त पृथ्वीराज का चन्द्रवंश में उत्पन्न होना लिखा है (क्रॉनिकल्स ऑफ़ दि पठान किंग्ज़ ऑफ़ देहली). आबू पर अच-

लेश्वर के मन्दिर में चौहान लूंढदेव (रावलुंभा) के समय का एक शिलालेख वि० सं० १३७७ (ई० स० १३२०) का लगा हुआ है, जिस में उक्त वंश के मूल पुरुष (चाहमान) का वत्स ऋषि के ध्यान और चन्द्र के योग से उत्पन्न होने के कारण चन्द्रवंशी होना लिखा है. इसी तरह मेवाड़ में बीजोल्यां के पासवाले चट्टान पर के वि०सं० १२२६ के, तथा जोधपुर राज्यांतर्गत जसवंतपुरा नामी ज़िले के सूंधा नामक पहाड़ पर देवी के मन्दिर में लगे हुए जालौर के चौहान राजा चाचिगदेव के समय के वि०सं० १३१९ के लेख में भी चौहानों का वत्सऋषि से संबन्ध बतलाया है, वशिष्ठऋषि से नहीं. पृथ्वीराजविजय, और हमीर महाकाव्य के कर्ताओं को चौहानों का अग्निवंशी होना मालूम नहीं था. हमीर महाकाव्य के लिखे जाने बाद पृथ्वीराज रासा बना, जिस के कर्ता ने परमारों की उत्पत्ति के हाल से परिचित न होने के कारण चौहानों को भी अग्निवंशी लिख दिया, तब से चौहान अपने को अग्निवंशी मानने लग गये हैं. चौहानों की प्रथम राजधानी सांभर (शाकंभरी) थी. फिर अजयदेव ने अजमेर का क़िला बनवाया तब से अजमेर राजधानी हुई. (सांभर से पहिले उन का अहिच्छत्र में रहना लिखा मिलता है).

(१) सांभर तथा अजमेर के चौहान.

१ चाहमान—उक्त वंश का मूलपुरुष, जिस के नाम से उस के वंशज चौहान कहलाये.

२ वासुदेव (चाहमान का वंशज).

३ सामन्तराज (नं० २ का पुत्र)—इस ने सांभर में अपना राज्य क़ाइम किया.

४ जयराज (नं० ३ का पुत्र)—इसी को अजयराज या अजयपाल समझ कर अजमेर का बसानेवाला पिछले लेखकों ने मान लिया है, परन्तु अजमेर का बसानेवाला यह नहीं था.

५ विग्रहराज (नं० ४ का पुत्र

६ चन्द्रराज (नं० ५ का पुत्र).

७ गोपेन्द्र (नं० ६ का छोटा भाई)—इस को गोविन्दराज भी कहते थे.

८ दुर्लभ (नं० ७ का उत्तराधिकारी) – यह गौड़ों से लड़ा था.

९ गूवक (नं० ८ का उत्तराधिकारी)—इस ने राजा नागावलोक की सभा में ' वीर ' पद पाया था.

१० चन्द्रराज दूसरा (नं० ९ का पुत्र).

११ गूवक दूसरा (नं० १० का पुत्र).

१२ चन्दनराज (नं० ११ का पुत्र)—इस ने युद्ध में तोमर (तंवर) वंशी राजा रुद्रेण को मारा था.

१३ वाक्पतिराज (नं० १२ का पुत्र)—इस को वप्पयराज भी कहते थे. इस ने पुष्कर में एक मन्दिर बनवाया था. तंत्रपाल (शायद तंवर हो) राजा ने उस पर चढ़ाई की, परन्तु उस (तंत्रपाल) को हारकर भागना पड़ा. इस (वाक्पतिराज) के तीन पुत्र सिंहराज, लक्ष्मणराज, और वत्सराज थे, जिन में से सिंहराज इस के पीछे सांभर का राजा हुआ, लक्ष्मण ने नाडौल में अलग राज्य स्थापन किया, और वत्सराज को जयपुर (वर्तमान जयपुर से भिन्न) का पर्गना जागीर में मिला था.

१४ सिंहराज (नं० १३ का पुत्र) – तंवरों ने लवण नामक राजा की सहायता से इस पर चढ़ाई की जिस में उन की पराजय हुई. यह (सिंहराज) बड़ा दानी, रणविजयी और बड़ी समृद्धिशाली राजा था, और यह मुसल्मानों से लड़ा था. इस के अन्तसमय में राज्य पर कुछ आपत्ति आई हो ऐसा पाया जाता है. इस के तीन पुत्र विग्रहराज, दुर्लभराज, और गोविन्दराज थे.

१५ विग्रहराज दूसरा (नं० १४ का पुत्र) – इस ने गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव पर चढ़ाई कर उस को कंथकोट के किले में भगाया. इस के समय का एक शिलालेख वि० सं० १०३० का मिला है.

१६ दुर्लभराज दूसरा (नं० १५ का छोटा भाई).

१७ गोविन्दराज (नं० १६ का उत्तराधिकारी, शायद छोटा भाई हो)- इस को गंडुराज भी कहते थे.

१८ वाक्पतिराज दूसरा (नं० १७ का पुत्र).

१९ वीर्यराम (नं० १८ का पुत्र)-यह मालवा के परमार राजा भोज के साथ की लड़ाई में मारा गया था.

२० चामुंड (नं० १९ का छोटा भाई)—इस ने नरवर में विष्णु का मंदिर बनवाया था. पृथ्वीराजविजय में इस का राजा होना नहीं लिखा, परन्तु बीजोल्यां के शिलालेख तथा हमीरमहाकाव्य में इस का नाम राजाओं की नामावली में दर्ज किया है.

२१ दुर्लभ दूसरा (नं० २० का उत्तराधिकारी)—इस को दूसल भी कहते थे. इस से अश्व (सैन्य) पाकर मालवा के परमार राजा उदयादित्य ने गुजरात के सोलंकी राजा कर्ण को विजय किया, ऐसा पृथ्वीराजविजय में लिखा मिलता है.

२२ वीसल (नं० २१ का छोटा भाई)—इस को विग्रहराज तीसरा भी कहते थे. इस की राणी का नाम राजदेवी था. बीसलदेव रासा नामक पुस्तक में इस की राणी राजमती (राजदेवी) को धारानगरी के परमार राजा भोज की पुत्री लिखा है, परन्तु भोज, वीसल का समकालीन नहीं, किन्तु उपर्युक्त वीर्यराम (नं० १९) का समकालीन था; अतएव राजमती भोज की पुत्री नहीं हो सकती.

२३ पृथ्वीराज (नं० २२ का पुत्र)-इस की राणी रासल्ल देवी थी. जैन साधु अभयदेव (मलधारी) के उपदेश से उस ने रणस्तंभपुर (रणथंभोर) के एक जैनमन्दिर पर सुवर्ण का कलश चढ़ाया था.

२४ अजयराज (नं० २३ का पुत्र)--इस को अजयदेव भी कहते थे. इस ने अजमेर का प्रसिद्ध क़िला बनवाया, और इस के समय से चौहानों की राजधानी अजमेर हुई. इस ने चाचिग, सिंधुल,

और यशोराज नामक तीन राजाओं को मारा, और मालवा के राजा के सेनापति सोल्हण को युद्ध में पकड़ने बाद ऊंट पर बांध कर अपने यहां लाया था. इस के चांदी और तांबे के सिक्के मिलते हैं. इस की राणी सोमलदेवी (सोमलेखा) के भी चांदी और तांबे के सिक्के मिलते हैं, अतएव: संभव है कि इस ने भी अपने पति के पीछे अपने पुत्र की बाल्यावस्था में राज्य किया हो.

२५-अर्णोराज (नं० २४ का पुत्र)-इस को आनलदेव और आनाक भी कहते थे, और राजपूताना में आनाजी नाम से प्रसिद्ध है. इस के तीन पुत्र जगदेव, वीसलदेव (विग्रहराज), और सोमेश्वर थे; जिन में से जगदेव, और वीसलदेव (विग्रहराज) मालवण सुधवा से, और तीसरा सोमेश्वर गुजरात के प्रसिद्ध सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह की पुत्री कांचनदेवी से उत्पन्न हुआ था. अर्णोराज ने सोलंकी कुमारपाल के समय में गुजरात पर चढ़ाई की, जिस का बदला लेने के लिये कुमारपाल ने अजमेर पर वि० सं० १२०७ के आसपास चढ़ाई कर अर्णोराज को हराया था. फिर आपस में सुलह होने पर कुमारपाल चित्तोड़ होता हुआ गुजरात को लौट गया. अर्णोराज अपने ज्येष्ठ पुत्र जगदेव के हाथ से मारा गया था.

२६ जगदेव (नं० २५ का पुत्र)—यह अपने पिता को मारकर अजमेर का राजा हुआ, परन्तु इस पितृघाती से इस के छोटे भाई वीसलदेव ने राज्य छीन लिया.

२७-वीसलदेव (नं० २६ का छोटा भाई)--इस को विग्रहराज (चौथा) भी कहते थे. यह बड़ा ही वीर, प्रतापी, और विद्वान् राजा था. इस ने हिमालय से विन्ध्याचल तक के देश विजय किये, और आर्यावर्त में से मुसल्मानों को निकाल दिया, दिल्ली को विजय कर वहां पर चौहानों का अधिकार जमाया, और नाडौल तथा पाली को बर्बाद कर जालोर को जला दिया था. इस ने मारा

नगरी के राजा भोज की बनाई हुई सरस्वती कंठाभरण पाठशाला के तर्ज़ की एक विशाल पाठशाला अजमेर में बनवाई, और अपने रचे हुए हरकेलि नाटक तथा अपने राजकवि सोमेश्वर पंडित के रचे हुए ललितविग्रहराज नाटक आदि पुस्तकों को शिलाओं पर खुदवा कर पाठशाला में रखवाया था. उक्त पाठशाला को शहाबुद्दीन ग़ोरी ने वि०सं० १२५० में तोड़ा, और सं० १२५६ में फिर वहां पर मसजिद बनवाई गई, और शम्सुद्दीन अल्तिमश के वक्त में उस के सामने के बड़े मेहराब तय्यार हुए, जिन में क़ुरान की आयतें खुदी हुई हैं. अब वह पाठशाला 'ढाई दिन का झूंपड़ा' के नाम से प्रसिद्ध है. ललितविग्रहराज नाटक से (जिस में मुसल्मानों के साथ की इस (वीसलदेव) की लड़ाई का वर्णन है) पाया जाता है, कि इस की सेना में १००० हाथी १०००० सवार, और १०००००० पैदल थे (शायद इस में कुछ अतिशयोक्ति हो). वीसलदेव की आधीनता में बहुत से हिन्दू राजाओं के एकत्र होकर मुसल्मानों से लड़ने की जो ख्याति चली आती है, वह शायद इसी वीसलदेव से सम्बन्ध रखती हो. चौहानों में यह बड़ा ही नामी राजा हुआ. वि० सं० १२१० माघ सुदि ५ के दिन इस वीसलदेव ने हरकेलि नाटक को संपूर्ण किया था. देहली की प्रसिद्ध फ़िरोज़शाह की लाट पर अशोक की धर्माज्ञाओं के नीचे के वि०सं० १२२० वैशाख शुक्ला १५ के जो लेख खुदे हुए हैं वे इस के समय के लेखों में सब से पिछले हैं. इसी संवत् के आस पास इस का देहान्त होना चाहिये।

२८ अमरगांगेय (नं०२७ का पुत्र)—अबुलफ़ज़्ल ने इस का नाम अमरगंगू लिखा है. राज्य पाने के समय यह बालक था जिस से उपर्युक्त जगदेव (नं० २६) के पुत्र पृथ्वीराम ने इस से राज्य छीन लिया.

२९. पृथ्वीराज दूसरा (नं० २६ का पुत्र)—इस को पृथ्वीदेव, और पृथ्वीभट भी कहते थे. वि० सं०१२२६ में इस का देहान्त हुआ।

३० सोमेश्वर (नं० २७ का छोटा भाई)—इस के नाना गुजरात के सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह ने इस को अपने पास रख कर शिक्षा दी थी. इस का विवाह त्रिपुरी (तेवर = चेदी देश की राजधानी) के कलचुरि (हैहय) वंशी राजा की पुत्री कर्पूरदेवी से हुआ, जिस से दो पुत्र पृथ्वीराज और हरिराज हुए थे, ऐसा पृथ्वीराजविजय में लिखा है. हमीरमहाकाव्य में भी सोमेश्वर की राणी का नाम कर्पूरदेवी लिखा है. पृथ्वीराजरासे में दिल्ली के तंवर राजा अनंगपाल की पुत्री कमलादेवी से सोमेश्वर का विवाह होना, उस से पृथ्वीराज का जन्म होना, और उस का दिल्ली गोद जाना आदि लिखा है. यह सारी कथा ही कपोल कल्पित है. दिल्ली तो वीसलदेव (विग्रहराज चौथे) के समय से ही चौहानों के आधीन हो गई थी. फिर पृथ्वीराज का गोद जाकर वहां का राज्य पाना कैसे संभव हो सकता है. सोमेश्वर के ताम्बे के सिक्के मिले हैं. वि० सं० १२३६ के करीब सोमेश्वर का देहान्त हुआ।

३१ पृथ्वीराज तीसरा (नं० ३० का पुत्र)—सोमेश्वर के देहान्त समय पृथ्वीराज बालक था, जिस से इस की माता कर्पूरदेवी ने अपने प्रधान मंत्री कादंब (कदंब वंशी) वास की सहायता से कुछ समय तक राज्य का प्रबंध किया था. पृथ्वीराज ने वि० संवत् १२३९ (ई०स०११८२) में महोबा के चंदेल राजा परमर्दि (परमल) पर चढ़ाई कर उस को विजय किया; और सं० १२४७ (ई० स० ११९१) में तराइन की लड़ाई में शहाबुद्दीन गोरी को बड़ी भारी शिकस्त दी, जिस से उस के वीरत्व की बहुत कुछ प्रशंसा हुई. सुल्तान बदला लेने के लिये दूसरे वर्ष बड़ी सेना के साथ, जिस में १२०००० सवार थे, पृथ्वीराज पर चढ़ा, तो पृथ्वीराज भी उस के मुकाबले को चला, और सरस्वती नदी के दोनों तट पर दोनों लश्कर एक दूसरे के सामने आ ठहरे. फिरिश्ता लिखता है कि उस समय पृथ्वीराज की सेना में ३००००० सवार, ३००० हाथी, कितनेही पैदल, और १५०

राजा (उक्त संख्या में सामन्त शामिल होने चाहिये) थे. सुलतान ने धोखा दे कर अचानक पृथ्वीराज की सेना पर हमला कर दिया, जिस में हिन्दुओं की हार हुई, तथा दिल्ली का अन्तिम वीर हिन्दू सम्राट (पृथ्वीराज) वीरता के साथ लड़ कर कैद हुआ, और कुछ समय बाद मारा गया. सुलतान सरस्वती, समाना, कुहराम, और हांसी आदि के किले अपने आधीन कर अजमेर पहुंचा. उक्त नगर को विजय कर वहां के कई हजार निवासियों को मारा, और कई मन्दिरों को तोड़ा. फ़िरिश्ता लिखता है, कि 'फिर बराबर खिराज देने की शर्त पर अजमेर का मुल्क पृथ्वीराज के पुत्र कोला (किसी प्रति में गोला भी पाठ है, जो गोविन्दराज का बिगड़ा हुआ रूप होना चाहिये) को सौंप कर सुलतान दिल्ली की तरफ़ गया, जहां का नया राजा बहुत कुछ नज़राना ले कर हाज़िर हो गया. फिर सुलतान अपने गुलाम मलिक कुतुबुद्दीन ऐबक को बहुत सी सेना के साथ कुह-राम में छोड़ गज़नी को लौटा, जिस के बाद कुतुबुद्दीन ऐबक ने मेरट तथा दिल्ली छीन ली, और हि० स० ५८९ (वि० सं० १२५०=ई० स० ११९३) में देहली को अपनी राजधानी बनाया'. इस प्रकार दिल्ली के हिन्दूराज्य की समाप्ति हुई. पृथ्वी-राज के मारे जाने के समय उस के पुत्र गोविन्दराज के बालक होने के कारण पृथ्वीराज के भाई हरिराज ने अजमेर का राज्य छीन लिया, जिस से वह रणथंभोर में जा रहा. पृथ्वीराज के तांबे के सिक्के मिले हैं. एक प्रकार के तांबे के सिक्के ऐसे भी मिले हैं, जिन के एक तरफ सुलतान महम्मद साम (शहाबुद्दीन गौरी), और दूसरी तरफ़ पृथ्वीराज का नाम है. ये सिक्के इस के कैद होने और मारे जाने के बीच के समय के होने चाहियें.

३२ हरिराज (नं० ३१ का छोटा भाई)–इस ने गोविन्दराज से अज-मेर का राज्य छीनकर दिल्ली की तरफ़ फ़ौज भेजी जिस से कुतुबु-द्दीन ऐबक ने फिर अजमेर पर चढ़ाई की, और हरिराज परास्त

हो कर जल मरा. कुतुबुद्दीन ने अजमेर पर कब्ज़ा कर वहां के मन्दिरों को तोड़ा.

(२) रणथंभौर के चौहान.

२३ गोविन्दराज (नं० ३१ का पुत्र) हमीर महाकाव्य में पृथ्वीराज के पुत्र का नाम गोविन्दराज मिलता है. प्रबन्ध कोश के अन्त में लिखीहुई चौहानों की एक वंशावली में उस के स्थान पर राजदेव, और पृथ्वीराज रासा में रेणसी लिखा है. इन में से हमीर महाकाव्य के नाम को हम विश्वासयोग्य समझते हैं. (बंबई के छपे हुए हम्मीर महाकाव्य के चौथे सर्ग में गोविन्दराज को पृथ्वीराज का पौत्र लिखा है, परन्तु वह छापे की अशुद्धि है, कदाचित् पुत्र के स्थान पर पौत्र छप गया होगा, क्योंकि उसी सर्ग के २९ वें श्लोक में हरिराज को गोविन्दराज का, चचा लिखा है, जिस से स्पष्ट है कि गोविन्दराज हरिराज के भाई पृथ्वीराज का पुत्र था.) गोविन्दराज अजमेर को छोड़ रणथंभोर में जा रहा, जहां से भी हरिराज उस को निकालना चाहता था, परन्तु कुतुबुद्दीन ऐबक ने इस (गोविन्दराज) की मदद की, जिस से हरिराज को भागना पड़ा ऐसा ताजुलमआसिर नामक फ़ारसी तवारीख़ से पाया जाता है. इस के समय से चौहानों की राजधानी रणथंभोर हुई.

२४ वाल्हणदेव (नं० २३ का उत्तराधिकारी)—इस के समय का एक शिलालेख वि० सं० १२७२ का मिला है. उक्त संवत् में यह सुल्तान शम्सुद्दीन अल्तिमश के मातहत था ऐसा उक्त लेख से पाया जाता है. इस के दो पुत्र प्रहाददेव और वाग्भट थे.

२५ प्रहाददेव (नं० २४ का पुत्र)—शिकार में शेर ने इस पर हमला कर इस का कधा चबा डाला, जिस के विष से इस का देहांत हुआ.

२६ वीरनारायण (नं० २५ का पुत्र)—इस का देहान्त दिल्ली में विष से हुआ, और रणथंभोर पर मुसल्मानों का अधिकार हो गया.

२७ वाग्भट (नं० २५ का छोटा भाई)—इस को बाहड भी कहते

थे. यह वीरनारायण के राज्यसमय में आपस की अनबनत के कारण मालवे में चला गया था, और वहां का कुछ हिस्सा इस ने अपने आधीन कर लिया, ऐसा हमीर महाकाव्य में लिखा है. वाग्भट ने मालवे से लौट कर फिर रणथंभोर पर अपना राज्य जमाया. अलाउद्दीन खिल्जी के समय में उलगखां ने दो बार वाग्भट पर चढ़ाई की, परन्तु वह रणथंभोर को छीन न सका.

२८ जैत्रसिंह (नं० २७ का पुत्र)—संवत् १३३९ में इस का देहान्त होना हमीर महाकाव्य में लिखा है.

२९ हम्मीर (नं० २८ का पुत्र)—यह अजमेर के चौहानों में अन्तिम स्वतंत्र राजा हुआ. इस की वीरता की प्रसिद्धि अब तक बराबर चली आती है, और संस्कृत तथा प्राकृत के कई एक पद्यों में इस की प्रशंसा मिलती है. संवत् १३५८ में अलाउद्दीन के साथ की लड़ाई में यह वीरता से लड़ कर मारा गया, और रणथंभोर पर बादशाह का अधिकार हो गया.

(२) छोटा उदयपुर तथा बारिया के चौहान.

नानीछमरण नामी गांव (गुजरात में से चौहान राजा जयसिंहदेव के समय का वि०.सं० १५२५ का एक शिलालेख मिला है, उस में लिखा है कि "चौहानवंश में पृथ्वीराज आदि बहुत राजा हुए. चौहानकुल तिलक राजा श्रीहम्मीरदेव के वंश में (क्रमशः) रामदेव, चांगदेव, चाचिगदेव, सोमदेव, पालहणसिंह, जितकर्ण (जैत्रकर्ण), कुंपुरावल, वीरधवल, सवराज (शिवराज), राघवदेव, त्र्यंबकभूप, गंगराजेश्वर, और राजाधिराज जयसिंह देव हुए." जयसिंह देव उक्त संवत् (१५२५) में विद्यमान था. हम्मीर के देहान्त और जयसिंह देव के बीच केवल १६७ वर्ष का अन्तर है, जिस में १३ राजाओं के नाम मिलते हैं, जिस से प्रत्येक राजा का राज्यसमय औसत हिसाब से १३ वर्ष के क़रीब आता है, अतएव उपर्युक्त रामदेव हम्मीर का पुत्र अथवा नज़्दीकी रिश्तेदार होना चाहिये. ऐसा प्रसिद्ध है, कि हम्मीर के

देहान्त के बाद रामदेव ने गुजरात में जाकर पावागढ़ के आस पास का प्रदेश अपने आधीन किया और चांपानेर को अपनी राजधानी बनाया. हि० स० ८८९ (वि० संवत् १५४१) में गुजरात के सुलतान महमूद शाह बेगड़ा ने चांपानेरके क़िले पर चढ़ाई की तो जयसिंहदेव ने, जो गुजरात में पताई रावल नाम से भी प्रसिद्ध था, अपनी राणी आदि को अग्नि में जलाकर वीरता के साथ सुलतान का मुक़ाबला किया, जिस में वह घायल होने पर कैद हुआ. पांच छः महीनों बाद उस के घाव आराम होने पर वह सुलतान के सामने लाया गया, और मुसल्मान होने की शर्त पर उस को राज्य लौटा देने की सुलतान ने इच्छा प्रगट की, परन्तु उस ने इस बात को स्वीकार न किया, जिस से वह अपने प्रधान डूंगरसी सहित मारा गया. उस के ज्येष्ठ पुत्र रायसिंह के, जो अपने पिता की विद्यमानता में ही मर गया था, दो पुत्र पृथ्वीराज, और डूंगरसिंह थे, जिन्हों ने नर्मदा के उत्तरी प्रदेश में जाकर राजपीपला व गोधरा के बीच का प्रदेश अपने आधीन कर आपस में बांट लिया. पृथ्वीराज ने मोहन (छोटा उदयपुर) में, और डूंगरसिंह ने बारिया में रहना इख्तियार किया. दिल्ली के अन्तिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज के वंश में इस समय छोटा उदयपुर, और बारिया के राज्य हैं. इन के अलावा मैनपुरी इटावा आदि की तरफ़ के, अलवर राज्य में नींवराणा के, तथा उदयपुर (मेवाड़) राज्य के बेदला, पारसोली व कोठारया के चौहान भी पृथ्वीराज के वंशज माने जाते हैं; और इन में बेदला के चौहान तो पृथ्वीराज के वंश में अपने को पाटवी मानते हैं.

(४) नाडोल के चौहान.

१ लक्ष्मण (सांभर के चौहान राजा वाक्पतिराज का पुत्र)—राजपूताना में यह रावलाखणसी के नाम से विख्यात है, और इस की वीरता आदि के बहुत से क़िस्से प्रसिद्ध हैं.

२ शोभित (नं० १ का पुत्र)—इस को सोहिय भी कहते थे.

३ बलिराज (नं० २ का पुत्र)—इस ने मालवा के परमार

राजा मुंज को हराया था, ऐसा उपर्युक्त सूंधा पहाड़ पर के मन्दिर के लेख में दर्ज है.

४ विग्रहपाल (नं० २ का भाई)—सूंधा के लेख में विग्रहपाल का नाम नहीं है.

५ महेन्द्र (नं० ४ का पुत्र)—द्व्याश्रय महाकाव्य में लिखा है, कि मारवाड़ (नाडोल) के राजा महेन्द्र की बहिन दुर्लभदेवी ने स्वयंवर में गुजरात के सोलंकी राजा दुर्लभराज को वरमाला पहिनाई थी, और उक्त महेन्द्र की दूसरी बहिन लक्ष्मी का विवाह दुर्लभराज के छोटे भाई नागराज के साथ हुआ था.

६ अणहिल्ल (नं० ५ का पुत्र)—सूंधा के लेख में बलिराज के पीछे विग्रहपाल का नाम छोड़ दिया है, तथा महेन्द्र के बाद अश्वपाल, उस के पीछे अहिल, और उस के बाद अणहिल्ल का नाम लिखा है, परन्तु हम ने नं० १ से ६ तक के नाम नाडोल से मिलेहुए वि० सं० १२१८ के दो ताम्रपत्रों के अनुसार ही दिये हैं, जो सूंधा के लेख से १०१वर्ष पूर्व के हैं. अणहिल्ल ने गुजरात के राजा भीम को हराया, और मालवा के राजा भोज के सेनापति साढा को मारा था, तथा यह मुसल्मानों से भी लड़ा था, ऐसा लिखा मिलता है, जिस से अनुमान होता है कि यह पाहिले गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव से लड़ा हो, जब कि इस ने परमारों से आबू छीना था, परन्तु पीछे से इस ने उस (भीमदेव) की मातहती स्वीकार की हो, और भीमदेव तथा मालवा के राजा भोज के बीच की लड़ाई में यह भीमदेव के पक्ष में रह कर लड़ा हो. ऐसे ही भीमदेव के समय में सुल्तान महमूद गज़नवी ने सोमनाथ पर चढ़ाई की, उस समय यह नाडोल के पास सुल्तान से लड़ा हो, क्योंकि सुल्तान नाडोल के रास्ते से सोमनाथ गया था.

७ बालप्रसाद (नं०६ का पुत्र)—इस ने कृष्णदेव (आबू के परमार राजा धंधुक का छोटा पुत्र हो) को भीमदेव के क़ैदखाने से छुड़ाया था.

८ जेन्द्रराज (नं०७ का छोटाभाई)—इस के तीन पुत्र पृथ्वीपाल, जोजलदेव, और आसराज थे.

९ पृथ्वीपाल (नं० ८ का पुत्र)—इस ने गुजरात के राजा कर्ण (भीमदेव के पुत्र) के सैन्य को परास्त किया था.

१० जोजलदेव (नं० ९ का छोटा भाई)—इस को योजक भी लिखा है. इस के समय के दो शिलालेख मिले हैं, जो दोनों वि० संवत् ११४७ (ई० स० १०९०) के हैं.

११ पृथ्वीपाल (नं० १० का उत्तराधिकारी)—इस के समय के दो शिलालेख मिले हैं, जो वि० सं० ११९८ और १२०० (ई० स० ११४१ और ११४३) के हैं.

१२ आसराज (नं० १० का छोटा भाई)—इस को आशाराज और अश्वराज भी कहते थे. गुजरात के राजा सिद्धराज जयसिंह ने मालवे पर चढ़ाई की उस समय आसराज ने उस की सहायता की थी. यह विद्वानों की क़द्र करनेवाला था. इस ने सदाव्रत जारी किये, और तालाब, बावड़ी, कुएं, प्रपा (प्याऊ), शिवमन्दिर आदि अनेक धर्मस्थान बनवाये थे. इस के दो पुत्र आल्हण, और माणिकराय हुए, जिन में से बड़ा आल्हण इस के बाद नाडोल का राजा हुआ, और छोटे माणिक राय के वंश में बूंदी और कोटा के चौहान हैं.

१३ आल्हण (नं० १२ का पुत्र)—गुजरात के सोलंकी राजा कुमारपाल ने काठियावाड़ पर चढ़ाई की उस समय आल्हण ने कुमारपाल की सहायता कर यश प्राप्त किया था. इस के समय में अजमेर के चौहान वीसलदेव (विग्रहराज चौथे) ने नाडोल पर चढ़ाई कर उक्त नगर को वर्बाद सा कर दिया. आल्हण के समय के दो लेख मिले हैं, जो वि० सं० १२०९ और १२१८ के हैं. इस के तीन पुत्र केल्हण, गजसिंह, और कीर्तिपाल थे.

१४ केल्हण (नं० १३ का पुत्र)—इस के समय के लेख वि० सं० १२२३ और १२३४ के मिले हैं.

१५ कीर्तिपाल (नं० १४ का छोटा भाई)—राजपूताना में यह कीतू नाम से प्रसिद्ध है. यह एक बड़ा ही वीरप्रकृति का राजा था.

इस ने परमारों से जालोर का क़िला लेकर उस को अपनी राजधानी बनाया. उस किले का नाम सुवर्णगिरि (सोनलगढ़) होने के कारण नाडोल के चौहान उस स्थान के नाम से सोनगरे चौहान कहलाये. सुल्तान शहाबुद्दीन गोरी ने (वि० सं० १२३५ में) अनहिलवाड़े पर चढ़ाई की उस समय कीर्तिपाल आबू के नीचे कासहृद (कायद्रां) के पास सुल्तान से लड़ा था, जिस में सुल्तान को घायल होकर लौटना पड़ा. इस हार का ज़िक्र फ़ारसी तवारीख़ों में भी मिलता है. कीर्तिपाल ने मेवाड़ का भी कुछ हिस्सा छीन लिया था, इसी से मेवाड़ के रावल जैत्रसिंह ने पीछे से नाडोल पर चढ़ाई कर उस को बर्बाद कर दिया.

१६ समरसिंह (नं० १५ का पुत्र)—इस की पुत्री लीलादेवी का विवाह गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव (दूसरे) से हुआ था. इस के दो पुत्र उदयसिंह और मानसिंह थे (आबू के एक लेख में मानसिंह को बड़ा लिखा है), जिन में से उदयसिंह, समरसिंह के बाद जालौर का राजा हुआ, और मानसिंह के वंश में सिरोही के राजा हैं.

१७ उदयसिंह (नं० १६ का पुत्र)—इस के आधीन नाडोल, जालौर, मंडोर, बाड़मेर, सुराचंद, राटहृद, खेड, रामसेण, श्रीमाल (भीनमाल), रत्नपुर, सत्यपुर (साचौर) आदि इलाक़े थे. यह विद्वान् और बहादुर राजा था. मुसल्मानों से इस को बड़ी घृणा थी, जिस से सुल्तान शम्सुद्दीन अल्तिमश ने वि० सं० १२६८ में इस पर चढ़ाई की थी, परन्तु क़िला मुसल्मानों के हाथ में नहीं गया. इस की पुत्री का विवाह धोलका (गुजरात में) के वघेल (सोलंकी) राजा वीरधवल के बड़े बेटे वीरम से हुआ था. वि० सं० १२६२ से लगा कर १३०६ तक के इस के समय के कई शिलालेख मिले हैं.

१८ चाचिगदेव (नं० १७ का पुत्र)—इस की राणी लक्ष्मीदेवी से रूपादेवी नामक कन्या उत्पन्न हुई थी, जिस का विवाह राजा तेजसिंह

(शायद यह मेवाड़ का रावल तेजसिंह हो) के साथ हुआ था. रूपादेवी का पुत्र क्षेत्रसिंह था. उस (रूपादेवी) ने वि० सं० १३४० में अपने भाई सामन्तसिंह के राज्यसमय में बुंडतरा गांव (मारवाड़ में) में एक बावड़ी बनवाई थी. चाचिगदेव ने उपर्युक्त बघेल वीरम को मारा था. इस के समय के कई शिलालेख मिले हैं जो वि० सं० १३१९ से १३३२ तक के हैं.

१९ सामन्तसिंह (नं० १८ का पुत्र)—इस के समय के शिलालेख वि० सं० १३३९ से १३५२ तक के मिले हैं.

२० कान्हड़देव (नं० १६ का पुत्र)—यह बहादुर राजा था. इस के समय में अलाउद्दीन खिल्जी की सेना ने जालौर पर चढ़ाई की, परन्तु एक बार तो उस को हार कर लौटना पड़ा. फिर दूसरी बार बड़ी सेना के साथ चढ़ाई हुई, जिस में कान्हड़देव लड़ कर मारा गया, जिस के तीन दिन पीछे इस का पुत्र वीरमदेव भी मारा गया, और जालौर पर मुसल्मानों का अधिकार हो गया. फिरिश्ता इस घटना का हि० सं० ७०९ (वि० सं० १३६६) में, और मूंतानेणसी वि० सं १३६८ के वैशाख शुद में होना लिखता है. कान्हड़देव का भाई मालदेव, जो बच गया था, कुछ अरसे तक इधर उधर मुल्क लूटता तथा लड़ता रहा. फिर दिल्ली जा कर बादशाह की सेवा में रहा, जिस के बाद चित्तौड़ का क़िला जो अलाउद्दीन खिल्जी ने रावल रत्नसिंह से छीना था, इस (मालदेव) को मिला, परन्तु थोड़े अरसे बाद महाराणा हम्मीर ने वह क़िला मालदेव से छीन लिया.

(५) बूंदी और कोटा के चौहान.

बूंदी और कोटा की ख्यातों में तथा वंशभास्कर में वहां के राजाओं के पूर्वजों की जो वंशावली दी है वह बिल्कुलही रद्दी है, क्योंकि उस में वि० सं० १३०० के पूर्व के क़रीब क़रीब सब नाम कृत्रिम ही हैं. चौहानों के प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र, और पृथ्वीराजविजय, तथा हम्मीरमहाकाव्य आदि से उक्त वंशावली का शुद्ध होना सिद्ध नहीं होता. अब तक उन का इतिहास लिखनेवालों में से किसी ने उन के

पूर्वजों के प्राचीन शिलालेख आदि की तरफ़ ध्यान नहीं दिया, किन्तु यह भी निर्णय नहीं किया कि उन की शाखा सांभर के चौहानों में से कब और किस से चली. बूंदीवाले नाडोल के चौहान राजा आसराज (नं० १२) के छोटे पुत्र माणिकराज के वंशज हैं. (१) माणिकराज के पीछे क्रमशः (२) संभारण, (३) जैतराव, और (४) अनंगराव हुए. मेनाल (मेवाड़ में) से मिले हुए हाड़ों के लेख में अनंगराव के स्थान पर टॉडसाहिब ने भंवरपन पढ़ा है, परन्तु शुद्ध पाठ मकरध्वज होना चाहिये, क्योंकि अनंग, और मकरध्वज दोनों कामदेव के नाम होने से एक दूसरे के स्थान में प्रयोग किये जा सकते हैं. अनंगराव का पुत्र (५) कुंतिसिंह (इस के स्थान में उपर्युक्त लेख में टॉडसाहिब ने कुकन पढ़ा है), उस का (६) विजेपाल (मेनाल के उपर्युक्त लेख में इस का नाम जयपाल लिखा है), और उस का (७) हरराज हुआ, जो राजपूताना में हाड़ा नाम से प्रसिद्ध था. हरराज (हाड़ा) के वंशज हाड़ा राजपूत कहलाये. बूंदी के भाटों ने हाड़ा शब्द को हाड़ (हड्डी) से निकला हुआ समझ कर हड्डी के संस्कृत रूप अस्थि पर से अस्थिपाल नाम घड़न्त कर अस्थिपाल से हाड़ा नाम की उत्पत्ति होना मान लिया है, परन्तु यदि उस पुरुष का नाम अस्थिपाल होता तो उस के वंशज हाड़ा कभी नहीं कहलाते. हरराज (हाड़ा) के वंशज होने से ही वे हाड़ा कहलाये हैं. हरराज (हाड़ा) का पुत्र (८) बंगदेव हुआ, जो लोगों में बांगा नाम से प्रसिद्ध है. उस के पुत्र देवीसिंह (देवा) ने मीणों से बूंदी ली, और उसे अपनी राजधानी बनाया. देवीसिंह के वंशज रत्नसिंह के छोटे पुत्र माधवसिंह के वंश में कोटा के चहुवान हैं.

(६) सिरोही के चौहान.

सिरोही के देवड़ा चौहान जालौर के सोनगरा चौहानों के वंशज हैं. ऊपर (नाडोल के चौहानों के वृत्तान्त में) लिखे हुए समरसिंह (नं० १६) के दो पुत्रों में से एक मानसिंह (महणसिंह) था, जिस को आबू के अचलेश्वर के मन्दिर में लगे हुए राउलुंडदेव (लुंभा) के

समय के वि० सं० १३७७ के लेख में उस (समरसिंह) का ज्येष्ठ पुत्र लिखा है. मानसिंह का पुत्र बीजड़ हुआ. ख्यातों में ऐसा लिखा मिलता है, कि बीजड़ का दूसरा नाम देवराज था, जिस से उस के वंशज देवड़े कहलाये. उस (बीजड़) के चार पुत्र लावण्यकर्ण, लुंभ या लुंढदेव (रावलुंभा), लक्ष्मण और लूणवर्मा थे, जिन में ज्येष्ठ पुत्र लावण्यकर्ण का देहान्त होने बाद लुंढदेव ने परमारों से आबू का किला तथा आसपास का मुल्क छीन कर (वि० सं० १३७० से पूर्व) वहां पर अपना राज्य क़ाइम किया. उस के वंशज रावसहसमल्ल (सैंसमल) ने वि० सं० १४८२ में सिरोही बसाकर उस को अपनी राजधानी बनाया.

(७) धौलपुर इलाक़े के चौहान.

धौलपुर (राजपूताना) से चौहान राजा चंडमहासेन के समय का एक शिलालेख वि० संवत् ८९८ वैशाख शुक्ला २ का मिला है, जिस में नीचे लिखे हुए नाम हैं:—

१ ईसुक.
२ महिशराम (नं० १ का पुत्र)—इस की स्त्री कराहुल्ला इस के साथ सती हुई.
३ चंडमहासेन (नं० २ का पुत्र)—इस को चंड भी कहते थे. यह वि० सं० ८९८ (ई० स ८४१) में विद्यमान था.

ये चौहान सांभर के चौहानों की छोटी शाखा में होने चाहियें.

(८) भड़ोंच के चौहान.

कुछ महीने पहिले हम को भड़ोंच (गुजरात में) में राज्य करनेवाले चौहानवंश के राजा भर्तृवर्द्ध (दूसरे) का एक ताम्रपत्र वि० सं० ८१३ का मिला है, जिस में उस के पूर्वजों के नाम नीचे लिखे अनुसार दिये हुए हैं:—

१ महेश्वरदाम (चौहान वंश में हुआ).
२ भीमदाम (नं० १ का पुत्र).

३ भर्तृवर्द्ध (नं० २ का पुत्र).
४ हरदाम (नं० ३ का पुत्र .
५ भ्रभट (नं० ४ का छोटा भाई).
६ भर्तृवर्द्ध दूसरा (नं० ५ का पुत्र)—वि० सं० ८१३ में यह भड़ौंच (गुजरात में) में राज्य करता था, और नागावलोक नामक बड़े राजा के आधीन था. यह नागावलोक वही राजा होना चाहिये, जिस का ज़िक्र सांभर के चौहान राजा गूवक (नं० ९) के संबन्ध में ऊपर किया गया है.

११६—निकुम्प-टॉडसाहिब ने निकुम्प (निकुंभ) वंशियों का चौहान होना माना है, परन्तु निकुंभ (निकुम्प) वंशियों के ताम्रपत्रों में उन का सूर्यवंशी होना लिखा है. निकुंभवंशी सूर्यवंशी राजा इक्ष्वाकु के (तेरहवें) वंशधर निकुंभ से अपनी उत्पत्ति बतलाते हैं. मुहणोतनैणसी ने भी चौहानों की शाखाओं में निकुंभ दर्ज नहीं किया.

११७—सोलंकियों के इतिहास का पता परमार, और चौहानों की अपेक्षा अधिक प्राचीन समय तक लग सकता है. दक्षिण के सोलंकियों के प्रतापी मूलपुरुष जयसिंह का राज्याभिषेक वि० सं० ५६४ (ई० स० ५०७) के आसपास होना स्थिर होता है, और वहां से बराबर शृंखलाबद्ध इतिहास मिलता है (देखो ऐतिहासिक ग्रन्थमाला की जिल्द पहिली). इतने प्राचीन समय से न तो परमारों का शृंखलाबद्ध इतिहास मिलता है, न चौहानों का.

११८—प्राचीनकाल में सोलंकियों का गोत्र मानव्य था. क्षत्रियों का गोत्र वही मानाजाता था, जो उन के पुरोहित का होता था. इसी नियम के अनुसार शायद पुरोहित के पलटे के साथ गोत्र के नाम का परिवर्तन हुआ हो तो आश्चर्य नहीं.

११९—उंचा पहिले सोलंकी ही थे ऐसा मानने के लिये भाटों की ख्यातों के अतिरिक्त अन्य कोई प्रमाण अब तक नहीं मिला, और न सोलंकियों का प्राचीन निवासस्थान लोकोट (लाहोर) था, जैसा कि टॉडसाहिब का अनुमान है. सोलंकियों के लेखादि तथा विक्रमाङ्क-

देवचरित में उन का अयोध्या से दक्षिण में जाना लिखा मिलता है, लाहोर का नाम कहीं नहीं मिलता.

१२०—कल्याण—टॉडसाहिब ने मलबार के समुद्रीतट पर कल्याण नगर को (जो बम्बई से थोड़ेही कोस दूर है) सोलंकियों की राजधानी माना है, यह उन का भ्रम है. सोलंकियों की राजधानी कल्याण निज़ाम के राज्य में है, जिस को इस समय कल्याणी कहते हैं. पहले सोलंकियों की राजधानी बादामी थी. तैलप के वंशज सोमेश्वर (आहवमल्ल) ने कल्याण नगर को अपनी राजधानी बनाया था.

१२१—कल्याण नगर सोलंकी राजा सोमेश्वर (आहवमल्ल) के समय, अर्थात् वि० सं० ११०० और ११२५ (ई० स० १०४३ और १०६८) के बीच सोलंकियों की राजधानी हुई, और चावड़ों से अनहिलवाड़ा (पाटण) का राज्य सोलंकी मूलराज ने वि० सं० १०१७ (ई० स० ९६१) में छीना था, अतएव मूलराज बादामी पर राज्य करनेवाले सोलंकियों का वंशधर होना चाहिये, न कि कल्याण के सोलंकियों का.

१२२—भोजराज—टॉडसाहिब ने चावड़ा वंश के अन्तिम राजा का नाम भोजराज लिखा है, जो किसी पुस्तक में नहीं मिलता. प्रबन्धचिन्तामणि (हस्तलिखित पुस्तक), रत्नमाला, कुमारपालप्रबन्ध, और प्रबन्धपरीक्षा में उस का नाम सामन्तसिंह मिलता है, और सुकृतसंकीर्तन, विचारश्रेणी, तथा बम्बई की छपी हुई प्रबन्धचिन्तामणि में भूयगड, भूभट अथवा भूभड मिलता है. शायद टॉडसाहिब ने भूयगड (भूयड) के स्थान पर भोजराज लिख दिया हो. चावड़ों से सोलंकी मूलराज ने वि० सं० ९८७ (ई० स० ९३१) में राज्य नहीं छीना था, परन्तु वि० सं० १०१७ (ई० स० ९६१) में.

१२३—जयसिंह—चावड़ों से अणहिलवाड़ा का राज्य छीननेवाला सोलंकी मूलराज जयसिंह (का पुत्र नहीं, किन्तु जयसिंह दक्षिण में सोलंकियों का राज्य स्थापन करनेवाले) का वंशज था. मूलराज के ताम्रपत्र में उन के पिता का नाम राजि, प्रबन्धचिन्तामणि में राज,

रत्नमाला में राजकुंवर, और कुमारपालचरित में राजि लिखा मिलता है.

१२४-मूलराज ने ५८ वर्ष नहीं किन्तु ३५ वर्ष के करीब राज्य किया था, क्योंकि उस का राज्याभिषेक वि० सं० १०१७ (ई० स० ९६१) में, और देहान्त वि० सं० ११५२ (ई० स० १०९६) में होना निश्चय होता है.

१२५—चामुंडराय–टॉडसाहिब चामुंडराय (चामुंडराज) के राज्य-समय में सुलतान महमूदग़ज़नवी की अणहिलवाड़े पर चढ़ाई होना लिखते हैं, परन्तु वह चढ़ाई भीमदेव (प्रथम) के समय में, जब कि सुलतान सोमनाथ को जारहा था, ई० स० १०२५ (वि० सं० १०८२) में हुई थी, और चामुंडराज के राज्य की समाप्ति ई० स० १००९ (वि० सं० १०५६) में हो चुकी थी.

१२६—जामुंद—फ़ारसी तवारीख़ों में इस का नाम जामुंड लिखा मिलता है, जो फ़ारसीलिपि का दोष है.

१२७-वेनिस–यूरोप खंड के इटली देश का एक नगर, जो जल के मध्य में छोटे छोटे टापुओं पर बसा हुआ है.

१२८—अल्इद्रसी–अबू अब्दुल्लाह मुहम्मद अल्इद्रसी एक प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता, और ख़ान्दानी पुरुष था. उस का जन्म मोरक्को देश के क्यूटा (Ceuta) नामक नगर में ई० स० की ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त में हुआ था. उस ने सिसिली के बादशाह रोजर (Roger) दूसरे के दर्बार में रहकर 'नुज़्हतुलमुश्ताक़ फ़ीइख़्तिराक़ुलआफ़ाक़' नामक भूगोल की पुस्तक लिखी थी.

१२९ टॉडसाहिब कर्नाटक से लेकर हिमालय की तलहटी तक २२ राज्य एकही समय सोलंकी सिद्धराज जयसिंह की आधीनता में होना लिखते हैं, जो अतिशयोक्ति से ख़ाली नहीं है. सिद्धराज जय-सिंह अवश्य प्रतापी राजा हुआ, लेकिन वस्तुतः उस की आधीनता में गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, और कुछ अंश राजपूताना का था. उस ने मालवा, महोबा आदि देशों पर चढ़ाइयां की थीं, परन्तु वह उन देशों पर अपना आधिपत्य जमा सका हो ऐसा नहीं पाया जाता.

१३०-कुमारपाल का टॉडसाहिब जगह जगह चौहान होना और सोलंकियों के यहां गोद आना लिखते हैं, यह उन का भ्रम है. शायद किसी इतिहास न जाननेवाले ने उन को ऐसा कह दिया हो, जिस को उन्हों ने सत्यमान लिया हो. चित्तौड़ के प्रसिद्ध क़िले पर से ४ वर्ष पहिले हम को सोलंकी कुमारपाल के समय का ही एक बड़ा शिलालेख मिला, जिस में मूलराज से लगा कर कुमारपाल तक अणहिलवाड़ा (पाटण) के सोलंकियों की पूरी वंशावली दी है, उस से स्पष्ट है कि 'दुर्लभराज के उत्तराधिकारी भीमदेव के दो पुत्र कर्ण, और क्षेमराज थे. कर्ण का पुत्र जयसिंह (सिद्धराज) हुआ और क्षेमराज का देवप्रसाद, उस का त्रिभुवनपाल, और त्रिभुवनपाल का पुत्र कुमारपाल था'. ऐसा ही कृष्णर्षीय जयसिंह सूरिरचित कुमारपालचरित आदि से भी पाया जाता है.

१३१—अणहिलवाड़ा के राज्यसमय वास्तव में शिल्प की बड़ी उन्नति हुई. आबू पर शिल्पसंबन्धी उत्तमता के लिये जो दो मन्दिर प्रसिद्ध हैं वे दोनों अणहिलवाड़ा के सोलंकियों के समय में उन्हीं के सेवकों ने बनवाये थे.

१३२-कुमारपाल के शासनकाल के अन्त में नहीं, किन्तु मूलराज दूसरे (बालमूलराज) के राज्य के अन्त, और भीमदेव के राज्य के प्रारंभसमय वि० सं० १२३५ में शहाबुद्दीन ने गुजरात पर चढ़ाई की थी, परन्तु आबू के नीचे की लड़ाई में घायल होने बाद उस को हार कर लौटना पड़ा था.

१३३-कुमारपाल के वंश की समाप्ति बालमूलराज के साथ नहीं हुई, क्योंकि बालमूलराज के पीछे उस का छोटा भाई भीमदेव दूसरा (भोलाभीम) राज्यसिंहासन पर बैठा, और उस ने ६३ वर्ष राज्य किया, जिस के पीछे त्रिभुवनपाल राजा हुआ था, जिस को कितने एक लेखक तो भीमदेव का पुत्र मानते हैं, अतएव कुमारपाल के वंश की समाप्ति त्रिभुवनपाल के साथ हुई होगी. (मेवाड़ के रावल समरसिंह के समय के वि० सं० १३३० के एक शिलालेख में त्रिभुवनपाल

को राणक लिखा है. यदि उक्त लेख का त्रिभुवनपाल गुजरात का राजा त्रिभुवनपाल ही हो तो हम को यही मानना पड़ेगा, कि यह भीमदेव का पुत्र नहीं, किन्तु राणकों अर्थात् बघेलों में से था. उस समय राणक या राणा ख़िताब बहुधा छोटी शाखावाले धारण किया करते थे.).

१३४—बालमूलराज का देहान्त वि० सं० १२८४ (ई० स० १२२८) में नहीं, किन्तु वि० सं० १२३५ (ई० स० ११७९) में, और उस के छोटे भाई भीमदेव (दूसरे) का वि० सं० १२९८ (ई० स० १२४२) में हुआ था.

१३५—सिद्धराज जयसिंह के कोई पुत्रही नहीं हुआ, इसलिये बघेलों का सिद्धराज की संतति होने का दावा स्वीकार नहीं किया जा सकता.

१३६—वीसलदेव-राणक (राणा) वीसलदेव धोलका (गुजरात में) के राणा वीरधवल का पुत्र, लवणप्रसाद का पौत्र, और अर्णोराज का प्रपौत्र था. यह भीमदेव दूसरे के पीछे अणहिलवाड़ा के राज्य की अव्यवस्था के समय वहां का राजा हुआ था.

१३७—डेल्फ़ास-यूनान देश के प्राचीन काल के डेल्फ़ी नगर का प्रसिद्ध देवता (सूर्य).

१३८—शत्रुंजय—काठियावाड़ में पालीताणा के पास का प्रसिद्ध जैनधर्मस्थान.

१३९—मुज़फ़्फ़र के पीछे उस का पुत्र नहीं, किन्तु उस का पौत्र अहमदशाह राज्य का मालिक हुआ था, जो मुज़फ़्फ़र के पुत्र तातारख़ाँ का बेटा था.

१४०—सिद्धराय (सिद्धराज जयसिंह) के तो कोई पुत्र ही नहीं था, अतएव बघेलों को सिद्धराज के पुत्र वाघदेव की सन्तान मान नहीं सकते. कोई बघेलों का वाघराव से और कोई व्याघ्रदेव से उत्पन्न होना मानते हैं, और गुजरात की प्राचीन ऐतिहासिक पुस्तकों से पाया जाता है कि धौली के पुत्र सोलंकी अर्णोराज (आनाक) से बघेल-वंश चला है. अर्णोराज ने कुमारपाल की अच्छी सेवा की थी, जिस

के बदले में उस (कुमारपाल) ने उस को व्याघ्रपल्ली, अर्थात् बघेल नामक गांव दिया था, जो अणहिलवाड़े से १० मील पर था. उक्त गांव में रहने के कारण अर्णोराज तथा उस के वंशज बघेल कहलाये. भाटों की ख्यातों में कहीं कहीं व्याघ्रदेव को कुमारपाल का छोटा भाई भी लिखा है.

१४१—यह शेख रूपनगर (मेवाड़ में) के ठाकुर के यहां पूजन में रक्खा हुआ है.

१४२—सोलंकीवंश—इस समय सोलंकी अपने को अग्निवंशी बतलाते हैं, और वशिष्ठऋषिद्वारा अपने मूलपुरुष चौलुक्य या चालुक्य का अग्निकुण्ड से आबू पर्वत पर उत्पन्न होना मानते हैं, परन्तु उन्हीं के पूर्वजों के अनेक प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र, और ऐतिहासिक पुस्तकों में कहीं उन का अग्निवंशी होना नहीं लिखा, किन्तु बहुधा चंद्रवंशी, और कहीं कहीं ब्रह्मा के चुलुक से उत्पन्न होना लिखा मिलता है (देखो ऐतिहासिक ग्रन्थमाला की जिल्द पहिली पृष्ठ ३१२). सोलंकियों के लेखादि से उन का राज्य पहिले अयोध्या में होना, फिर वहां से उन का दक्षिण में जाना, और दक्षिण से गुजरात आदि में फैलना पाया जाता है. दक्षिण के सोलंकियों का जयसिंह से शृंखलाबद्ध इतिहास मिलता है. दक्षिण में उन की पहिली राजधानी वादामी थी.

(१) दक्षिण के सोलंकी.

१ जयसिंह—इस ने राठोड़ तथा अन्यवंश के राजाओं का राज्य छीन दक्षिण में अपना राज्य क़ायम किया. इस के राज्य का प्रारंभ वि० सं० ५६४ (ई० स० ५०७) के आस पास होना अनुमान किया जाता है.

२ रणराग (नं० १ का पुत्र).

३ पुलकेशी (नं० २ का पुत्र)—इस ने वातापी (वादामी—बम्बई इहाते के बीजापुर ज़िले में) नगर को अपनी राजधानी बनाया, और

अश्वमेध आदि कई यज्ञ किये. यह राजा विद्वान था. इस का देहान्त वि० सं० ६२४ (ई० स० ५६७) में हुआ था. इस के दो पुत्र कीर्त्तिवर्मा, और मंगलीश हुए.

४ कीर्त्तिवर्मा (नं० ३ का पुत्र)—इस ने नल, मौर्य (मोरी) और कदंब वंशियों को जीता था. इस का देहान्त वि० सं० ६४८ (ई० सन् ५९१) में हुआ. इस के चार पुत्र पुलकेशी, विष्णुवर्द्धन, जयसिंह, और बुद्धवरस थे, जो इस (कीर्त्तिवर्मा) के देहान्त समय बालक थे, इसलिये कीर्त्तिवर्मा का छोटा भाई मंगलीश राज्य का मालिक बन बैठा.

५ मंगलीश (नं० ४ का छोटा भाई)—इस ने लाट देश पर राज्य करनेवाले कलचुरी (हैहय) वंशी बुद्धराज को, जो शंकरगण का पुत्र था, परास्त कर लाट देश तक अपने राज्य की उत्तरी सीमा बढ़ाई. इस ने अपने पीछे अपने पुत्र को राज्य देने का विचार किया, जिस से राज्य में उपद्रव खड़ा होकर वि० सं० ६६७ (ई० स० ६१०) में यह (मंगलीश) मारा गया, और इस के बड़े भाई कीर्त्तिवर्मा का ज्येष्ठ पुत्र पुलकेशी बादामी के राज्यसिंहासन पर बैठा.

६ पुलकेशी दूसरा (नं० ४ का पुत्र)–दक्षिण के सोलंकियों में यह बड़ा ही प्रतापी राजा हुआ. इस ने दक्षिणी गुजरात से लगाकर रामेश्वर तक का क़रीब क़रीब सारा मुल्क विजय किया. इस के समय में नर्मदा से लगाकर हिमालय तक के सारे प्रदेश का स्वामी क़न्नौज का बैसवंशी राजा श्रीहर्ष (हर्षवर्द्धन) था, जिस ने दक्षिण को भी विजय करना चाहा था, परन्तु नर्मदा के निकट पुलकेशी से हारकर उस को लौटना पड़ा. ईरान के बादशाह खुसरो (दूसरे) ने अपने राज्यवर्ष ३६ वें अर्थात् ई० स० ६२६ (वि० सं० ६८३) में पुलकेशी से मैत्री बढ़ाने की इच्छा से अपने एलची को पत्र और भेट की वस्तुएं देकर पुलकेशी के पास भेजा था, और पुलकेशी का एल्ची खुसरो के पास पत्र और भेट का सामान

लेकर गया था. यह (पुलकेशी) कई लड़ाइयां लड़ा था. इस के देहान्त के समय पल्लववंशी राजा नरसिंह वर्मा ने चोल, पांड्य, केरल आदि देशों के राजाओं को अपने पक्ष में मिला कर पुलकेशी पर चढ़ाई की थी. पुलकेशी ने अपने छोटे भाई विष्णुवर्द्धन को अपने राज्य का पूर्वी हिस्सा, अर्थात् वेंगीदेश (दक्षिणी कृष्णा, और गोदावरी के बीच का पूर्वी समुद्र तट पर का प्रदेश) जागीर में दिया था. इस (पुलकेशी) के चार पुत्र चन्द्रादित्य, आदित्यवर्मा, विक्रमादित्य, और जयसिंह थे.

७ विक्रमादित्य (नं० ६ का पुत्र)-इस ने शत्रुओं को परास्त कर अपने राज्य को निष्कंटक किया, और चोल, पांड्य, तथा केरल के राजाओं को जीतकर यह तीन समुद्रों के बीच के सारे दक्षिण का स्वामी बना. इस ने अपने भाई जयसिंह वर्मा को लाटदेश जागीर में दिया, तब से गुजरात में सोलंकियों का राज्य क़ायम हुआ. वि० सं० ७३७ (ई० स० ६८०) में इस (विक्रमादित्य) का देहान्त हुआ.

८ विनयादित्य (नं० ७ का पुत्र)-यह बचपन से ही युद्धविद्या में निपुण हो गया था. इस ने केरल, मालवा, चोल, पाण्ड्य आदि देशों के राजाओं तथा हैहयवंशियों को ताबे किया था. वि० सं० ७५३ (ई० स० ६९६) में इस का देहान्त हुआ.

९ विजयादित्य (नं० ८ का पुत्र)-वि० सं० ७९० (ई० स० ७३३) में इस का देहान्त हुआ.

१० विक्रमादित्य दूसरा (नं० ९ का पुत्र)-इस ने पल्लववंशी राजा नंदिपोत वर्मा को परास्त कर उस के राज्यचिन्ह छीन लिये थे. वि० संवत् ८०४ (ई० स० ७४७) में इस का देहान्त हुआ.

११ कीर्त्तिवर्मा दूसरा (नं० १० का पुत्र)-राठौड़वंश के राजा दन्तिदुर्ग ने वि० सं० ८१० से कुछ पहिले इस के राज्य का उत्तरी हिस्सा छीन लिया, और दन्तिदुर्ग के उत्तराधिकारी कृष्णराज ने इस के राज्य का बाक़ी हिस्सा भी छीन लिया, जिस से इस के वंशज

वर्तमान माइसोर राज्य के चल्लकेरे वगैरा कुछ जिलों के स्वामी रह गये थे.

१२ कीर्तिवर्मा तीसरा (नं० १० का भतीजा).

१३ तैल (नं० १२ का पुत्र).

१४ विक्रमादित्य तीसरा (नं० १३ का पुत्र).

१५ भीम (नं० १४ का पुत्र).

१६ अय्यन (नं० १५ का पुत्र).

१७ विक्रमादित्य चौथा (नं० १६ का पुत्र)—इस ने चेदी देश के हैहय (कलचुरी) राजा लक्ष्मणराज की पुत्री बोंथादेवी से विवाह किया जिस से तैल (दूसरा) उत्पन्न हुआ.

१८ तैल दूसरा (नं० १७ का पुत्र)—इस को तैलप भी कहते थे. इस ने वि० सं० १०३० (ई० स० ९७३) में राठौड़ राजा कर्कराज दूसरे को मार कर अपने पूर्वजों का सारा राज्य छीनकर अपने आधीन किया, मालवा के परमार राजा मुंज को कैद कर के मारा, और चोल तथा चेदी देश के राजाओं को विजय किया था. इस के दो पुत्र, सत्याश्रय, और दशवर्मा थे. इस (तैल) का देहान्त वि० सं० १०५४ (ई० स० ९९७) में हुआ.

१९ सत्याश्रय (नं० १८ का पुत्र)—यह चोलदेश के राजा राजकेशरीवर्मा (मुम्मुडि चोल) से लड़ा था. इस (सत्याश्रय) ने वि० सं० १०५४ से १०६५ (ई० स० ९९७ से १००९) तक राज्य किया.

२० विक्रमादित्य पांचवां (नं० १९ के छोटे भाई दशवर्मा का पुत्र).

२१ जयसिंह दूसरा (नं० २० का छोटा भाई)—इस का प्रसिद्ध खिताब जगदेकमल्ल था. वि० सं० ११०० (ई० स० १०४३) में यह मालवा के परमार राजा भोज के साथ की लड़ाई में मारा गया हो ऐसा अनुमान होता है.

२२ सोमेश्वर (नं० २१ का पुत्र)-इस को आहवमल्ल भी कहते थे. यह प्रतापी और पराक्रमी राजा था. यह चोल देश के राजाओं से कई

लड़ाइयां लड़ा, और चोल देश का एक राजा (राजेन्द्रदेव) इस के हाथ से युद्ध में मारा गया था. इस ने अपने पिता का बदला लेने की इच्छा से परमार राजा भोज पर चढ़ाई कर उस को धारा नगरी से भगाया, और डाहल (चेदी) देश के राजा कर्ण (कलचुरीवंशी) को हराया था. इस ने कल्याण नगर (कल्याणी=निज़ाम के राज्य में) को अपनी राजधानी बनाया. वि० सं० ११२५ अमान्त चैत्र कृष्णा (पूर्णिमान्त वैशाख कृष्ण) ८ रविवार के दिन इस ने तुंगभद्रा नदी में जलसमाधी ली (डूब मरा). इस के चार पुत्र सोमेश्वर, विक्रमादित्य, जयसिंह, और विष्णुवर्द्धन (विजयादित्य) थे.

२३ सोमेश्वर दूसरा (नं० २२ का पुत्र)–वि०सं०-११३३ (ई०स० १०७६) में इस का छोटा भाई विक्रमादित्य इस को कैद कर के आप राज्य का मालिक बना.

२४ विक्रमादित्य छठा (नं० २३ का छोटा भाई)–इस ने अपने राज्याभिषेक से अपने नाम का संवत् चलाया, जो चालुक्य विक्रम संवत् कहलाया, और करीब १०० वर्ष तक चलने के बाद अस्त हो गया. यह बड़ा प्रतापी राजा हुआ. प्रसिद्ध कश्मीरी पंडित बिल्हण कवि, तथा याज्ञवल्क्य स्मृति पर मिताक्षरा नामक टीका बनानेवाला विज्ञानेश्वर पंडित, दोनों इसी के आश्रित थे. वि० सं० ११८३ (ई० स० ११२६) में करीब १०० वर्ष की अवस्था में इस का देहान्त हुआ. इस के दो पुत्र सोमेश्वर और जयकर्ण थे.

२५ सोमेश्वर तीसरा (नं० २४ का पुत्र)–यह विद्वान राजा था. इस ने वि० सं० ११८६ (ई० स० ११२९) में 'मानसोल्लास' नामक संस्कृत का एक बड़ा ग्रन्थ रचा, जिस को अभिलषितार्थ चिन्तामणि भी कहते हैं. वि० सं० ११९५ (ई० स० ११३८) में इस का देहान्त हुआ.

२६ जगदेकमल्ल (नं० २५ का पुत्र)–वि० सं० १२०६ (ई० स० ११५०) में इस का देहान्त हुआ.

२७ तैल तीसरा (नं० २६ का छोटा भाई)—इस के सामन्त कलचुरी वंशी विज्जल ने दूसरे सामन्तों से मिलावट कर वि० सं० १२१४, और १२१९ (ई० स० ११५७ और ११६२) के बीच इस का राज्य छीन लिया, जिस से यह कल्याण छोड़ वनवासी नामक प्रदेश में जा रहा, जहां पर वि० संवत् १२१९ (ई० स० ११६२) में इस का देहान्त हो गया.

२८ सोमेश्वर चौथा (नं० २७ का पुत्र)—कलचुरी वंशी विज्जल, जो तैल (तीसरे) से राज्य छीन कर कल्याणी की गद्दी पर बैठ गया था वि० सं० १२२५ (ई० स० ११६८) के करीब मारा गया, और उस के राज्य में उपद्रव मचा ऐसे में सोमेश्वर ने अपने सेनापति ब्रह्म की वीरता से कल्याण पर फिर अपना अधिकार कर लिया, परन्तु वि० सं० १२४६ (ई० स० ११८९) के करीब इस के राज्य का उत्तरी और पूर्वी हिस्सा देवगिरि के यादव राजा भिल्लम ने छीन लिया, और उसी समय के आस पास द्वारसमुद्र के होयसळ (यादव) राजा वीरबल्लाळ ने इस के राज्य का दक्षिणी हिस्सा छीन लिया. इस प्रकार यादवों ने, जो पहिले सोलंकियों के ही सामन्त थे, सोलंकियों का राज्य छीन लिया.

(२) वेंगी देश के सोलंकी.

१ विष्णुवर्द्धन (ऊपर लिखे हुए दक्षिण के सोलंकी राजा पुलकेशी दूसरे का छोटा भाई)—इस को कुब्ज विष्णुवर्द्धन भी कहते थे. पुलकेशी ने प्रथम इस को सितारा ज़िले में (बंबई इहाते में) जागीर दी थी, परन्तु पीछे से अपने राज्य का पूर्वी हिस्सा, अर्थात् नया जीता हुआ वेंगी देश दे दिया. इस ने वि० सं० ६७२ से ६९० (ई० सन् ६१५ से ६३३) तक १८ वर्ष शासन किया. इस के दो पुत्र जयसिंह, और इन्द्र भट्टारक थे.

२ जयसिंह (नं० १ का पुत्र)—इस ने वि० स० ६९० से ७१९ (ई० स० ६३३ से ६६३) तक राज्य किया.

३ इन्द्रभट्टारक (नं० २ का छोटा भाई)—इस ने केवल ७ दिन राज्य किया.

४ विष्णुवर्द्धन दूसरा (नं० ३ का पुत्र)—इस का राज्याभिषेक वि० संवत् ७१९ (ई० स० ६६३ (में, और देहान्त वि० सं० ७२९ (ई० सन् ६७२) में हुआ.

५ मंगियुवराज (नं ४ का पुत्र)—इस को सर्वलोकाश्रय भी कहते थे. यह विद्वान राजा था. इस ने वि० सं० ७५४ (ई० स० ६९७) तक राज्य किया. इस के तीन पुत्र जयसिंह, विष्णुवर्द्धन, और कोकिली थे.

६ जयसिंह दूसरा (नं० ५ का पुत्र)—इस ने वि० सं० ७५४ से ७६७ (ई० स० ६९७ से ७१०) तक वेंगीदेश का शासन किया.

७ कोकिली (नं० ६ का सब से छोटा भाई)—इस ने छः मास तक राज्य किया.

८ विष्णुवर्द्धन तीसरा (नं० ७ का बड़ा भाई)—यह अपने छोटे भाई कोकिली से राज्य छीन कर वि०सं० ७६७ (ई० स० ७१०) में वेंगी का राजा हुआ, और वि० सं० ८०४ (ई० स० ७४७) तक इस ने राज्य किया.

९ विजयादित्य (नं ८ का पुत्र)—इस ने वि० सं० ८२२ (ई० स० ७६५) तक शासन किया.

१० विष्णुवर्द्धन चौथा (नं० ९ का पुत्र)—इस को विष्णुराज भी कहते थे. इस ने वि० सं० ८२२ से ८५८ (ई० स० ७६५ से ८०१) तक ३६ वर्ष राज्य किया.

११ विजयादित्य दूसरा (नं०१० का पुत्र)—बादामी के सोलंकी राजा कीर्त्तिवर्मा का राज्य राठौड़ दन्तिदुर्ग ने छीना, उस समय विजयादित्य (दूसरे) ने स्वतंत्रता इख्तियार कर 'महाराजाधिराज', 'परमेश्वर', 'भट्टारक' आदि खिताब धारण किये. राठौड़ों ने वेंगीदेश भी छीनना चाहा, परन्तु विजयादित्य उन से बराबर लड़ता ही रहा. वि० सं० ८९८ (ई० स० ८४१) में इस का देहान्त हो गया.

१२ विष्णुवर्द्धन पांचवां (नं० ११ का पुत्र)—इस ने केवल डेढ़ वर्ष राज्य किया. इस के तीन पुत्र विजयादित्य, विक्रमादित्य, और युद्धमल्ल थे.

१३ विजयादित्य तीसरा (नं० १२ का पुत्र)—यह गणितविद्या में कुशल था, और कई लड़ाइयां लड़ा था. इस ने गंगावंशियों को विजय किया, युद्ध में मंगि का मस्तक काटा, और कृष्ण तथा संकिल को भयभीत कर उन के नगर (चक्रकोट तथा किरणपुर) जला दिये. इस ने वि० सं० ९०० से ९४४ (ई० स० ८४३ से ८८७) तक वेंगीदेश का शासन किया था.

१४ भीम (नं० १३ के छोटे भाई का पुत्र)-विजयादित्य के देहान्त के पीछे राठौड़ों ने वेंगीदेश पर आक्रमण किया, परन्तु भीम अपने बाहुबल से उन को परास्त कर वहां का राजा हुआ. इस ने वि० सं० ९७४ (ई० स० ९१७) तक राज्य किया. इस के दो पुत्र विजयादित्य और विक्रमादित्य थे.

१५ विजयादित्य चौथा (नं० १४ का पुत्र)—इस ने त्रिकलिंग (तिलंगाना), और वेंगीदेश पर ६ मास तक शासन किया. इस के दो पुत्र अम्म, और भीम थे.

१६ अम्म (नं० १५ का पुत्र)-इस के राज्याभिषेक के समय फिर वेंगीदेश पर राठौड़ों की चढ़ाई हुई, और अम्म के कई कुटुम्बी भी उन (राठौड़ों) से मिल गये, परन्तु उन को सफलता प्राप्त न हुई. इस के समय से वेंगीदेश की राजधानी राजमहेन्द्री हुई, जो शायद् उसी की बसाई हुई हो. इस ने वि० सं० ९७५ से ९८५ (ई० सन् ९१८ से ९२८) तक ७ वर्ष राज्य किया. इस के दो पुत्र विजयादित्य, और भीम थे.

१७ विजयादित्य पांचवां (नं०. १६ का पुत्र)—इस को बेत भी कहते थे. यह अपने राज्याभिषेक के समय बालक था, जिस से १५ दिन बाद उपर्युक्त विजयादित्य तीसरे (नं० १३) के सब से छोटे भाई युद्धमल्ल के पुत्र ताढप ने इस का राज्य छीन लिया.

१८ ताड़प (नं० १३ के छोटे भाई युद्धमल्ल का पुत्र)-यह राज्य का हक़दार न था, जिस से राज्य में उपद्रव मचा, और एक महीने बाद भीम (नं० १४) के दूसरे पुत्र विक्रमादित्य ने उस से राज्य छीन लिया.

१९ विक्रमादित्य (नं० १५ का छोटा भाई)-इस ने ११ महीने तक राज्य किया, जिस के बाद अम्म के दूसरे पुत्र भीम ने इस से राज्य छीन लिया.

२० भीम दूसरा (नं० १७ का छोटा भाई)— आठ महीने बाद इस को मार कर ताड़प का पुत्र युद्धमल्ल राज्यसिंहासन पर बैठा.

२१ युद्धमल्ल (नं० १८ का पुत्र)—वि० सं० ९९० (ई० सन् ९३३) में भीम ने इस को विजय कर राज्य छीन लिया.

२२ भीम तीसरा (नं० १६ का छोटा भाई)—अम्म (प्रथम) के देहान्त के समय से वेंगी के सोलंकियों में जो आपस का बखेड़ा खड़ा हुआ था उस का अंत इस (भीम) ने किया, जिस के लिये इस को कई लड़ाइयां लड़नी पड़ीं. इस ने वि० सं० ९९० से १००२ (ई० स० ९३३ से ९४५) तक १२ वर्ष राज्य किया. इस के तीन पुत्र दानार्णव, अम्म और काम थे.

२३ अम्म दूसरा (नं० २२ का दूसरा पुत्र)—भीम (तीसरे) के देहान्त समय युद्धमल्ल (नं० २१) ने फिर राज्य पाने का यत्न किया, परन्तु उस को हराकर अम्म (दूसरा) वेंगी देश का राजा हुआ. इस का राज्याभिषेक १२ वर्ष की अवस्था में वि० सं० १००२ अमान्त मार्गशीर्ष कृष्ण (पूर्णिमान्त पौष कृष्ण) १३ को हुआ, और इसने वि० सं० १०२७ (ई० स० ९७०) तक २५ वर्ष शासन किया.

२४ दानार्णव (नं० २३ का बड़ा भाई)—इस ने तीन वर्ष राज्य किया जिस के बाद वहां पर फिर आपस की लड़ाई आरंभ हुई, और २७ वर्ष के क़रीब तक कोई राजा नहीं होने पाया. इस बखेड़े के समय दानार्णव जीवित हो ऐसा अनुमान होता है. दानार्णव के दो पुत्र शक्तिवर्मा, और विमलादित्य थे.

२५ शक्तिवर्मा (नं० २४ का पुत्र)—वि० सं० १०५६ (ई० स० ९९९) में अपनी शक्ति से शत्रुओं को दवाकर यह राजा बना, और इस ने १२ वर्ष तक राज्य किया. इस के सुवर्ण के सिक्के मिले हैं.

२६ विमलादित्य (नं० २५ का छोटा भाई)—इस का राज्याभिषेक वि० सं० १०६८ (ई० स० १०११) ज्येष्ठ शुक्ला ६ को हुआ, और इस ने ११ वर्ष से कुछ अधिक समय तक राज्य किया. इस के दो पुत्र राजराज, और विजयादित्य थे.

२७ राजराज (नं० २६ का पुत्र)—इस का विवाह अपने मामा चोल देश के सूर्य्यवंशी राजा राजेन्द्रचोड़ के पुत्री अम्मंगदेवी से हुआ था. इस ने महाभारत का अनुवाद तेलुगु भाषा में (जो उस के राज्य की प्रचलित भाषा थी) करवाया था. इस के सुवर्ण के तथा तांबे के सिक्के मिले हैं. इस का देहान्त वि० सं० ११२० (ई० स० १०६३) में हुआ.

२८ राजेन्द्रचोड़ (नं० २७ का पुत्र)—वेंगी देश के सोलंकियों में यह सब से अधिक प्रतापी हुआ. यह वेंगी का राज्य पाने बाद चोल देश का राज्य छीनने के प्रपञ्च में लगा, और अपने मामा वीर राजेन्द्र के पुत्र अधिराजेन्द्र के मारे जाने पर वि० सं० ११२७। (ई० स० १०७०) में चोलदेश के राज्यसिंहासन पर बैठ गया, और अपना नाम कुलोत्तुंग चोडदेव रक्खा. (अधिराजेन्द्र कल्याण के सोलंकी राजा विक्रमादित्य छठे का साला था, और उसी की सहायता से राज्यसिंहासन पर बैठा था). उस (अधिराजेन्द्र) के मारे जाने की खबर सुन विक्रमादित्य राजेन्द्र चोड़ पर चढ़ आया, परन्तु अन्त में उस को लौटनाही पड़ा, और चोल देश का महाराज्य राजेन्द्र चोल के अधिकार में रहा. उस समय से इस ने चोल देश में रहना इख्तियार किया; और वेंगी देश तथा उस के आधीन के इलाके महान् चोल राज्य का उत्तरी विभाग गिने जाने लगे. इस ने चोल देश की राजगद्दी पर बैठने के दिनसे ही अपना राज्यवर्ष लिखना आरंभ किया, और केरल, पांड्य तथा

कुंतल तक के देशों पर चढ़ाइयां कर विजय प्राप्त की. कलिंगत्तुपरणी नामक तामिल काव्य में इस के कालिंग (उड़ीसा) देश विजय करने का वर्णन विस्तार से लिखा है. इस की राजधानी गंगपुरी (गांग कुंडपुर) थी, जो इस के नाना राजेन्द्र चोड़ ने बसाई थी. इस के सुवर्ण के सिक्के मिले हैं. इस ने ४६ वर्ष तक चोल देश पर राज्य किया. इस के ७ पुत्र थे, जिन म से चोडगंग मुम्मडचोड, वीरचोड, विक्रमचोड, और विमलादित्य के नाम मालूम हुए हैं.

२६ विक्रमचोड (नं० २८ का चौथा पुत्र)—इस ने वि० संवत् ११७५ से ११६२ (ई० स० १११८ से ११३५) तक राज्य किया.

३० कुलोत्तुंग चोड दूसरा (नं० २६ का पुत्र)—इस ने ग्यारह वर्ष के करीब राज्य किया.

३१ राजराज दूसरा (नं० ३० का पुत्र)—इस के राज्य के १६ वें वर्ष तक के लेख मिलते हैं.

यहां तक की वंशावली शृंखलाबद्ध मिलती है, जिस के पीछे ४ राजाओं का और भी राज्य करना पाया जाता है उन के नाम नीचे लिखे जाते हैं :—

३२ राजाधिराज (नं० ३१ का उत्तराधिकारी)—इस के राज्य का प्रारम्भ वि० सं० १२२६ (ई० सं० ११७२) के आसपास हुआ हो ऐसा प्रतीत होता है.

३३ कुलोत्तुंगचोड तीसरा (नं० ३२ का क्रमानुयायी)—इस ने वि० सं० १२३५ (ई० स० ११७८) से राज्य करना शुरू किया था.

३४ राजराज तीसरा (नं ३३ का उत्तराधिकारी)—इस के राज्य का प्रारंभ वि० सं० १२७३ (ई० स० १२१६) से हुआ.

३५ राजेन्द्रचोड, तीसरा (नं० ३४ का क्रमानुयायी)—इस ने वि० सं० १३०३ (ई० स० १२४६) से राज्य करना शुरू किया. वि० संवत् १३२४ (ई० स० १२६७) के बाद पांड्य देश के राजा जटावर्म सुन्दर पांड्य (प्रथम) ने इस का राज्य छीन लिया.

(३) लाटदेश के सोलंकी.

दक्षिण में सोलंकियों का प्रबल राज्य स्थिर होने के बाद उन्हों ने अपने वंशजों को लाटदेश में भी समय समय पर जागीर दी हो ऐसा लाट देश से मिले हुए सोलंकियों के ताम्रपत्रों से पाया जाता है. खेड़ा (बंबई इहाते के खेड़ा जिले में) से एक ताम्रपत्र सोलंकी विजयराज का मिला है, जो कलचुरी (हैहय) संवत् ३६४ (वि० सं० ७०० = ई० स० ६४३) का है. उस में नीचे लिखे अनुसार वंशावली दी है:—

१ जयसिंह.

२ बुद्धवर्मा (नं० १ का पुत्र)—इस के विरुद 'वल्लभ' और 'रण-विक्रान्त' मिलते हैं.

३ विजयराज (नं०२ का पुत्र).

जयसिंह बादामी के सोलंकियों से सम्बन्ध रखता हो. (बादामी के सोलंकियों के सविस्तर वृत्तान्त के लिये देखो 'ऐतिहासिक ग्रंथ-माला' जिल्द पहिली पृष्ठ १४—६८).

बादामी के प्रसिद्ध सोलंकी राजा पुलकेशी दूसरे के चौथे पुत्र जयसिंह वर्मा को, जिसे धराश्रय भी कहते थे, लाटदेश जागीर में मिला था. उस के पुत्रों का कुछ वृत्तान्त उन के ताम्रपत्रों से मिलता है.

१ जयसिंह वर्मा (बादामी के राजा पुलकेशी दूसरे का पुत्र)—इस के तीन पुत्र शीलादित्य, मंगलराज, और पुलकेशी थे. 'जयसिंह वर्मा का वि० सं० ७२७ से ७४६ तक विद्यमान होना तो निश्चित है. उस के पीछे भी यह जीवित रहा हो तो आश्चर्य नहीं. इस के पुत्र शीलादित्य के दो ताम्रपत्र मिले हैं, जिन में उस को युवराज लिखा है, अतएव ताम्रपत्र उस के पिता के राजत्वकाल के होने चाहियें. उस ने अपने पिता के पीछे राज्य किया हो ऐसा नहीं पाया जाता.

२ मंगलराज (नं० १ का दूसरा पुत्र)—इस के खिताब 'विनयादित्य' 'युद्धमल्ल' और 'जयाश्रय' मिलते हैं. इस का एक दानपत्र शक संवत् ६५३ (वि० सं० ७८८ = ई० स० ७३१) का मिला है.

३ पुलकेशी (नं० २ का छोटा भाई)—इस ने 'अवनिजनाश्रय' ख़िताब धारण किया था. इस के समय में सिन्ध की तरफ़ से गुजरात आदि देशों पर मुसल्मानों की चढ़ाई हुई, और कई राज्य नष्ट करने के बाद मुसल्मानी सेना ने दक्षिण में जाते हुए नवसारी (गुजरात में) पर आक्रमण किया, उस समय इस ने घोर संग्राम कर मुसल्मानों को विजय किया, जिस पर राजा वल्लभ (बादामी का सोलंकी राजा विजयादित्य या विक्रमादित्य दूसरा होगा) ने इस को 'दक्षिणापथ-साधार' (दक्षिण का स्तंभ), चलुक्किकुलालंकार' (सोलंकी वंश का भूषण), 'पृथ्वीवल्लभ' और 'अनिवर्त्तकनिवर्त्तयतृ' (नहीं हारनेवालों को हरानेवाला), ये चार ख़िताब प्रदान किये. इस का एक ताम्रपत्र कलचुरी (हैहय) संवत् ४९० (वि० सं० ७९६ = ई० स० ७३९) का मिला है. इस पुलकेशी के अन्तिम समय अथवा इस के देहान्त के बाद राठौड़ दन्तिदुर्ग ने दक्षिण (बादामी) के सोलंकियों का महाराज्य छीन लिया, और लाट देश पर भी राठौड़ों का अधिकार हो जाने से सोलंकियों का अधिकार वहां से उठ गया.

सोलंकी तैलप ने राठौड़ राजा कर्कराज दूसरे (कक्कल) से अपने पूर्वजों का दक्षिण का राज्य लौटा लिया, जिस के पीछे लाटदेश पर सोलंकियों का फिर से अधिकार हो गया था. लाटदेश की इस सोलंकी शाखा का कुछ कुछ वृत्तान्त वहां से मिले हुए ताम्रपत्रों तथा प्रबन्धचिन्तामणि आदि पुस्तकों से प्राप्त होता है:—

१ निंबार्क.

२ बारप (नं० १ का पुत्र)—इस को लाट देश का राज्य प्राप्त हुआ. प्रबन्धचिन्तामणिकार लिखता है, कि यह तैलप (सोलंकी) का सेनापति था, और अनहिलवाड़ा के सोलंकी मूलराज से पराजित हुआ था.

३—गोंगिराज (नं० २ का पुत्र)—इस की पुत्री नायलदेवी का विवाह देवगिरि के यादव राजा वेसुक (वेसुगि) से हुआ था.

४ कीर्तिराज (नं० ३ का पुत्र)-इस का एक दानपत्र शक सं० ६४० (वि० सं० १०७५=ई० स० १०१८) का मिला है.

५ वत्सराज (नं० ४ का पुत्र).

६ त्रिलोचनपाल (नं० ५ का पुत्र)—वि० सं० ११०७ में यह विद्यमान था. इस के पीछे लाट के सोलंकियों का राज्य अनहिलवाड़ा के सोलंकियों ने छीन लिया हो ऐसा पाया जाता है.

(४) सोरठ (दक्षिण काठियावाड़) के सोलंकी.

जूनागढ़ (काठियावाड़ में) ऊना नामक गांव से दो ताम्रपत्र मिले हैं, जिन में सोरठ के सोलंकियों की वंशावली इस तरह पर मिलती है:-

१ कल्ल-इस का छोटा भाई महल्ल था.

२ राजेन्द्र (नं० १ का पुत्र).

३ बाहुक धवल (नं० २ का पुत्र)-इस ने धर्म (शायद बंगाल का धर्मपाल हो) नामक राजा को परास्त किया, और कर्णाटक के सैन्य को हराया था.

४ अवनिवर्मा (नं० ३ का पुत्र).

५ बलवर्मा (नं ४ का पुत्र) इस ने हूणों पर विजय प्राप्त की थी. इस का एक ताम्रपत्र वल्लभी संवत् ५७४ (वि० सं० ६५०=ई० स० ८६३) माघ शुदी ६ का मिला है. इस ने अपने बाहुबल से नक्षिसपुर का इलाक़ा (सोरठ में) प्राप्त किया था, जिस में ८४ गांव थे, और वह कन्नौज के पडिहार राजा भोजदेव के पुत्र महेन्द्रायुधदेव (महेन्द्रपाल) का सामन्त था.

६ अवनिवर्मा दूसरा (नं० ५ का पुत्र)-यह भी कन्नौज के पड़िहार राजा महेन्द्रपाल का सामन्त था. इस का एक ताम्रपत्र वि० सं० ६५६ (ई० स० ९००) माघ शुदि ६ का मिला है. इस ने चाप (चावडा) वंशी धरणी वराह को परास्त किया था.

(५) अनहिलवाड़ा के सोलंकी.

गुजरात की राजधानी अनहिलवाड़ा में, जिस को अणहिलपुर,

अणहिलपाटन या पाटण भी कहते हैं (मुसल्मान लेखक इस को बहुधा नेहरवाला लिखते हैं), चावड़ों का राज्य था. उक्त वंश के अन्तिम राजा सामन्तसिंह से सोलंकी मूलराज ने वि० सं० १०१७ (ई० स० ९६१) में गुजरात का राज्य छीन लिया.

१ राजि.

२ मूलराज (नं० १ का पुत्र)–इस ने वि० सं० १०१७ (कार्तिकादि) से १०५२ (ई० स० ९६१ से ९९६) तक राज्य किया. सांभर के चौहान राजा विग्रहराज दूसरे ने इस पर चढ़ाई की; उसी समय कल्याण के सोलंकी राजा तैलप का सेनापति बारप भी, जिस को उस (तैलप) ने लाट देश जागीर में दिया था, इस पर चढ़ आया. इस से यह (मूलराज) अपनी राजधानी छोड़ कर कंथकोट के किले में चला गया, जो कच्छ देश में है. विग्रहराज इस का मुल्क लूटने के बाद लौट गया, और बारप इस के साथ की लड़ाई में मारा गया. सोरठ (दक्षिणी काठियावाड़) के चूडासमा (यादव) राजा ग्रहरिपु पर इस ने चढ़ाई की, उस समय उस (ग्रहरिपु) का मित्र कच्छ का जाडेजा (यादव) राजा लाखा फूलाणी उस की सहायता के लिये आया. इस लड़ाई में मूलराज ने ग्रहरिपु को क़ैद किया, और लाखा फूलाणी मारा गया. इस ने सिद्धपुर में मासिद्ध 'रुद्रमहालय' नामक शिवालय बनवाया. और कई ब्राह्मणों को दूर दूर से बुलाकर कितने ही गांव दान में दिये.

३ चामुण्डराज (नं० २ का पुत्र)–इस ने वि० सं० १०५२ से १०६६ (ई० स० ९९६ से १०१०) तक राज्य किया. यह राजा व्यभिचारी था, इस कारण इस की बहिन वाचिणी देवी (चाचिणी देवी) ने इस को पदच्युत कर इस के पुत्र वल्लभराज को गादी पर बिठला दिया. चामुण्डराज के तीन पुत्र वल्लभराज दुर्लभराज और नागराज थे.

४ वल्लभराज (नं० ३ का पुत्र)—इस ने राज्य पाने के थोड़े ही अरसे

बाद मालवे पर चढ़ाई की, परन्तु बीमारी से मार्ग में ही इस का देहान्त हो गया. इस ने छः महीने के करीब राज्य किया.

५ दुर्लभराज (नं० ४ का छोटा भाई)—इस का विवाह नाडोल के चौहान राजा महेन्द्र की बहिन दुर्लभ देवी से हुआ था. इस ने वि० सं० १०६६ से १०७८ (ई० स० १०१० से १०२२) तक राज्य किया.

६ भीमदेव (नं० ५ के छोटे भाई नागराज का पुत्र)—यह राजा विशेष पराक्रमी हुआ. इस ने सिन्ध पर चढ़ाई कर वहां के राजा हम्मुक (?) को परास्त किया, और चेदी के हैहयवंशी (कलचुरी) राजा से भी लड़ने को गया था. जब यह सिन्ध की चढ़ाई पर गया हुआ था उस समय मालवा के परमार राजा भोज के सेनापति कुलचन्द्र ने अणहिलवाड़े पर चढ़ाई कर उक्त नगर को लूटा, जिस का बदला लेने के लिये इस ने भोज पर चढ़ाई की, और उसी समय भोज रोगग्रस्त होकर मर गया. इस ने आबू के परमार राजा धुंधराज पर अपने दंडनायक (सेनापति) विमल शाह महाजन को भेजा, जिस ने धुन्धराज को आधीन कर वहां पर अपने नाम से ' विमलवसही ' नामक बहुत ही सुन्दर मन्दिर वि० सं० १०८८ (ई० स० १०३२) में बनवाया. भीम के राज्य-समय में गज़नी के सुल्तान महमूद ने ई० स० १०२४ (वि० सं० १०८०) में सोमनाथ पर चढ़ाई कर उक्त मन्दिर को तोड़ा था. इस राजा ने वि० सं० १०७८ से ११२० (ई० स० १०२२ से १०६४) तक राज्य किया, इस के दो पुत्र क्षेमराज और कर्ण थे. भीमदेव ने अपने अन्तिम समय में क्षेमराज को राज्य देकर वानप्रस्थ होना चाहा, परन्तु क्षेमराज को राजा होने की अपेक्षा तप करने की विशेष रुचि होने के कारण उस ने अपने छोटे भाई कर्ण को राज्य दिलाया, और आप (क्षेमराज) सरस्वती नदी के तट पर मुंडकेश्वर नामक तीर्थ में जाकर तपस्या करने लगा.

७ कर्ण (नं० ६ का छोटा पुत्र)—इस ने कोली और भीलों को अपने

वश किया, जो समय समय पर उपद्रव किया करते थे. वि० सं० ११२० से ११५० (ई० स० १०६४ से १०९४) तक इस ने राज्य किया.

८ जयसिंह (नं० ७ का पुत्र)—इस का प्रसिद्ध खिताब 'सिद्धराज' था, जिस से अब तक सिद्धराज जयसिंह के नाम से यह प्रसिद्ध है. यह बड़ाही प्रतापी राजा हुआ. जिस समय यह सोमनाथ की यात्रा को गया, उस समय मालवा के परमार राजा नरवर्मा ने गुजरात पर चढ़ाई की, जिस का वैर लेने के लिये इस ने पीछे से मालवे पर चढ़ाई कर नरवर्मा के पुत्र राजा यशोवर्मा को कैद किया. इस ने महोबा के चंदेल राजा मदनवर्मा पर भी चढ़ाई का थी; परन्तु उस में इस को विजय प्राप्त हुई या नहीं यह सन्दिग्ध बात है. इस ने सोरठ पर चढ़ाई कर वहां के राजा पर विजय प्राप्त की, और उस की यादगार में वहां पर अपने नाम का संवत् चलाया जो कुछ समय तक वहां पर सिंह संवत् नाम से प्रसिद्ध रहा. इस ने बर्बर आदि कईएक जंगली जातियों को भी अपने आधीन किया था. यह बड़ाही लोकप्रिय, विद्यारसिक, और जैनों का भी विशेष सम्मान करनेवाला राजा था. इस ने वि० सं० ११५० से ११९९ (ई० स० १०९४ से ११४३) तक शासन किया.

९ कुमारपाल (नं० ८ का उत्तराधिकारी)—सिद्धराज जयसिंह के पुत्र न होने के कारण उस के पीछे उपर्युक्त राजा कर्ण (नं० ७) के बड़े भाई क्षेमराज के पुत्र देवप्रसाद के बेटे त्रिभुवनपाल का पुत्र कुमारपाल राज्यसिंहासन पर बैठा. यह राजा अणहिलवाड़ा के सोलंकियों में सब से अधिक प्रतापी हुआ. राज्य पाने से पूर्व का समय इस ने बड़ीही आपत्ति में व्यतीत किया था, क्योंकि सिद्धराज जयसिंह इस को मरवाना चाहता था, जिस से यह भेष बदल प्राण बचाता फिरता था. इस ने अजमेर के चौहान राजा अर्णोराज (आनाजी) पर चढ़ाई कर विजय प्राप्त की, मालवा के राजा

नल्लाल को मारा, चित्तौड़ (मेवाड़ में) के प्रसिद्ध किले पर भी इस का अधिकार था, और कोंकण के शिलारावंशी राजा मल्लिकार्जुन पर दो वार चढ़ाई की थी, जिन में से दूसरी चढ़ाई में विजय प्राप्त हुई. यह राजा, बड़ा ही प्रतापी, देशविजयी और राजनीतिनिपुण, था. इस के राज्य की सीमा दूर दूर तक फैली हुई थी, और मालवा तथा राजपूताना के कितने एक हिस्से पर भी इस का अधिकार था. इस ने हेमाचार्य के उपदेश से जैन धर्म स्वीकार कर लिया था. वि० सं० ११९९ से १२३० (ई० स० ११४३ से ११७४) तक इस ने राज्य किया.

१० अजयपाल (नं० ९ के सब से बड़े भाई महीपाल का पुत्र) —इस राजा ने जैन धर्म का विरोध कर बहुत कुछ अत्याचार (ज़ुल्म) किया; अन्त में अपने एक द्वारपाल के हाथ से वि० सं० १२३३ (ई० स० ११७७) में मारा गया.

११ मूलराज दूसरा (नं० १० का पुत्र)—इस राजा ने बाल्यावस्था में राज्य पाया, जिस से कोई कोई इतिहासलेखक इस का नाम बाल-मूलराज भी लिखते हैं. इस के समय में सुल्तान मुहम्मदगोरी ने गुजरात पर चढ़ाई की, परन्तु आबू के नीचे लड़ाई हुई उस में सुल्तान घायल होने के बाद हारकर लौट गया. फ़ारसी इतिहासलेखक इस लड़ाई का भीमदेव के समय में होना लिखते हैं, परन्तु संस्कृत-ग्रन्थकारों ने मूलराज के समय में होना लिखा है, जिस का कारण यही है, कि उसी अरसे में मूलराज का देहान्त और भीमदेव का राज्याभिषेक हुआ था. मूलराज ने वि० सं० १२३३ से १२३५ (ई०स० ११७७ से ११७९) तक राज्य किया.

१२ भीमदेव दूसरा (नं० ११ का छोटा भाई)—इस का प्रसिद्ध नाम भोलाभीम था. यह भी बाल्यावस्था में ही गद्दी पर बैठा था, जिस से इस के मंत्रियों तथा सामन्तों ने इस का बहुतसा राज्य दबा लिया, कितने ही सामन्त स्वतंत्र हो गये, और जयन्तसिंह (जैत्रसिंह) नामक सोलंकी ने इस से अणहिलवाड़ा की राज-

गद्दी भी छीन ली. परन्तु अन्त में उस को पीछा वहां से हटना पड़ा. सोलंकियों की बघेल (वाघेला) शाखा के धवल का पुत्र अर्णोराज भीमदेव का सहायक बना, परन्तु उस को भी शत्रुओं से लड़कर अपना प्राण देना पड़ा. उस (अर्णोराज) का पुत्र लवणप्रसाद भी भीमदेव के पक्ष में ही रहा, जिस से यह (भीमदेव) अपना गया हुआ राज्य (जयंतसिंह से) लौटा लेने पाया हो ऐसा प्रतीत होता है. भीमदेव के समय में कुतुबुद्दीन ऐबकने गुजरात पर चढ़ाई की, और आबू के नीचे धारावर्ष परमार तथा दूसरे सामन्त बड़ी सेना के साथ उस का मार्ग रोकने को खड़े थे, जिन को हराकर उस (कुतुबुद्दीन) ने गुजरात को लूटा. भीमदेव ने वि० संवत् १२३५ से १२९८ (ई० स० ११७९ से १२४२) तक राज्य किया.

१३ त्रिभुवनपाल (नं० १२ का उत्तराधिकारी)—भीमदेव के पीछे त्रिभुवनपाल अणहिलवाड़ा की गद्दी पर बैठा. इस का भीमदेव के साथ क्या सम्बन्ध था यह ठीक ठीक मालूम नहीं हुआ. सोलंकियों के भाटों की ख्यातों में इस को भीमदेव का पुत्र लिखा है, परन्तु वे (भाट) लोग बहुधा गद्दी बैठनेवाले को पहिले राजा का पुत्र ही लिखते हैं. मेवाड़ के रावल समर सिंह के समय के वि०सं० १३३० के शिलालेख में त्रिभुवनपाल को राणक लिखा है. राणक या राणा, गुजरात के बघेलों का ख़िताब था, जिस से यह भी अनुमान हो सकता है, कि त्रिभुवनपाल बघेलों से सम्बन्ध रखता हो और भीमदेव के पीछे राजा बन गया हो, परन्तु त्रिभुवनपाल के वंशज, जो इस समय मेवाड़ में जीलवाड़ा, और रूपनगर के ठिकानों के स्वामी हैं, वे अपने को सोलंकी मानते हैं, न कि बघेल; और प्रबन्धपरीक्षा नामक पुस्तक में त्रिभुवनपाल को सोलंकी ही लिखा है. उस समय छोटे पुत्रों की सन्तति का ख़िताब बहुधा राणक (राणा) हुआ करता था, अतएव त्रिभुवनपाल का सोलंकियों की मुख्य शाखा का वंशधर होना संभव है; परन्तु

ऐसा मानने के साथ हम को यह भी मानना पड़ेगा कि वह भीम्देव (अथवा किसी अन्य राजा) का छोटा पुत्र हो. त्रिभुवनपाल ने कितने समय तक राज्य किया इस का भी ठीक ठीक उल्लेख नहीं मिलता. इस का एक ताम्रपत्र वि० सं० १२९९ चैत्र शुक्ला ६ (यह संवत् आषाढ़ादि अथवा कार्त्तिकादि हो) का मिला है. डॉक्टर भाऊदा जी की प्रसिद्ध की हुई एक जैन पट्टावलि में लिखा है कि "भीमदेव दूसरे के पीछे ६ दिन तक उस की पादुका गद्दी पर रख कर मंत्रियों ने राज्यकार्य चलाया, जिस के पीछे त्रिभुवनपाल गद्दी पर बैठा, जिस ने दो मास और १२ दिन राज्य किया." परन्तु प्रवचनपरीक्षा में उस का ४ वर्ष राज्य करना लिखा है. वि० सं० १३०० (ई० स० १२४३) के आस पास इस को निकाल कर सोलंकियों की बघेल शाखा का राणा वीसलदेव अणहिलवाड़ा का राजा बना. इन सोलंकियों के वंशजों के अधिकार में इस समय मेवाड़ में जीलवाड़ा और रूपनगर आदि; मारवाड़ में कोट; और गुजरात में ल्यालियेर के ठिकाने हैं.

(६) बघेले सोलंकी.

बघेल, जिन को गुजरातवाले बाघेला कहते हैं, अणहिलवाड़ा के उपर्युक्त सोलंकियों की एक शाखा है. बाघेल नाम की उत्पत्ति के विषय में मत भेद है. भाट लोग ऐसा मानते हैं कि 'सिद्धराज जयसिंह के सात पुत्र हुए, जिन में से दूसरा कुमारपाल तो उस के पीछे अणहिलवाड़े की गद्दी पर बैठा. और सब से बड़े बाघराव (व्याघ्रदेव) के वंशज बघेल कहलाये'; परन्तु स्वयं कुमारपाल के समय के प्रसिद्ध चित्तौड़ के क़िले (मेवाड़ में) से मिले हुए शिलालेख, तथा सोलंकियों की ऐतिहासिक पुस्तकों में स्पष्ट लिखा हुआ मिलता है कि 'सिद्धराज जय सिंह जी को पुत्र ही नहीं हुआ, जिस से कुमारपाल उस के राज्य का मालिक हुआ, जो अणहिलवाड़ा के सोलंकी राजा भीमदेव प्रथम के पुत्र क्षेमराज का वंशज था.' भाट लोग एक राजा के बाद गद्दी बैठने वाले दूसरे राजा को पहिले का पुत्र ही लिखते हैं, इस से यदि ऐसा मान लिया जाये कि

कुमारपाल को सिद्धराज का पुत्र मानने के साथ उन्हों ने वास्तविक इतिहास की अज्ञानता में उस (कुमारपाल) के भाइयों को भी सिद्धराज के पुत्र मान लिये हों, तो भी हम उन का कथन स्वीकार नहीं कर सकते, क्योंकि उन्हों ने कुमारपाल के दूसरे छः भाइयों के नाम वायराव, तूनराव, मलखान, मांडन, तेजसी, और नीलसुनाल लिखे हैं, उन में से एक भी नाम संस्कृत पुस्तकों में दिये हुए उस (कुमारपाल) के भाइयों के नामों से नहीं मिलता, ऐसी दशा में यदि वायराव के नाम से वाघेल नाम की उत्पत्ति हुई हो तो भी उस को कुमारपाल का भाई हम नहीं मान सक्ते. भाटों की ख्यातों में वाघ नाम के एक दूसरे सोलंकी का होना भी लिखा मिलता है, जिस को अणहिलवाड़ा के सोलंकी राजा भीमदेव प्रथम के पुत्र सारंगदेव के बेटे वरसिंह का पुत्र लिखा है. भाटों की पुस्तकों से इस प्रकार का हाल मिलता है. इस के विरुद्ध सोलंकियों के इतिहास से सम्बन्ध रखने-वाली पुस्तकों से पाया जाता है कि, सोलंकीवंश की दूसरी शाखा के धवल नामी पुरुष का विवाह कुमारपाल की मौसी से हुआ था, जिससे अर्णोराज (आनाक) का जन्म हुआ था. अर्णोराज ने कुमारपाल की अच्छी सेवा की जिस के बदले में कुमारपाल ने प्रसन्न होकर उस को व्याघ्रपल्ली (वाघेल) गाव दिया, जिस के नाम से अर्णोराज का वंश व्याघ्रपल्ली अर्थात् वघेल कहलाया. व्याघ्रपल्ली ग्राम अणहिलवाड़ा से दश मील पर है. गुजरात के बघेलों की वंशावली नीचे लिखे अनुसार मिलती है:—

१ धवल.

२ अर्णोराज (नं० १ का पुत्र)—कुमारपाल की मौसी से उत्पन्न हुआ.

३ लवणप्रसाद (नं०२ का पुत्र)—यह भोलाभीम का प्रधान मंत्री था. इस के आधीन व्याघ्रपल्ली और धवलगढ़ (धोलका) का इलाका था. यह एक वीर पुरुष था, और मालवा के राजा सुभटवर्मा (सोहड) तथा दक्षिण के यादव राजा सिंघण ने गुजरात पर चढ़ाई की उस समय गुजरात की सेना का मुखिया यही था. भोलाभीम के राज्य-समय में इस का बल बहुत बढ़ गया था.

४ वीरधवल (नं० ३ का पुत्र)—यह भी अपने पिता की नांई वीरभक्ति

का पुत्र था. इस ने अपने साले सांगण, और चामुण्ड (जो जूनागढ़ के पास वामनस्थली में राज्य करते थे) का राज्य छीन लिया, भद्रेश्वर (कच्छ में) के राजा को विजय किया, और गोध्रा के राजा को क़ैद किया. इस के प्रधान मन्त्री वस्तुपाल, और तेजपाल नाम के दो भाई (पोरवाड़ महाजन) थे, जिन्हों ने जैनधर्मसम्बन्धी कामों में असंख्य द्रव्य खर्च किया. आबू पर लूणवसही नाम का सुन्दर मन्दिर, जो विमलवसही के पास है, तेजपाल ने अपने पुत्र लूणसिंह के निमित्त बनवाया था. ये दोनों भाई वीरधवल के राज्य को बड़ी उन्नति देनेवाले हुए. वीरधवल का देहान्त वि० सं० १२६४ (ई० स० १२३८) में हुआ. इस के तीन पुत्र वीरम, वीसलदेव, और प्रताप मल्ल थे.

५ वीसलदेव (नं० ४ का दूसरा पुत्र)—वीरधवल के बाद उस का दूसरा पुत्र वीसलदेव राजगद्दी पर बैठा, जिस का कारण यह था कि प्रधान वस्तुपाल के साथ इस का बहुत कुछ मेल जोल था. वीसलदेव के गद्दी पर बैठने के कारण इस के बड़े भाई वीरम ने राज्य पाने की बहुत कुछ कोशिश की, लेकिन वस्तुपाल के आगे उस का कुछ वश न चला. यह वि० सं० १३०० (ई० स० १२४४) के आस पास अणहिलवाड़ा के अन्तिम सोलंकी राजा त्रिभुवनपाल का राज्य छीन कर वहां की गद्दी पर बैठ गया. इस के ताम्रपत्र से पाया जाता है कि यह भी बहादुर राजा था, और मालवा, तथा मेवाड़ के राजा (जैत्रसिंह या तेजसिंह) से लड़ा था. ऐसा भी प्रसिद्ध है कि इस राजा ने वीसलनगर और डभोई के क़िले बनवाये थे. वि० सं० १३०० से १३१८ (ई० स० १२४४ से १२६२) तक इस ने अणहिलवाड़ा में राज्य किया.

६ अर्जुनदेव (नं० ५ के छोटे भाई प्रताप मल्ल का पुत्र)—यह भी प्रतापी राजा था. इस ने वि० सं० १३१८ से १३३१ (ई० स० १२६२ से १२७४) तक राज्य किया.

७—सारंगदेव (नं० ६ का पुत्र)—इस ने वि० सं० १३३१ से १३५३ (ई० स० १२७४ से १२९६) तक राज्यशासन किया.

८ कर्णदेव (नं० ७ का पुत्र)—गुजरात में यह राजा कर्णघेला नाम से प्रसिद्ध है. यह गुजरात के बघेल वंश का अन्तिम राजा था. वि० संवत् १३५४ (ई० स० १२९७) में अलाउद्दीन खिलजी ने कर्णदेव से गुजरात का राज्य छीन लिया, जिस से यह (कर्णदेव) दक्षिण में देवगढ़ के राजा रामदेव के पास जा रहा.

इन बघेलों के वंशजों के अधिकार में इस समय बघेलखण्ड में रीवां का राज्य तथा अनेक छोटे बड़े ठिकाने, और गुजरात में थराद, देवदर, पेथापुर, भादरवा, धरी, और पोइछा के ठिकाने हैं. लूणवाड़ा (गुजरात में) के रईस भी अपने को कभी सोलंकी (वीरपुरा) और कभी बघेल बतलाते है, परन्तु निश्चित् नहीं कि वे वास्तव में सोलंकियों की मुख्य शाख से निकले हैं वा बघेलों से.

१४३—टॉड साहिब लिखते हैं, कि पड़िहारों ने राजस्थान के इतिहास में कभी कोई नामवरी का काम नहीं किया; परन्तु यदि वे कन्नौज के पड़िहारों के इतिहास से परिचित होते तो ऐसा कभी नहीं लिखते. पड़िहारों की नामवरी इसी से पाई जाती है कि उन का राज्य कन्नौज के १६० मील उत्तर-पूर्व श्रावस्ती से लगाकर काठियावाड़ के दक्षिणी भाग तक, और कुरुक्षेत्र के पश्चिम से लगा कर बनारस के पूर्व तक के प्रदेशों पर था, और अनेक बड़े बड़े राजा उन के पैरों में सिर झुकाते थे. ऐसा उन के ताम्रपत्रादि से पाया जाता है.

१४४—वोल्टेरा—यूरोप के इटली देश का एक प्राचीन नगर.

१४५—कोर्टोना—इटली देश का एक प्राचीन नगर.

१४६—टस्कनी—इटली देश में.

१४७—मंडोवर से प्राचीन पाली अक्षरों का कोई लेख अब तक नहीं मिला. वहां से मिले हुए पुराने से पुराने लेख की लिपि गुप्तों के राज्यसमय अर्थात् ई० सन् की पांचवीं शताब्दि के पूर्व की नहीं है. टॉड साहिब ने प्रत्येक प्राचीन लेख की लिपि को, जिसे साधारण पुरुष पढ़ न सके, भ्रम से पालीलिपि ही लिख दिया है.

१४८–मंडोवर का क़िला पडिहारों ने राठौड़ राव चूंडा को दहेज में दिया था, जिस के विषय में यह दोहा प्रसिद्ध है. दोहा—इन्दारों उपकार, कमधज कदे न वीसरे। चूंडो चंवरी चाढ, दियो मंडोवर दायजे ॥ १ ॥ (ईंदा = पडिहार. कमधज = राठौड़.)

१४९–राणा की उपाधि, अर्थात् राणा का ख़िताब मेवाड़वालों ने मंडोवर के पडिहार राणा मोकल से लिया, ऐसी प्रसिद्धि चली आती है, और भाट लोगों का कथन है, कि 'रावल रत्नसिंह (जो अलाउद्दीन ख़िलजी से लड़ा था) के उत्तराधिकारी रावल कर्णसिंह के दो पुत्र माहप और राहप थे, जिन में से बड़े पुत्र माहप को उक्त रावल ने आज्ञा दी कि मंडोवर के पडिहार राणा मोकल को, जो मेवाड़ में लूटमार किया करता है, पकड़ लाओ; परन्तु माहप से कुछ न बन पड़ा, तब उस का छोटा भाई राहप मंडोवर गया, और मोकल को क़ैद कर अपने पिता के पास ले आया. राहप की इस वीरता से प्रसन्न होकर रावल कर्णसिंह ने उस को अपना उत्तराधिकारी बना दिया, और पडिहार मोकल से राणा ख़िताब छीन कर उस (राहप) को दिया, तब से मेवाड़ के रईस राणा कहलाने लगे.' परन्तु हम उक्त कथन को स्वीकार नहीं कर सकते, क्योंकि राहप और हमीर के पूर्व के उस के वंशज कभी मेवाड़ के स्वामी नहीं हुए, वे तो सीसोदा गांव के मालिक थे. अलाउद्दीन ख़िलजी के समय रावल रत्नसिंह से चित्तौड़ का क़िला छूटने के बाद रावल रत्नसिंह के वंशज अर्थात् मुख्य शाखावाले डूंगरपुर की तरफ़ चले गये, जिस से छोटी शाखावाले राहप के वंशधर हमीर ने मौक़ा पाकर कुछ अरसे बाद चित्तौड़ का क़िला ले लिया, तब से मेवाड़ पर राणाओं का अधिकार हुआ. राणा का ख़िताब मेवाड़वालों ने पडिहारों से लिया हो ऐसा नहीं पाया जाता, किन्तु उस समय छोटी शाखावालों में राणा का ख़िताब धारण करने की प्रथा हो, ऐसा पाया जाता है, क्योंकि मेवाड़ के गुहिलोतों, अणहिलवाड़ा के सोलंकियों, मारवाड़ के पडिहारों की, तथा अन्य वंशों के छोटी शाखावालों का राणा ख़िताब मिलता है.

१५०–पडिहार वंश–पडिहार, या प्रतिहार लोग इस समय अपने

को अग्निवंशी प्रगट करते हैं, परन्तु उन के प्राचीन शिलालेखों में उन का कहीं भी अग्निवंशी होना लिखा नहीं मिलता, किन्तु वि० सं० ९०० के आसपास के ग्वालियर के क़िले से मिले हुए पड़िहार राजा भोजदेव के समय के शिलालेख में पड़िहारों का प्रसिद्ध सूर्यवंशी रामचन्द्र के छोटे भाई लक्ष्मण के वंश में होना लिखा है, तथा ओसियां (मारवाड़) से मिले हुए एक शिलालेख में भी ऐसा ही लिखा मिलता है, और कन्नौज के प्रतापी पड़िहार राजा महेन्द्रपाल का गुरु प्रसिद्ध कवि राजशेखर, जो विक्रम संवत् की दशवीं शताब्दि में हुआ, पड़िहारों को रघुवंशी लिखता है. जोधपुर राज्य से मिले हुए विक्रम संवत् की नवीं और दशवीं शताब्दि के दो अन्य शिलालेखों में पड़िहारों की उत्पत्ति के विषय में लिखा है कि 'विप्र हरिश्चन्द्र की दो स्त्रियां थीं, जिन में से एक विप्रवर्ण की, और दूसरी भद्रा नाम की क्षत्रियवर्ण की थी, उन से जो पुत्र हुए वे प्रतिहार कहलाये.' इस प्रकार पड़िहारों की उत्पत्ति के विषय के प्राचीन लिखित प्रमाण मिलते हैं, परन्तु उन का अग्निवंशी होना सिवाय पृथ्वीराजरासे के कहीं लिखा नहीं मिलता. पड़िहारों का राज्य प्रथम मारवाड़ में था, जहां से उन्हों ने अपने बाहुबल से कन्नौज का राज्य छीन कर एक बड़ेही प्रबल राज्य का स्वामित्व प्राप्त किया.

(१) मारवाड़ के पड़िहार।

१ हरिश्चन्द्र—इस की क्षत्रियवंश की महाराणी भद्रा से चार पुत्र भोगभट्ट, कक्क, रज्जिल, और दद्द उत्पन्न हुए, जिन्हों ने अपने बाहुबल से मांडव्यपुर (मंडोर) का क़िला लेकर उस का प्राकार बनवाया.

२ नरभट (नं० १ के तीसरे बेटे रज्जिल का पुत्र)—यह अपने पराक्रम के कारण 'पेल्लापेल्लि' कहलाया.

३ नागभट, या नाहड़ (नं० २ का पुत्र)—यह नरभट का छोटा पुत्र होना चाहिये, क्योंकि पड़िहार राजा बाउक के लेख में उस की राजधानी का नाम मेडंतक (मेड़ता) लिखा है. अनुमान होता है

कि नर भट के दो पुत्रों में से बड़ा, जिस का नाम अब तक मालूम नहीं हुआ, मंडोर का राजा हुआ, जिस के वंशजों ने कन्नौज का प्रबल राज्य अपने आधीन किया और छोटे पुत्र नागभट को प्रथम मेड़ता जागीर में मिला हो, और मंडोवरवाले पाटवी शाखा के राजाओं की राजधानी कन्नौज हो जाने बाद किसी समय मंडोवर का क़िला तथा मारवाड़ का इलाक़ा मेड़ते की छोटी शाखा-वालों को मिल गया हो यह संभव है. हम मारवाड़ के पडिहार राजाओं की वंशावली लिखने के बाद कन्नौज के पडिहारों की वंशावली देंगे.

४ तात (नं० ३ का पुत्र)—यह जज्जिका देवी से उत्पन्न हुआ था, और अपने छोटे भाई को राज्य देकर मांडव्य के आश्रम में जा कर धर्माचरण में प्रवृत्त हुआ.

५ भोज (नं० ४ का छोटा भाई).

६ यशोवर्द्धन (नं० ५ का पुत्र).

७ चन्दुक (नं० ६ का पुत्र).

८ शीलुक (नं० ७ का पुत्र)—इस ने स्रवणी (?) और वल्ल देशों की सीमा नियत की, वल्ल देश के स्वामी भट्टिक देवराज (भाटी देव-राज=जैसलमेरवालों का पूर्वज) को परास्त कर उस के छत्र छीन लिये त्रेता तीर्थ में एक नगर बसाकर वहां पर एक पुष्क-रिणी बनवाई और सिद्धेश्वर महादेव का बड़ा मन्दिर बनवाया.

९ झोट (नं० ८का पुत्र —यह अन्त में राज्य छोड़कर गंगा के तीर पर जा रहा.

१० भिल्लादित्य (नं० ९ का पुत्र)—यह भी अपने पुत्र को राज्य देकर गंगाद्वार (हरिद्वार) में जा रहा था, जहां पर १८ वर्ष तक रहने के पश्चात् अनशन व्रत (अन्न त्याग देने) से शरीर छोड़ा.

११ कक्क (नं० १० का पुत्र)—इस ने मुद्गगिरि मुंगेर, (बिहार में) के पास गौड़ों पर विजय पाई थी. यह व्याकरण, न्याय, ज्योतिष और कलाकौशल में निपुण था. और सब (कई) भाषाओं में

कविता करता था. भट्टिवंश की महाराणी पद्मिनी से इस के बाउक नाम का पुत्र हुआ, और दूसरी दुर्लभ देवी से कक्कुक हुआ था.

१२ बाउक (नं० ११ का पुत्र)—मयूर नामी राजा नंदावल्ल को मारकर भूअकूप तक चला आया, जिस को मारकर उस के सैन्य को इस ने नष्ट किया. इस का एक शिलालेख जोधपुर की एक दीवार में लगा हुआ मिला है, संवत् ८६४ (ई० स० ८३७) का है.

बाउक के भाई कक्कुक के समय का एक शिलालेख घटियाले (जोधपुर से २० मील उत्तर में) से मिला है, जो वि० सं० ९१८ का है. उस में लिखा है कि " उस (कक्कुक) ने मरुमाड (मारवाड़), वल्ल, तमणी (त्रवणी), और गुज्जरत्ता (गुर्जरत्रा = गुजरात. प्राचीन गुजरात के लिये देखो ऐतिहासिक ग्रन्थमाला, जिल्द पहिली पृष्ठ २६ का टिप्पण) के लोगों की प्रीति संपादन की, रोहिन्सकूप (घटियाला) गांव में बाजार बनवाया, और एक स्तंभ स्थापन किया, दूसरा स्तंभ मंडोवर में खड़ा किया, तथा उक्त घटियाला ग्राम में एक जैन मन्दिर बनवा कर धनेश्वरगच्छ के जैनों के सुपुर्द किया था " वह विद्वान भी था. 'उस का रचा हुआ एक संस्कृत श्लोक एक शिलालेख में मिला है, जिस के साथ यह भी लिखा हुआ है कि ' यह श्लोक स्वयं कक्कुक का बनाया हुआ है '.

यहां तक की मारवाड़ के पडिहारों की वंशावली बाउक और कक्कुक के शिलालेखों के आधार पर लिखी गई है, जिस के पीछे का विश्वासयोग्य वंशवृत्त अब तक हम को प्राप्त नहीं हुआ. राठौड़ों ने मारवाड़ में आने बाद पडिहारों को कमज़ोर किया, और अन्त में राव चूंडा को उन्हों ने मंडोवर भी दे दिया, तब से ही पडिहारों का रहा सहा अधिकार भी मारवाड़ पर से उठ गया. अन्तिम पडिहार राजा जिस से मंडोवर छूटा, उस का नाम राणा रूपड़ा बतलाते हैं.

(२) कन्नौज के पड़िहार.

ऊपर मारवाड़ के पड़िहारों के वृत्तान्त में हम लिख आये हैं कि नरभट के बाद मारवाड़ में पड़िहारों की दो शाखा हुई हो, बड़ी शाखा मंडोवर की, और छोटी मेड़ते की, जिन में से मंडोवर की शाखावालों ने कन्नौज का राज्य लिया. ई० स० ६४८ (वि० सं० ७०५) के करीब कन्नौज के प्रतापी वैश्यवंशी राजा हर्ष (हर्षवर्द्धन) का देहान्त होने पर उस का सेनापति उस के राज्य का मालिक बन बैठा, जिस से राज्य में बखेड़ा मचा, और उक्त महाराज्य के आधीनस्थ कई सामन्तों को स्वतंत्र होने का मौका मिला, और मौखरियों ने अपने पूर्वजों की राजधानी कन्नौज पर पुनः अपना अधिकार जमा लिया. उक्त वंश का राजा यशो वर्मा ई० स० ७३६ (वि० सं० ७९३) के बाद कश्मीर के राजा ललितादित्य से लड़कर सकुटुंब मारा गया, जिस के बाद इंद्रायुध और चक्रायुध नामक राजाओं का कन्नौज में राज्य करना पाया जाता है. वे किस वंश के थे यह मालूम नहीं हुआ. चक्रायुध से पड़िहारों ने कन्नौज का महा राज्य छीना हो ऐसा पाया जाता है.

१ कक्कुत्स्थ (मंडोवर के पड़िहार राजा नरभट का पुत्र, और नागभट का बड़ा भाई)—इस को कक्कुक भी कहते थे.

२ देवराज, या देवशक्ति (नं० १ का छोटा भाई)—यह परम वैष्णव था. इस की राणी भूयिका देवी से वत्सराज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था.

३ वत्सराज (नं० २ का पुत्र)—मारवाड़ के पड़िहारों में यही प्रथम प्रतापी हुआ. यह परम शिवभक्त था. इस ने गौड़, और बंगाल के राजाओं को विजय किया था. जिस समय यह मालवा के राजा को बर्बाद करने के लिये चढ़ा उस समय दक्षिण के राठौड़ राजा ध्रुवराज ने मालवा के उक्त राजा की सहायता के लिये अपने सामन्त गुजरात के राठौड़ राजा कर्कराज को अपने सैन्य सहित भेजा था. इस लड़ाई में वत्सराज हार कर मारवाड़ में लौट आया, और इस (वत्सराज) ने गौड़ देश के राजा के जो दो श्वेत छत्र छीने

थे वे राठौड़ों ने इस से छीन लिये. वत्सराज वि० सं० ८४० (ई० स० ७८३) में विद्यमान था. इस की राणी सुन्दरीदेवी से नागभट का जन्म हुआ था.

४ नागभट (नं० ३ का पुत्र)—यह भगवती (देवी) का परम भक्त था. इस ने चक्रायुध को परास्त कर कन्नौज का महाराज्य छीना. इस के समय से मंडोवर (मारवाड़ में) के पडिहारों की राजधानी कन्नौज हुई हो ऐसा प्रतीत होता है. इस ने आंध्र, सैंधव, निदर्भ, कलिंग, और बंगाल के राजाओं को विजय किया; तथा आनर्त, मालव, किरात, तुरुष्क, वत्स, मत्स आदि देशों के राजाओं के पहाड़ी क़िले छीन लिये. इस के राज्य समय का एक शिलालेख वि० सं० ८७२ (ई० स ८१५) का मिला है. मारवाड़ में नाहड़ राव पडिहार का नाम प्रसिद्ध है, वह शायद यही नागभट (नाहड) हो, क्योंकि 'नाहड' नागभट का ही प्राकृत रूप है. इस की राणी ईसटा देवी से रामभद्र उत्पन्न हुआ था.

५ रामभद्र या राम (नं० ४ का पुत्र)—यह सूर्य का परम उपासक था. इस की राणी अप्पादेवी से भोजदेव उत्पन्न हुआ था.

६ भोजदेव (नं० ५ का पुत्र)—यह भगवती (देवी) का भक्त था. इस को आदिवराह तथा मिहर भी कहते थे. यह गुजरात के राठौड़ राजा ध्रुवराज (दूसरे) से लड़ा था, जिस को धारावर्ष भी कहते थे. इस का एक दानपत्र वि० सं० ९०० (ई० स० ८४३) का मारवाड़ राज्य के डींडवाना ज़िले के दौलतपुरा गांव से मिला है, जिस में उक्त ज़िले का सिवा गांव दान करने का उल्लेख है. उक्त दानपत्र का दूतक (जिस के द्वारा दानपत्र खुदवाने की आज्ञा हो उसे 'दूतक' कहते हैं) श्रीमान् नागभट युवराज लिखा है. भोजदेव के ५ शिलालेख मिले हैं, जिन में से एक देवगढ़ (सेंट्रल इंडिया में बेतना नदी पर) से वि० सं० ९१९ (ई० स० ८६२) का, तीन ग्वालियर से जिन में से एक बिना संवत् का, दूसरा वि० सं० ९३२ (ई० स० ८७५) का, और तीसरा वि० सं०९३३

(ई० स० ८७६) का, और एक पेहेवा (कर्णाल ज़िले में) से हर्ष संवत् २७६ (वि० सं० ९३८=ई० स० ८८१) का है. इस के चांदी और तांबे के सिके भी मिले हैं.

७ महेन्द्रपाल (नं० ६ का पुत्र)—यह भी अपने पिता की नाई भगवती (देवी) का परम भक्त था. इस को महेन्द्रायुध, और निर्भयराज भी कहते थे. इस की राणी देहनागादेवी से भोजदेव, और महीदेवी नामक दूसरी राणी से विनायकपाल का जन्म हुआ था. इस के तीन ताम्रपत्र, और दो शिलालेख मिले हैं, जो वि० सं० ९५० से ९६४ (ई० सन् ८९३ से ९०७) तक हैं. इस के दो ताम्रपत्रों से, जो काठियावाड़ से मिले हैं, पाया जाता है, कि काठियावाड़ के दक्षिणी हिस्से तक इस का राज्य था, और वहां पर इस के सोलंकी सामन्त राज्य करते थे (देखो ऊपर लिखी काठियावाड़ के सोलंकियों की वंशावली). कर्पूरमंजरी, विद्धशालभंजिका, बालरामायण, और बालभारत आदि पुस्तकों का रचयिता प्रसिद्ध कवि राजशेखर इस (महेन्द्रपाल) का गुरु था. भोजदेव के ताम्रपत्र में युवराज नागभट का नाम मिलता है; परन्तु महेन्द्रपाल के, और विनायकपाल के ताम्रपत्रों में उस का नाम राजाओं की नामावली में दर्ज नहीं किया, जिस से अनुमान होता है कि वह भोजदेव की विद्यमानता में ही गुज़र गया होगा, और उस (भोजदेव) के पीछे महेन्द्रपाल ही राज्य का मालिक हुआ होगा.

८ भोजदेव दूसरा (नं० ७ का पुत्र)—यह परम वैष्णव था. इस ने थोड़े ही समय तक राज्य किया हो ऐसा पाया जाता है.

९ महीपाल (नं० ८ का छोटा भाई)—अस्नी गांव (संयुक्त प्रदेश के फ़तहपुर हस्वा ज़िले में) से मिले हुए महीपाल के समय के वि० सं० ९७४ (ई० स० ९१७) के शिलालेख में महेन्द्रपाल के पीछे महीपाल का नाम लिखा है, और भोजदेव दूसरे का नाम छोड़ दिया है. वि० सं० ९८८ (ई० स० ९३१) के विनायकपाल के ताम्रपत्र में महेन्द्रपाल के बाद भोजदेव दूसरा, और उस के पीछे

विनायकपाल का नाम मिलता है. विनायकपाल के स्थान पर हेरंबपाल (विनायक, और हेरंब दोनों गणपति के नाम हैं); और महीपाल के स्थान पर क्षितिपाल (क्षिति, और मही दोनों पृथ्वी के सूचक हैं) भी लिखा मिलता है. महीपाल के उत्तराधिकारी देवपाल के समय के लेख में उस (देवपाल) को क्षितिपाल का उत्तराधिकारी लिखा है, और एक दूसरे लेख में उस को हेरंबपाल का पुत्र लिखा है. ऐसी दशा में यही अनुमान होता है, कि महीपाल, क्षितिपाल, विनायकपाल, और हेरंबपाल ये चारों एक ही राजा के नाम हैं. महीपाल के समय में भी उपर्युक्त राजशेखर कवि कन्नौज में विद्यमान था, जो इस को आर्यावर्त्त का महाराजाधिराज, तथा मुरल, मेकल, कलिंग, केरल, कुलूत, कुन्तल, और रमठ देशवालों को पराजित करनेवाला लिखता है. यह दक्षिण के राठोड़ राजा इन्द्रराज (तीसरे) से लड़ा, जिस में इस की हार हुई. इस के अन्तिम समय से कन्नौज का महाराज्य कमज़ोर होने लगा, और अनेक सामन्त स्वतंत्र बनने के उद्योग में लगे. इस राजा के समय के दो ताम्रपत्र, जिन में से एक (महीपाल नाम वाला) श० सं० ८३६ (वि० सं० ९७१ = ई० स० ९१४) का हड्डाला गांव (काठियावाड़ में) से मिला हुआ, और दूसरा (विनायकपाल नाम वाला) वि० सं० ९८८ (ई० स० ९३१) का, तथा एक शिलालेख (महीपाल के नाम का) वि० सं० ९७४ (ई० स० ९१७) का मिला है. इस के दो पुत्र देवपाल, और विजयपाल थे.

१० देवपाल (नं० ९ का पुत्र)—यह वि० सं० १००५ (ई० स० ९४८) में विद्यमान था.

११ विजयपाल (नं० १० का छोटा भाई)—इस के समय का एक शिलालेख वि० सं० १०१६ (ई० स० ९६०) का अलवर राज्य के राजोरगढ़ से मिला है.

१२ राज्यपाल (नं० ११ का उत्तराधिकारी)–इस के राज्य समय हि०

स० ४०६ (वि० सं० १०७५=ई० स० १०१८) में सुल्तान महमूद ग़ज़नवी ने कन्नौज पर चढ़ाई कर उक्त नगर को लूटा, और वहां के मन्दिरों को तोड़ा. फ़िरिश्ता लिखता है कि, 'इस (राज्यपाल) ने सुल्तान से सन्धि कर आधीनता स्वीकार की थी.' सुल्तान से सन्धि करने के कारण इस के कई सामन्त इस से अप्रसन्न हुए, और कालिंजर के चंदेल राजा गंड ने तो अपने पुत्र विद्याधरदेव को कन्नौज पर भेजा, जिस ने राज्यपाल को मार डाला. उस में दूबकुंड का कछवाहा सामंत अर्जुन भी विद्याधरदेव के शरीक था.

१३ त्रिलोचनपाल (नं० १२ का क्रमानुयायी)—इस राजा का एक ताम्रपत्र वि० सं० १०८४ (ई० स० १०२७) का झूंसी से मिला है.

१४ यशःपाल—इस के समय का एक शिलालेख वि० सं० १०९३ (ई० स० १०३६) का मिला है, इस के समय में या कुछ पीछे राठौड़ चन्द्रदेव ने कन्नौज पर अपना अधिकार जमा लिया, जिस के पूर्व पड़िहारों के बहुधा सब सामन्त स्वतंत्र हो चुके थे, जिस से चन्द्रदेव पड़िहारों के राज्य के एक छोटे से हिस्से का ही मालिक बनने पाया. अब पड़िहारों का केवल एक छोटा सा राज्य नागोद (सेंट्रल इंडिया में) रहा है.

१५१—चावड़े अपने तई परमारों की एक शाखा में होना मानते हैं. प्रथम चाल चढेश शब्द गण सेण सुणायो। अरबुद दीधी आण हेम आोतर दिश आयो॥ परवरियो परमार वास भिनमाल वसायो। नव कोटी कर नेत्र खेत्र जागणो खसायो॥ भोगवे भोग शत्रु भर्णा रणायत तणे राखियो रंग। वणराज कुंवरे वाशियो दसमो अणहल पुर दुरग॥ (प्राचीन पद्य). इस कवित्त में भी चावड़ों का परमार होना लिखा है, जैसा कि वे बयान करते हैं.

१५२—सोमनाथ का मन्दिर पहिले पहिल चावड़ों ने बनाया हो ऐसा मानने के लिये कोई प्रमाण नहीं है. वह मंदिर काठियावाड़ में

चावड़ों का राज्य होने से पहिले का बना हुवा होना चाहिये. वहां के एक शिलालेख से पाया जाता है, कि उक्त मन्दिर बहुत प्राचीन था. प्राचीनकाल में काठियावाड़ आदि की तरफ़ मन्दिर बहुधा लकड़ी के बनाये जाते थे, और सुल्तान महमूद ग़ज़नवी ने सोमनाथ का जो मन्दिर तोड़ा वह भी लकड़ी का ही बना हुआ था, ऐसा इब्न अमीर के लेख से पाया जाता है. महमूद ग़ज़नवी के लौटने बाद सोलंकी भीमदेव ने पीछा वहां पर पत्थर का मन्दिर बनवाया था.

१५३-सौर-टॉडसाहिब चावड़ों के लिये सौर शब्द का प्रयोग करते हैं, परन्तु यह भी उन्हीं की कल्पना मात्र है. चावड़ों की इतिहास संबन्धी पुस्तकों में कहीं उन को सौर नहीं लिखा. ऐसे ही काठियावाड़ के समुद्री तट पर के बहुत से मन्दिर चावड़ों ही ने बनाये हों ऐसा मानने के लिये भी कोई प्रमाण नहीं मिलता.

१५४-एक देश का नाम.

१५५-अपोलोडोरस-यह नाम अपोलो डॉटस के वास्ते लिखा गया हो ऐसा प्रतीत होता है. (अपोलो डॉटस के लिये देखो प्रकरण चौथे पर हमारा टिप्पण नं० १०).

१५६-प्रायःद्वीप, अर्थात् सौराष्ट्र (सोरठ) का नाम चावड़ों के सबब से पड़ा हो ऐसा मानने के लिये कोई प्रमाण नहीं है. उक्त देश का प्राचीन नाम संस्कृत शिलालेखों में सुराष्ट्र, तथा प्राकृत लेखों में सुरठ लिखा मिलता है, और उक्त लेखों के लिखे जाने के बाद चावड़ों का अधिकार काठियावाड़ पर हुआ था.

१५७-जैहलमेर-इस शब्द का अर्थ टॉड साहिब ने 'मूर्खों का पहाड़' किया है जिस में उन्हीं ने जैहल, और जाहिल शब्दों का एक ही होना मान लिया है, जो दोनों भिन्न भिन्न अर्थों के सूचक हैं. जैहल जयसल का अपभ्रंश है. कोई कोई लोग जैसल के स्थान पर उस के प्राकृत रूप जेहल का प्रयोग करते हैं, परन्तु उस का अर्थ मूर्ख नहीं होता.

१५८-चारणों के लिये ऐसा प्रसिद्ध है, कि वे पहिले दीव बन्दर

में रहते थे, जहां से पंचासर (राधनपुर राज्य के आधीन का एक गांव जो कच्छ के रण के किनारे पर बढियार ज़िले में है) आये, और वहां से कल्याण कटक के राजा भूवड़ ने उन को निकाल दिया, जिस के बाद चावड़ा वनराज ने अणहिलवाड़ा बसा कर वहां रहना इख्तियार किया। द्वीप छोड़ने का कारण अरबों की चढ़ाई था वा कोई दूसरा, इस का ठीक ठीक निश्चय नहीं हुआ।

१५९–मेवाड़ के राजाओं ने चावड़ों को सौराष्ट्र तथा अन्य स्थान पीछे दिलवाये, ऐसा मेवाड़ की ख्यातों में लिखा है, परन्तु उस में सत्यता हो ऐसा पाया नहीं जाता।

१६०–प्रबन्ध चिन्तामणि में वनराज का वि० सं० ८०२ (ई० स० ७४५) में अणहिलवाड़ा (पाटन–पट्टन) में राज्य करना लिखा है; परन्तु उसी ग्रन्थ के कर्त्ता ने उस के पीछे विशेष शोध के साथ 'विचार-श्रेणी' नामक पुस्तक रची, जिस में वनराज के राज्य का प्रारंभ वि० सं० ८२१ (ई० स० ७६४) से होना लिखा है, जो अधिक विश्वास योग्य है।

१६१–पट्टन (पाटण) अर्थात् अणहिलवाड़ा ई० सन् की आठवीं शताब्दी से सिद्धपुर के आसपास के प्रदेश का मुख्य नगर हुआ था, और वल्लभीपुर प्राचीनकाल में काठियावाड़ का मुख्य नगर था। अण-हिलवाड़े की विशेष प्रसिद्धि चावड़ों के समय में नहीं, किन्तु सोलंकियों के समय में हुई, जिन का राज्य बहुत प्रबल था। चावड़े विशेष प्रभाव-शाली नहीं हुए।

१६२—अणहिलवाड़ा पर राज्य करनेवाले चावड़ों या सोलंकियों ने बलिक राय की उपाधि धारण नहीं की थी। यह टॉड साहिब का अनुमान मात्र है।

१६३—अरबों ने चावड़ों को बलहारा नहीं लिखा, किन्तु दक्षिण के राठौड़ों को, जिन के खिताब 'वल्लभ' तथा 'वल्लभराज' आदि थे। वल्लभराय के प्राकृत (लौकिक) रूप बलहराअ के स्थान पर अरबों ने बलहरा लिखा है, जिस को पिछले पिछले अरब लेखकों ने सामान्यरूप से बड़े राजा के अर्थ में प्रयोग किया है।

यन, अर्थात् शक होना अनुमान करते हैं, और आधुनिक शोधकों में से कितने एक उन का गुर्जर (गूजर) होना मानते हैं, परन्तु चावड़े अपने तई परमारों की एक शाखा बतलाते हैं (देखो ऊपर लिखा टिप्पण नं० १५१). उपर्युक्त चापवंशी धरणीवराह के ताम्रपत्र में उक्त वंश की उत्पत्ति के विषय में लिखा है कि "पृथ्वी ने शंकर से प्रणाम कर निवेदन किया कि हे प्रभो! आप जब ध्यान में निमग्न होते हैं, उस समय असुर मुझ को दुःख देते हैं, जो मुझ से सहन नहीं हो सकता. इस पर शंकर ने अपने चाप (धनुष) से पृथ्वी की रक्षा करने योग्य एक पुरुष उत्पन्न किया, जो 'चाप' कहलाया, और उस का वंश उसी नाम से प्रसिद्ध हुआ." इस कथा से हम यही अनुमान करते हैं, कि चावड़ों के मूलपुरुष का नाम चाप (चापा) हो, और उसी के नाम से उस वंश का नाम चावड़ा पड़ा हो. गुजरात के चावड़ों की वंशावली नीचे लिखे अनुसार मिलती है :—

१. वनराज—यह पंचासर के चावड़ा राजा जयशिखरी का पुत्र था. कन्नौज राज्य के अन्तर्गत कल्याण कटक के राजा भूवड (?) ने जयशिखरी पर चढ़ाई कर उस को मारा, उस समय उस की गर्भवती राणी रूपसुन्दरी वन में चली गई, जहां पर वनराज का जन्म हुआ; वहां से शीलगुणसूरि नामक जैन साधु इस (वनराज) को अपने यहां ले आये, और वीरमती नाम की आर्या ने इस का पालन पोषण किया, ऐसा जैनग्रन्थकारों ने लिखा है. इस ने अणहिलनामक एक चरवाहे के नाम पर, जिस ने इस को नगर बसाने योग्य स्थान बतलाया, जहां पर कि खरगोश ने कुत्ते को भगाया था. (यह केवल ख्याति मात्र है), अणहिलपुर नगर बसाया, और वहां पर वि० सं० ८२१ (ई० स० ७६४) से ८८२ (ई० सं० ८२५) तक राज्य किया. यह राजा स्वतंत्र नहीं, किन्तु कन्नौज के राजा का सामन्त होना चाहिये.

योगराज (नं० १ का पुत्र)—यह युद्धविद्या में निपुण, तथा विद्वान था. इस के तीन पुत्र रत्नादित्य, वैरिसिंह, और क्षेमराज थे,

जिन्हों ने, पर्व के मारे सोमनाथ के पास आ ठहरी हुई किसी अन्य देश के राजा की नावों को लूट कर बहुत सा क़ीमती माल अपने पिता के सामने ला रक्खा, जिस पर इस (योगराज) ने खेद के साथ कहा कि 'जब अन्य देश के राजा दूसरे सब राजाओं की प्रशंसा करते है, उस समय गुजरात के राजाओं (चावड़ों) को चोर कह कर उन का उपहास करते हैं. यह हाल सुनकर अपने पूर्वजों के लिये खेद होता है. उन के इस कलंक को मिटा कर मैंने राजाओं की पंक्ति में अपनी गणना कराई थी; परन्तु तुम ने थोड़े से द्रव्य के लालच में आकर अपने पूर्वजों के उस कलंक को फिर ताज़ा कर दिया.' योगराज ने वि० सं० ८८२ (ई०स० ८२५) से ८६१ (ई०स० ८३४) तक राज्य किया.

३ रत्नादित्य (नं० २ का पुत्र)–इस ने वि०सं० ८६१ (ई०स० ८३४) से ८६४ (ई०स० ८३७)–तक राज्य किया.

४ वैरिसिंह (नं० ३ का भाई)–इस ने वि०सं० ८६४ (ई०स० ८३७) से ६०५ (ई०स० ८४८)–तक राज्यशासन किया.

५ क्षेमराज (नं० ४ का भाई)–इस ने वि०सं० ६०५ (ई०स० ८४८) से ६४४ (ई०स० ८८७)–तक राज्य किया.

६ चामुंडराज (नं०५ का पुत्र)—विचारश्रेणी, और सुकृतसंकीर्तन में क्षेमराज के उत्तराधिकारी का नाम चामुंडराज लिखा है, परन्तु प्रबन्धचिन्तामणि की किसी किसी हस्तलिखित प्रति में, तथा रत्नमाला, कुमारपालप्रबन्ध, और प्रवचनपरीक्षा में उस का नाम भूयड लिखा है, अतएव ये दोनों नाम एकही राजा के होने चाहियें. इस राजा ने वि०सं० ६४४ (ई०स० ८८७) से ६७१ (ई०स० ६१४) तक राज्य किया.

७ आकड़ (नं० ६ का उत्तराधिकारी)—आकड़ के स्थानपर आहड, राहड, घाघड, और रत्नादित्य नाम लिखा मिलता है. इस ने वि० सं० ६७१ (ई० स० ६१४) से ६६८ (ई०स० ६४२) तक शासन किया.

८ सामन्तसिंह (नं०७ का पुत्र)–सामन्तसिंह के स्थान पर भूभट, भूयड,

१६४—वनराज के वंशजों, अर्थात् चावड़ों ने अणहिलवाड़े पर १८४ वर्ष नहीं किन्तु वि० सं० ८२१ (ई० स० ७६४) से १०१७ (ई० स० ९६०) तक अर्थात् १९६ वर्ष राज किया था.

१६५—भोजराज—टॉड साहिब अणहिलवाड़ा के अन्तिम चावड़ा राजा का नाम भोजराज लिखते हैं, परन्तु यह नाम चावड़ों के इतिहास लिखनेवाले किसी संस्कृत ग्रन्थकार ने नहीं लिखा. सुकृत संकीर्तन में उस का नाम भूभट; विचारश्रेणी में भूयड़; प्रबन्धचिन्तामणि की हस्तलिखित पुस्तकों में कहीं भूयगड़, और कहीं सामन्त सिंह; और रत्नमाला, कुमारपाल प्रबन्ध (जिनमंडनोपाध्याय रचित), तथा प्रबन्धपरीक्षा में सामन्त सिंह लिखा मिलता है. टॉड साहिब को भोजराज नाम कहां से मिला, इस का कुछ पता नहीं चलता. शायद उन्हों ने भूयगड़ (भूयड) को ही भोजराज लिख दिया हो तो आश्चर्य नहीं.

१६६—चतन्सी चावड़े का चित्तौड़ की रक्षा के लिये सेना सहित आने की कथा कपोलकल्पित ही है.

१६७—दाबशिलिम—कईएक पिछले फारसी तवारीख़ लिखनेवालों ने सुल्तान महमूद ग़ज़नवी की सोमनाथ की चढ़ाई के प्रसंग में लिखा है, कि 'सुल्तान ने सोमनाथ से लौटते समय वहां का राज्य दाबशिलिम को दिया'. कितनी एक तवारीख़ों में दाबशिलिम के हाल में ऐसा गड़बड़ कर दिया है कि उन के लेख में तीन दाबशिलिमों का होना पाया जाता है. इब्नअसीर ने, जो महमूद की सोमनाथ की चढ़ाई का वृत्तान्त लिखनेवालों में सब से पहिला पुरुष था, दाबशिलिम का उल्लेख ही नहीं किया, और न सुल्तान महमूद ग़ज़नवी ने गुजरात पर भीमदेव की जगह किसी दूसरे राजा को स्थापन किया हो ऐसा पाया जाता है; क्योंकि सुल्तान के लौटते ही सोलंकी भीमदेव ने गुजरात पर पीछा कब्ज़ा कर लिया था. हमारी राय में दाबशिलिम की सारी कथा ही पिछले लेखकों ने कल्पित धर दी है. इस नाम का जोड़ तोड़ मिलाने के लिये अनेक विद्वानों ने भिन्न भिन्न कल्पनाएं की हैं. जैसे टॉड साहिब उक्त शब्द का दाबी और चावड़ा के समास से बनना मानते हैं;

इसी तरह कोई उस को देवशील, और दुर्लभराज का विगड़ा हुआ रूप अनुमान करते हैं, परन्तु उन में से एक को भी हम स्वी नहीं कर सकते. अल्बत्तह दुर्लभराज नाम दाबशिलिम से कुछ कुछ मिलता है, परन्तु वह भी दाबशिलिम नहीं हो सकता, क्योंकि वह तो भीमदेव को राज्य दे कर विरक्त हो चुका था; और सुल्तान की सोमनाथ पर की चढ़ाई के समय शायद ही जीवित हो.

१६८-मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह का विवाह महीकांठा इलाके (गुजरात में) में वरसोड़ा के चावड़ा ठाकुर जगतसिंह की लड़की से हुआ-जिस से महाराणा जवानसिंह का जन्म हुआ था. महाराणा जवानसिंह के समय में जगतसिंह के दो लड़के कुबेरसिंह, और ज़ालिमसिंह उदयपुर आये, जिन को उक्त महाराणा ने आज्यां गांव जागीर में दिया.

१६९-चावड़ा वंश-इस वंश का नाम गुजरात की ऐतिहासिक पुस्तकों में, जो वि० सं० की बारहवीं शताब्दी के पीछे की बनी हुई हैं, चापोत्कट लिखा मिलता है, जिस का अर्थ प्रबल धनुर्धर है; परन्तु लाट देश के सोलंकी पुलकेशी (अवनिजनाश्रय) के ताम्रपत्र में, जो कलचुरी सं० ४९० (वि० सं० ७९६=ई० स० ७३९) का है, चावोटक नाम लिखा है, जो चापोत्कट से मिलता हुआ है. इन दोनों में 'चाप' शब्द मुख्य है. वि० सं० ६८५ (ई० स० ६२८) में ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मसिद्धान्त लिखा. उस समय चापवंशी व्याघ्रमुख नाम का राजा भीनमाल (मारवाड़ में) में राज्य करता था; और वि० सं० ९७१ (ई० स० ९१४) में कन्नौज के पड़िहार राजा महीपाल का चापवंशी सामन्त धरणीवराह काठियावाड़ के एक विभाग का स्वामी था, ऐसा उसी के ताम्रपत्र से पाया जाता है. इसी से कई एक विद्वानों का यह अनुमान है कि चाप, और चापोत्कट (चावड़ा), ये दोनों नाम एक ही वंश के हों, जो अयुक्त नहीं है. प्रबन्धचिन्तामणि, सुकृतसंकीर्तन, और विचारश्रेणी आदि पुस्तकों में चावड़ों का इतिहास मिलता है, परन्तु उन में उन के वंश की उत्पत्ति का कुछ भी परिचय नहीं दिया. टॉड साहिब उन का सीथि-

यन, अर्थात् शक होना अनुमान करते हैं, और आधुनिक शोधकों में से कितने एक उन का गुर्जर,(गूजर) होना मानते हैं, परन्तु चावड़े अपने तई परमारों की एक शाखा बतलाते हैं (देखो ऊपर लिखा टिप्पण नं० १५१). उपर्युक्त चापवंशी धरणीवराह के ताम्रपत्र में उक्त वंश की उत्पत्ति के विषय में लिखा है कि "पृथ्वी ने शंकर से प्रणाम कर निवेदन किया कि हे प्रभो! आप, जब ध्यान में निमग्न होते हैं, उस समय असुर मुझ को दुःख देते हैं, जो मुझ से सहन नहीं हो सकता. इस पर शंकर ने अपने चाप (धनुष) से पृथ्वी की रक्षा करने योग्य एक पुरुष उत्पन्न किया, जो 'चाप' कहलाया, और उस का वंश उसी नाम से प्रसिद्ध हुआ." इस कथा से हम यही अनुमान करते हैं, कि चावड़ों के मूलपुरुष का नाम चाप (चापा) हो, और उसी के नाम से उस वंश का नाम चावड़ा पड़ा हो. गुजरात के चावड़ों की वंशावली नीचे लिखे अनुसार मिलती है :—

१ वनराज—यह पंचासर के चावड़ा राजा जयशिखरी का पुत्र था. कन्नौज राज्य के अन्तर्गत कल्याण कटक के राजा भूवड (?) ने जयशिखरी पर चढ़ाई कर उस को मारा, उस समय उस की गर्भवती राणी रूपसुन्दरी वन में चली गई, जहां पर वनराज का जन्म हुआ; वहां से शीलगुणसूरि नामक जैन साधु इस (वनराज) को अपने यहां ले आये, और वीरमती नाम की आर्या ने इस का पालन पोषण किया, ऐसा जैनग्रन्थकारों ने लिखा है. इस ने अणहिलनामक एक चरवाहे के नाम पर, जिस ने इस को नगर बसाने योग्य स्थान बतलाया, जहां पर कि खरगोश ने कुत्ते को भगाया था (यह केवल ख्याति मात्र है), अणहिलपुर नगर बसाया, और वहां पर वि० सं० ८२१ (ई० स० ७६४) से ८८२ (ई० स० ८२५) तक राज्य किया. यह राजा स्वतंत्र नहीं, किन्तु कन्नौज के राजा का सामन्त होना चाहिये.

२ योगराज (नं० १ का पुत्र)—यह युद्धविद्या में निपुण, तथा विद्वान था. इस के तीन पुत्र रत्नादित्य, वैरिसिंह, और क्षेमराज थे,

जिन्हों ने, पवन के मारे सोमनाथ के पास आ ठहरी हुई किसी अन्य देश के राजा की नावों को लूट कर बहुत सा क़ीमती माल अपने पिता के सामने ला रक्खा, जिस पर इस (योगराज) ने खेद के साथ कहा कि 'जब अन्य देश के राजा दूसरे सब राजाओं की प्रशंसा करते हैं, उस समय गुजरात के राजाओं (चावड़ों) को चोर कह कर उन का उपहास करते हैं. यह हाल सुनकर अपने पूर्वजों के लिये खेद होता है. उन के इस कलंक को मिटा कर मैंने राजाओं की पंक्ति में अपनी गणना कराई थी; परन्तु तुम ने थोड़े से द्रव्य के लालच में आकर अपने पूर्वजों के उस कलंक को फिर ताज़ा कर दिया.' योगराज ने वि० सं० ८८२ (ई०स० ८२५) से ८९१ (ई०स० ८३४) तक राज्य किया.

३ रत्नादित्य (नं० २ का पुत्र)—इस ने वि०सं० ८९१ (ई०स० ८३४) से ८९४ (ई०स० ८३७)—तक राज्य किया.

४ वैरिसिंह (नं० ३ का भाई)—इस ने वि०सं० ८९४ (ई०स० ८३७) से ९०५ (ई०स० ८४८)—तक राज्यशासन किया.

५ क्षेमराज (नं० ४ का भाई)—इस ने वि०सं० ९०५ (ई०स० ८४८) से ९४४ (ई०स० ८८७)—तक राज्य किया.

६ चामुंडराज (नं०५ का पुत्र)—विचारश्रेणी, और सुकृतसंकीर्तन में क्षेमराज के उत्तराधिकारी का नाम चामुंडाराज लिखा है, परन्तु प्रबन्धचिन्तामणि की किसी किसी हस्तलिखित प्रति में, तथा रत्नमाला, कुमारपालप्रबन्ध, और प्रवचनपरीक्षा में उसका नाम भूयड लिखा है, अतएव ये दोनों नाम एकही राजा के होने चाहियें. इस राजा ने वि०सं० ९४४ (ई०स० ८८७) से ९७१ (ई०स० ९१४) तक राज्य किया.

७ आकड़ (नं० ६ का उत्तराधिकारी)—आकड़ के स्थानपर आहड, राहड, घायड, और रत्नादित्य नाम लिखा मिलता है. इस ने वि० सं० ९७१ (ई० स० ९१४) से ९९८ (ई०स० ९४२) तक शासन किया.

८ सामन्तसिंह (नं०७ का पुत्र)—सामन्तसिंह के स्थान पर भूभट, भूयड,

और भूयगड़ नाम भी मिलते हैं, अतएव संभव है, कि सामन्तसिंह का दूसरा नाम या खिताब भूअड़ (भूभट) हो. वि०सं० १०१७ (ई० स० ९६०) में इस राजा को मार कर सोलंकी राजा मूलराज ने इस का राज्य छीन लिया, जो इस का भानजा था, ऐसा जैन-ग्रन्थकारों के लेख से पाया जाता है.

---

(२) काठियावाड़ के चापवंशी (चावड़े).

हड्डालागांव (पूर्वी काठियावाड़ में) से चापवंशी धरणीवराह का एक ताम्रपत्र श०सं० ८३६ (वि०सं० ९७१ =ई०स० ९१४) पौष शुक्ल ४ का मिला है, जिस में वहां के चापवंशियों की वंशावली नीचे लिखे अनुसार दी है:—

१ विक्रमार्क.

२ अड्डक (नं० १ का पुत्र).

३ पुलकेशी (नं० २ का पुत्र).

४ ध्रुवभट (नं० ३ का पुत्र).

५ धरणीवराह (नं० ४ का छोटा भाई)—यह कन्नौज के पड़िहार राजा महीपाल का सामन्त था, और वढवाण में रहता था. इस को सोरठ के सोलंकी अवनिवर्मा (दूसरे) ने वि०स० ९५६ (ई० स०८९९) के पूर्व परास्त किया था. धरणीवराह के अन्तिम समय, अथवा उस से थोड़े ही वर्ष पीछे चावड़ों का राज्य सोलंकियों ने छीन लिया.

श० सं० ५५० (वि० सं० ६८५ =ई० स० ६२८) में भीनमाल (मारवाड़ में) के ब्रह्मगुप्त ज्योतिषी ने ब्रह्मसिद्धान्त रचा, उस समय वहां का राजा चापवंशी व्याघ्रमुख था. उक्त संवत् से ३ वर्ष पूर्व, अर्थात् वि० सं० ६८२ (ई० स० ६२५) में वहां पर वर्मलात नामक राजा था, जिस का सर्वाधिकारी (प्रधानमंत्री) सुप्रभदेव था, (जिस के पौत्र प्रसिद्ध माघ कवि ने शिशुपालवध काव्य लिखा था). यह वर्मलात भी चाप (चावड़ा) वंशी हो,

ऐसा संभव है. इन के सिवाय भीनमाल के चावड़ों के नाम अब तक ज्ञात नहीं हुए.

इस समय महीकांठा इलाके (गुजरात) में माणसा, और वरसोड़ा; रेवाकांठा इलाके (गुजरात) में भीलोड़िया, और रामपुर; काठियावाड़ में आकड़िया; और मेवाड़ में आर्ज्या, और कलड़वास चावड़ों के ठिकाने हैं.

१७०—सत्यधर्म = मुसल्मानों का धर्म.

१७१—तौनक के पिता तुर्क को ही पुराणों में तुरुष्क लिखा हो ऐसा मानने के लिये कोई कारण नहीं है. पुराणों में तुरुष्क शब्द का प्रयोग कुशनवंशी राजाओं के लिये हुआ हो तो क्या असंभव है, जिन में कनिष्क बड़ा ही प्रतापी राजा हुआ.

१७२—कर्ज़ेम (चौरस्मिया)—तुर्किस्तान का प्राचीन राज्य.

१७३—पैरिटेकी–टॉड साहिब पैरिटेकी का अर्थ 'पहाड़ी टांक लोग' करते हैं, परन्तु उन का यह कथन स्वी करने के लिये कोई प्रमाण नहीं मिलता. सिकन्दर का इतिहास लिखनेवालों ने यह नाम एक देश के नाम से वहां के निवासियों के लिये लिखा है (जो प्रदेश वाक्ट्रिया से पूर्व में था). यह नाम 'पर्वतक' शब्द से मिलता हुआ है. उस से टांक शब्द का बोध होना स्पष्ट रूप से पाया नहीं जाता.

१७४—टैक्साइल–इस शब्द का अर्थ टॉडसाहिब 'टांक लोगों का सर्दार' करते हैं जो सर्वथा स्वीकार करने के योग्य नहीं है. यूनानी इतिहास लेखकों ने यह नाम प्रसिद्ध तक्षशिला नगर के सम्बन्ध में लिखा है, जहां का राजा सिकन्दर का सहायक हो गया था. बौद्ध लेखक तक्षशिला को तक्षशिरा का पर्याय मानते हैं. उक्त नाम की उत्पत्ति इस तरह बतलाते हैं कि बुद्धदेव ने एक समय वहां पर एक भूखे सिंह को अपना मस्तक काट कर दिया था. (तक्ष = काटना, शिर = सिर) जिस से उक्त स्थान का नाम तक्षशिरा पड़ा. 'र' के स्थान में 'ल' लिखने का प्रचार होने (रलयोर्डलयोश्चैव) के कारण उस का रूपान्तर तक्षशिला हो गया. बौद्धों का कथन कहां तक सत्य है, इस का निर्णय करना हम अपने पाठकों

पर ही छोड़ देते हैं, परन्तु तक्षशिला शब्द का अर्थ 'टांक लोगों का सर्दार' स्वी करने के लिये कोई कारण नहीं है.

१७५—एरियन–सिकन्दर का इतिहास लिखनेवालों में से एक था, जो ई० सन् की दूसरी शताब्दी में हुआ था. उस का लिखा हुआ उक्त बादशाह का इतिहास सर्वोत्तम माना जाता है. उस ने मेगेस्थिनीज़, और निआर्कस की पुस्तकों के आधार पर अपनी पुस्तक तय्यार की थी.

१७६—ओम्फिस–सिकन्दर का इतिहास लिखनेवाले तक्षशिला के राजा का नाम ओम्फिस लिखते हैं, परन्तु डायोडोरस ने उस का नाम मोफिस लिखा है, जो शायद भूल से लिखागया हो. ओम्फिस किस नाम का बिगाड़ है यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता, परन्तु वह 'आंभी' से मिलता हुआ है.

१७७–अटक–टॉडसाहिब 'अटक' नाम में भी टांकों का सम्बन्ध अनुमान करते है, परन्तु हम उन का अनुमान स्वी नहीं कर सकते. 'टक' अन्तवाले नाम अनेक मिल सकते हैं.

१७८— शालिवाहन ने विक्रम पर विजय पाई ऐसा मानने के लिये कोई कारण नहीं है. दशवीं शताब्दी के पीछे के जैन लेखकों ने यह बात लिखी है, परन्तु उस में भी सत्यता हो ऐसा नहीं पाया जाता; क्योंकि विक्रम, और शालिवाहन का समकालीन होना स्वी करने के लिये कोई प्रमाण नहीं है. शालिवाहन (जिस को लोग शक संवत् का प्रचार करने वाला मानते हैं) तक्षक था, ऐसा भी कहीं लिखा हुआ नहीं मिलता. शालिवाहन के पर्याय सातवाहन, सालाहण, हाल, और साल हैं. सातवाहन वंश के राजाओं को पुराणों में आंध्रभृत्यवंशी लिखा है, तक्षकवंशी नहीं लिखा.

१७९—इज़ाकील–इस के लिये देखो प्रकरण छठे पर हमारा टिप्पण नं० ३५.

१८०—डायोडोरस–इस के लिये देखो प्रकरण छठे पर हमारा टिप्पण नं० ३६.

१८१—बौद्धधर्म—टॉडसाहिब ने जैन और बौद्धधर्मों का एक होना मान लिया है, जो उन का भ्रम है. यहां पर बौद्धधर्म से उन का अभिप्राय शायद जैनों से होगा. वल्लभीपुर, मन्दोदरी (मंडोवर), और अणहिलवाड़ा के राजा जैन नहीं थे, जैसा कि उक्त साहिब का अनुमान है. वल्लभीपुर के राजा शैव थे. अणहिलवाड़ा के सोलंकी राजाओं में से केवल एक कुमारपाल ही जैन हुआ, और मंडोवर के पड़िहार पृथक् पृथक् देवताओं के उपासक थे. (देखो ऊपर दिया हुआ पड़िहारों का हाल).

१८२—चित्तौड़ के क़िले की रक्षा के लिये आसेरगढ़ के टांक के लोगों के आने की कथा भी कपोलकल्पित ही होगी; क्योंकि यह बात खुमाणरासा में लिखी है, जो प्राचीन इतिहास के लिये सर्वथा निरर्थक है, और न वह प्राचीनकाल का बना हुआ है.

१८३—सेस—मिराति सिकन्दरी में गुजरात के पहिले सुल्तान मुज़फ्फ़र के पूर्व पुरखों की नामावली में उन के मूल पुरुष का नाम सेस नहीं, किन्तु सहस्रु दिया है, जिस का शेषनाग से कोई सम्बन्ध नहीं पाया जाता. सुल्तान मुज़फ्फ़र का देहान्त ई० स० १४१० (वि० सं० १४६७) में हुआ, और सहस्रु उस का तेईसवां पूर्व पुरुष था, अतएव सहस्रु का ईसवी सन् की दसवीं शताब्दी के आस पास होना अनुमान किया जा सकता है.

१८४—मिराति सिकन्दरी में टांक नाम की उत्पत्ति के विषय में यह बयान है कि "हिन्दुओं के इतिहास में लिखा है कि टांक, और खत्री (क्षत्री) दोनों भाई थे, जिन में से एक ने मद्य का व्यवहार किया, जिस से क्षत्रियों ने उस को जाति से निकाल दिया. हिन्दुस्तान की भाषा में जाति से निकाले हुए को भी टाँकि कहते हैं. उस समय के पीछे टांक और खत्रियों (क्षत्रियों) का आचार व्यवहार अलग अलग हो गया." इस कथन से हम सहमत नहीं हो सकते.

१८५—तक्षक, टाक, वा नागवंश—टाक, या टांक तक्षकवंश का अपभ्रंश होना सम्भव है, और 'तक्षक' नाग शब्द का पर्याय होने

से नाग, तक्षक, और टाक, ये तीनों एक ही वंश के नाम अनुमान किये जा सकते हैं. नागवंशी राजाओं का कोई कोई विद्वान सीथियन, या तुर्क होना अनुमान करते हैं, परन्तु ऐसा अनुमान करने के लिये कोई प्राचीन लिखित प्रमाण नहीं मिलता. प्राचीन काल में कुरुक्षेत्र के आस पास तथा हिन्दुस्तान के पृथक पृथक विभागों में नागवंशी राजा राज्य करते थे. महाभारत में नागवंशियों का बहुत कुछ उल्लेख मिलता है. नागवंश की उत्पत्ति नाग (तक्षक) नामक पुरुष के नाम से हुई हो ऐसा अनुमान होता है. विष्णुपुराण में नव नाग राजाओं का पद्मावती (नरवर), कांतिपुरी, और मथुरा में राज्य करना लिखा मिलता है. इसी तरह वायुपुराण में चम्पावतीनगरी में नव, और मथुरा में सात नाग राजाओं का राज्य करना लिखा है. बौद्धपुस्तकों में नागों की अलौकिक शक्तियों का वर्णन मिलता है, जो उन के प्रताप का ही सूचक होना प्रतीत होता है. प्राचीनकाल के नाग राजाओं की शृंखलाबद्ध वंशावलियां नहीं मिलतीं, परन्तु महाभारत तथा पुराण आदि में तक्षक, वासुकी, कर्कोटक, मणिनाग, नील, शंखपाल आदि नाम मिलते हैं. कश्मीर में कर्कोटक (नाग) वंश के राजाओं ने ई० सन् की सातवीं शताब्दी से नवीं शताब्दी तक राज्य किया था, जिन की वंशावली कल्हण पंडित ने राजतरंगिणी में इस प्रकार दी हैः—

१ दुर्लभवर्द्धन (प्रज्ञादित्य).

२ दुर्लभक (नं० १ का पुत्र)—इस को प्रतापादित्य भी कहते थे.

३ चन्द्रापीड (नं० २ का पुत्र)—इस को वज्रादित्य भी कहते थे. इस राजा ने ई० स० ७२० (वि० सं० ७७७) के करीब चीन के बादशाह 'हॅनसुग्यन संग' के पास अपना राजदूत भेजा था, ऐसा चीनी ग्रन्थकारों का लिखना है.

४ तारापीड (नं० ३ का छोटा भाई)—इस का दूसरा नाम या खिताब उदयादित्य मिलता है.

५ मुक्तापीड (नं० ४ का छोटा भाई)—इस को ललितादित्य भी कहते थे.

६ कुवलयापीड (नं० ५ का पुत्र).

७ वज्रापीड—(नं० ६ का छोटा भाई)—इस के दूसरे नाम या ख़िताब बप्पियक, और ललितादित्य भी मिलते हैं.

८ पृथिव्यापीड (नं० ७ का पुत्र).

९ संग्रामपीड (नं० ८ का छोटा भाई).

१० जयापीड (नं० ९ का छोटा भाई)—इस का दूसरा नाम विनयादित्य मिलता है. इस के राजधानी से दूर कहीं जाने के कारण इस का साला जज्ज कश्मीर के राज्य को अपने अधिकार में कर बैठा था, परन्तु तीन वर्ष के बाद जयापीड उस को मार कर पुनः अपने राज्य का मालिक बन गया.

११ ललितादित्य (नं० १० का पुत्र).

१२ संग्रामपीड दूसरा (नं० ११ का छोटा भाई)—इस को पृथिव्यापीड भी कहते थे.

१३ चिप्पटजयापीड (नं० १२ का पुत्र, जो वेश्या से उत्पन्न हुआ था)—इस को बृहस्पति भी कहते थे.

१४ अजितापीड (नं० ८ के ज्येष्ठ पुत्र त्रिभुवनापीड का बेटा).

१५ अनंगापीड (नं० १२ का पुत्र).

१६ उत्पलापीड (नं० १३ का पुत्र)—वि० सं० ९१२ (ई० स० ८५५) के करीब कश्मीर के नाग (कर्कोटक) वंश की समाप्ति हुई, और उत्पल का पौत्र तथा सुखवर्मा का पुत्र अवनिवर्मा, जो दूसरे वंश का था, शूर नामक मंत्री की सहायता से उत्पलापीड को निकाल कर कश्मीर की गद्दी पर बैठ गया. इन नागवंशी राजाओं का सविस्तर वृत्तान्त कल्हण पंडित ने राजतरंगिणी नामक पुस्तक की चौथी तरंग में दिया है. इन में से बहुतों के सोने या तांबे के सिक्के भी मिले हैं.

शेरगढ (राजपुताना में कोटा राज्य के अन्तर्गत) से एक शिलालेख वि० सं० ८४७ (ई० स० ७९१) का मिला है, जिस में नागान्त नाम वाले (नागवंशी) सामन्तों के नाम इस तरह मिलते हैं:—

१ विंदुनाग.
२ पद्मनाग (नं० १ का पुत्र).
३ सर्वनाग (नं० २ का पुत्र)—इस की राणी का नाम 'श्री' (श्री-देवी) था.
४ देवदत्त (नं० ३ का पुत्र)—यह विक्रम संवत् ८४७ (ई० स० ७६१) में विद्यमान था. उक्त संवत् में इस ने कोशवर्द्धन पर्वत के पूर्व में एक बौद्ध मन्दिर, और मठ बनवाया था. इस से अनुमान होता है, कि यह नागवंशी बौद्धधर्मावलंबी था. ये स्वतंत्र राजा नहीं थे, क्योंकि देवदत्त को सामन्त लिखा है, अतएव संभव है, कि ये कन्नौज के पडिहारों के सामन्त होंगे.

नरवर (पद्मावती, सेंट्रल इंडिया में) से कई तांबे के सिक्के नाग-वंशियों के मिले हैं, जिन पर भीमनाग,- स्कन्दनाग, बृहस्पतिनाग, गणपति नाग, देवनाग और व्याघ्र (नाग) नाम होना जेनरल कनिंघम प्रगट करते हैं. उन के संग्रह में नरवर से मिले हुए और भी सिक्के नाग-वंशियों के हैं, जिन पर अन्य राजाओं के नाम होना वे अनुमान करते हैं, परन्तु सिक्के छोटे होने से नाम ठीक ठीक पढ़े नहीं जाते. इन राजाओं का क्रम नियत करने के लिये कोई साधन नहीं है; परन्तु उक्त सिक्कों के फ़ोटो से उन पर के लेखों की लिपि गुप्तों के समय के आस पास की प्रतीत होती है. इलाहाबाद के ज़िले में खड़ी की हुई अशोक की लाट पर खुदे हुए गुप्त वंश के प्रतापी राजा समुद्रगुप्त के लेख से पाया जाता है कि उस (समुद्रगुप्त) ने आर्यावर्त्त के अनेक राजाओं को विजय किया, जिन में से एक गणपतिनाग भी था. संभव है कि यह गणपतिनाग नरवर का गणपतिनाग हो.

नागवंशियों की एक शाखा का नाम उस (शाखा) के मूलपुरुष सिंद के नाम से सिंदवंश पड़ा. उक्त वंशवालों का अधिकार दक्षिण में कई जगह रहा था, जिन में से येलबुर्ग (निज़ाम के राज्य के अन्तर्गत) के सिंदों का वृत्तान्त विशेष उपलब्ध होता है. उन की राजधानी येलबुर्ग थी, और उन के अधीन उस के आस पास के कई इलाक़े थे. सिंदों

के ध्वज का नाम नागध्वज वा फणिपताका था, जिस पर नाग राजा अनंत, वासुकि, और तक्षक के चिन्ह होते थे, और उन का प्रसिद्ध खिताब 'भोगावतीपुरेश्वर' था. येलबुर्ग के सिंदों की वंशावली नीचे लिखे अनुसार मिलती हैः—

१ आचुगि, या आच (सिंदवंश में उत्पन्न हुआ).
२ नाक (नं० १ का छोटा भाई).
३ सिंह, या सिंग (नं० २ का छोटा भाई).
४ दास (नं० ३ का छोटा भाई).
५ देव (नं० ४ का भाई)—इस को दाम भी कहते थे.
६ चावंड (नं० ५ का भाई).
७ चाव (नं० ६ का भाई).
८ बम्म (नं० ७ का भाई).
९ सिंग दूसरा (नं० ८ का भाई)—यह पश्चिमी सोलंकी राजा सोमेश्वर (दूसरे) का सामन्त था, और वि० सं० ११३३ (ई० स० १०७६) में विद्यमान था. इस का खिताब महामंडलेश्वर था.
१० आचुगि, या आच, दूसरा (नं० ९ का पुत्र)—यह पश्चिमी सोलंकी राजा विक्रमादित्य (छठे) का सामन्त था. इस ने शिलारावंशी भोज को परास्त किया था. श० सं० १०४४ (वि० सं० ११७९ =ई० स० ११२२) में यह विद्यमान था.
११ पेर्माडि, या पेर्म (नं० १० का पुत्र)—इस ने 'जगदेक मल्ल' खिताब धारण किया था. यह सोलंकी जगदेक मल्ल (दूसरे) का सामन्त था. इस ने कुलशेखर को विजय किया, चट्ट का मस्तक काटा, जयकेशी दूसरे (जो गोवा का कदंब वंशी राजा था) को परास्त किया, और बिट्टिग (होयशल वंशी विष्णुवर्द्धन) को भी पराजित किया था. वि० सं० १२०१ (ई० स० ११४४) में यह विद्यमान था.
१२ चामुंड (नं० ११ का छोटा भाई)—वि० सं० १२२६ (ई० स० ११६९) में यह विद्यमान था, ऐसा एक लेख से पाया जाता है.

१३ आचिदेव, या आच तीसरा (नं० १२ का पुत्र).
१४ पेर्माडि दूसरा (नं० १२ का पुत्र).
१५ बिज्जल (नं १२ का पुत्र).
१६ विक्रम (नं १२ का पुत्र)—वि० सं०१२२६ (ई० स० ११६६) में यह भी विद्यमान था.

उपर्युक्त चारो भाई (नं० १३, १४, १५, १६) अपने पिता की विद्यमानता में अलग अलग ज़िलों पर नियत हो गये हों ऐसा अनुमान होता है.

यमुना के तट पर काष्ठा या काठा नामक नगर में राज्य करनेवाले टांक वंशियों की निम्न लिखित नामावली मदनविनोद निघंटु तथा विश्वेश्वर भट्ट रचित मदनपारिजात नामक पुस्तकों में मिलती है :—

१ रत्नपाल.
२ धरहपाल (नं०१ का पुत्र).
३ हरिश्चन्द्र (नं २ का पुत्र).
४ साधारण (नं ३ का पुत्र).
५ सहजपाल (नं० ४ का पुत्र).
६ मदनपाल (नं० ५ का पुत्र)—इस ने वि० संवत् १४३१ (ई० स० १३७४) में मदनविनोद निघंटु बनाया था.

रामराज रचित रसरत्न प्रदीप नामक पुस्तक में काष्ठा के टांक वंशियों का कुछ परिचय मिलता है वह नीचे लिखे अनुसार है :—

काष्ठा के राजा हरिश्चन्द्र (उपर्युक्त नं० ३) का पुत्र साधारण हुआ, जिस के तीन पुत्र लक्ष्मण सिंह, सहजपाल, और मदन थे. (लक्ष्मण सिंह राज्य पाया हो ऐसा ऊपर के वंशवृक्ष से नहीं पाया जाता. साधारण के पीछे उस का पुत्र सहजपाल, और उस के बाद उस का छोटा भाई मदनपाल राज्य पाया हो ऐसा अनुमान होता है. एक राजा के बाद राज्य पानेवाला दूसरा चाहे पहिले का पुत्र, भाई अथवा अन्य रिश्तेदार हो लोग कभी कभी उस को पहिले का पुत्र ही लिखते हैं. ऐसा ही मदनविनोद निघंटु आदि में हुआ हो ऐसा रसरत्नप्रदीप से

पाया जाता है). मदन के वंश में राजा रत्नपाल हुआ, जिस का पुत्र राजराज था.

१८६—साइरस-ईरान का बादशाह, जो सन् ईसवी से पूर्व छठीं शताब्दी में हुआ था.

१८७-जाट या तक्षक, ये दोनों नाम एक जाति या राजा के लिये किसी शिलालेख में व्यवहृत हुए हों ऐसा नहीं पाया जाता. जिस शिलालेख में इस प्रकार उक्त नामों का प्रयोग होना टॉड साहिब लिखते हैं वह उन से और उन के गुरु से पढ़ाही नहीं गया था, इसी से उन्हों ने अनेक भ्रमपूरित कल्पनाएं की हैं, जिस के लिये देखो प्रकरण छठें पर हमारा टिप्पण नं० ४६ और ४८ .

१८८—जिट कटि डा–इस के लिये देखो प्रकरण छठें पर हमारा टिप्पण नं० ४८ .

१८९—मिल्टन (जॉन मिल्टन = John Milton) इंगलैंड का एक सुप्रसिद्ध कवि, जिस का जन्म ई० स० १६०८ में, और देहान्त ई० स० १६७४ में हुआ था .

१९०—जाट राजा का यदुवंश की कन्या से विवाह होने का वृत्तान्त टॉड साहिब ने जिस शिलालेख के आधार पर लिखा है उस में कहीं इस बात का उल्लेख नहीं है . लेख नहीं पढ़ा जाने से ही यह भूल टॉड साहिब ने की है . देखो प्रकरण छठें पर हमारा टिप्पण नं० ४६ .

१९१—जिस लेख का टॉड साहिब यहां पर उल्लेख करते हैं, वह सन् ईसवी की पांचवीं शताब्दी का नहीं, किन्तु मालव (विक्रम) संवत् ७९५ (ई० स०७३८), अर्थात् ई०सन् की आठवीं शताब्दी का है . टॉड साहिब ने उस को भ्रम से पांचवीं शताब्दी का किस प्रकार माना, इस के लिये देखो प्रकरण छठें पर हमारा टिप्पण नं० ४६ .

१९२—सालिन्द्रपुर–इस के लिये देखो प्रकरण छठें पर हमारा टिप्पण नंबर ४६ .

१९३—सालिपुर–इस का सालिन्द्रपुर, सालिवाहनपुर, स्यालकोट,

याँ संगल से कोई संबंध नहीं है . टॉड साहिब ने भ्रम से सालिपुर को पंजाब का एक नगर बतलाने की चेष्टा की है. जिस लेख में सालिपुर (शालिपुर) का उल्लेख है वह प्रसिद्ध चित्तौड़ (मेवाड़ में) के क़िले के समिद्धेश्वर के मंदिर में लगा हुआ गुजरात के सोलंकी राजा कुमारपाल का खुदवाया हुआ वि० सं० १२०७ (ई० स० ११५०) का लेख है, उस से पाया जाता है कि कुमारपाल अजमेर के राजा आना (अर्णोराज) को जीत कर चित्तौड़ को चला (जहाँ पर उस का राज्य था), और अपनी सेना को शालिपुर गाम में (जो चित्तौड़ के क़िले से ४ मील के फ़ासले पर है, और इस समय सालेरा कहलाता है) छोड़ कर चित्तौड़ का क़िला देखने को गया था.

१६४—जाटों का राजस्थान में कब प्रवेश हुआ, यह निश्चित नहीं है, परन्तु इस प्रदेश पर प्राचीन काल में उन का राज्य होने का कोई उल्लेख अब तक मिले हुए शिलालेखादि से पाया नहीं जाता.

१६५—हेंगिस्ट (Hengist) और हौर्सा (Horsa)—इन दोनों भाइयों को वार्टिजर्न (Vortigern) नामी अंग्रेज़ सर्दार ने पिक्ट (Pict) जाति के लोगों से तंग होने पर अपनी सहायता के लिये बुलाया था, जिस के एवज़ इन को कैंट का ज़िला मिला था.

१६६ कैंट (Kent)—इंग्लैंड का एक ज़िला.

१६७—अलारिक (Alaric) यूरोप की गॉथ (Goth) जातियों में से एक का राजा, जिस ने सन् ई० ४१० में रोम (Rome) राज्य पर अपना अधिकार जमाया था.

१६८—थियोडोरिक—उपर्युक्त अलारिक का पुत्र जो अट्टीला की लड़ाई में सन् ४५१ ई० में मारा गया था.

जेन्सेरिक—यह रोमराज्य पर आक्रमण करनेवालों में से एक था इस ने सन् ४५५ ई० में रोम नगर को लूटा था. (संस्कृत में 'रिक' का अर्थ 'राजा' नहीं है जैसा कि टॉड साहिब अनुमान करते हैं.)

१६६—देरावल—यादवों की राजधानियों में से एक.

२००—माता की जाति के नाम से किसी राजपूत जाति का नाम प्रसिद्ध हुआ हो ऐसा उदाहरण नहीं मिलता.

२०१—नफथा—एक प्रकार का द्रवपदार्थ था, जिस का उपयोग प्राचीनकाल में आग लगाने के लिये किया जाता था.

२०२—मॉस्को—रूस की प्राचीन राजधानी.

२०३—गुबरीज़ (गब्र) —अग्निपूजक.

२०४—जदवंशीराजा—प्रसिद्ध रणजीत सिंह.

२०५—बहुत से जाट अपने को अब तक यदुवंशी प्रकट करते हैं, परन्तु उन का राजपूतों के साथ शादी व्यवहार नहीं रहा.

२०६—हूणों ने भारतवर्ष पर ई० सन् की पांचवीं शताब्दी के मध्य में गुप्त वंश के राजा कुमारगुप्त के देहान्त समय चढ़ाई की हो ऐसा पाया जाता है.

२०७—यह लेख बंगाल के पालवंशी राजा विग्रहपाल (प्रथम) के पुत्र नारायणपाल के समय का है, और बदाल नामक स्थान के एक स्तंभ पर खुदा हुआ है. उस में उक्त विग्रहपाल के विषय में यह लिखा है कि 'उस ने उत्कल, हूण, द्रविड़, और गूर्जरों के राजाओं का गर्व गंजन किया था.'

२०८—अंगतसी हूण का मुसल्मानों के हमले के समय चित्तौड़ के प्रसिद्ध क़िले की रक्षा के लिये अपने सैन्य सहित मेवाड़ में आने की कथा विश्वासजन्य नहीं है.

२०९—कॉस्मस (Cosmas Indicopleustes) नामी साधु यात्रि ने सन् ५४७ ई० में अपनी पुस्तक लिखी थी, जिस में उस ने हूणों का कुछ हाल लिखा है.

२१०—बाडोली—मेवाड़ राज्य के भैंसरोड़ इलाके का एक प्रसिद्ध प्राचीन स्थल, जो भैंसरोड़ गढ़ से करीब ४ मील के फासले पर है. यहां के प्राचीन मन्दिर उन की उत्तम कारीगरी के लिये प्रसिद्ध हैं.

२११—हूणवंश—मध्य एशिया में रहनेवाली एक प्राचीन जाति का नाम हूण है. इस जाति के लोग बड़े ही प्रबल हुए, और उन्हों ने

एशिया तथा यूरोप के कई देश विजय कर उन पर अपना अधिकार जमाया था. चीनी ग्रन्थकार उन का नाम 'युन्युन', 'येथिलेटो', या 'येथ'; ग्रीक अर्थात् युनानी इतिहास लेखक 'उभोई' (हूण), 'लुकोई उभोई' (श्वेतहूण), या ' एफथलाइट '; आर्मीनियन लेखक ' हुंक '; और संस्कृत ग्रन्थकार 'हूण', 'हून', 'श्वेतहूण', या 'सितहूण' लिखते हैं. संस्कृत ग्रन्थकार उन की गणना आचारभ्रष्ट लोगों अर्थात् म्लेच्छों में करते हैं, परन्तु उन का विवाह संबन्ध राजपूतों के साथ होने के उदाहरण प्राचीन शिलालेखादि से मिल आते हैं.

सन् ४२० ई० के आसपास मध्य एशिया में ऑक्सस नदी के निकट रहनेवाले हूणों ने ईरान के ससानियन वंशी बादशाहों से लड़ना शुरू किया और यज्दजुर्द दूसरे (ई० सन् ४३८–४५७) तथा फीरोज़ (ई० सन् ४५७–४८४) को परास्त कर उन का कितनाक मुल्क आधीन किया. फिर हिन्दुस्तान के सीमान्त प्रदेश अपने आधीन कर क्रमशः आगे बढ़ना शुरू किया. चीनी यात्री संगयु, जो सन् ई० ५२० के क़रीब गंधार देश में आया था, लिखता है कि, "यहां का राजा येथेलेटो (हूण) है. वह बड़ा लड़ाकू है, और उस की सेना में ७०० हाथी रहते हैं. हूण लोगों ने गांधार देश विजय कर लेलिह को अपना राजा बनाया था. वर्त्तमान राजा उस से तीसरा है." सन् ५२० ई० में गांधार देश का राजा मिहिरकुल था, अतएव लेलिह उस का दादा होना चाहिये.

कुमारगुप्त के अन्तिम समय हूणों की चढ़ाई गुप्तों के महाराज्य पर हुई, और उस (कुमारगुप्त) के पुत्र स्कन्दगुप्त ने सन् ४५४ ई० के पूर्व उन (हूणों) पर विजय पाई. हूणों का यह हमला लेलिह के समय होना चाहिये. स्कन्दगुप्त के देहान्त के बाद तोरमाण ने, जो लेलिह का पुत्र या उत्तराधिकारी होना चाहिये, भानुगुप्त को परास्त कर गुप्त संवत् १९१ (वि० संवत् ५६७ = ई०सन् ५१०) में मालवा आदि देशों पर अपना अधिकार जमा लिया. तोरमाण हूणों में प्रतापी राजा हुआ. उस के आधीन गांधार, पंजाब, काश्मीर, मालवा, राजपूताना, तथा संयुक्त प्रदेश का बड़ा हिस्सा होना चाहिये. मालवा विजय करने के

थोड़े ही समय पीछे तोरमाण का देहान्त हो गया, और उस का पुत्र मिहिरकुल उस के राज्य का स्वामी बना. चीनी यात्री हुएन्संग के सफ़र नामे, तथा कल्हण कृत राजतरंगिणी, और कुछ शिलालेखों में उस (मिहिरकुल) का वृत्तान्त मिलता है, जिस से पाया जाता है कि उस की राजधानी शाकल नगर थी. वह बड़ा वीर राजा था, और उस ने सिन्ध आदि अनेक देश विजय किये थे. उस की रुचि पहिले बौद्ध धर्म पर थी, परन्तु पीछे से बौद्धों से नाराज़ हो कर उन के उपदेशकों को सर्वत्र मारने, तथा बौद्ध धर्म को निर्मूल करने की उस ने आज्ञा दी. उस ने गांधार देश में बौद्धों के १६०० स्तूप तथा मठ तुड़वाये, और कई लाख मनुष्यों को मरवा डाला. उस में दया का लेश भी नहीं था. मालवा के राजा यशोधर्म, और मगध के गुप्तवंशी राजा बालादित्य (नरसिंहगुप्त) ने उस को वि० संवत् ५८६ (-ई० स० ५३२) के करीब पराजित किया, उस समय से मिहिरकुल के अधिकार में से मध्य हिन्दुस्तान के मालवा आदि देश निकल चुके थे, परन्तु काश्मीर, गांधार आदि की तरफ़ उस का अधिकार अधिक समय तक रहना संभव है. यशोधर्म से हारने बाद भी हूण लोग अपना अधिकार जमाने के लिये लड़ते रहे हों ऐसा पिछले राजाओं के साथ की उन की लड़ाइयों से पाया जाता है. थाणेश्वर के बैसवंशी राजा प्रभाकर वर्धन, राज्यवर्धन, और हर्षवर्द्धन हूणों से लड़े थे. इसी तरह हैहय (कलचुरी) वंशी राजा कर्ण, परमार वंशी राजा सिंधुराज, और राठौड़ कक्कल (कर्कराज दूसरा) आदि का भी हूणों से लड़ना उन के लेख आदि से पाया जाता है. अब हूणों का कोई राज्य नहीं रहा और यह कौम नष्ट सी हो चुकी है.

हूणों ने ई० सन् की पांचवीं शताब्दी में ईरान का ख़ज़ाना लूटा और वहां की दौलत हिन्दुस्तान में ले आये, जिस से ईरान के ससानियन शैली के सिक्कों का (जो कन्दार रुपये के बराबर किन्तु बहुत पतले होते थे, और जिन के एक तरफ़ राजा का चेहरा लेख सहित और दूसरी तरफ़ जलती हुई अग्नि का ऊंचा कुंड जिस के दोनों ओर

एक एक पुरुष खड़ा हुआ होता था) हिन्दुस्तान में प्रवेश हुआ, और हूणों ने भी उसी से मिलती हुई शैली के सिक्के यहां पर चलाये. हूणों का राज्य नष्ट होने बाद भी गुजरात, मालवा, राजपूताना आदि देशों में ई० सन् की ११ वीं शताब्दी के आसपास उसी शैली के (विना लेख के) सिक्के बनते और चलते रहे. परन्तु क्रमशः उन का आकार घटने के साथ कारीगरी में यहां तक भद्दापन आ गया, कि उन-पर के राजा के चेहरे का पहचानना दुस्तर हो गया, जिस से लोगों ने राजा के चेहरे को गधे का खुर ठहरा दिया, और वे सिक्के 'गदैये' या 'गधिया' नाम से प्रसिद्ध हो गये, परन्तु उन का गधे से कोई संबन्ध नहीं है.

२१२–सिकन्दर बादशाह सन् ई० से पूर्व ३२६ में पंजाब की चढ़ाई के समय वहां के काठियों से लड़ा था.

२१३—काठी लोग इस समय विशेष कर काठियावाड़ में आबाद हैं, और वहीं उन के राज्य हैं. उन में मुख्य तीन कौमें हैं,—खुमाण, खाचर, और वाला, जिन में से वाला अपनी उत्पत्ति राजपूत पिता और काठी जाति की माता से होना बतलाते हैं. राजपूतों का काठियों के साथ विवाह आदि संबन्ध नहीं होता.

२१४—बप्पा–मेवाड़ के गुहिलोतों (सीसोदियों) के प्रसिद्ध पूर्वज बप्पा या बापा रावल का बल्लों (वालों) से कोई संबन्ध नहीं है. वाल या बल्ला जाति के राजपूत भी हैं, और काठी भी हैं. इसी से कईएक विद्वानों का यह अनुमान है, कि वाल (बल्ला) राजपूत, और वाल काठी एक ही जाति के होने चाहियें; परन्तु वाल राजपूत, वालकाठियों से बहुत पूर्व अर्थात् गुप्तों के महाराज्य के नष्ट होने के समय आये थे, जिस से वे राजपूतों में मिल गये, परन्तु वाल (बल्ला) काठी (जो काठियों में अग्रणी माने जाते थे) बहुत पीछे आये, जिस से वे राज-पूतों में शामिल होने नहीं पाये.

२१५—बल्लाराय की उपाधि टॉडसाहिब की कल्पना मात्र है; कहीं इस का लिखित प्रमाण नहीं मिलता. वल्लभीपुर (काठियावाड़ में) के

दक्षिण के वलक्षेत्र के नाम से ही वल्लभी के आसपास के प्रदेश पर राज्य करनेवाले कुल राजाओं की यह उपाधि होना टॉड साहिब ने अनुमान कर लिया है.

२१६—हिन्दूमात्र सूर्य्य के उपासक हैं. सूर्य्य की उपासना के कारण मेवाड़ के गुहिलोतों को सीथियन होना मान लेना भ्रम है.

२१७—वालिकपुत्र—यह नाम भी टॉडसाहिब की कल्पना मात्र है.

२१८—सेहल इस का शुद्ध नाम पुराणों में शल मिलता है. शल ने आरोर बसाया, अथवा किसी अन्य ने यह निश्चित नहीं है.

२१९—समस्त काठी तो वल्ला (वाल) लोगों से निकलने का दावा नहीं करते, परन्तु कुछ करते हैं.

२२०—काठियावाड़ के काठीवालों (वल्लों) को सन्मान की दृष्टि से देखते आये हैं.

२२१—टॉडसाहिब लिखते हैं कि झाला जाति न तो सूर्य्यवंश में, न चन्द्रवंश में और न अग्निवंश में गिनी जाती है; परन्तु सन् ई० की १५ वीं शताब्दी में गांधार कवि ने मंडलीक काव्य बनाया, उस के छठें सर्ग में झालों का चन्द्रवंशी होना लिखा है.

२२२—मेवाड़ के राणा प्रताप (प्रताप सिंह) पर अकबर की चढ़ाई हुई उस समय नहीं, किन्तु राणा सांगा बाबर बादशाह से बयाना के पास की लड़ाई में घायल हुआ उस समय, झाला सर्दार अज्जा उक्त राणा (सांगा) का आसन ग्रहण कर युद्धनायक बना था, उसी की यादगार में उस को मेवाड़ में बड़ी इज़्ज़त मिली थी.

२२३—झालों के आधीन इस समय ध्रांगद्रा, लींमड़ी, वढ़वान, वांकानेर आदि काठियावाड़ के राज्य, और राजपूताना में झालावाड़ का राज्य, तथा मेवाड़ में सादड़ी, देलवाड़ा, गोगूंदा वगैरा ठिकाने, तथा कोटा राज्य में कोनाड़ी का ठिकाना है.

२२४—कमर—भाटों की ख्यातों में कमर (कुमार = कुंवर) शब्द देख कर टॉडसाहिब ने जेठवों को किमेरी, या यूरोप की किम्बी जाति का होना अनुमान कर लिया है, जो सर्वथा स्वी करने योग्य नहीं है.

२२५—टॉडसाहिब ने जेठवों का विशेष वृत्तान्त "ट्रैवल्स इन वेस्टर्न इंडिया" (Travels in Western India) नामक पुस्तक में काठियावाड़ के प्रसंग में दिया है.

२२६—नंदननगर—टॉडसाहिब ने नान्दोद के वास्ते यह शब्द घड़ंत किया है. प्राचीन लेखों में उस का नाम नंदीपुरी मिलता है.

२२७—सोफ़ाला—दक्षिणी आफ्रिका के पूर्वी तट पर का एक देश.

२२८—गोहिलवंश—काठियावाड़ के गोहिल अपने को चन्द्रवंशी और शालिवाहन के वंशज मानते हैं; परन्तु उपरोक्त मंडलीक काव्य में उन का सूर्यवंशी होना स्पष्ट लिखा है. अतएव काठियावाड़ के गोहिलों को, जो राजपूताना (मारवाड़) के खेड़ इलाक़े से उधर गये हुए हैं, मेवाड़ के गुहिलोतों की शाखा में होना अनुमान किया जाता है. जिस शालिवाहन के वंशज वे अपने को बतलाते हैं वह दक्षिण का आंधूभृत्यवंशी (शूद्र) शालिवाहन (सातवाहन) नहीं, किन्तु मेवाड़ के राजा नरवाहन का उत्तराधिकारी शालिवाहन (देखो ऊपर पृष्ठ ३२२) होना चाहिये. राजपूतों के प्राचीन इतिहास के अभाव में भाटों ने उन के इतिहास में अनेक निराधार बातें धर दी हैं, उन में से एक यह भी है.

२२९—सर्वैया राजपूतों को टॉडसाहिब अश्व लोगों की शाखा में होना अनुमान करते हैं, परन्तु वे अपने को यादवों की शाखा मानते हैं.

२३०—सर्वैयों का अस्तित्व इस समय काठियावाड़ में ही है.

२३१—लेरिक (लारिक)—टॉलिमी आदि प्राचीन भूगोलवेत्ताओं ने लरिक (लारिक) नाम का प्रयोग गुजरात के उस प्रदेश के लिये किया है, जो लाट नाम से प्रसिद्ध है, न कि सौराष्ट्र (काठियावाड़) के प्रायद्वीप के लिये, जैसा कि टॉड साहिब का अनुमान है (लाट के लिये देखो ऐतिहासिक ग्रन्थमाला जिल्द पहिली पृष्ठ २९).

२३२—लारजाति (लाट के देश के निवासी)—टॉडसाहिब सिलार (शिलार) वंश के राजाओं और लाट देश के निवासियों का एक होना अनुमान करते हैं, जिस का कारण केवल यही है, कि शिलार नाम के अन्त में 'लार' है, और लाटदेश के वास्ते प्राचीन विदेशी भूगोल

लेखकों ने 'लार' शब्द का प्रयोग किया है, जिन में परस्पर कुछ समानता है, परन्तु टॉड साहिब का यह अनुमान भी भ्रमपूरित है, क्योंकि शिलारवंशी राजाओं का आधिपत्य लाटदेश पर नहीं, किन्तु दक्षिण के भिन्न भिन्न विभागों पर रहा था, और उन का लाटदेश से कोई संबन्ध न था.

२३३—लाटदेश से निकली हुई वणिक जातियों में से लाड बनिये हैं, जो अपने असली निवासस्थान के नाम से ही लाड कहलाये हैं-('ट' के स्थान में 'ड' हो जाता है).

२३४—सिलार (शिलार) वंश—सिलार (शिलार) वंशी राजाओं के लेखों में उन का विद्याधर (देवयोनि) जीमूतकेतु के (जिस ने शंखचूड नामक नाग को बचाने के निमित्त उस के बदले में अपना शरीर गरुड के अर्पण किया था) पुत्र जीमूतवाहन के वंश में होना लिखा मिलता है. उन का खिताब 'तगरपुरवराधीश्वर' मिलता है, जिस से अनुमान होता है, कि उन की प्रथम राजधानी तगरपुर हो. शिलारवंशियों की तीन भिन्न भिन्न शाखाओं का पता लगता है. वे बहुधा सामन्तों की स्थिति में रहे थे, और उन की वंशावलियां नीचे लिखे अनुसार मिलती हैं:—

(१) दक्षिणी कौंकण के शिलारवंशी.

१ सणफुल्ल—यह राजा कृष्णराज (राठौड़) का प्रीतिपात्र था. इस ने पश्चिमी समुद्रतट, और सह्याद्रि के बीच के देश का राज्य प्राप्त किया था.

२ धम्मियर (नं० १ का पुत्र)—इस ने वलिपट्टन को (समुद्रतट पर) आबाद किया था.

३ ऐयपराज (नं० २ का पुत्र).

४ अवसर (नं० ३ का पुत्र).

५ आदित्य वर्मा (नं० ४ का पुत्र).

६ अवसर, दूसरा (नं० ५ का पुत्र).

७ इन्द्रराज (नं० ६ का पुत्र).

८ भीम (नं० ७ का पुत्र).
९ अवसर, तीसरा (नं० ८ का पुत्र).
१० रट्टराज (नं० ९ का पुत्र)—इस के समय का एक ताम्रपत्र शक संवत् ९३० (वि० सं० १०६५=ई० स० १००८) का मिला है, जिस से पाया जाता है कि यह पश्चिमी सोलंकी राजा सत्याश्रय (इरिवबेडंग) का सामन्त था.

इस शाखा के १० पुरुषों का ही पता चलता है. रट्टराज के उपरोक्त ताम्रपत्र से अनुमान होता है, कि इन शिलारवंशियों के आधीन गोवा (जो इस समय पुर्तगालवालों के आधीन है), सावंतवाडी, रत्नागिरी आदि बंबई के दक्षिण के प्रदेश हों. शिलारों की सब से प्राचीन शाखा यही है.

(२) उत्तरी कोंकण के शिलारवंशी.

१ कपर्दि—कोंकण देश का स्वामी.
२ पुलशक्ति (नं० १ का पुत्र—यह राठौड़ वंश के राजा अमोघवर्ष (प्रथम) का सामन्त था. इस के समय का एक शिलालेख शक संवत् ७६५ (वि० सं० ९०० =ई० स० ८४३) का मिला है.
३ कपर्दि, दूसरा (नं० २ का पुत्र)—यह भी राठौड़ अमोघवर्ष प्रथम का सामन्त था. इस के समय के दो शिलालेख शक संवत् ७७३, और ७९९ (वि० सं० ९०८, और ९३४=ई० स० ८५१, और ८७७) के मिले हैं.
४ वप्पुवन्न (नं० ३ का पुत्र).
५ झंझ (नं० ४ का पुत्र).
६ गोग्गिराज (नं० ५ का भाई).
७ वज्जड (नं० ६ का पुत्र).
८ अपराजित (नं० ७ का पुत्र)—इस के समय का एक ताम्रपत्र शक संवत् ९१९ (वि० सं० १०५४=ई० स० ९९७) का मिला है, जिस से पाया जाता है, कि इस के समय राठौड़ कर्कराज दूसरे का राज्य सोलंकी तैलप ने छीन लिया था. इस का खिताब

'महामंडलेश्वर' मिलने से अनुमान होता है; कि दक्षिण के राठौड़ों का राज्य सोलंकियों के आधीन होने बाद यह सोलंकियों का सामन्त बना हो.

६ वज्जड, दूसरा (नं० ८ का पुत्र).

१० अरिकेसरी (नं० ६ का भाई)—इस को केशिदेव भी कहते थे. इस का एक ताम्रपत्र शक संवत् ६३६ (वि० संवत् १०७४ = ई० स० १०१७) का मिला है, जिस में इस को महामंडलेश्वर (सामंत) लिखा है.

११ छित्तराज (नं० ६ का पुत्र)—इस का एक ताम्रपत्र शक संवत् ६४८ (वि० सं० १०८३ = ई० स० १०२६) का मिला है.

१२ नागार्जुन (नं० ११ का भाई).

१३ मुम्मुणि (नं० १२ का भाई).

१४ अनंतपाल (नं० १२ का पुत्र)—इस को अनंतदेव भी कहते थे. 'महामंडलेश्वराधिपति' के अतिरिक्त इस के खिताब 'कुंकण (कोंकण) चक्रवर्ती,' और 'पश्चिमसमुद्राधिपति' मिलते हैं. इस का एक ताम्रपत्र शक संवत् १०१६ (वि० सं० ११५१ = ई० स० १०६४) का मिला है. यहां तक कि वंशावली शृंखलाबद्ध मिलती है. अनंतपाल के बाद शिलारों का बहुत सा राज्य गोवा पर राज्य करनेवाले कदंबवंशी राजाओं ने छीन लिया था.

हरिपाल—इस का नं० १४ के साथ क्या संबंध था यह ज्ञात नहीं हुआ. इस के समय का एक शिलालेख शक संवत् १०७६ (वि० सं० १२११ = ई० स० १०५४) का मिला है.

मल्लिकार्जुन—इस के समय का एक शिलालेख शक संवत् १०७८ (वि० सं० १२१३ = ई० स० ११५६) का मिला है.

अपरादित्य—इस के समय के दो शिलालेख शक सं० ११०७ और ११०६ (वि० सं० १२४२ और १२४४ = ई० स० ११८५ और ११८७) के मिले हैं. इस ने अपने पूर्वजों का गया हुआ कुछ इलाक़ा फिर अपने आधीन किया हो ऐसा अनुमान होता है.

इस ने ' महाराजाधिराज ', और ' कोंकण चक्रवर्ती ' ख़िताब धारण किये थे.

उपरोक्त शिलारा वंशियों की राजधानी पुरी थी, और वे थाणा (बंबई के निकट) में भी रहा करते थे. उन के राज्य में स्थानक (थाणा), नागपुर (नागांव = अलीबाग से ६ मील दक्षिण पूर्व), सूर्पारक (सोपारा), चेमुलि (चौल = कोलाबा ज़िले में) आदि बन्दरगाह थे.

(३) कोलापुर के शिलारवंशी.

१ जतिग.

२ नायिम्म (नं० १ का पुत्र)—इस को नायिवर्म्मा भी कहते हैं.

३ चंद्रराज (नं० २ का पुत्र).

४ जतिग, दूसरा (नं० ३ का पुत्र)—' तगरपुरवराधीश्वर ' के अतिरिक्त ' पन्नाल दुर्गाद्रि सिंह ' भी इस का ख़िताब मिलता है, जिस से अनुमान होता है, कि कोलापुर से १२ मील उत्तर-पश्चिम स्थित प्रसिद्ध पन्हाला का क़िला इस के अधिकार में था.

५ गोंक (नं० ४ का पुत्र)—गोंक के स्थान पर गोंकल, गोकल्ल, और गोकल भी लिखा मिलता है.

६ गूवल (नं० ५ का छोटा भाई)-गूवल के स्थान पर गूहल भी लिखा मिलता है.

७ कीर्तिराज (नं० ६ का भाई).

८ चंद्रादित्य (नं० ७ का भाई).

९ मार सिंह (नं० ५ का पुत्र)—इस के समय का एक ताम्रपत्र शक संवत् ९८० (वि० सं० १११५ = ई० स० १०५८) का मिला है, जिस में इस को महामंडलेश्वर, अर्थात् सामन्त लिखा है. विल्हण पंडित रचित विक्रमांक देवचरित काव्य में करहाट (कराड) के विद्याधर (शिलार) वंशी राजा की पुत्री चंद्रलेखा (चन्दलदेवी) का विवाह कल्याण के सोलंकी राजा विक्रमादित्य छठे से होना लिखा है. संभव है कि चंद्रलेखा इसी (मार सिंह) राजा

की पुत्री हो, और यह उक्त सोलंकी विक्रमादित्य का सामन्त हो.
१०गूवल, दूसरा (नं० ९ का पुत्र).
११गंगदेव (नं० १० का भाई).
१२भोजदेव (नं० ११ का भाई).
१३बल्लाल (नं० १२ का भाई)—इस के समय का एक शिलालेख मिला है, परन्तु उस में संवत नहीं दिया.
१४ गंडरादित्य (नं० १३ का भाई)—इस के समय के कईएक शिलालेख मिले हैं, जो शक सं० १०३२, और १०५८ (वि० सं० ११६७, और ११९२ = ई० स० १११० और ११३५) के बीच के हैं.
१५ विजयादित्य (नं० १४ का पुत्र)—इस को विजयार्क भी लिखते थे. कलचुरी बिज्जल ने सोलंकियों का राज्य छीना जिस में यह बिज्जल का सहायक बना था. इस के समय के लेख शक संवत् १०६५ और १०७३ (वि० सं० १२०० और १२०७ = ई० सन् ११४३ और ११५०) के बीच के हैं.
१६ भोजदेव, दूसरा (नं० १५ का पुत्र)—इस के समय शक सं० ११२७ (वि० सं० १२६२ = ई० स० १२०५) में सोमदेव पंडित ने शब्दार्णवचन्द्रिका नामक पुस्तक लिखी जिस में इस के विरुद 'राजाधिराज', 'परमेश्वर', 'परम भट्टारक', और 'पश्चिमचक्रवर्त्ती' दिये हैं, जिन से पाया जाता है, कि यह अपने पूर्वजों की नाईं दूसरे राजाओं का सामन्त नहीं, किन्तु स्वतंत्र राजा था. इस के समय के अब तक मिले हुए लेखों में सब से पहिला शक संवत् ११०१ (वि० सं० १२३६ = ई० स० ११७९) का है, और शक सं० ११२७ (वि० सं० १२६२ = ई० सन् १२०५) तक विद्यमान होना शब्दार्णवचन्द्रिका से पाया जाता है. उस के बाद भी जीवित रहना संभव है. इस के पीछे देवगिरि के यादवों ने इन शिलारों का राज्य छीन लिया हो ऐसा पाया जाता है.

२३५—राजपूताने में अब तक कहीं कहीं डाबी जाति के राजपूत मिलते हैं, परन्तु उन की संख्या बहुत ही कम है.

२३६–बंगाल में गुप्तों के बाद पाल, और सेनवंशियों का राज्य रहना पाया जाता है, परन्तु उन में से किसी ने अपने को गौड नहीं लिखा. अजमेर के आसपास के प्रदेश पर आधिपत्य रखनेवाले गौड राजपूतों के विषय में ऐसी प्रसिद्धि है, कि गौडदेश के कुछ राजपूत पुष्कर की यात्रा को आये थे, जिन को अजमेर के चौहान राजाओं ने जागीर देकर अपने सामन्त बना यहीं रक्खा. अतएव इन गौडों का बंगाल के सेन वंशियों में से होना अधिक संभव है.

२३७–लखनौती—बंगाल के सेनवंशी राजा लक्ष्मण सेन से बख्तियार खिलजी ने लखनौती, और उस के आसपास का प्रदेश लिया था.

२३८—गौड़—इस समय राजपूताने में गौड़ों का अधिकार अजमेर में राजगढ़ पर ही है, परन्तु पहिले अजमेर के आसपास का बहुत सा इलाक़ा इन्हीं के आधीन था, जिसे राठौड़ों ने क्रमशः छीन लिया. मारवाड़ में जो मारोठ का पर्गना है वह अब तक गौड़ाटी (गौड़ावाटी) कहलाता है. यह भी गौड़ों से ही राठौड़ों ने लिया था. शायद गोड़वाड़ का पर्गना भी इन्हीं के कारण उक्त नाम से प्रसिद्ध हुआ हो.

२३९—डोड या डोडिया—डोडिया राजपूत अपने को अग्निवंशी बतलाते हैं, और उन के भाट उन की उत्पत्ति के विषय में यह प्रगट करते हैं, कि जिस समय अग्निकुंड से चौकुली क्षत्री उत्पन्न हुए उस समय उक्त यज्ञकुंड के द्वार पर खड़े किये हुए केल के वृक्ष के डोडे (फूल) में से भी एक पुरुष उत्पन्न हुआ जो डोडिया कहलाया. परमारों की एक शाखा डोड भी है, अतएव कितने एक विद्वान डोडियों को परमारों की शाखा मानते हैं. इस समय डोडियों का एक राज्य मालवे में पिपलोदा है, और मेवाड़ में सर्दारगढ़ के ठाकुर डोडिया राजपूत हैं.

२४०—टॉड साहिब लिखते हैं, कि "राजपूताना के राजपूत गहरवाल (गहरवार) के अशुद्ध रक्त को अपने में मिलाना स्वीकार नहीं करेंगे." यह लिखना उन का भ्रम ही है, क्योंकि गहरवाल उच्च कुल के राजपूत हैं, और कन्नौज का प्रसिद्ध राजा जयचन्द गहरवार था,

जिस के वंशज होने का दावा जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़, ईडर, सीतामऊ, रतलाम, सेलाना, झाबुआ आदि के राजा करते हैं. गहरवार राठौड़ों की एक शाखा मानी जाती है.

२४१—खोरतजदेव का नाम अब तक किसी शिलालेख आदि में नहीं मिला.

२४२—जेसन्द—यह नाम शायद कन्नौज के प्रसिद्ध राजा जयचन्द गहरवार (राठौड़) का सूचक हो. इतिहास के अभाव की दशा में भाटों ने कुछ का कुछ लिख मारा होगा.

२४३—बुंदेलावंश—टॉड साहिब विन्ध्यवासिनी देवी के स्थान पर यज्ञ करने के कारण राजा जेसंद की सन्तति बुंदेला कहलाई ऐसा बतलाते हैं. बुंदेले ऐसा कहते हैं, कि वीरभद्र के पुत्र हेमकर्ण को विन्ध्यवासिनी देवी ने वरदान दिया, कि तुझ से उत्पन्न हुई सन्तान का नाम बुंदेला होगा, जिस से बुंदेला नाम पड़ा; लेकिन दूसरे राजपूत उन की इस बात को स्वीकार नहीं करते. वे ऐसा मानते हैं, कि बुंदेले गहरवारों के वंशज हैं, परन्तु उन का मूलपुरुष अविवाहिता स्त्री (बांदी) से उत्पन्न हुआ था, इसी कारण राजपूत लोगों का बुंदेलों के साथ खाना पीना, और शादी विवाह का सम्बन्ध नहीं होता. बुंदेलों में कुछ परमार और कुछ धंधेले, जो अपने को चौहान बतलाते हैं, मिलगये हैं. उन का विवाह आदि संबन्ध भी अब राजपूतों के साथ नहीं होता.

२४४—चंदेलवंश—चंदेलों की ख्यातों में ऐसा लिखा मिलता है, कि बनारस के गाहड़वाल (गहरवार) राजा इन्द्रजित के ब्राह्मण पुरोहित हेमराज की विधवा पुत्री हेमावती के चन्द्रमा से चन्द्र वर्मा नामी एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिस के वंशज चंदेले कहलाये. यह लेख पृथ्वीराजरासा के आधार पर लिखा गया है. चंदेलों के प्राचीन शिलालेखों में उन की उत्पत्ति के विषय में ऐसा लिखा मिलता है, कि "ब्रह्मा से अत्रि, अत्रि से चंद्र, और उस से चंद्रात्रेय उत्पन्न हुआ, जिस से चंद्रात्रेय (चंदेल) वंश चला". अतएव चंदेलों का चंद्रवंशी होना पाया जाता है. चंदेले अपने को राठौड़ों की शाखा में होना भी प्रगट करते

६. चंदेलों का राज्य पहिले बुंदेलखण्ड व उस के आसपास के इलाकों पर रहा. उन की राजधानी कलिंजर होने से उन का खिताब 'कलिंजराधिपति' मिलता है. कलिंजर के अतिरिक्त महोबा और खजराहा भी उन की राजधानियां थीं. ऐसी भी दन्तकथा प्रसिद्ध चली आती है, कि चंदेलों ने पड़िहारों से महोवा का राज्य छीना था, परन्तु संभव है कि उन्हों ने हैहय (कलचुरी) वंशियों से कलिंजर लिया हो. चंदेलों की वंशावली नीचे लिखे अनुसार मिलती है :—

१ नन्नुक

२ वाक्पति (नं० १ का पुत्र).

३. जयशक्ति (नं० २ का पुत्र)—इस को जेजाक, और जेजा भी कहते हैं. इसी के नाम से बुंदेलखंड का नाम 'जेजाकभुक्ति, या 'जेजाभुक्ति' पड़ा, जिस का प्राकृत रूप जेजाहुति, और उससे 'जझोटी' नाम प्रसिद्ध हुआ.

४ विजयशक्ति (नं० ३ का भाई)—इस को विज्जक, विजय और वीजा भी कहते थे. इस ने अपना राज्य अधिक बढ़ाया.

५ राहिल (नं० ४ का पुत्र)—इस ने महोवा से दो मील पर राहिलिया गांव के पास अपने नाम से राहिल्यसागर तालाव और उस के तट पर सुन्दर मंदिर बनवाया.

६ हर्ष (नं० ५ का पुत्र)—इस ने 'महाराजाधिराज' पद धारण किया. इस की राणी कंचुका देवी चौहान वंश की थी जिस से यशो वर्मा उत्पन्न हुआ.

७ यशोवर्मा—(नं० ६ का पुत्र)—इस को लक्षवर्मा भी कहते थे. इस ने चेदी देश के राजा (केयूरवर्ष-युवराज) को परास्त किया, और खजराहा में विष्णु का मंदिर बनवा कर कन्नौज के पड़िहार राजा हेरंबपाल (विनायकपाल) से मिली हुई वैकुण्ठ की मूर्त्ति उस में स्थापित की, जो भोट के राजा को कैलास पर्वत से मिली थी.

८ धंगदेव (नं० ७ का पुत्र)—यह बड़ा प्रतापी, और समृद्धि

शाली राजा हुआ. इस का राज्य उत्तर में यमुना से लगाकर दक्षिण में चेदी राज्य की सीमा तक, और पूर्व में कालिंजर से, लगाकर पश्चिम में गोपाद्रि (ग्वालियर) तथा भास्वत (भेलसा) तक होना लिखा मिलता है. यह मुसल्मानों से (अमीर सुबुक्तगीन की जयपाल पर चढ़ाई होने के समय) भी लड़ा था. १०० वर्ष से अधिक वय होने पर यह शिव का ध्यान करता हुआ गंगायमुना के संगम पर अपनी इच्छा से डूब मरा. यह घटना वि० सं० १०५५ और १०५६ (ई० सन् ९९८ और १००२) के बीच में हुई. इस राजा का प्रधान मंत्री प्रभास न्याय दर्शन के कर्त्ता गौतम अक्षपाद का वंशज था.

९ गंड (नं० ८ का पुत्र)—यह वीर प्रकृति का राजा था, और मुसल्मानों का द्वेषी था. सुल्तान महमूद ग़ज़नवी ने वि० सं० १०६५ (ईसवी सं० १००८) में लाहौर के राजा अनंगपाल पर चढ़ाई की, उस समय इस ने अनंगपाल की सहायता की थी, और वि० सं० १०७५ (ई० स० १०१८) में उक्त मुसल्मान ने कन्नौज को फ़तह कर वहां के पड़िहार राजा राज्यपाल को अपना मातहत बनाया, जिस पर इस (गंड) ने अपने पुत्र विद्याधर को अपने सैन्य सहित कन्नौज पर भेजा, और राज्यपाल को मरवा डाला, जिस का बदला लेने के लिये सुल्तान ने इस पर चढ़ाई की, उस समय यह ३६००० सवार, ४५००० पैदल, और ६४० हाथी लेकर उस से लड़ने को गया था. इस समय बादशाह को विजय प्राप्त नहीं हुई, जिस से वि० सं० १०८० (ई० स० १०२३) में फिर उस पर चढ़ आया. इस समय गंड ने ३०० हाथी, और कुछ दूसरी चीज़ें देकर बादशाह से सुलह करली.

१० विद्याधर देव (नं० ९ का पुत्र) - यह प्रसिद्ध परमार राजा भोज से लड़ा हो ऐसा एक शिलालेख से पाया जाता है.

११ विजयपालदेव (नं० १० का पुत्र)—यह कलचुरी वंशी

राजा गांगेयदेव से लड़ा था.

१२ देववर्मदेव (नं० ११ का उत्तराधिकारी).

१३ कीर्तिवर्मदेव (नं० ११ का पुत्र)—चेदी के कलचुरी राजा कर्ण ने इस का राज्य छीन लिया था, परन्तु इस के ब्राह्मण सेनापति गोपाल ने कर्ण को परास्त कर इस को पीछा राज्य सिंहासन पर बिठलाया था, ऐसा प्रबोधचन्द्रोदय नाटक से पाया जाता है. इस राजा के समय में कृष्ण मिश्र पण्डित ने प्रबोधचन्द्रोदय नाटक रचा था. इस के सुवर्ण के सिक्के भी मिलते हैं.

१४ सल्लक्षणवर्मदेव (नं० १३ का पुत्र)–इस राजा के सोने तथा तांबे के सिक्के मिले हैं.

१५ जयवर्म (नं० १४ का पुत्र)–इस के समय का एक शिलालेख वि० सं० ११७३ (ई० स० १११७) का मिला है, और इस के सिक्के भी (चांदी और तांबे के) मिले हैं.

१६ पृथ्वीवर्मदेव (नं० १४ का छोटा भाई)–इस के तांबे के सिक्के मिले हैं.

१७ मदनवर्मदेव (नं० १६ का पुत्र)–यह बड़ा ही वैभवशाली राजा हुआ. राजशेखर सूरि ने अपने रचे हुए चतुर्विंशति प्रबन्ध में इस राजा का वृत्तान्त लिखा है. गुजरात के सोलंकी राजा सिद्धराज जय सिंह ने इस पर चढ़ाई की थी, परन्तु उस में उस को विजय प्राप्त नहीं हुई. इस राजा के सोने और तांबे के सिक्के मिले हैं. इस के समय का एक ताम्रपत्र और कईएक शिलालेख मिले हैं, जो वि० संवत् ११८६ (ई० स० ११२६) से १२२२ (ई० स० ११६५)तक के हैं.

१८—परमार्दिदेव (नं० १७ के बेटे यशोवर्मा का पुत्र)–बुंदेलखंड में यह राजा परमल नाम से प्रसिद्ध है. वि० सं० १२३६ (ई० स० ११८२) में अजमेर के प्रसिद्ध चौहान राजा पृथ्वीराज ने इस पर चढ़ाई कर इसे परास्त किया था. पृथ्वीराज रासे के महोबा खंड

से पाया जाता है, कि आल्हा और ऊदल नाम के दो बनाफर राजपूत वीरों ने जो इस (परमर्दिदेव) के सेनापति थे, पृथ्वीराज के साथ की लड़ाई में बड़ी वीरता के साथ लड़कर अपने प्राण दिये थे. इन दोनों वीरों की बहादुरी के गीत बुंदेलखंड व उस के आसपास के प्रदेशों में अबतक गाये जाते हैं. वि० सं० १२५६ (ई० स० १२०२) में क़ुतुबुद्दीन ऐबक ने कालिंजर पर चढ़ाई की, उस समय यह (परमर्दिदेव) उस से खूब लड़ा, और उसी अरसे में इस का देहान्त हुआ. इस के सोने के सिक्के मिले हैं.

१६ त्रैलोक्यवर्मदेव (नं० १८ का उत्तराधिकारी)—यह भी मुसल्मानों से लड़ा था. इस के समय के लेख वि० सं० १२६६ (ई० स० १२१२) से १२६७ (ई० स० १२४१) तक के मिले हैं.

२० वीरवर्मदेव (नं० १६ का पुत्र)—इस की राणी कल्याणदेवी दाधीच (दाहिमा राजपूत) वंश के राजा महेश्वर की पुत्री, श्रीपाल की पौत्री और चादल की प्रपौत्री थी. वीरवर्मा के सोने के सिक्के और कईएक शिलालेख मिले हैं.

२१ भोजवर्मदेव—इस के समय का एक शिलालेख वि० सं० १३४५ (ई० स० १२८८) का मिला है.

भोजवर्मदेव के पीछे की चंदेलों की वंशावली नहीं मिलती, परन्तु शेरशाह के समय तक कालिंजर तथा उस के आसपास के प्रदेश पर चंदेलों का राज्य होना पाया जाता है. वि० सं० १५८८ (ई० स० १५४५) में शेरशाह ने कालिंजर का क़िला छीन लिया, उस समय वहां का राजा कीर्त्तिराय होना जेनरल कनिंगम (Cunningham) अनुमान करते हैं. कीर्त्तिराय की पुत्री प्रसिद्ध राणी दुर्गावती बादशाह अकबर के समय आसिफ़ खां से लड़ी थी.

चंदेलों का इष्टदेव शिव था, परन्तु वे विष्णु के भी भक्त थे, और कई विष्णुमन्दिर उन्हों ने बनवाये थे. उन की मुद्रा (मुहर) में कमल पर बैठी हुई लक्ष्मी की चतुर्भुज मूर्त्ति रहती थी.

२४५—बड़गूजरों का इस समय कोई बड़ा राज्य नहीं रहा. कितने

एक विद्वान वह गूजरों का गुर्जर (गूजर) होना अनुमान करते हैं.

२४६—सेंगर—सेंगरवंशी वत्सराज का एक ताम्रपत्र वि० सं० ११९१ (ई० स० ११३४) का मिला है, जिस से पाया जाता है कि वह कन्नौज के गहरवार (राठौड़) राजा गोविन्दचन्द्र का सेवक था.

२४७—वैसवंश—वैसवंशी राजाओं का कुछ प्राचीन इतिहास उन के ताम्रपत्र, बाणभट्टरचित श्रीहर्षचरित, और चीनी यात्री ह्युएनसंग के सफ़रनामे से मिल आता है. उन की वंशावली नीचे लिखे अनुसार मिलती है :—

१ पुष्पभूति—यह श्रीकंठ प्रदेश (थानेश्वर) का राजा था, और परम शिवभक्त था.

२ नरवर्द्धन (नं० १ का वंशज)—इस की राणी वज्रिणी देवी से राज्यवर्द्धन उत्पन्न हुआ था.

३ राज्यवर्द्धन (नं० २ का पुत्र)—यह सूर्य का परम उपासक था. इस की राणी अप्सरादेवी से आदित्यवर्द्धन का जन्म हुआ था.

४ आदित्यवर्द्धन (नं० ३ का पुत्र)—यह भी सूर्य का भक्त था. इस की राणी महासेनगुप्ता से प्रभाकरवर्द्धन पैदा हुआ था. आदित्यवर्द्धन तक के राजाओं के नामों के साथ केवल 'महाराज' ख़िताब मिलता है. अतएव संभव है कि वे स्वतंत्र राजा नहीं, किन्तु दूसरों (गुप्तों) के सामन्त होंगे.

५ प्रभाकरवर्द्धन (नं० ४ का पुत्र)—इस का ख़िताब 'परम भट्टारक महाराजाधिराज' मिलता है, जिस से पाया जाता है कि यह पहिले पहिल स्वतंत्र राजा हुआ हो. ताम्रपत्रों में इस को अनेक राजाओं को नमानेवाला, तथा श्रीहर्षचरित से इस का गांधार, सिन्ध, लाट, मालव, तथा गूजरों पर फ़तह पाना पाया जाता है. यह सूर्य का परम भक्त था, और प्रतिदिन आदित्यहृदय का पाठ किया करता था. इस की राणी यशोमती से दो पुत्र राज्यवर्द्धन तथा हर्षवर्द्धन, और एक पुत्री राज्यश्री उत्पन्न हुई थी. राज्यश्री का विवाह कन्नौज के मौखरीवंशी राजा अवन्तिवर्म्मा के पुत्र ग्रहवर्मा के साथ था. मालवा के राजा ने ग्रहवर्मा को मारकर उस की राणी

राज्यश्री के पैरों में बेड़ियां डाल उसे कन्नौज के कैदखाने में रक्खी थी. इसी अरसे में प्रभाकरवर्द्धन का देहान्त हुआ था.

६ राज्यवर्द्धन (नं०५ का पुत्र)—अपने पिता के देहान्त समय यह उत्तर में हूणों से लड़ने को गया था, जहां पर उन को विजय कर घायल हुआ, और उसी हालत में थाणेश्वर पहुंचा. अपने पिता के असाधारण प्रेम को स्मरण कर इस ने राज्यसिंहासन पर बैठना पसन्द नहीं किया, किन्तु भदन्त (बौद्ध भिक्षुक = साधु) होने का विचार कर अपने छोटे भाई हर्षवर्द्धन को राज्य देना चाहा; परन्तु उस ने भी भदन्त होना पसन्द कर राज्य की उपाधि को स्वीकार न किया. ऐसी अवस्था में राज्यश्री के कैद होने की खबर मिलतेही इस (राज्यवर्द्धन) ने भदंत होने का विचार छोड़ कर १०००० सवारों सहित मालवा के राजा पर चढ़ाई करदी, और उस को परास्त कर उस के बहुत से हाथी, घोड़े, रत्न, राणियों के जेवर, छत्र, चामर, सिंहासन आदि राज्यचिन्ह, तथा अन्तःपुर की बहुत सी सुन्दर स्त्रियों को छीना, और मालवा के सब राजाओं को कैद किया; परन्तु गौड़ देश के राजा नरेन्द्र गुप्त ने, जो अपने पड़ोस में ऐसे राजा का होना अपने राज्य के लिये हानिकारक समझता था, इसे (राज्यवर्द्धन को) अपने महल में ले गया, और विश्वासघात कर मार डाला. यह घटना वि० सं० ६६४ (ई० स० ६०७) में हुई. हर्षवर्द्धन के ताम्रपत्र में राज्यवर्द्धन का परमसौगत (बौद्ध) होना, देवगुप्त आदि अनेक राजाओं को जीतना, तथा अपने वचन पर दृढ़ रह कर शत्रु के घर में प्राण देना लिखा है. (देवगुप्त मालवे का शायद वही राजा होगा, जिस ने ग्रहवर्मा को मार कर राज्यश्री के पैरों में बेड़ियां डाली थीं).

७ हर्षवर्द्धन. (नं० ६ का छोटा भाई)—इस को हर्ष और शीलादित्य भी कहते थे. इसने राज्यसिंहासन पर बैठतेही गौड़ के राजा को, जिस ने इस के बड़े भाई को विश्वासघात कर मारा था, नष्ट करने का संकल्प किया, परन्तु अपने सेनापति सिंहनाद तथा स्कन्दगुप्त की राय से सबही राजाओं के नाम इस अभिप्राय के पत्र लिखवाये,

कि 'या तो तुम मेरी आधीनता स्वीकार कर लो या मुझ से लड़ने को तय्यार हो जाओ.' फिर इस ने दिग्विजय के लिये प्रस्थान कर पहिला मुक़ाम राजधानी से थोड़ी दूर सरस्वती के तट पर किया, जहां पर प्राग्ज्योतिप के राजा भास्करवर्मा (कुमार) के दूत हंसवेग ने हाज़िर होकर अपने मालिक का भेजा हुआ छत्र नज़र कर निवेदन किया, कि 'भास्करवर्मा आप से मैत्री चाहता है.' हर्ष ने उस का निवेदन स्वीकार कर उस को अपने पास हाज़िर होने के लिये कहला भेजा वहां से कई मंज़िल आगे चलने पर भंडी भी आ मिला, जिस ने मालवा के राजा के यहां की लूट नज़र कर निवेदन किया कि, 'राज्यश्री कन्नौज के क़ैदख़ाने से भाग कर विंध्याटवी में पहुंच गई है.' यह ख़बर पातेही इस ने भंडी को तो गौड़ देश के राजा को सज़ा देने के लिये भेजा, और आप विंध्याटवी की तरफ़ चला, और अपनी बहिन को ले कर यष्टिग्रह नामक स्थान में पहुंचा. क़रीब ३० वर्ष तक लगातार युद्ध कर इस ने कश्मीर की पहाड़ियों से लगा कर आसाम और नैपाल से नर्मदा तक का सारा देश अपने आधीन कर बड़ा राज्य स्थापन किया. इस ने दक्षिण को भी अपने आधीन करना चाहा था, परन्तु बादामी के सोलंकी राजा पुलकेशी दूसरे से हार जाने पर इस का वह इरादा पार न पड़ा इस की राजधानी थाणेश्वर और कन्नौज दोनों थीं चीनी यात्री ह्युन्त्संग, जो इस प्रतापी राजा के साथ रहा था, लिखता है कि "हर्षवर्द्धन ने अपने भाई के शत्रुओं को सज़ा देने व आसपास के सब देशों को आधीन करने तक दाहिने हाथ से भोजन न करने का प्रण किया था. ५००० हाथी, २०००० सवार, और ५०००० पैदल सेना ले बिना रुके पूर्व से पश्चिम तक अपनी आधीनता स्वीकार न करने वाले राव राजाओं को जीत ६ वर्ष में उस ने हिन्दुस्तान (नर्मदा से उत्तर का सारा देश) के पांचों प्रदेशों (पंजाब, सिन्ध, मध्यदेश, बंगाल, और गुजरात हो) को अपने आधीन किया. इस प्रकार अपना राज्य बढ़ने पर अपनी सेना को बढ़ा कर लड़ाई के

हाथियों की संख्या ६०००० और सवारों की संख्या १००००० तक पहुंचा दी. तीस वर्ष के बाद उस के शस्त्रों ने विश्राम पाया, और उस नें शान्तिपूर्वक राज्य किया, उस समय वह धर्म (बौद्धधर्म) प्रचार के कार्यों में निरन्तर लगा रहता था, अपने राज्य भर में जीवहिंसा तथा मांसभक्षण की मनाई कर दी थी, जिस के प्रतिकूल चलने वाले को प्राणदंड होता था, और हिन्दुस्तान (नर्मदा से उत्तरी प्रदेश की तमाम सड़कों पर मुसाफ़िरों तथा आसपास के ग़रीबों के लिये पुण्यशालाएं बनवाई थीं, जहां पर खाने पीने के अलावा रोगियों को औषधि भी मिला करती थीं. प्रति पांचवें वर्ष वह 'मोक्ष महा परिषद्' नामक सभा कर अपना ख़ज़ाना दान में ख़ाली कर देता, धर्म्म गुरुओं में विवाद करवा कर उन के प्रमाणों की स्वयं परीक्षा करता, सदाचारियों का सम्मान करता, दुष्टों को दंड देता, बुद्धिमानों का उदय करता, सदाचारी धर्मवेत्ताओं से धर्म श्रवण करता, और दुराचारियों को दूर ताड़ता था." ई० सन् ६४४ के आसपास इस ने प्रयाग में धर्ममहोत्सव किया, उस समय बड़े बड़े २० राजा इस के साथ थे. रणविजयी होने के अतिरिक्त यह राजा प्रसिद्ध विद्वान् भी था. इस के रचे हुए रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानंद नाटक इस की विद्वत्ता के उज्ज्वल रत्न हैं. जैसा यह विद्वान् था वैसा ही चित्रविद्या में भी निपुण था, क्योंकि बंसखेड़ा से मिले हुए इस के दानपत्र में इस ने अपने हस्ताक्षर किये हैं वे इस की चित्र निपुणता की साक्षी दे रहे हैं. यह राजा विद्वानों की क़द्र करने वाला भी था. प्रसिद्ध बाणभट्ट इस का आश्रित था, जिस ने "हर्षचरित" नामक गद्य काव्य में इस का चरित्र लिखा, और प्रसिद्ध कादंबरी नामक अपूर्व पुस्तक का पूर्वार्द्ध रचा (जिस का उत्तरार्द्ध उक्त बाणभट्ट के पुत्र पुलिन्द भट्ट ने अपने पिता के देहान्त बाद लिख कर उस पुस्तक को पूर्ण किया). बाणभट्ट को इस ने बड़ी समृद्धि दी थी, ऐसा वह स्वयं लिखता है. बाण और पुलिन्द भट्ट के अतिरिक्त दंडी (काव्या-

दर्श, दशकुमारचरित आदि का कर्ता), मयुर (सूर्यशतक का कर्ता), और दिवाकर (मातंग दिवाकर) भी इसी हर्ष के दर्बार के पंडित थे, ऐसा राजशेखर रचित सूक्तिमुक्तावलि में लिखा मिलता है, और जैन कवि मान तुंगाचार्य (भक्तामर का कर्ता) का भी उसी समय होना माना जाता है. वि० संवत् ६५० (ई० सन् ६०७) में इस का राज्याभिषेक हुआ, उस समय से इस ने अपने नाम का संवत् चलाया, जो 'हर्षसंवत्' नाम से प्रसिद्ध हुआ, और करीब ३०० वर्ष तक चलने बाद अस्त हुआ. हुएन्त्संग के लेख से पाया जाता है कि इस (हर्ष) को एक पुत्र भी था, जिस की पुत्री का विवाह वल्लभी के राजा ध्रुव भट्ट के साथ हुआ था, परन्तु इस (हर्ष) के देहान्त के पूर्व ही उस (हर्ष के पुत्र) का देहान्त हो गया हो ऐसा अनुमान होता है. हर्ष पहिले शिवभक्त था, परन्तु बौद्धधर्म की तरफ़ आस्था अधिक होने के कारण पीछे से बौद्ध हो गया हो ऐसा पाया जाता है. इस ने चीन के बादशाह के साथ मैत्री कर अपने एक ब्राह्मण एल्ची (राजदूत) को उक्त बादशाह के पास भेजा था, जहां से वह ई० सन् ६४३ में लौटा था. उसी के साथ चीन के बादशाह ने भी अपना दूतदल इस (हर्ष) के दरबार में भेजा था. ई० सन् ६४७ में चीन के बादशाह ने दूसरी बार अपने दूतदल को, जिस का मुखिया वंगह्युअन्त्से था हर्ष के दरबार में भेजा, परन्तु उस के मगध में पहुंचने से पूर्व ही ई० सन् ६४८ में हर्ष का देहान्त होगया, और इसके सेनापति अर्जुन ने राज्यसिंहासन छीन कर चीनी दूतदल को लूट लिया, और कईएक चीनी सिपाही मारे गये, परन्तु उक्त दूतदल का मुखिया (वंगह्युअन्त्से) अपने साथियों समेत नैपाल में भाग गया, और नैपाल तथा तिब्बत की सेना को साथ लेकर वापस आया तो अर्जुन भाग गया, , परन्तु पराजित होने के बाद कैद हुआ, और वगह्युअन्त्से उस को चीन लेगया. इस प्रकार हर्ष के स्थापन किये हुए महाराज्य की समाप्ति हुई, और उस के आधीन किये हुए सब राजा पुनः स्वतंत्र होगये हर्ष के

पीछे का शृंखलाबद्ध प्राचीन इतिहास बैश राजपूतों का नहीं मिलता. अवध प्रान्त में बैसवाड़े का इलाक़ा बैश राजपूतों का मुख्य स्थान है, और उन में तलकचंदी बैश अपने को मुख्य मानते हैं.

२४८—दाहिया जाति के राजपूत अब बिल्कुल नष्ट हो गये हैं, प्राचीनकाल में उन का पंजाब और सिन्ध में होना अनुमान किया जाता है.

२४६—जोहिया-यह जाति बहुत प्राचीन है, और संस्कृत में इस का नाम यौद्धेय मिलता है. मौर्य राज्य की स्थापना के पूर्व होनेवाले प्रसिद्ध व्याकरणाचार्य पाणिनी ने इस जाति के नाम का उल्लेख अपने व्याकरण अष्टाध्यायी में किया है (५।३।११७). इस जाति का आदि निवास स्थान पंजाब था, और इसी के नाम से सतलज के दोनों तट पर का बहावलपुर राज्य के आसपास वाला प्रदेश 'जोहिया बार' कहलाता है. ये लोग सदा स्वतन्त्र रहते थे, और इन के दल का मुखिया ही इन का सेनापति, और राजा माना जाता था. शक संवत् ७२ (वि० सं० २०७=ई० स० १५०) के आस पास मालवा, गुजरात आदि के शकवंशी क्षत्रप राजा रुद्रदामा ने यौद्धेयों को हराया, उस समय भी ये लोग बड़े लड़ने वाले माने जाते थे. गुप्तवंशी राजा समुद्रगुप्त के समय में भी ये लोग प्रबल थे ऐसा उक्त राजा के लेख से पाया जाता है. ये पंजाब से आगे बढ़कर गुजरात और राजपूताना तक फैल गये थे. भरतपुर राज्यान्तर्गत बयाना के प्रसिद्ध क़िले (विजयमंदिरगढ़) में एक लेख यौद्धेयों का मिला है. इन के कई प्रकार के तांबे के सिक्के भी मिले हैं. अब जोहिये पंजाब में ही पाये जाते हैं. ये अपने को चंद्रवंशी बतलाते हैं.

२५०—मालण-चौहानों की एक शाखा है, और राजपूताना में मालण कहीं कहीं मिल आते हैं.

२५१—मोहिल-यह जाति भी अब नष्ट सी है. मोहिल और मालण भिन्न भिन्न वंश हैं, एक नहीं, जैसा कि टॉड साहिब अनुमान करते हैं.

२५२—निकुंप वंश—निकुंभ या निकुंपा सूर्यवंशी राजपूत हैं. वे अपनी उत्पत्ति सूर्यवंशी राजा निकुंभ से मानते हैं. निकुंभवंशी राजा चाहुमान के हैहय (कलचुरी) वंशी राजा तालजंघ से हार कर सिन्धु नदी के तट पर जा बसने, और एक ऋषि की कृपा से अपना गया हुआ राज्य फिर प्राप्त करने का उल्लेख मिलता है., खान देश जिले (बंबई के इहाते में) के पाटणा गांव से मिले हुए दो लेखों में जो शक संवत् १०७५ (वि० सं० १२१०= ई० स० ११५३), और ११२८ (वि० सं० १२६३=ई० स० १२०७) के हैं, निकुंभ वंशियों का वृत्तान्त इस तरह मिलता है :—

सूर्य वंश में राजा निकुंभ हुआ, जिस के वंश में मांधाता, सगर, भगीरथ आदि राजाओं ने जन्म लिया, उसी वंश में नीचे लिखे राजा हुए.

१—कृष्णराज.
२—गोवन (नं० १ का पुत्र).
३—गोविन्दराज (नं० २ का पुत्र).
४—गोवन दूसरा (नं० ३ का पुत्र).
५—कृष्णराज दूसरा (नं० ४ का पुत्र).
६—इन्द्रराज (नं० ५ का पुत्र)—इस की राणी श्री देवी राजा सगर के वंश की थी, और इस का प्रधान चंगदेव था.
७—गोवन तीसरा (नं० ६ का पुत्र)—शक सं० १०७५ (वि० सं० १२१०=ई० स० ११५३) में विद्यमान था.
८—सोई देव (नं० ७ का पुत्र ?)—यह देवगिरि के यादवों का सामन्त, और १६०० गावों का स्वामी था. इस ने चंगदेव की स्थापित की हुई ज्योतिष की पाठशाला की सहायता के लिये बहुत से रुपये और भूमि भेट की थी. चंगदेव शांडिल्य गोत्र के त्रिविक्रम भट्ट नामी कवीश्वर का जिस को उज्जैन के राजा भोज ने 'विद्यापति' की पदवी दी थी और जिस ने दमयन्ती कथा की रचना की थी, वंशज था. त्रिविक्रम का पुत्र भास्कर भट्ट, उस का मनोहर, और उस का महेश्वराचार्य हुआ,

जिस का पुत्र सिद्धान्तशिरोमणि आदि का कर्त्ता प्रसिद्ध भास्कराचार्य हुआ. भास्कराचार्य का पुत्र लक्ष्मीधर हुआ, जिस का पुत्र यह चंगदेव देवगिरि के यादव राजा सिंघण के दर्बार का मुख्य ज्योतिषी था. चंगदेव ने अपने दादा के सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिये ज्योतिष की एक पाठशाला स्थापन की थी. सोई देव का छोटा भाई हेमाद्रिदेव था, जो अपने भाई का उत्तराधिकारी हुआ हो.

खानदेश के अतिरिक्त राजपूताना में भी निकुंभों का कुछ अधिकार था. अलवर और जयपुर राज्य के उत्तरी विभाग के कईएक क़िलों के बनाने वाले निकुंभ वंशी माने जाते हैं. आभानेर नगर इन की राजधानी बतलाई जाती है. प्रथम जयपुर की तरफ़ का इन का इलाक़ा मुसल्मानों ने छीन लिया, तो भी ये अलवर की तरफ़ के अपने इलाक़े के स्वामी बने रहे, परन्तु लोदियों के समय में इन का अलवर का इलाक़ा भी मुसल्मानों के हाथ में चला गया. अब इन का कोई बड़ा राज्य नहीं रहा, केवल ज़मींदारी रह गई है. हरदोई इलाक़े में इन का एक ठिकाना है, जहां के ज़मींदार अपना मूल स्थान अलवर का इलाक़ा बतलाते हैं. अवध के तअल्लुक़ेदारों में भी एक निकुंभवंशी है. अवध में इन को रघुवंशी भी कहते हैं. गोरखपुर, आज़मगढ़, जौनपुर, और ग़ाज़ीपुर आदि ज़िलों में निकुंभवंशी राजपूत हैं. इन की एक शाखा सिरनेत नाम से प्रसिद्ध है.

२५३—टॉड साहिब ने राजपाली का अर्थ राजकीय गडरिया किया है, जो यथार्थ नहीं है. कहीं पालिक या पाली नाम भी मिलता है, जो शायद बंगाल के पालवंशियों का सूचक हो, जिन की वंशावली हम आगे लिखेंगे.

२५४—दाहिर—सिन्ध के इतिहास चाचनामे से पाया जाता है कि दाहिर सिन्ध के राजा श्रीहर्ष (सिहरस) के ब्राह्मण मंत्री चाच का पुत्र था, जो (चाच) उक्त राजा के मरने पर उस के राज्य का मालिक बन बैठा था. ख़लीफ़ा अब्दुलमलिक के सेनापति मुहम्मद-बिन् क़ासिम ने दाहिर को परास्त कर मारा तब से सिन्धपर मुसल्मानों का अधिकार हुआ.

२५५—दाहिर—उपर्युक्त राजा का नाम था, जाति का नाम नहीं.

२५६—कैमास का वृत्तान्त पृथ्वीराजरासे में मिलता है, परन्तु उस की सत्यता में सन्देह है. कैमास को वहां दाहिमा लिखा है. दाहिमे राजपूत और ब्राह्मण दोनों हैं. कईएक दाहिमा ब्राह्मण जो अपनी उत्पत्ति के वास्तविक इतिहास से अज्ञ हैं, अपने को दधीच ऋषि की सन्तान बतलाते हैं, परन्तु मारवाड़ में गोठमांगलोद के आसपास का प्रदेश दधिमती देवी के नाम से दधिमती मंडल कहलाता था, जहां के समस्त निवासी (ब्राह्मण, राजपूत आदि) उक्त स्थान के नाम से दाहिमे कहलाये, जैसे कि श्रीमाल (भीनमाल—मारवाड़ में) के ब्राह्मण, बनिये आदि श्रीमाली ब्राह्मण, श्रीमाली बनिये आदि कहलाये.

२५७—चावंडराय दाहिमा था अथवा अन्य वंश का यह सन्दिग्ध है.

२५८—पृथ्वीराजरासे में पृथ्वीराज के पुत्र का नाम रेणसी दिया है, जो विश्वास योग्य नहीं है, क्योंकि हम्मीर महाकाव्य तथा अन्य नामावलियों में उस का नाम गोविन्दराज मिलता है, जो अधिक विश्वासयोग्य है.

टॉडसाहिब ने अपने 'राजस्थान' के सातवें प्रकरण के प्रारंभ में छत्तीस वंशों की ६ नामावलियां दी हैं, उन में से कितने एक वंशों के नाम उन्हीं ने अपनी शुद्ध की हुई नामावली में दर्ज नहीं किये, परन्तु उन के राज्य प्राचीनकाल में थे, और अब भी उन के अस्तित्व का पता लगता है, इस लिये हम उन का यहां पर कुछ उल्लेख करते हैं:—

सेपट वंश —(प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक से उद्धृत की हुई नामावली में नं० १६ पर)—यह वंश इस समय नष्टप्राय हो चुका है. सिरोही राज्य में एक सेपट राजपूत से हमारा मिलना हुआ था, जिस को वहां के लोग सेपटा राजपूत कहते थ.

अभीरवंश—(चन्द बरदाई की पुस्तक से उद्धृत की हुई नामावली में नं० २० पर)—अभीर या अहीर एक प्राचीन पशुपालक कौम है. पुराणोंमें १० अभीर राजाओं के होने का उल्लेख मिलता है, जिन

का राजत्वकाल वायुपुराण में ६७ वर्ष दिया है. प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता टालेमी अबीरिया (उत्तरी सिन्ध, और मुल्तान) देश का नाम लिखता है, जो इसी जाति के नाम का सूचक है. नासिक के पास त्रिरश्मी पर्वत की गुफा में, जो पांडवगुफा के नाम से प्रसिद्ध है, राजा शिवदत्त अभीर के पुत्र ईश्वरसेन का लेख है, जिस की लिपि ई० सन् की तीसरी शताब्दि के आसपास की है. हिन्दुस्तान के अलग अलग हिस्सों में अभीरों का समय समय पर राज्य रहा हो ऐसा अनुमान होता है. काठियावाड़ आदि के क्षत्रपवंशी राजा स्वामि रुद्र सिंह के समय के शक सं० १०३ (वि० सं० २३८= ई० सन् १८१) के लेख से पाया जाता है कि उस का सेनापति अभीरवाहक का पुत्र रुद्रभूति था, जिस ने रसोपद्र गांव (जामनगर राज्य में) में जलाशय बनवाया था. गुप्तवंशी राजा समुद्रगुप्त के लेख में उस का अभीरों से कर लेना लिखा मिलता है. देवगिरि के यादव राजा सिंघण के ब्राह्मण सेनापति खोलेश्वर ने अभीर राजवंश को नष्ट किया ऐसा उक्त राजा के समय के एक शिलालेख से पाया जाता है. अबुलफ़ज़्ल ने अपनी किताब आईने अकबरी में काठी और अहीरों को मिलते हुए बतलाये हैं. वह लिखता है कि " सोरठ ज़िले में कई काठी हैं, जो ज़ात के अहीर हैं. वे घोड़े पालते हैं, और उन की फ़ौज ६००० सवार, और ६०० पैदलों की है." अभीर (अहीर) लोग अपनी उत्पत्ति सिन्ध के सुमरा खानदान से बतलाते हैं. इस समय उन का विवाह संबन्ध राजपूतों के साथ नहीं होता, परन्तु उन का कथन है कि पहिले हमारा संबन्ध राजपूतों में होता था. ये लोग अबतक हिन्दुस्तान के भिन्न भिन्न प्रदेशों में बसते हैं, परन्तु इन का मुख्य स्थान अहीरवाड़ा (झांसी और भेलसा के उत्तर का प्रदेश) है.

कलचुरी या हैहयवंश—(चंदबरदाई की पुस्तक से उद्धृत की हुई नामावली में नं० ३० पर)—कलचुरी या हैहयवंशी प्राचीनकाल में बड़े प्रसिद्ध थे. ये चन्द्रवंशी क्षत्री हैं. इन की उत्पत्ति के विषय

में ऐसा लिखा मिलता है, कि 'चन्द्रवंशी राजा पुरुरवा के वंश में १०० से अधिक अश्वमेध करनेवाला राजा भरत हुआ, उस का वंशज कार्तवीर्य अपने समय में अद्वितीय राजा हुआ, जिस से हैहय अर्थात् कलचुरी वंश चला.' कार्तवीर्य की राजधानी माहिष्मती नगरी नर्मदा के तट पर थी. फिर उस के वंशजों का राज्य चेदी देश, गुजरात, दक्षिण आदि पर रहा था. कलिंजर के क़िले के स्वामी होने के कारण इस वंश के कई राजाओं का ख़िताब 'कलिंजराधिपति' मिलता है. इन का दूसरा ख़िताब 'त्रिकलिंगाधिपति' भी मिलता है. त्रिकलिंग तिलंगाना देश का सूचक होने से अनुमान होता है कि किसी समय उस देश पर भी इन का आधिपत्य रहा हो. इस वंश के राजाओं ने अपना स्वतंत्र संवत् भी चलाया था, जो कलचुरी संवत् कहलाता था. उक्त संवत् का प्रारंभ वि० सं० ३०६ आश्विन शुक्ला १ से हुआ था (कलचुरी संवत् के लिये देखो प्राचीन लिपिमाला पृ० ३३-३४), और उस का प्रचार किसी क़दर १००० वर्ष तक रहा था. हैहय-वंशियों का प्राचीन इतिहास शृंखलाबद्ध नहीं मिलता, परंतु आधुनिक शोध से जो कुछ ज्ञात हुआ है, उस के अनुसार उन की वंशावलियां नीचे दर्ज की जाती हैः—

(१) लाट देश के हैहयवंशी (कलचुरी).

१ कृष्णराज.

२ शंकरगण (नं० १ का पुत्र).

३ बुद्धराज (नं० २ का पुत्र)—बादामी के सोलंकी राजा मंगलीश ने इस को परास्त किया था. इस का एक दानपत्र कलचुरी संवत् ३६१ (वि० सं० ६६७=ई० स० ६१०) का मिला है.

इन हैहयवंशी राजाओं के आधीन गुजरात का लाट प्रदेश था. बुद्धराज के बाद करीब २५० वर्ष का इन का कुछ भी वृत्तान्त नहीं मिलता.

(२) त्रिपुरी (चेदीदेश) के हैहयवंशी (कलचुरी).

१ कोकल्लदेव—इस राजा के विषय में लिखा मिलता है कि, यह शास्त्र-

वेत्ता, धर्मात्मा, परोपकारी, दानी, और योगाभ्यासी था. इस ने भोज (कन्नौज का पड़िहार राजा) 'वल्लभराज (दक्षिण का राठौड़ राजा कृष्णराज दूसरा)' श्रीहर्ष (चंदेल), और शंकरगण को निर्भय किया था. इस की पुत्री का विवाह उपर्युक्त दक्षिण के राठौड़ राजा कृष्णराज दूसरे के साथ हुआ था. इस के १८ पुत्र थे. इस राजा का समय वि० सं० ९२०, (ई० सन् ८६३) और ९६० (ई० सन् ९०३) के बीच स्थिर होता है.

२ मुग्धतुंग (नं० १ का पुत्र)-इस का खिताब 'प्रसिद्ध धवल' मिलता है.

३ बालहर्ष (नं० २ का पुत्र).

४ युवराजदेव (नं० ३ का छोटा भाई)—इस को केयूरवर्ष भी कहते थे. इस की राणी नोहला सोलंकी अवनिवर्मा की पुत्री थी. इस की पुत्री कुंदक देवी का विवाह दक्षिण के राठौड़ राजा अमोघवर्ष तीसरे से हुआ था, और उसी से खोट्टिक का जन्म हुआ था.

५ लक्ष्मण (नं० ४ का पुत्र)—पश्चिम की विजययात्रा में शत्रुओं को विजय करता हुआ यह राजा समुद्रतट तक पहुंचा, और उस में स्नान कर इस ने सुवर्ण कमलों से सोमेश्वर (सोमनाथ—काठियावाड़ के दक्षिणी समुद्र तट पर) का पूजन किया, और ओड़् के राजा से ली हुई रत्नजटित सुवर्णमय कालीय(नाग) की मूर्त्ति, हाथी, घोड़े, सुन्दरवस्त्र, माला, और चन्दन आदि सोमेश्वर (सोमनाथ) के अर्पण किये थे. इस की राणी का नाम राहडा था. इस की पुत्री बोंथादेवी का विवाह दक्षिण के सोलंकी (पश्चिमी) राजा विक्रमादित्य (चौथे) से हुआ था, जिस के पुत्र तैलप ने राठौड़ कक्कल (कर्कराज) का राज्य छीना था.

६ शंकरगण (नं० ५ का पुत्र).

७ युवराजदेव दूसरा (नं० ६ का छोटा भाई)-मालवा के परमार राजा मुंज ने इस पर चढ़ाई कर इस के सेनापति को मारा था, ऐसा परमारों के लेखों से पाया जाता है.

८ कोकल्ल दूसरा (नं० ७ का पुत्र).

९ गांगेयदेव (नं० ८ का पुत्र)—यह राजा बड़ा प्रतापी हुआ. इस के सोने, चांदी और तांबे के सिक्के मिले हैं. इन सिक्कों की शैली का अनुकरण कन्नौज के राठौड़ों, महोबा के चंदेलों, शहाबुद्दीन गौरी तथा कुमारपाल, अजयदेव आदि राजाओं ने किया था. इस राजा ने विक्रमादित्य नाम धारण किया था, और कलचुरियों के लेखों में इस की वीरता की बहुत कुछ प्रशंसा मिलती है. यह चंदेल राजा विजयपाल से लड़ा था. इस ने (अंत समय) प्रयाग के प्रसिद्ध वट (अक्षयवट) के पास रहना इख्तियार किया था, वहां पर उस का देहान्त हुआ, और १०० राणियां इस के साथ सती हुई. इस के समय का एक लेख कलचुरी संवत् ७८६ (वि० सं० १०९४ = ई० सन् १०३७) का मिला है.

१० कर्णदेव (नं० ९ का पुत्र)—यह भी बड़ा ही वीर प्रकृतिवाला राजा था, और कई राजाओं से लड़ा था. इस ने अपने नाम पर कर्णावती नगर बसाया था, जिस के खंडहर मध्यप्रदेश में कारी तलाई के निकट होना अनुमान किया जाता है. इस ने काशी में कर्णमेरु नामक मन्दिर बनवाया. प्रबन्धचिन्तामणि में इस की माता का नाम देमती होना, और इस की सेवा में १३६ राजाओं का रहना लिखा है. इस ने भोज की राजधानी धारा नगरी पर चढ़ाई की, उसी समय भोज का देहान्त हुआ, और परमार राजा उदयादित्य ने अपने राज्य का उद्धार किया. इस की राणी आवल्लदेवी हूण जाति की थी जिस से यशःकर्ण का जन्म हुआ. कर्ण ने बहुत बरसों तक राज्य किया हो ऐसा अनुमान होता है. इस राजा के समय का ताम्रपत्र कलचुरी संवत् ७९३ (वि० सं० १०९९ = ई० स० १०४२) का मिला है.

११ यशःकर्णदेव (नं० १० का पुत्र)—इस ने आंध्र के राजा को गोदावरी के तट पर परास्त कर बहुत से आभूषण भीमेश्वर महादेव (गोदावरी ज़िले के दक्षाराम में) अर्पण किये. इस के राज्य प ये पूर्व ही राठौड़ चन्द्रदेव ने कन्नौज पर अपना अधिकार जमा लिया था, और राठौड़ लोग इस के समय में कलचुरियों का राज्य

दबाने लग गये थे. इस का एक ताम्रपत्र कलचुरी वा चेदी सं० ८७४ (वि० सं० ११७६ = ई० स० ११२२) का मिला है.

१२ गयकर्णदेव (नं० ११ का पुत्र)—इस का विवाह मेवाड़ के गुहिल राजा विजय सिंह की पुत्री आल्हणदेवी से हुआ था, जिस से नरसिंहदेव और जयसिंहदेव नामक दो पुत्रों का जन्म हुआ था.

१३ नरसिंहदेव (नं० १२ का पुत्र)—पृथ्वीराज विजय काव्य से पाया जाता है कि अजमेर के प्रसिद्ध चौहान राजा सोमेश्वर का विवाह त्रिपुरी के राजा की पुत्री कर्पूरदेवी से हुआ था, जिस से पृथ्वीराज और हरिराज उत्पन्न हुए थे. उक्त काव्य में त्रिपुरी के राजा का नाम नहीं लिखा, परन्तु समय देखते हुए कर्पूरदेवी नरसिंहदेव की पुत्री या बहिन होना अनुमान किया जा सकता है. इस के समय के तीन शिलालेख मिले हैं, जिन में से दो चेदी सं० ९०७ और ९०९ (वि० सं० १२१२ और १२१५ = ई० स० ११५५ और ११५८) के, और तीसरा वि० सं० १२१६ (ई० स० ११५९) का है.

१४ जयसिंहदेव (नं० १३ का छोटा भाई)—इस की राणी गोसलादेवी से विजयसिंहदेव का जन्म हुआ. इस के समय के दो लेख चेदी सं० ९२६ और ९२८ (वि० सं० १२३२ और १२३४ = ई० स० ११७५ और ११७७) के मिले हैं.

१५ विजयसिंहदेव (नं० १४ का पुत्र)—इस के समय के दो ताम्रपत्र चेदी संवत् ९३२ (वि० सं० १२३७=ई० स० ११८०) और वि० सं० १२५३ (ई० स० ११९६) के मिले हैं.

१६ अजयसिंह (नं० १५ का पुत्र).
त्रैलोक्यवर्मदेव (अनिश्चित).

अजयसिंहदेव तक त्रिपुरी के हैहयवंशी राजाओं की शृंखलाबद्ध वंशावली मिलती है. त्रैलोक्यवर्म का वि० सं० १२९८ (ई० स० १२४१) में विद्यमान होना पाया जाता है.

इन हैहय (कलचुरी) वंशियों की राजमुद्रा में दो हाथियों के बीच

चतुर्भुज लक्ष्मी की मूर्त्ति पाई जाती है. ये लोग शिवउपासी थे, और इन की ध्वजा पर वृष का चिन्ह रहता था

---

(२) दक्षिण कोशल के कलचुरी (हैहयवंशी).

उपर्युक्त चेदी के राजा कोकल्ल के १८ पुत्रों में से सब से बड़ा मुग्धतुंग तो चेदी देश का राजा हुआ, और दूसरों को अलग २ जागीरें मिलीं. उन में से एक के वंशज कलिंगराज ने दक्षिण कोशल (महाकोशल-देखो ऐतिहासिक ग्रन्थमाला जिल्द १ पृष्ठ ३०) पर राज्य जमाया, और उस के वंशज स्वतंत्र राजा हुए, जिन की वंशावली नीचे लिखे अनुसार मिलती है:—

१ कलिंगराज (चेदी के राजा कोकल्ल का वंशज)—इस ने दक्षिण कोशल देश प्राप्त कर तुम्माणनगर को अपनी राजधानी बनाया.

२ कमलराज (नं० १ का पुत्र).

३ रत्नराज या रत्नदेव (नं० २ का पुत्र)—इस ने तुम्माण में रत्नेश का मंदिर बनवाया, और अपने नाम से रत्नपुरनगर बसाया, जो उस के वंशजों की राजधानी हुई. इस का विवाह कोमोमंडल के राजा वज्जूक की पुत्री नोनल्ला से हुआ था, जिस से पृथ्वीदेव पैदा हुआ.

४ पृथ्वीदेव (नं० ३ का पुत्र)—इस ने कई यज्ञ किये, और तुम्माण में पृथ्वीश्वर का मंदिर, और रत्नपुर में एक तालाव बनवाया. इस की राणी राजल्ला से जाजल्लदेव का जन्म हुआ.

५ जाजल्लदेव (नं० ४ का पुत्र)—इस ने कई राजाओं को अपने आधीन किया, और अपने नाम से जाजल्लपुर बसा कर उस को मठ, बाग, और जलाशय सहित एक शिवमंदिर से सुशोभित किया, और दो गाव उक्त मंदिर के भेंट किये. रत्नपुर के कलचुरी (हैहय) वंशियों में यह प्रतापी और स्वतंत्र राजा हुआ. इस की राणी सोमलदेवी थी. इस राजा के तांबे के सिक्के मिले हैं. इस के समय का एक लेख चेदी सं० ८६६ (वि० सं० ११७१=ई० स० १११४) का रत्नपुर से मिला है

६ रत्नदेव दूसरा (नं० ५ का पुत्र)—इस ने कलिंग देश के राजा चोडगंगदेव को जीता. इस के (?) तांबे के सिक्के मिले हैं.
७ पृथ्वीदेव दूसरा (नं० ६ का पुत्र)—इस के सोने और तांबे के सिक्के (?) मिले हैं. इस के समय के दो शिलालेख चेदी सं० ८९६ और ९१० (वि० सं० १२०२ और १२१६ = ई० स० ११४५ और ११५९) के मिले हैं.
८ जाजल्लदेव दूसरा (नं० ७ का पुत्र)—इस के समय का एक लेख चेदी सं० ९१९ (वि० सं० १२२४ = ई० स० ११६७) का मिला है.
९ रत्नदेव तीसरा (नं० ८ का पुत्र)—यह वि० सं० १२३८ (ई० स० ११८१) में विद्यमान था.
१० पृथ्वीदेव तीसरा (नं० ९ का पुत्र ?)—यह वि० सं० १२४७ (ई० स० ११९०) में विद्यमान था.

पृथ्वीदेव तीसरे के पीछे का रत्नपुर के हैहयवंशियों का कुछ भी पता नहीं चलता.

---

(३) कल्याण के कलचुरी (हैहय) वंशी.

कल्याण के कलचुरियों का भी डाहल देश से दक्षिण में जाना लिखा मिलता है, अतएव उन्हें भी चेदी के कलचुरियों के वंशज मानना चाहिये. बिज्जल के समय के हरिहर नामक स्थान (माइसोर में) के लेख से पाया जाता है कि डाहल के कलचुरी राजा कृष्ण के वंशज कन्नम (कृष्ण) के दो पुत्र बिज्जल और सिंदराज हुए, जिन में से बड़ा अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ. सिंदराज के चार पुत्र अम्मुगि, शंकवर्मा, कन्नर और जोगम थे, जिन में से अम्मुगि, और जोगम एक दूसरे के बाद राजा हुए, अतएव जोगम से वंशावली उद्धृत की जाती है.

१ जोगम.
२ पेर्माडि या परमर्दि (नं० १ का पुत्र)—यह सोलंकी सोमेश्वर (तीसरे) का सामन्त था, और वि० सं० ११८५ (ई० स० ११२८) में विद्यमान था.

३ विज्जल (नं० २ का पुत्र)—यह प्रथम उपर्युक्त सोलंकी राजा सोमेश्वर (तीसरे) के उत्तराधिकारी जगदेकमल्ल (दूसरे) का सामन्त, और उस के देहान्त के बाद उस के छोटे भाई तैल (तीसरे) का सामंत रहा. तैल ने इस को अपना सेनापति बनाया, जिस से इस का अधिकार बढ़ता गया, और अंत में यह तैल के दूसरे सामन्तों को अपने पक्ष में लेकर उस (तैल) के राज्य का मालिक बन कल्याण के राज्यसिंहासन पर आरूढ़ हो गया (जिस के पूर्व इन कलचुरियों के आधीन बीजापुर ज़िले का कुछ अंश था). यह घटना वि० सं० १२१४ (ई० स० ११५७) और १२१९ (ई० स० ११६२) के बीच हुई. विज्जल ने सोलंकियों का प्रबल राज्य छीनने के पश्चात् त्रिभुवनमल्ल, भुजबलचक्रवर्ती, परमभट्टारक आदि ख़िताब धारण किये. तैल कल्याण को छोड़ अरणोगिरि (धारवाड़ ज़िले में) में जा रहा. विज्जल ने वहां भी उस का पीछा किया, जिस से वह वनवासी की तरफ़ जा रहा. विज्जल के राज्य में जैनधर्म का प्रचार अधिक था, जिस को नष्ट कर शैवमत को पीछा दृढ़ करने की इच्छा से बसव नामक ब्राह्मण ने वीरशैव (लिंगायत) नामक पंथ चलाया. जिस के अनुयायी वीरशैव (लिंगायत)और उपदेशक जंगम कहलाने लगे. विज्जल ने उस (बसव) को अपना मंत्री बनाया, परन्तु वह राज्य का बहुत सा द्रव्य जंगमों के निर्वाहार्थ ख़र्च करने लगा, जिस पर विज्जल उस से अप्रसन्न हुआ, इस कारण उस के भेजे हुए तीन पुरुषों ने राजमंदिर में प्रवेश कर सभा में बैठे हुए विज्जल को मारडाला. विज्जल के पांच पुत्र सोमेश्वर, संकम, आहवमल्ल, सिंहण, और वज्रदेव तथा एक कन्या सिरियादेवी थी. विज्जल वि० सं० १२२४ (ई० स० ११६७) में मारा गया था.

४ सोमेश्वर (नं० ३ का पुत्र)—इस की राणी सावलदेवी संगीत विद्या में बड़ी ही निपुण थी. उसने एक दिन राजसभा में अपनी संगीत विद्या की निपुणता प्रकट कर सभा को रंजित की. उस के इस विशेष गुण से प्रसन्न होकर सोमेश्वर ने उस को भूमिदान

करने की आज्ञा दी, ऐसा उस के दानपत्र से पाया जाता है. उस समय संगीतविद्या की कितनी अधिक प्रतिष्ठा थी यह स्पष्ट जाना जाता है (मुसल्मानों के समय में कुलीन स्त्रियों में से संगीत विद्या लुप्त हो गई इतना ही नहीं, किन्तु कहीं २ तो यह विद्या उन के लिये दूषण मानी जाने लगी).

५ संक्रम (नं० ४ का छोटा भाई).

६ आहवमल्ल (नं० ५ का छोटा भाई).

७ सिंघण (नं० ६ का छोटा भाई).

वि० सं० १२४० (ई० स० ११८३ के आसपास सोलंकी राजा तैल (तीसरे) के पुत्र सोमेश्वर ने अपने सेनापति ब्रह्म की सहायता से अपने पूर्वजों का गया हुआ राज्य फिर कलचुरियों से छीन लिया, और कल्याण में फिर से सोलंकियों का राज्य हो गया. सिंघण के पीछे के किसी कलचुरी राजा का लेख अब तक नहीं मिला.

मौखरीवंश (वंशावली नं० ३ में). मौखरी (मौखर) एक बहुत प्राचीन राजवंश है. जेनरल कनिंगहम साहिब को एक मिट्टी की मुद्रा गया से मिली थी, जिस पर अशोक के समय की लिपि में 'मोखलीणं' (मोखरीणं) पढ़ा गया है, जिस से इस वंश का बहुत प्राचीनकाल से होना पाया जाता है, परन्तु गुप्तों के पूर्व इन के किसी राज्य का पता नहीं चलता. मौखरी पहिले गुप्तों के सामन्त रहे हों और गुप्तराज्य की अवनति होने पर स्वतंत्र हो गये हों ऐसा अनुमान होता है. गौडवहो काव्य में कन्नौज के राजा यशोवर्मा का चंद्रवंशी होना लिखा है, जिस से मौखरियों का चंद्रवंशी होना पाया जाता है. प्रसिद्ध बाण-भट्ट ने अपने श्रीहर्षचरित में इस वंश के क्षत्रियों को राजाओं के शिरोमणि कहा है. आसिरगढ से मिली हुई इस वंश के राजा शर्ववर्मा की मुद्रा पर नंदी की मूर्ति बनी है, जिस से इन का शिवभक्त होना पाया जाता है. उक्त मुद्रा में इन की वंशावली नीचे लिखे अनुसार मिलती है:—

१ हरिवर्मा—इस की राणी जयस्वामिनी से आदित्यवर्मा उत्पन्न हुआ था.

२ आदित्यवर्मा (नं० १ का पुत्र) - इस की राणी हर्षगुप्ता से ईश्वरवर्मा का जन्म हुआ था. हर्षगुप्ता शायद मगध के गुप्तवंशी राजा हर्षगुप्त की बहिन या पुत्री हो.

३ ईश्वरवर्मा (नं० २ का पुत्र)—इस की राणी का नाम उपगुप्ता था. इस के समय का एक शिलालेख जौनपुर से मिला है. उपर्युक्त तीनों राजाओं का खिताब ' महाराज ' मिलता है.

४ ईशानवर्मा (नं० ३ का पुत्र)—इस का खिताब ' महाराजाधिराज ' मिलता है, जिस से इस का विशेष प्रतापी होना अनुमान किया जा सकता है. इस ने मगध के राजा कुमारगुप्त पर हमला किया था, परन्तु उस में इस की हार हुई ऐसा मगध के गुप्तों के एक लेख से पाया जाता है. इस की राणी लक्ष्मीवती से शर्ववर्मा का जन्म हुआ था. इस के आधीन पश्चिमी मगध तथा उस के पश्चिम तथा उत्तर का बहुत सा देश हो यह संभव है. इस के चांदी के सिक्के मिलते हैं. ईशानवर्मा जीवितगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त का प्रतिपक्षी था, अतएव इस का समय वि० सं० ६०० के आसपास होना चाहिये.

यहां तक की वंशावली उपर्युक्त मुद्रा से ली गई है.

५ शर्ववर्मा (नं० ४ का पुत्र)—यह मगध के राजा दामोदरगुप्त का समकालीन था. इस के चांदी के सिक्के मिलते हैं.

६ सुस्थिरवर्मा (नं० ५ का उत्तराधिकारी ?)

७ अवंतीवर्मा—इस की राजधानी कन्नौज थी.

८ ग्रहवर्मा (नं० ७ का पुत्र)—इस का विवाह थाणेश्वर के वैसवंशी राजा प्रभाकर वर्द्धन की पुत्री राज्यश्री से हुआ था. मालवा के राजा (देवगुप्त) ने इस (गृहवर्मा) पर चढ़ाई कर इसे मारडाला और इस की राणी राज्यश्री के पैरों में बेड़ियां डालकर इसे कैद कर दी थी. थाणेश्वर के वैसवंशी राजा राज्यवर्द्धन ने अपने बहनोई का बदला लेने के लिये मालवे पर चढ़ाई कर वहां के राजा को परा

स्त किया, परन्तु वह लौटते समय गौड के राजा द्वारा विश्वासघात से मारा गया (देखो ऊपर बैस राजपूतों का हाल).

भोगवर्मा—इस का विवाह मगध के गुप्तवंशी राजा आदित्यसेन की पुत्री से हुआ था.

यशोवर्मा—गौडवहो काव्य में इस राजा का वृत्तान्त मिलता है. इस की राजधानी क़न्नौज थी, और इस की राज्यसभा में महाकवि भवभूति और वक्पतिराज आदि विद्वान थे. कश्मीर के राजा ललितादित्य ने क़न्नौज पर चढ़ाई की, जिस में यह (यशोवर्मा) मारा गया. इस के बाद का मौखरियों का कुछ भी हाल नहीं मिलता. बराबर तथा नागार्जुन की गुफाओं (विहार में) के लेखों से नीचे लिखे हुए राजाओं का पता लगता है:—

१ यज्ञवर्मा.

२ शार्दूलवर्मा (नं० १ का पुत्र).

३ अनंतवर्मा (नं० २ का पुत्र).

इस वक्त मोखरियों का कोई राज्य नहीं रहा.

मौर्य (मोरी) वंश (वंशावली नं० ४). मौर्यवंशी की उत्पत्ति के विषय में ऐसा प्रसिद्ध है कि नंदवंश के राजा महानंद की मुरा नामक शूद्र (नाई) जाति की राणी से चन्द्रगुप्त उत्पन्न हुआ, जो अपनी माता के नाम पर मौर्य (मोरी) कहलाया, और उस का वंश मौर्य (मोरी) वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ; परन्तु इस कथा का उल्लेख पुराण, महावंश, कथासरित्सागर, मुद्राराक्षस नाटक आदि ग्रन्थों में कहीं नहीं मिलता, अतएव संभव है कि इस कथा की प्रसिद्धि पीछे से हुई हो. हम इस कथा पर विश्वास नहीं कर सकते. वेदधर्मावलंबियों ने मौर्यों को शूद्र लिखा है, जिस का कारण यह अनुमान किया जाता है, कि मौर्यों ने ब्राह्मणों का विरोध कर बौद्धधर्म की सहायता की, और ब्राह्मणों के धर्म को उस से बड़ी हानि पहुंची, इसी से उन्हों ने उन को शूद्र लिख दिया हो. प्राचीन बौद्ध ग्रन्थकारों के लेखों से पाया जाता है

कि मौर्यों का वंश वही वंश था, जिस में बुद्धदेव का जन्म हुआ था. इस से तो मौर्यों का शाक्यवंशी, अर्थात् सूर्यवंशी होना पाया जाता है. बौद्ध ग्रन्थों में यह भी लिखा मिलता है कि 'चंद्रगुप्त का पिता हिमालय प्रदेश के एक छोटे से राज्य का स्वामी था, जो (राज्य) मोर पक्षियों की अधिकता के कारण मौर्य राज्य कहलाता था.' राजपूतों के आचरण के विरुद्ध मौर्यों में मोरपक्षी को खाने का रवाज अधिकता के साथ होना पाया जाता है जो उक्त लेख की पुष्टि करता है (अशोक ने हिंसा करना छोड़ दिया उस समय भी वह मोर का मांस प्रतिदिन खाता था, ऐसा उस की पार्वतीय प्रथम आज्ञा से पाया जाता है). ऐसी दशा में मुरा की कथा विश्वास योग्य नहीं हो सकती. मौर्यवंश का प्रताप सब राजवंशों से अधिक बढ़ा, और उक्तवंश के राजा चंद्रगुप्त तथा अशोक का नाम द्वीपान्तर में भी प्रसिद्ध हुआ. टॉड साहिब ने वंशवृक्ष दूसरे में मगध के चौथे राजवंश में मौर्यों की वंशावली दी है, परन्तु उन्हों ने अपनी तय्यार की हुई ३६ वंशों की नामावली में इस की गणना नहीं की, किन्तु इस वंश को परमारों की एक शाखा होना माना है. इस विषय में हम उन से सहमत नहीं हैं. परमारवंश की प्रसिद्धि से बहुत ही पूर्व मौर्यवंश बड़ी प्रसिद्धि पाचुका था, और परमारों से उस का कुछ भी सम्बन्ध पाया नहीं जाता. वायु, मत्स्य, ब्रह्मांड, विष्णु तथा भागवत पुराणों में इस वंश के राजाओं की नामावली मिलती है. राजवंश के प्रकरण में उक्त वंश के राजाओं की नामावली रहना उचित जान कर हम उसे नीचे उद्धृत करते हैं :—

१ चंद्रगुप्त—यह मौर्यवंश के प्रबलराज्य का संस्थापक हुआ, और नंदवंशियों का राज्य छीन कर वि० सं० से २६४ वर्ष पूर्व (ई० स० से ३२१ वर्ष पूर्व) पाटलीपुत्र (पटना-बिहार में) की गद्दी पर बैठा. इस की आधीनता में सारा उत्तरी हिन्दुस्तान था. जिस समय सिकन्दर बादशाह पंजाब में था उस समय से ही यह अपने राज्य की नींव डालने का प्रबन्ध कर रहा था, और उस के लौटते ही इस ने पंजाब आदि में से यूनानियों को निकालकर उन प्रदेशों को अपने आधीन किया था. पुराणों में इस का २४ वर्ष राज्य करना लिखा है.

यूनानी ग्रन्थकारों ने इस के पिता का नाई होना लिखा है परन्तु सीलोन के बौद्धों के पुराने ग्रन्थों से इस के पिता का नाई नहीं किन्तु राजा होना पाया जाता है. इस का मुख्य सहायक चाणक्य नामक प्रसिद्ध नीतिज्ञ ब्राह्मण था. सिकन्दर के देहान्त के बाद ई० सन् से पूर्व ३०५ (वि० सं० से पूर्व २४८) के करीब सीरिया का यूनानी बादशाह सेल्युकसनिकेटार हिन्द की सीमा पर चढ़ आया, परन्तु चन्द्रगुप्त से लड़ने में हानि देख कर सिन्धु के उत्तरी हिन्दूकुश पर्वत के पास का अपना सारा देश चन्द्रगुप्त को देकर अपनी बेटी का विवाह इस (चन्द्रगुप्त) के साथ कर दिया, और उस के बदले में ५०० हाथी लेकर पीछा लौट गया. फिर उस ने अपनी तरफ से मैगेस्थिनीज़ नामक पुरुष को अपना एल्ची बना कर चन्द्रगुप्त के दरबार में भेजा, जिस ने हिन्दुस्तान का उस समय का बहुत कुछ हाल लिखा था, परन्तु खेद की बात है कि उस का लिखा हुआ वह अमूल्य ग्रन्थ, जिस का नाम इंडिका था नष्ट हो गया, अब केवल उस में से उद्धृत किये हुए फ़िक़रे ही अन्य लेखकों की पुस्तकों में मिलते हैं.

२ बिन्दुसार (नं० १ का पुत्र)—इस का नाम पुराणों में भद्रसार, और वारिसार भी लिखा मिलता है. सीरिया के बादशाह एंटियोकस सोटर ने अपने एल्चीडेमेकस को, और मिस्र के बादशाह टालमीफिलाडेल्फस ने अपने एल्ची डायोनिसियस को इस के दरबार में भेजा था. इस के १६ राणियां और बहुत से पुत्र थे, जिन में से अशोक इस का उत्तराधिकारी हुआ. बिन्दुसार ने २५ वर्ष राज्य किया.

३ अशोक (नं० २ का पुत्र)—मौर्यों में यह राजा सब से अधिक प्रतापी और करीब करीब सारे हिन्दुस्तान का महाराजाधिराज हुआ. सन् ई० से पूर्व २७२ (वि० स० से पूर्व २१५) में यह अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ, और ई० स० से पूर्व २६९ (वि० सं० से पूर्व २१२) में इस का राज्याभिषेक हुआ. इस ने बौद्धधर्म ग्रहण कर उस की उन्नति के लिये तन, मन, धन से यत्न किया. इस

ने अपनी धर्मसम्बंधी आज्ञाएं प्रजा की जानकारी के निमित्त पार्वतीय चट्टानों तथा पाषाण के बड़े बड़े स्तंभों पर कई स्थानों में खुदवाई थीं, जिन में से शहबाज़गिरि (पंजाब के ज़िले यूसफज़ई में), मान्सेरा (सिन्धु के पूर्व-पंजाब में), खालसी (ज़िले देहरादून में), देहली, वैराट (राजपूताना के जयपुर राज्य में), लोरिया अरराज अथवा रधिया, और लोरिया नवंदगढ़ अथवा मथिया (चंपारन, ज़िला बंगाल में), रामपूर्वा (तराई ज़िला चम्पारन में), वैराट (नेपाल की तहसील बहादुरगंज में), इलाहाबाद, सहसाम (बंगाल के ज़िले शाहाबाद में), रूपनाथ (जबलपुर ज़िले में), सांची (भोपालराज्य में), गिरनार (काठियावाड़ में), सोपारा (बंबई से ३७ मील उत्तर में), धौली (उड़ीसा के ज़िले कटक में), जौगड (मद्रास इहाते के गंजाम ज़िले में), तथा सिद्दापुर (माइसोर राज्य में), आदि स्थानों में मिल चुकी हैं. इन्हीं स्थानों से उस के राज्य के विस्तार का अनुमान हो सकता है. इन आज्ञाओं से पाया जाता है कि "इस राजा ने अपनी पाकशाला में जहां प्रतिदिन सहस्रों जीव भोजनार्थ मारे जाते थे उन को जीवदान देकर केवल दो मोर एक मृग प्रतिदिन मारने की आज्ञा दी; अपने राज्य भर में मनुष्य और पशुओं के लिये औषधालय स्थापित किये, सड़कों पर जगह जगह कुएं खुदवाये, वृक्ष लगवाये, और धर्मशालाएं बनवाईं, अपनी प्रजा में माता पिता की सेवा करने, मित्र, परिचित, संबन्धी, ब्राह्मण तथा श्रमणों (बौद्ध साधुओं), का सम्मान करने; जीवहिंसा, फ़ज़ूलखर्च तथा परनिन्दा को रोकने; दया, सत्यता, पवित्रता, आध्यात्मिकज्ञान तथा धर्मोपदेश कराने का प्रबन्ध किया, और धर्ममहामात्त्र नामक अधिकारी नियत किये, जो प्रजा के हित तथा सुख का यत्न करें; शहर, गांव, राजमन्दिर, ज़नाना आदि सब स्थानों में जाकर धर्मोपदेश करते तथा धर्म सम्बंधी कुल कामों को देखते रहते थे; कईएक दूत (प्रतिवेदक) भी नियत किये थे, जो प्रजासंबन्धी खबरें राजा के पास पहुंचाया करते थे, जिन को सुनकर प्रजा के लिये योग्य प्रबन्ध किया जाता

था; पशुओं को मार कर जज्ञ करने की राज्य भर में मनाई कर दी गई थी; चतुष्पद, पक्षी तथा जलचरों, एवं बच्चोंवाली भेड़, बकरी तथा सुअरी को तथा छः मास से कम अवस्थावाले उन के बच्चों को मारने की मनाई की गई थी; अष्टमी, चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा तथा अन्य नियत दिनों पर सब प्रकार की जीवहिंसा करने और बैलों को आंकने तथा बैल, बकरे, मेंढे या सूअरों को अख्ता करने, जंगलों में आगलगाने, तथा जीवहिंसा से सम्बन्ध रखनेवाले बहुधा सब कामों को रोक दिया था; यह राजा सर्वधर्मावलंबियों का सम्मान करता, मनुष्य के लिये सृष्टि का उपकार करने से अधिक कोई धर्म नहीं ऐसा मान कर उसी के लिये परिश्रम करता; क्रोध निर्दयता, अभिमान, तथा ईर्षा को पाप मानता; ब्राह्मणों तथा श्रमणों के दर्शनों को लाभदायक समझता, प्रजा की भलाई का सदा यत्न करता, और दंड देने में दया करता था."

यह राजा अपने दादा चन्द्रगुप्त से भी अधिक प्रतापी हुआ. इस की मैत्री दूर दूर के विदेशी राजाओं से थी, जिन में से ऐंटियोकस (दूसरा-सीरिया का), टालमी (फिलाडेल्फस—मिस्र का), ऐंटिगोनस (मकदूनिया का), मेगस (सीरीन का), और अलेग्ज़ैंडर (इपीरस का) के नाम इस की पार्वतीय धर्माज्ञाओं में मिलते हैं. कलिङ्ग देश को विजय करने में लाखों मनुष्य मारे गये तब से इस को जीवहिंसा की तरफ घृणा हुई हो ऐसा अनुमान है. इस ने जीवहिंसा रोकने तथा बौद्धधर्म का प्रचार कराने के निमित्त दूर दूर के देशों में उपदेशक भेजे थे. इस ने असंख्य स्तूप बनवाये जिन का ज़िक्र चीनी यात्री फाहियान तथा हुएन्त्संग की यात्रा की पुस्तकों में जगह जगह मिलता है.

४ कुनाल (नं० ३ का पुत्र)—यह अशोक का उत्तराधिकारी हुआ. इस के भाई जलौक को कश्मीर मिला, और जैन लेखकों के लेखों से पाया जाता है कि इस के एक पुत्र संप्रति को मालवा, गुजरात, राजपूताना आदि मौर्य राज्य के पश्चिमी प्रदेश मिले थे.

५ दशरथ (नं० ४ का पुत्र)—इस के समय के दो लेख गया के निकट

नागार्जुनी नामक पहाड़ी गुफाओं में मिले हैं. दशरथ के स्थान पर बंधुपालित नाम भी पुराणों में मिलता है.

६ इंद्रपालित (नं ५ का उत्तराधिकारी).

७ देववर्मा (नं० ६ का उत्तराधिकारी)—पुराणों में इस के स्थान पर शालिशूक, और देवधर्मा नाम भी मिलता है.

८ शतधर (नं० ७ का उत्तराधिकारी)—पुराणों में इस का नाम शतधन्वा, और सोमशर्मा भी मिलता है.

९ बृहद्रथ (नं० ८ का उत्तराधिकारी)—इस के सेनापति पुष्पमित्र ने इस को मार कर राज्य छीन लिया ऐसा पुराणों में लिखा मिलता है. इस के साथ मौर्यों के महाराज्य की समाप्ति हुई, परन्तु उन के छोटे छोटे कईएक राज्य पिछले समय तक रहने के प्रमाण मिलते हैं.

बंबई इहाते के खान देश ज़िले के वागली नामक गाव से एक लेख शक सवत् ९९१ (वि० सं० ११२६=ई० स० १०६९) का मिला है, जिस में वहा पर राज्य करनेवाले २१ मौर्यवंशियों के नाम मिलते हैं, वे नीचे लिखे जाते हैं :—

१ कीकट.
२ तक्षक (नं० १ का वंशज).
३ भीम.
४ सर्वशूर.
५ गोविन्दराज.
६ साध्वसीक.
७ भम्म.
८ देवहस्ती.
९ मुंज.
१० पद्माकर.
११-१२ (लेख टूट जाने से नाम नष्ट हो गये).
१३ वप्पेय.
१४ (लेख टूट जाने से नाम नष्ट हो गया).
१५ पादाप्पराज.

१६ साध्वसीक दूसरा.
१७ शांतिराज.
१८ मवरमूकर.
१९ भादलक.
२० भीमराज.
२१ गोविन्द—यह विक्रम संवत् ११२६ में विद्यमान था.

राजपूताना में चित्तौड़ के क़िले से कुछ दूर मानसरोवर के पास राजा मान का, जो मौर्यवंशी माना जाता है एक शिलालेख वि० संवत् ७७० (ई० स० ७१३) का कर्नेल टॉड को मिला था, जो अब नष्ट हो गया, उस में नीचे लिखे नाम होना टॉडसाहिब बतलाते हैं:—

१ माहेश्वर.
२ भीम.
३ भोज.
४ मान—यह विक्रम सं० ७७० (ई० स० ७१३) में विद्यमान था. राजपूताना में ऐसी प्रसिद्धि है कि इसी राजा मानमोरी से चित्तौड़ का क़िला गुहिलवंशी बापा ने लिया था.

राजपूताना में कोटा से क़रीब ४ मील के फ़ासले पर कंसुवा (कण्वाश्रम) के मन्दिर में एक शिलालेख मालव (विक्रम) संवत् ७९५ (ई० स० ७३८) का लगा हुआ है, जिस में मौर्यवंशी राजा धवल का नाम है.

इस समय मौर्यवंश नष्टसा हो चुका है.

सिन्दवंश (वंशावली नं० १ में), छिंदकवंश और सिन्धुवंश (वंशावली नं० २ में)—ये तीनों नाम सिन्धवंश के ही सूचक हों ऐसा प्रतीत होता है. सिन्धवंश का वृत्तान्त तक्षक (नाग) वंश के अंतर्गत लिखा जा चुका है.

राजपालीवंश (वंशावली नं० १ में), पौतकवंश (वंशावली नं० २ में), पौलिकवंश (वंशावली नं० ३ में) और पालनीवंश (वंशावली नं० ४ में)—ये सब नाम बंगाल के प्रसिद्ध पालवंश के सूचक होने चाहिये. पालवंश का वृत्तान्त आगे लिखा जायेगा.

शुंगों के समय की होने के कारण कोई कोई विद्वान इन राजाओं का उस वंश से संबन्ध होना अनुमान करते हैं.

कण्ववंश.

टॉडसाहिब ने वंशवृक्ष दूसरे में मगध के छठे राजवंश में इस वंश का उल्लेख किया है.

१ वसुदेव—यह जाति का ब्राह्मण और शुंगवंशी राजा घोष का मंत्री था, जिस का बहुत सा राज्य इस ने दबा लिया था. इस का नव वर्ष राज्य करना पुराणों में लिखा है.
२ भूमिमित्र या भूतिमित्र—इस ने १४ वर्ष राज्य किया.
३ नारायण—इस ने १२ वर्ष राज्य किया.
४ सुशर्मा—इस ने १० वर्ष राज्य किया. इस का राज्य भी उपर्युक्त आंध्रजाति के राजा सिमुक ने छीन लिया.

आंध्रवंश.

कर्नेलटॉड ने वंशवृक्ष दूसरे में मगध के सातवें राजवंश में इस वंश के बीस राजाओं के नाम दिये हैं.

पुराणों में इस वंश का नाम आंध्रभृत्य, और शिलालेखों में सातवाहन वंश लिखा मिलता है. इस वंश का राज्य मगध में नहीं, किन्तु दक्षिण में होना पाया जाता है. पुराणों में इस वंश के राजाओं की नामावली एक सी नहीं मिलती. वायु, विष्णु, और भागवत में तीस राजाओं का, और मत्स्यपुराण में उन्तीस राजाओं का इस वंश में होना लिखा है, परन्तु वायुपुराण की भिन्न भिन्न हस्तलिखित पुस्तकों में १६ से १८, मत्स्य में २८ से ३०, विष्णु में २१ से २४, और भागवत में २२ से २३ राजाओं के नाम मिलते हैं. पुराणों के आधार पर हम इन की वंशावली नीचे लिखते हैं:—

१ सिमुक—इस ने आंध्रवंश के राज्य की स्थापना की. इस का नाम पुराणों में सिसुक, सिंधुक, छिस्मक, शिप्रक या छिप्रक लिखा मिलता है, परन्तु नानाघाट (बंबई इहाते में) की गुफा में इस की मूर्ति बनी

हुई थी (जो अब टूट गई है) जिस के नीचे सिमुक नाम लिखा है, वही उस का शुद्ध नाम होना चाहिये. उपर्युक्त दूसरे सब नाम प्राचीन पुस्तकों की नकल करनेवालों ने भ्रम से लिखा हो ऐसा प्रतीत होता है. इस का २३ वर्ष राज्य करना पुराणों में लिखा है.

२ कृष्ण (नं० १ का भाई)—इस का १८ वर्ष राज्य करना लिखा मिलता है. इस के समय का एक लेख नासिक के पास की पांडव-गुफा में मिला है.

३ मल्लकर्णी या शातकर्णी—नानाघाट के लेख का सातकर्णी राजा यही हो ऐसी संभावना की जाती है. इस का कहीं १८ और कहीं १० वर्ष राज्य करना लिखा मिलता है.

४ पूर्णोत्संग—भागवत में इस का नाम पौर्णमास लिखा है. इस ने १८ वर्ष राज्य किया.

५ शिवस्वाति या स्कंदस्तंभी—इस का भी १८ वर्ष राज्य करना लिखा है.

६ शातकर्णी या शातकर्ण.

७ लंबोदर.

८ आपीतक, अपीलव, इवीलक, दिविलक, विवीलक, चिविलक या हिविलक.

९ मेघस्वाति या सौदास.

१० स्वाति या श्वावि.

११ स्कंदस्वाति.

१२ मृगेन्द्र स्वातिकर्ण.

१३ कुंतल स्वातिकर्ण.

१४ स्वातिकर्ण.

१५ पुलोमावि, पटुमावि, पटुमन् या अटमान.

१६ नेमिकृष्ण, गौरकृष्ण, अरिष्टकर्मा या अनिष्टकर्मा.

१७ हाल या हालेय.

१८ मंडलक, भावक, पत्तलक, तलक या सप्तक.

१९ पुरिन्द्रसेन, प्रविल्लसेन, पुरीकषेण, या पुरीपभीरू.

२० शातकर्णी, सुंदरस्वातिकर्ण, सुंदर या सुनंदन.

२१ चकोर स्वातिकर्ण, महेन्द्रशातकर्णी, कुंतलशातकर्णी, या चकार.
२२ शिवस्वाति.
२३ गौतमीपुत्र.
२४ पुलोमा, पुलिमत् या पुरिमत्.
२५ शिवश्री, शातकर्णी या मेदाशिरा.
२६ शिवस्कंद, शिवस्कंद, शातकर्णी.
२७ यज्ञश्री शातकर्णी, या यज्ञश्री.
२८ विजय.
२९ दंडश्री शातकर्णी, चंडश्रीशातकर्णी, चंद्रश्री या चंद्रविज्ञ.
३० पुलोमावि, पुलोमवित्, पुलोमत्, पुलोमार्चिस् या पुलोमर्षी.

भिन्न भिन्न पुराणों की हस्तलिखित प्रतियों से जितने नाम मिले वे सब ऊपर दर्ज किये हैं. इन पाठांतरों के देखने से इस वंश की शुद्ध नामावली तय्यार करना कठिन कार्य है. इस वंश के राजाओं के कई सिक्के तथा शिलालेख मिले हैं.

नानाघाट की गुफा में एक बड़ा लेख खुदा है, जिस में राजा वेदिश्री की माता का जो आंगिय कुल के महारठी की पुत्री थी, एक मास पर्यंत उपवास करने तथा राजा के अग्न्याधेय, अन्वारंभणीय, राजसूय, दो अश्वमेध, दशरात्र, गर्गत्रिरात्र, दो गवामयन, आप्तोर्याम, आंगिरस-त्रिरात्र, छंदोपवमान त्रिरात्र, आंगिरसामयन, त्रयोदशरात्र, दशरात्र आदि वैदिक यज्ञ करने तथा प्रत्येक यज्ञ में बहुत कुछ दान दक्षिणा आदि देने का उल्लेख है. यह वेदश्री राजा शातकर्णी का, जो नं० ३ पर दर्ज है, पुत्र था, अतएव वेदिश्री पूर्णोत्संग का दूसरा नाम हो तो आश्चर्य नहीं.

आसिक, अश्मक, मुलक, सुरठ (सोरठ), कुकुर, अपरान्त, अनूप, विदर्भ, आकर, और अवन्ती देश का स्वामी था; विंध्य, ऋत्तवत्, पारियात्र, सह्य, कृष्ण गिरि, मंच, सिरितण, मलय, महेन्द्र, सेतगिरि, और चकोरपर्वत उस के राज्य में थे; उस की आज्ञा अनेक राजा मानते थे; उस की सेना तीन समुद्र का जल पीती थी, वह बड़ाही मातृभक्त, अपनी प्रजा के साथ अपना सुख दुःख माननेवाला; समयानुसार धर्म, अर्थ, काम को साधनेवाला; विद्या का स्थान, सज्जनों का आश्रय, क्षत्रियों का गर्वगंजक; शक, यवन तथा पल्हवों का नाशकरनेवाला, तथा अनेक युद्धों में शत्रुओं को जीतनेवाला, और खखरातवंश (नहपान के वंश) को निर्मूल कर सातवाहन वंश की कीर्त्ति फिर से स्थापन करनेवाला तथा अनेक युद्धों में शत्रुओं को जीतनेवाला था".

यह वृत्तान्त गौतमीपुत्र शातकर्णी के बेटे पुलुमाई के समय के लेख में मिलता है. यह गौतमीपुत्र शातकर्णी, और गाथा सप्तसती का कर्त्ता साहवाहन शातकर्णी एक ही राजा होना चाहिये. शातवाहन शालिवाहन का पर्याय शब्द है. यह शातकर्णी क्षत्रप नहपान का समकालीन था, अतएव इस का शक संवत् ४६ (वि० सं० १८१=ई० स० १२४) के कुछ पीछे क्षत्रपनहपान से राज्य छीनना निश्चित है. यह राजा उपर्युक्त पौराणिक वंशावली में नं० २३ वाला हो, और उस का पुत्र पुलुमाई उक्त वंशावली का नं० २४ वाला हो ऐसा प्रतीत होता है. प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता टालमी अपनी रची हुई 'अलमगस्त' नामक भूगोल की पुस्तक में अपने समय पैठण में पुलुमाई का राज्य करना लिखा है. वह यही पुलुमाई होना चाहिये. यह पुस्तक सन् ई० १५१ के आसपास लिखी गई थी, अतएव पुलुमाई का उक्त समय होना निश्चित है. पुराणों में कहीं थोड़े नाम कहीं अधिक नाम मिलते है, जिस का कारण शायद यह हो कि मुख्य वंश में राजा थोड़े हुए हों, और उक्त वंश की दूसरी शाखाओं के हों, जिन को पुराण लिखे जाने के समय मिला कर एक वंशावली कर के नामों की संख्या बढ़ा दी हो. इस वंश के राजाओं के और भी लेख मिले हैं, परन्तु उन का हाल यहां पर दर्ज करने को स्थान नहीं है.

गुप्तवंश.

गुप्तों के पूर्व यूनानी, शक (क्षत्रप), कुशन आदि विदेशी राजाओं ने हिन्दुस्तान के भिन्न भिन्न प्रदेशों पर राज्य किया था. उन की वंशावलियां हम एतद्देशीय राजवंशों की वंशावलियों के अंत में लिखेंगे.

गुप्तवंशी राजा चंद्रवंशी क्षत्रिय थे, ऐसा उन के पिछले लेखों से पाया जाता है. गुप्तवंशियों का प्रताप बहुत ही बड़ा, और एक समय ऐसा था कि आसाम से द्वारिका तक तथा पंजाब से नर्मदा तक का सारा प्रदेश उन के आधीन था, और नर्मदा के दक्षिण के देशों में भी उन्हों ने विजय प्राप्त की थी. उन्हों ने वि० संवत् ३७७ (ई० स० ३२०) से अपना संवत् चलाया था, जो गुप्त संवत् के नाम से करीब ६०० बरस तक चलता रहा. और गुप्तों का राज्य नष्ट होने के बाद वही संवत् वल्लभी संवत् के नाम से प्रसिद्ध हुआ. अशोक के समय से ही वैदिक धर्म की अवनति और बौद्धधर्म की उन्नति होने लगी थी, परन्तु गुप्तवंशियों ने वैदिक धर्म की पीछी जड़ जमा दी, और इन के समय से ही बौद्धधर्म की अवनति होने लगी. चिरकाल से न होनेवाला अश्वमेध यज्ञ इन के राज्य में फिर होने लगा. इन की वंशावली नीचे लिखी जाती है:—

१ श्रीगुप्त या गुप्त—इस के नाम से इस का वंश गुप्तवंश नाम से प्रसिद्ध हुआ. इस का खिताब 'महाराज' मिलता है.

२ घटोत्कच (नं० १ का पुत्र)—इस का खिताब भी 'महाराज' मिलता है. ये दोनों किसी बड़े राजा के सामन्त होने चाहियें.

३ चंद्रगुप्त (नं० २ का पुत्र)—यह गुप्त वंश में पहिला प्रतापी राजा हुआ. इस ने वि० संवत् ३७७ (ई० स० ३२०) में अपने राज्याभिषेक से एक नया संवत् चलाया जो गुप्त संवत् के नाम से प्रसिद्ध हुआ (उक्त संवत् के लिये देखो प्राचीन लिपिमाला पृ० ३४ से ३६ तक). इस का विवाह लिच्छिवी वंशी राजा की पुत्री कुमारदेवी से हुआ था, जिस से महाप्रतापी राजा समुद्रगुप्त का जन्म हुआ. इस के सुवर्ण के सिक्के मिले हैं; जिन पर एक तरफ इस की और इस की राणी की मूर्त्तियां बनी हैं. इन सिक्कों से कितने,

एक विद्वान यह अनुमान करते हैं, कि चंद्रगुप्त को उस के स्वसुर का राज्य मिला हो. इस का राज्य संपूर्ण विहार संयुक्त प्रान्तों के पूर्वी भाग, और अवध के अधिकांश पर होना चाहिये. पुराणों में गुप्तवंशियों के आधीन गंगातट का प्रदेश, प्रयाग, अयोध्या तथा मगध होना लिखा है, जो इस राजा के समय की राज्यस्थिति प्रकट करता है. इस की राजधानी पाटलीपुत्र नगर था.

समुद्रगुप्त (नं० ३ का पुत्र)—यह गुप्त राजाओं में बड़ाही प्रतापी हुआ. प्रयाग के क़िले के भीतर खड़े हुए अशोक के लेखवाले विशाल स्तंभ पर इस राजा का एक लेख खुदा हुआ है, जिस से पाया जाता है कि " यह राजा स्वयं विद्वान् और कवि था, और विद्वानों के साथ रहने में आनंद मानता था. इस ने अपने ही बाहुबल से अच्युत, और नागसेन राजाओं को पराजित किया. इस का शरीर अनेक शस्त्रों के घावों से सुशोभित था. इस ने कोशल के राजा महेन्द्र, महाकान्तार के व्याघ्रराज, केरल के मंत्रराज, पिष्टपुर, महेन्द्रगिरि तथा कोट्टूर के स्वामिदत्त, एरंडपल्ल के दमन, कांची के विष्णुगोप, अवमुक्त के नीलराज, वेंगी के हस्तिवर्मा, पालक के उग्रसेन, देवराष्ट्र के कुबेर, और कुस्थलपुर के धनंजय आदि दक्षिणापथ के सब राजाओं को गिरफ्तार किया, परन्तु अनुग्रह के साथ उन को पीछा छोड़ कर अपनी कीर्त्ति बढ़ाई. रुद्रदेव, मतिल, नागदत्त, चंद्रवर्मा, गणपतिनाग, नागसेन, अच्युत, नंदी, बलवर्मा आदि आर्यावर्त्त के अनेक राजाओं को नष्ट कर अपना प्रभाव बढ़ाया. सब आटविक (जंगल के स्वामी) राजाओं को अपना सेवक बनाया; समतट, डवाक, कामरूप, नेपाल, कर्तृपुर आदि सीमान्त प्रदेश के राजाओं को तथा मालव, अर्जुनायन, योद्धेय, माद्रक, अभीर, प्रार्जुन, सनकानिक, काक, खर्परिक आदि जातियों को अपने आधीन कर उन से कर लिया; उस ने राज्यच्युत राजवंशियों को फिर राजा बनाया; देवपुत्र, शाही, शाहानुशाही, शक, मुरुंड, तथा सिंहल आदि सब द्वीपनिवासी इस के पास हाज़िर होते और लड़कियां भेट करते थे. यह राजा दयालु

था, सहस्रों गौदान करता था, और इस का समय कंगाल दीन, अनाथ और दुखियों की सहायता में व्यतीत होता था. गांधर्व विद्या में बड़ा ही निपुण था, और काव्य रचने में कविराज कहलाता था." दूसरे लेखों से पाया जाता है कि "उस के अनेक पुत्र और पौत्र थे. चिरकाल से न होने वाला अश्वमेध यज्ञ इस ने किया था." इस के कई प्रकार के सोने के सिक्के मिले हैं, जिन से इस के अनेक कामों का पता लगता है. इन सिक्कों में गुप्तों के पूर्व राज्य करने वाले कुशन (तुर्क) वंशी राजाओं के सिक्कों का अनुकरण पाया जाता है. इस की राणी दत्तदेवी से चंद्रगुप्त (दूसरे) का जन्म हुआ था.

५ चद्रगुप्त दूसरा (नं० ४ का पुत्र)—इस ने अनेक खिताब धारण किये थे, जिन में विक्रमाङ्क, विक्रमादित्य, श्रीविक्रम, अजितविक्रम, प्रवीरविक्रम, और विक्रमाजित आदि मुख्य हैं. इस ने बंगाल से लगा कर बिलोचिस्तान तक के मुल्क विजय किये, तथा गुजरात, काठियावाड़, मालवा, कच्छ, राजपूताना आदि देशों पर राज्य करनेवाले शक जाति के क्षत्रप राजाओं का राज्य छीन कर वि० सं ४५० (ई० स० ३९३) के करीब भारतवर्ष में से शकों के राज्य की समाप्ति की. इस ने अपने पिता से भी अधिक देश अपने राज्य में मिलाये, और अपने राज्य के पश्चिमी विभाग की राजधानी उज्जैन क़ाइम की. यह विद्वानों का आश्रयदाता था. कितने एक विद्वानों का यह भी अनुमान है कि उज्जैन का प्रसिद्ध विक्रमादित्य, जो शकारि नाम से प्रसिद्ध है यही होना चाहिये, और उन का यह कथन निर्मूल नहीं है. यह राजा विष्णु का परमभक्त था, और देहली की प्रसिद्ध लोह की लाट (कीली जो देहली से ९ मील पर मेहरोली गांव में कुतुब मीनार के पास एक प्राचीन मंदिर के बीच खड़ी हुई है) इसी राजा ने बनवा कर विष्णुपद नामी पहाड़ी पर किसी विष्णुमंदिर के आगे ध्वजस्तंभ के तौर खड़ी करवाई थी, जहां से तंवरों ने लाकर उसे देहली में खड़ी की. इस के सोने, चांदी तथा तांबे के कई प्रकार के

सिक्के मिले हैं, और इस के समय के तीन लेख भी मिले हैं, जो गुप्त संवत् ८२, ८८, और ९३ (वि० सं० ४५८, ४६४ और ४६९ = ई० स० ४०१, ४०७ और ४१२) के हैं. इस के राजत्वकाल में चीनी यात्री फाहियान हिन्दुस्तान में आया, और उस ने उत्तरी (नर्मदा से उत्तरी) हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है वह इस राजा के समय की देशस्थिति प्रगट करता है, क्योंकि उस समय उक्त सारे प्रदेश का महाराजाधिराज यही था. इस की राणी ध्रुवदेवी (ध्रुव स्वामिनी) से दो पुत्र कुमारगुप्त और गोविन्दगुप्त उत्पन्न हुए थे.

६ कुमारगुप्त (नं० ५ का पुत्र)—इस के सोने, चांदी, और तांबे के सिक्के मिलते हैं. इस के समय के पांच लेख मिले हैं, जिन में से सब से पहिला गुप्त संवत् ९६ (वि० सं० ४७२ = ई० स० ४१५) का, और सब से पिछला गुप्त सं० १२९ (वि० सं० ५०५ = ई० स० ४४८) का है. इस के दो पुत्र स्कन्दगुप्त, और पुरगुप्त हुए. इस राजा के अन्तिम समय इस के राज्य पर पुष्यमित्र जाति के लोगों ने हमला किया, और संभव है कि उस लड़ाई में यह मारा गया हो.

७ स्कन्दगुप्त (नं० ६ का पुत्र)—इस ने बड़ी वीरता के साथ तीन मास तक लड़ कर पुष्यमित्रों के राजा को परास्त कर अपनी कुलश्री को, जो अपने पिता का देहान्त होने से विचलित हो रही थी, स्थिर की. फिर इस के राज्य पर हूणों ने आक्रमण किया, जिन को भी इस ने परास्त किया. इस के समय के तीन लेख मिले हैं, जिन में से सब से पहिला गुप्त सं० १३६ (वि० सं० ५१२=ई० स० ४५५) का, और सब से पिछला गुप्त सं० १४६ (वि० सं० ५२२ = ई० स० ४६५) का है. इस के सोने, चांदी व तांबे के सिक्के भी मिले हैं, जिन में से कुछ सिक्कों पर ६० का अंक है, जो गुप्त सं० १६० प्रगट करता होगा, अर्थात् शताब्दी के अंक छोड़ दिये होंगे. इस के देहान्त के आसपास फिर हूणों का हमला हुआ जिस में वे विजयी हुए, और इस के बाद गुप्तों के महा-

राज्य के टुकड़े होगये, और सामन्त लोग स्वतंत्र होने लगे. कठियावाड़ आदि प्रदेशों पर भट्टारक नामक सेनापति अथवा उस के पुत्रों ने स्वतंत्र होकर वल्लभीपुर के नवीन राज्य की नीवडाली, और मालवे से गंगातट तक का प्रदेश बुधगुप्त के आधीन रहा, और गुप्त-राज्य के पूर्वी हिस्से पर इस (स्कंदगुप्त) के भाई पुरगुप्त का राज्य हुआ. इसी समय से नर्मदा के उत्तर में राज्य करनेवाले अनेक राजपूत राजवंशों का उदय समझना चाहिये.

८ पुरगुप्त (नं० ७ का छोटा भाई)—इस की माता का नाम अनंतदेवी, और राणी का नाम वत्सदेवी मिलता है. वत्सदेवी से नरसिंह गुप्त का जन्म हुआ था.

९ नरसिंह गुप्त (नं० ८का पुत्र)—इस का खिताब बालादित्य हो ऐसा उस के सोने के सिक्कों से पाया जाता है. इस की राणी श्रीमतीदेवी से कुमारगुप्त दूसरे का जन्म हुआ था. इस ने हूणवंश के प्रतापी राजा मिहिरकुल को हराकर कश्मीर की तरफ़ निकाला ऐसा चीनी यात्री ह्युएन्त्संग के लेख से पाया जाता है.

१० कुमारगुप्त दूसरा (नं० ९ का पुत्र)—यह परम वैष्णव था. इस के सोने के सिक्के मिले हैं. गुप्तों के मुख्यवंश की यहां तक का शृंखलाबद्ध वंशावली मिलती है.

कुमारगुप्त दूसरे के सोने के सिक्कों की शैली के कितने एक सोने के सिक्कों पर 'विष्णु' कितने एक पर 'जय' नाम पढ़े जाते हैं, अतएव संभव है, कि वे विष्णुगुप्त और जयगुप्त के सिक्के हों, और वे कुमारगुप्त दूसरे के वंशज हों. शशांक नामक राजा के सिक्के भी मिले हैं, जिन पर एक तरफ़ 'श्रीश' और दूसरी तरफ़ 'श्रीशशांक' लेख है. ह्युन्त्संग के लेख से पाया जाता है, कि शशांक ने वैशवंशी राजा राज्यवर्द्धन को मारा था, और बाणभट्ट ने अपने हर्षचरित में गौड़देश के राजा नरेन्द्रगुप्त के हाथ से राज्यवर्द्धन का मारा जाना लिखा है, अतएव शशांक और नरेन्द्रगुप्त एक ही राजा होना चाहिये. इस घटना के बाद राज्यवर्द्धन के छोटे भाई श्रीहर्ष

ने सारे उत्तरी हिन्दुस्तान को अपने आधीन किया, अतएव नरेन्द्र-गुप्त के साथ गुप्तों के मुख्यवंश की समाप्ति हुई हो.

मालवा के गुप्त राजा.

१ बुधगुप्त (नं० ७ का उत्तराधिकारी)—स्कंदगुप्त के बाद मालवे से गंगातट तक के देश का यह राजा हुआ, परन्तु थोड़े ही समय बाद हूण राजा तोरमाण ने इस के राज्य का कितनाक हिस्सा छीन लिया. इस के समय का एक लेख गुप्त संवत् १६५ (वि० सं० ५४१ = ई० स० ४८४) का मिला है.

२ भानुगुप्त (नं० १ का उत्तराधिकारी) इस के समय का एक लेख गुप्त संवत् १६१ (वि० सं० ५६७ = ई० स० ५१०) का मिला है. इस के समय मालवा तथा उस के आस पास के प्रदेशों पर हूणों का अधिकार विशेष रूप से हो गया था. फिर यशोधर्म (विष्णु-वर्द्धन) नामक पुरुष ने हूणमहिरकुल को परास्त कर मालवा आदि देशों पर अपना अधिकार जमा लिया था.

देवगुप्त—कन्नौज के राजा ग्रहवर्मा को मारनेवाला मालवे का राजा यही होना संभव है.

मगध के गुप्तवंशी.

थाणेश्वर के वैशवंशी राजा श्रीहर्ष (हर्षवर्द्धन) ने गुप्तवंश की स्वतन्त्रता नष्ट की, परन्तु उक्त वंश की एक शाखा, जो सामन्तों की स्थिति में मगध के पूर्वी विभाग पर क़ाइम हुई थी, एक अरसेतक बनी रही, जिस की वंशावली नीचे लिखे अनुसार मिलती है:—

१ कृष्णगुप्त—यह राजा नरसिंगुप्त के समय के आसपास होना चाहिये.

२ हर्षगुप्त (नं० १ का पुत्र).

३ जीवितगुप्त (नं० २ का पुत्र).

४ कुमारगुप्त (नं० ३ का पुत्र)—यह मौखरी राजा ईशानवर्मा से लड़ा था. इस ने प्रयाग में जाकर गोमय के कंडों की अग्नि में बैठ कर अपना शरीरांत किया.

५ दामोदरगुप्त (नं० ४ का पुत्र)—यह मौखरियों से लड़ कर मारा गया.

६ महासेनगुप्त (नं० ५ का पुत्र)—इस ने मौखरी राजा सुस्थिर वर्मा को जीता था.

७ माधवगुप्त (नं० ६ का पुत्र)—यह वैशवंशी प्रसिद्ध राजा श्रीहर्ष का सामन्त था. इस की राणी श्रीमती देवी थी.

८ आदित्यसेन (नं० ७ का पुत्र)—वैशवंशी राजा श्रीहर्ष के देहान्त के बाद यह स्वतंत्र राजा बन गया. इस के समय के तीन लेख मिले हैं, जिन में से एक हर्ष संवत् ६६ (वि० सं० ७२८ = ई० स० ६७१) का है. इस की राणी कोणदेवी से देवगुप्त उत्पन्न हुआ था. इस की पुत्री का विवाह मौखरी राजा भोगवर्मा के साथ हुआ था.

९ देवगुप्त (नं० ८ का पुत्र)—इस की पुत्री प्रभावतीगुप्ता से वाकाटक-वंशी राजा प्रवरसेन (दूसरा) उत्पन्न हुआ था. इस (देवगुप्त) की राणी कमलादेवी से विष्णुगुप्त का जन्म हुआ था.

१० विष्णुगुप्त (नं० ९ का पुत्र)—इस की राणी इज्जादेवी से जीवित गुप्त पैदा हुआ था.

११ जीवितगुप्त दूसरा (नं० १० का पुत्र).

जीवितगुप्त के बाद का मगध के गुप्तों का कुछ भी हाल नहीं मिलता. संभव है कि पालवंशियों ने मगध पर अपना अधिकार जमाया उस समय तक गुप्तों का राज्य वहां पर रहा होगा.

बनारस के पास के सारनाथ नामक स्थान से एक लेख प्रकटादित्य के नाम का मिला है वह बहुत ही अपूर्ण स्थिति में है उस से प्रकटा-दित्य का बालादित्य के वंशज दूसरे बालादित्य के सन्तानों में होना पाया जाता है. उक्त लेख का संबन्ध भी गुप्तों से होना चाहिये.

गुघरू के गुप्तवंशी.

बंबई इहाते के धारवाड़ ज़िले में वि० सं. की १४वीं शताब्दी के ...प तक गुप्तों की एक शाखा का क़ाइम होना वहां के लेखों से पाया

जाता है. उक्त शाखा वालों ने अपने तईं गुप्त या गुप्तवंशी, और उज्जैन के महाराजाधिराज विक्रमादित्य (चन्द्रगुप्त दूसरे का) वंशज लिखा है. उन के लेखों में उन का चंद्रवंशी होना भी लिखा मिलता है. उन का खिताब 'उज्जयिनी पुरवराधीश्वर' और इष्टदेव महाकाल था. उन की राजधानी गुत्तल थी. उन के राज्य का विस्तार गुत्तल के आसपास ही नहीं, किन्तु उत्तरी कानड़ा प्रदेश के वनवासी विभाग पर भी होना पाया जाता है. उन की वंशावली नीचे लिखे अनुसार मिलती है :-

१ मागुत्त (महागुप्त)-उज्जैन के गुप्तवंशी राजा विक्रमादित्य या चंद्रगुप्त का वंशज.

२ गुत्त (नं० १ का पुत्र).

३ मल्लिदेव (नं० २ का पुत्र)-सोलंकी विक्रमादित्य छठे का सामंत था.

४ वीरविक्रमादित्य (नं० ३ का पुत्र).

५ जोईदेव (नं० ४ का पुत्र)—इस को जोम भी कहते थे. यह शक सं० ११०३ (वि० सं० १२३८=ई० स० ११८१) में विद्यमान था.

६ गुत्त दूसरा (नं० ५ का भाई).

७ वीरविक्रमादित्य दूसरा (नं० ६ का पुत्र)-इस के समय के लेख शक सं० १११० से ११३६ (वि० सं० १२४५ से १२७१= ई० स० ११८८ से १२१४) तक के मिले हैं.

८ जोईदेव दूसरा (नं० ७ का पुत्र)—यह देवगिरि के यादव राजा सिंघण का सामन्त था, और शक सं० ११६० (वि० सं० १२९५ = ई० स० १२४८) में विद्यमान था.

९ विक्रमादित्य तीसरा (नं० ८ का भाई).

१० गुत्त तीसरा (नं० ९ का पुत्र)—यह देवगिरि के यादव राजा महादेव का सामन्त था. इस के दो भाई हरियदेव, और जोईदेव थे. इस के पीछे का इन गुप्तों का कुछ भी हाल नहीं मिलता.

वल्लभीपुर का राजवंश.

गुप्तवंश के राजा स्कन्दगुप्त के बाद हूणों की चढ़ाई के समय गुप्त-राज्य के टुकड़े हो गये, उस समय भटार्क नामक सेनापति ने, अथवा उस के पुत्रों ने काठियावाड़ पर अपना दखल जमा कर वल्लभीपुर का नवीन राज्य स्थापन किया भटार्क लोगों में सूर्यवंशी प्रसिद्ध है, परन्तु उक्तवंश के राजाओं के ताम्रपत्रों में कहीं ऐसा लिखा नहीं मिला. आधुनिक शोधक उक्तवंश का मैत्रकवंश नाम से प्रसिद्ध करते हैं. और मेहर, या मेर जाति का और उक्तवंश का एक होना अनुमान करते हैं. परन्तु जहां पर उक्तवंश के राजाओं के ताम्रपत्रों में मैत्रक शब्द का प्रयोग किया गया है वहां का शब्दविन्यास ऐसा है कि भिन्न भिन्न विद्वानों ने उक्त वाक्य का भिन्न भिन्न अर्थ किया है कितने एक विद्वानों ने इसी वाक्य पर से मैत्रकों को भटार्क का विपक्षी बतलाया है. परन्तु जब तक दूसरे किसी प्रमाण से उक्तवंश का मैत्रक होना स्पष्टरूप से लिखा न मिले तब-तक हम वल्लभीपुर के राजाओं को मैत्रक मानना स्वीकार नहीं कर सकते. इस वंश की वंशावली इस प्रकार मिलती है.

१ भटार्क—इस का खिताब 'सेनापति' मिलता है.

२ धरसेन (नं० १का पुत्र)—यह भी सेनापति कहलाता था.

३–द्रोणसिंह (नं० २ का भाई) इस का खिताब महाराज मिलता है. इस का एक ताम्रपत्र गुप्त संवत् १८३ (वि० संवत् ५५९=ई० स० ५०२) का मिला है. इस के विषय में यह भी लिखा मिलता है कि 'एक बड़े राजा ने इस का राज्याभिषेक किया था, अर्थात् इस को राज्य दिया था इस से अनुमान होता है कि वल्लभी के राज्य को कायम करने वाला यही हो.

४–ध्रुवसेन (नं० ३ का छोटा भाई)—इस के समय के ४ ताम्रपत्र मिले हैं, जो गुप्त सं. २०७ से २२१ (वि० सं० ५८३ से ५९७=ई० स० ५२६ से ५४०) तक के हैं.

५ धरपट्ट (नं० ४ का छोटा भाई).

६ गुहसेन (नं० ५ का पुत्र)—वल्लभीपुर के राजाओं के पिछले ताम्रपत्रों में इसी राजा से वंशावली लिखी है, जिस से संभव है, कि

यही प्रथम प्रतापी हुआ होगा. यह राजा शिव उपासक होने पर भी बौद्धधर्म पर आस्था रखनेवाला था. इस के राजत्वकाल के चार ताम्रपत्र मिले हैं, जो गुप्त सं० २४० से २४८ (वि० सं० ६१६ से ६२४ = ई० स० ५५६ से ५६७) तक के हैं.

७ धरसेन दूसरा (नं० ६ का पुत्र)—इस के समय के पांच ताम्रपत्र मिले हैं, जिन में से तीन में संवत् दिया हुआ है, जो गुप्त संवत् २५२ से २६९ (वि० सं० ६२८ से ६४५ = ई० स० ५७? से ५८८) तक के हैं. इस के दो पुत्र शिलादित्य और खरग्रह थे.

८ शिलादित्य (नं० ७ का पुत्र)—इस का दूसरा नाम धर्मादित्य भी मिलता है. इस के समय के दो ताम्रपत्र गुप्त सं० २८६ और २९० (वि० सं० ६६२ और ६६६ = ई० स० ६०५ और ६०९) के मिले हैं. इस का पुत्र देरभट था, जिस को अपने पिता का राज्य नहीं मिला.

९ खरग्रह (नं० ८ का छोटा भाई)—इस के दो पुत्र धरसेन, और ध्रुवसेन थे.

१० धरसेन तीसरा (नं० ९ का पुत्र).

११ ध्रुवसेन दूसरा (नं० १० का छोटा भाई)—इस को बालादित्य भी कहते थे. इस के दो ताम्रपत्र गुप्त सं० ३१० और ३२० (वि० सं० ६८६ और ६९६ = ई० स० ६२९ और ६३९) के मिले हैं. चीनी यात्री ह्युन्त्संग, जो इस राजा के समय वल्लभीपुर में आया था, लिखता है कि, " उक्त नगर में कई लक्षाधिपति रहते हैं. वहां कई बौद्ध संघाराम (मठ) हैं, जिन में हीनयान मत के संमतीय संप्रदाय के ६००० श्रमण रहते हैं. यहां का वर्तमान राजा क्षत्रिय जाति का है. उस का नाम तु-लु-हो-पो-तु, अर्थात् ध्रुवपटु (ध्रुवसेन का रूपान्तर) है. यह मालवा के राजा शिलादित्य का भतीजा (ध्रुवसेन के पूर्व से ही मालवे का बड़ा हिस्सा वल्लभी के आधीन हो गया था, इस से वल्लभी के राजा शिलादित्य (नं० ८) को यहां पर मालवे का राजा लिखा

हो ऐसा प्रतीत होता है), और कन्नौज के वर्त्तमान राजा शिलादित्य (हर्षवर्द्धन, या श्रीहर्ष) के पुत्र का जंवाई है, जो थोड़े ही समय पहिले बौद्ध हो गया है. " गुर्जर (गूजर) वंश के राजा दद्द दूसरे के विषय में ऐसा लिखा मिलता है कि " राजा हर्ष (श्रीहर्ष-कन्नौज) ने वल्लभी के राजा को हराया उस समय उस (दद्द) ने उस की रक्षा की थी." कन्नौज के राजा श्रीहर्ष ने इसी ध्रुवसेन को हराया होगा. फिर सन्धि होने पर उस (श्रीहर्ष) के पुत्र की लड़की का विवाह इस के साथ हुआ होगा.

१२ धरसेन चौथा (नं० ११ का पुत्र)—इस के नाम के साथ परम भट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर, और चक्रवर्ती खिताब मिलते हैं, जिस से संभव है, कि यह बहुत प्रतापी हुआ होगा. इस के दो ताम्रपत्र मिले हैं, जो गुप्त संवत् ३२६ और ३३० (वि० सं० ७०२ और ७०६ = ई० सं० ६४५ और ६४९) के हैं. प्रसिद्ध भट्टिकाव्य का कर्त्ता वल्लभी के नरेन्द्रधरसेन के राज्य समय अपना पुस्तक लिखना प्रगट करता है. संभव है, कि वह पुस्तक इसी राजा के समय में लिखा गया हो.

१३ ध्रुवसेन तीसरा (नं० ८ के पुत्र देरभट का तीसरा पुत्र)—ऊपर लिखे हुए शिलादित्य (नं० ८) के पुत्र देरभट के तीन पुत्र शीलादित्य, खरग्रह, और ध्रुवसेन थे, जिन में से तीसरा पहिले राजा बना. इस का एक ताम्रपत्र गुप्तसंवत् ३३२ (वि० सं० ७०८ = ई० स० ६५१) का मिला है.

१४ खरग्रह दूसरा (नं० १३ का बड़ा भाई)—इस का दूसरा नाम धर्मादित्य मिलता है. इस का एक ताम्रपत्र गु० सं० ३३७ (वि० सं० ७१३ = ई० स० ६५६) का मिला है.

१५ शिलादित्य दूसरा (नं० १४ के बड़ेभाई शीलादित्य का पुत्र)—इस के तीन ताम्रपत्र मिले हैं, जिन में से दो गु० सं० ३४६ (वि० सं० ७२२ = ई० स० ६६५) के, और तीसरा गु० सं० ३५२ (वि० सं० ७२८ = ई० स० ६७१) का है. इस का पिता शिलादित्य राज्यसिंहासन पर नहीं बैठने पाया था.

१६ शिलादित्य तीसरा (नं० १५ का पुत्र)—इस के चार ताम्रपत्र मिले हैं जो गु० सं० ३७२ से ३८२ (वि० सं० ७४८ से ७५८ = ई० स० ६६१ से ७०१) तक के हैं.

१७ शिलादित्य चौथा (नं० १६ का पुत्र)—इस के दो ताम्रपत्र मिले हैं, जो दोनों गु० सं० ४०३ (वि० सं० ७७९ = ई० स० ७२२) के हैं.

१८ शिलादित्य पांचवां (नं० १७ का पुत्र)-इस का एक ताम्रपत्र गु० सं० ४४१ (वि० सं० ८१७ = ई० स० ७६०) का मिला है.

१६ शिलादित्य छठां (नं० १८ का पुत्र)-इस को ध्रूभट भी कहते थे. इस के समय का एक ताम्रपत्र गु० सं० ४४७ (वि० सं० ८२३ = ई० स० ७६६) का मिला है. इस राजा के पीछे का वल्लभीपुर के राजाओं का कोई दानपत्र नहीं मिलता. इसी राजा के समय में सिन्ध के मुसल्मानों ने वल्लभी का नाश किया. (देखो प्रकरण सातवें पर हमारा टिप्पण नं० १६).

वल्लभी के राजा बहुधा शिव के परम उपासक थे, और उन के ताम्रपत्रों की मुद्रा में नंदी का चिन्ह मिलता है; और वल्लभीपुर के खंडहर से, जो काठियावाड़ में वला के पास हैं, पाषाण के कईएक बड़े बड़े नंदी, और विशाल शिवलिंग निकलते हैं. ऐसे बड़े नंदी, और शिवलिंग अन्यत्र शायद ही मिले हों. कितने एक राजा बौद्धधर्म की तरफ़ भी अवश्य झुके थे. मेवाड़ के गुहिलवंशी राजा वल्लभी के राजाओं के वंशज माने जाते हैं, परन्तु उन का उक्त राजाओं से कुछ भी संबन्ध नहीं है. जैनग्रन्थकारों ने वल्लभी के विनाश का समय वि० सं० ३७५ बतलाया है, वह सर्वथा विश्वास योग्य नहीं है. वल्लभी के राजाओं के आधीन सारा काठियावाड़, गुजरात, तथा मालवे का बहुत सा हिस्सा, और कुछ हिस्सा राजपूताने का भी था; शायद कच्छ भी उन्हीं के आधीन हो.

गुर्जरवंश.

गुर्जर या गूजर जाति के राजाओं के कुछ दानपत्र गुजरात से मिले हैं. उन का राज्य गुजरात, भडौंच, और खेड़ा ज़िलों में था. उन की राजधानी नंदीपुरी (नांदोद–राज पीपला रियासत की वर्त्तमान राजधानी) थी, और शायद भडौंच भी उन की राजधानी रही हो. गुर्जर वा गूजर जाति के लोग बहुधा पशुपालक होते हैं, और पशुओं के साथ समय समय (फ़स्ल आदि में) जहां घास का सुभीता होता है, ऐसे स्थानों में जा रहते हैं. उन की इस अस्थिर वृत्ति के कारण, और उन का नाम गुर्जिस्तान से मिलता हुआ होने के कारण आधुनिक शोधक लोग उन का अनार्य होना, और हिन्दुस्तान के बाहर से इस देश में आना अनुमान करते हैं; परन्तु ऐसा मानने के लिये कुछ भी लिखित प्रमाण नहीं मिलता. जैसे मालव, यौधेय, अर्जुनायन आदि जातियां थीं वैसी एक जाति गुर्जर भी थी. इसी अनुमान के आधार पर कितने एक शोधक चावड़ा, पडिहार, परमार, चौहान, तंवर, कछावा आदि राजपूतों का गुर्जर होना अनुमान करते हैं. परन्तु इन सब को गुजर मानने के लिये कोई ठीक प्रमाण नहीं मिलता. गुर्जरों की वंशावली नीचे लिखी जाती है :—

१ दद्द–यह किसी बड़े राजा का सामन्त था. शायद यह वल्लभीपुर के राजा का सामन्त होगा.

२ जयभट (नं० १ का पुत्र)—इस का ख़िताब वीतराग मिलता है.

३ दद्द दूसरा (नं०२का पुत्र)—इस का ख़िताब प्रशांतराग था. कनौज के राजा श्रीहर्ष ने वल्लभीपुर के राजा (ध्रुवसेन दूसरे) को परास्त किया उस समय इस ने उस की रक्षा की थी, ऐसा लिखा मिलता है, अतएव संभव है, कि यह वल्लभीपुर के उक्त राजा का सामन्त हो. इस के चार ताम्रपत्र मिले हैं जो कलचुरी संवत् ३८० से ३९२ (वि० सं० ६८५ से ६९७=ई० स० ६२८ से ६४०) तक के हैं. इस के राज्य समय में चीनी यात्री ह्युन्त्संग भडौंच में पहुंचा था, परन्तु उस ने वहां के राजा के विषय में कुछ भी नहीं लिखा.

४ जयभट दूसरा (नं० ३ का पुत्र).

५ दद्द तीसरा (नं० ४ का पुत्र)- इस का खिताब 'बाहु सहाय' मिलता है. इस के पहिले के राजा सूर्य उपासक थे, परन्तु यह शिवभक्त था.

६ जयभट तीसरा (नं० ५ का पुत्र)—इस के दो ताम्रपत्र मिले हैं, जो कलचुरी संवत् ४४६ और ४८६ (वि० संवत् ७६३ और ७९३ = ई० स० ७०६ और ७३६) के हैं. जयभट तीसरे के बाद का कुछ भी हाल नहीं मिलता.

चीनी यात्री ह्युएन्त्संग भीनमाल नगर को, जो जोधपुर राज्य में है, गुर्जरदेश की राजधानी बतलाता है, राजपूताने का कितनाएक हिस्सा पहिले गुर्जरदेश कहलाता था (देखो सोलंकियों का प्राचीन इतिहास, भाग १, पृष्ठ २६, टिप्पण). उक्त प्रदेश में किसी समय गुर्जर जाति के बसने के कारण वह देश उक्त नाम से प्रसिद्ध हुआ होगा.

लिच्छिवी वंश ।

लिच्छिवी वंशी राजाओं के लेख नैपाल में मिले है, जिन में उन का सूर्यवंशी होना लिखा है. पटना में भी लिच्छिवी वंशियों का राज्य होना लिखा मिलता है, परन्तु उन के लेख अबतक उधर से प्राप्त नहीं हुए. गुप्तवंश के राजा चन्द्रगुप्त प्रथम का विवाह लिच्छिवी वंश की राजकन्या से हुआ था, और समुद्रगुप्त ने अपने को 'लिच्छिवी दौहित्र' लिखा है, जिस से पाया जाता है, कि गुप्तों के उदय से पूर्व भी लिच्छिवी वंश प्रसिद्ध था. उक्तवंश के राजाओं के जो लेख अब-तक मिले हैं उन से निम्न लिखित नाम मालूम हुए हैं :—

१शिवदेव–यह पूर्वी नैपाल देश का राजा था. इस के समय का एक लेख गुप्त संवत् ३१६ (वि० सं० ६९२ = ई० स० ६३५) का मिला है.

२ध्रुवदेव–यह राजा श्रीहर्ष संवत् ४८ (वि० सं० ७११ = ई० स० ६५४) में विद्यमान था.

नैपाल की राजधानी काटमाडू में पशुपति के मन्दिर के पश्चिमी

द्वार के सम्मुख नन्दी के पास एक शिलालेख श्रीहर्ष सं० १५३ (वि० सं० ८१६ = ई० स० ७५९) का लगा हुआ है, जिस में लिखा है कि सूर्यवंशी दशरथ के वंश में राजा लिच्छिवी हुआ. उस के वंश में पुष्पपुर (पाटलीपुत्र पटना) में सुपुष्प राजा हुआ, जिस के पीछे २४ वां राजा जयदेव हुआ. उस के पीछे ११ राजा के बाद सुगत (बुद्ध) के सिद्धान्तों को माननेवाला राजा वृषदेव हुआ, फिर वृषदेव से लेकर वसंतदेव तक की वंशावली है.

१ वृषदेव.
२ शंकरदेव (नं० १ का पुत्र)—इस की राणी राज्यवती थी.
३ धर्मदेव (नं० २ का पुत्र).
४ मानदेव (नं० ३ का पुत्र)—इस के समय के दो शिलालेख मिले हैं, जो गुप्त संवत् ३८६ और ४१३ (वि० सं० ७६२ और ७८६ = ई० स० ७०५ और ७३२) के हैं.
५ महीदेव (नं० ४ का पुत्र).
६ वसंतदेव (नं० ५ का पुत्र)—इस के समय का एक लेख गुप्त सं० ४३५ (वि० सं० ८११ = ई० स० ७५४) का मिला है.
७ उदयदेव.
नरेन्द्रदेव (उदयदेव का वंशज).
शिवदेव (नरेन्द्रदेव का पुत्र)—इस ने बहुत से राजाओं को जीता था. इस की राणी वत्सदेवी बड़े पराक्रमी मौखरी वंशी राजा भोगवर्मा की पुत्री, और मगध के राजा आदित्यसेन की दौहित्री थी.
जयदेव (शिवदेव का पुत्र)—यह राजा पराक्रमी, दानी और विद्वान था. इस की राणी राज्यमती गौड, उड्र, कलिंग, कोसल आदि के राजा भगदत्त के वंशज श्रीहर्षदेव की पुत्री थी.

इस के पीछे का लिच्छिवीवंशियों का कुछ भी हाल मालूम नहीं हुआ.

वाकाटकवंश.

वाकाटक वंशियों के दानपत्रों में उन का विष्णुवर्द्धन गोत्र में होना लिखा है. बौद्धायन प्रणीत गोत्रप्रवर निर्णय के अनुसार विष्णुवर्द्धन

गोलवालों का महर्षि भरद्वाज के वंश में होना पाया जाता है, परन्तु प्राचीनकाल में राजाओं का गोत्र वही माना जाता था, जो उन के पुरोहित का होता था, अतएव विष्णुवर्द्धन गोत्र से अभिप्राय इतनाही होना चाहिये, कि इस वंश के राजाओं के पुरोहित विष्णुवर्द्धन गोत्र के ब्राह्मण थे. इन के दानपत्रों में न तो कोई संवत् दिया है, और न इन के कुल का परिचय दिया है. इन के ताम्रपत्रादि से अनुमान होता है, कि इन के राज्य के उत्तर में (उत्तरी सीमा) महादेव की पहाड़ियां, दक्षिण में गोदावरीनदी, पश्चिम में अजंटा की पहाड़ियां, और पूर्व में महानदी का मूल हो. ये राजा स्वतंत्र होने चाहियें. इन की वंशावली इस प्रकार है:—

१ विंध्यशक्ति—इस का सन् ईसवी ६०० से कुछ पूर्व विद्यमान होना अनुमान किया जाता है.

२ प्रवरसेन (नं० १ का पुत्र)—इस राजा को सम्राट्, तथा अग्निष्टोम, अप्तोर्याम, उक्थ्य, षोडश्य, अतिरात्र, वाजपेय, बृहस्पतिसव, और ४ अश्वमेध यज्ञ करनेवाला लिखा है. यह शिवभक्त था. इस के पुत्र गौतमी पुत्र का विवाह १० अश्वमेध यज्ञ करनेवाले, तथा अपने बाहुबल से गंगानदी (गंगातट के देश) पानेवाले भारशिवों (एक जाति का नाम हो) के महाराज भवनाग की पुत्री से हुआ था.

३ रुद्रसेन (नं० २ के पुत्र गौतमी पुत्र का बेटा)— यह शिवभक्त था.

४ पृथिवीषेण (नं० ३ का पुत्र)—यह भी शिवभक्त था.

५ रुद्रसेन दूसरा (नं ४ का पुत्र)—यह राजा विष्णु का भक्त था. इस की राणी प्रभावतीगुप्ता देवगुप्त (मगध का गुप्तवंशी राजा) की पुत्री थी.

६ प्रवरसेन दूसरा (नं० ५ का पुत्र).

७ रुद्रसेन तीसरा (नं० ६ का पुत्र).

८ नरेन्द्रसेन (नं० ७ का छोटाभाई हो)—इस के आधीन मालव, मेकल, और कोसल के राजाओं का होना लिखा है.

९ पृथ्वीषेण दूसरा (नं० ८ का पुत्र).

१० देवषेण (नं० ९ का पुत्र).

११ हरिषेण (नं० १० का पुत्र).

पालवंश.

इस वंश के राजाओं के नामान्त में बहुधा 'पाल' शब्द रहने के कारण इस वंश का नाम पालवंश प्रसिद्ध हुआ है. ये राजा सूर्यवंशी थे ऐसा उन के लेखों में लिखा मिलता है. कोई कोई इन का भूंई-हार ब्राह्मण होना अनुमान करते हैं, परन्तु ऐसा मानने के लिये कोई प्राचीन लिखित प्रमाण नहीं मिलता. इन का राज्य बंगाल, मगध, और कामरूप देशों पर होने के अतिरिक्त उड़ीसा, मिथिला तथा कन्नौज से पश्चिम तक भी फैल गया था, परन्तु ऐसी स्थिति अधिक समय तक रहने नहीं पाई. ये राजा बौद्ध थे, परन्तु ब्राह्मणों का भी सम्मान करते थे. जिस समय हिन्दुस्तान से बौद्धधर्म की जड़ उखड़ने लगी थी, उस समय इन के राज्य में और विशेषतः मगध में उस की प्रबलता बनी रही थी. इन के राज्य के नालन्द, और विक्रम शील नगरों के संघाराम (बौद्धमठ) प्रसिद्ध विद्यास्थान माने जाते थे, जहां पर, ब्रह्मदेश, स्याम, तातार आदि के प्रसिद्ध बौद्ध विद्याध्ययन के लिये प्राचीन काल से आया करते थे. विक्रमशील के मठ के प्रसिद्ध विद्वान दीपांकर श्री ज्ञान ने ग्यारहवीं शताब्दी में तिब्बत में जा कर वहां पर बौद्ध-धर्म के महायान पंथ का प्रचार किया था. इन की राजधानी ओदंत पुरी मानी जाती है. इस वंश के राजाओं के ताम्रपत्र तथा शिला लेखों में बहुधा राज्यवर्ष (सन् जुलूस) दिये हैं, और संवत् कचित ही मिलता है, जिस से इन का समय ठीक ठीक निश्चय करना कठिन है. तिब्बत के प्रसिद्ध बौद्ध लेखक तारानाथ तथा अबुल्फ़ज़्ल ने इस वंश के राजाओं की वंशावली अपनी पुस्तकों में दर्ज की है, परन्तु उन में सही नाम थोड़े ही हैं. शिलालेख और ताम्रपत्रों से इन की वंशावली नीचे लिखे अनुसार मिलती है:—

१ दयितविष्णु.

२ वप्पट (नं० १ का पुत्र).

३ गोपाल (नं० २ का पुत्र)-इस ने प्रथम बंगाल में अपना राज्य जमाया, फिर मगध को विजय किया. इस ने भद्र जाति (या देश) के राजा

की पुत्री देवदेवी से विवाह किया था. इस के दो पुत्र धर्मपाल और वाक्पाल थे.

४ धर्मपाल (नं० ३ का पुत्र)-इस ने इंद्रायुध (इंद्रराज) आदि को परास्त कर कन्नौज की गद्दी पर चक्रायुध को बिठलाया. (चक्रायुध से कन्नौज का राज मारवाड़ के पड़िहार राजा नागभट ने छीना था). इस घटना के आधार पर धर्मपाल का ई० स० ८०० के करीब गद्दीनशीन होना अनुमान किया जा सकता है. इस की राणी रण्णादेवी राठौड़ राजा परवल की पुत्री थी. पालवंशियों में यह बड़ा ही प्रतापी हुआ.

५ देवपाल (नं० ४ के भाई वाक्पाल का पुत्र)—यह भी बड़ा विजय प्राप्त करनेवाला राजा हुआ. इस का पुत्र राज्यपाल था, जिस का नाम राजावली में नहीं मिलता.

६ विग्रहपाल (नं० ५ के छोटे भाई जयपाल का पुत्र)-इस की राणी लज्जा हैहय (कलचुरी) वंश की थी.

७ नारायणपाल (नं० ६ का पुत्र).

८ राज्यपाल (नं० ७ का पुत्र)-इस की राणी भाग्यदेवी राठौड़ तुंग की पुत्री थी.

९ गोपाल दूसरा (नं० ८ का पुत्र).

१० विग्रहपाल दूसरा (नं० ९ का पुत्र).

११ महीपाल (नं० १० का पुत्र)-इस के समय का एक शिलालेख वि० सं० १०८३ (ई० स० १०२६) सारनाथ (बनारस के निकट) से मिला है. इस वंश के राजाओं का केवल यही एक लेख ऐसा है, जिस में संवत् दिया हुआ है. इस लेख से पाया जाता है कि इस ने सारनाथ में धर्मराजिक (स्तूप), तथा धर्मचक्र का जीर्णोद्धार करवाया, और गंधकुटि (मन्दिर का मुख्य हिस्सा, जिस में बुद्धदेव की मूर्त्ति स्थापित की जाती थी) नई बनवाई.

१२ नयपाल (नं० ११ का पुत्र)-इस के समय राजा कर्ण (चेदी देश का हैहयवंशी) ने मगध पर चढ़ाई कर प्रथम बहुत से नगर विजय किये, परन्तु पीछे से उस की हार हुई. उस समय प्रसिद्ध

बौद्ध आचार्य दीपांकुर ने जो वज्रासन (बुद्धगया) में रहता था, बीच में पड़ कर दोनों राजाओं में सन्धि करा दी थी.

१३ विग्रहपाल तीसरा (नं० १२ का पुत्र)—इस ने उपर्युक्त राजा कर्ण पर चढ़ाई की थी. इस के तीन पुत्र महीपाल, शूरपाल और रामपाल थे.

१४ महीपाल दूसरा (नं० १३ का पुत्र)-इस के अन्याय के मारे वारेन्द्र के कैवर्त्त राजा ने बागी हो कर पाल राज्य का बहुत सा हिस्सा छीन लिया. जिस से इस (महीपाल) ने उस पर चढ़ाई की, परन्तु उस में कैद हो कर मारा गया.

१५ शूरपाल (नं० १४ का छोटा भाई).

१६ रामपाल (नं० १५ का छोटा भाई)-इस के इतिहास का रामचरित नामक काव्य इसके सांधिविग्रहिक प्रजापति नंदी के पुत्र संध्याकर-नंदी ने रचा, जिस से पाया जाता है, कि इस राजा ने साहसी कैवर्त्त राजा भीम दिव्वोक को लड़ाई में कैद किया. उस समय इस की सेना में कईएक राजा थे, जिन के नाम उक्त काव्य में दिये हैं. इस का मामा राठोड़ मथन राज्य में एक बड़े पद पर नियत था, और उस के दो पुत्र महामंडलेश्वर (बड़े सामन्त), और भतीजा शिवराज महाप्रतिहार था. इस के दो पुत्र कुमारपाल और मदनपाल थे.

१७ कुमारपाल (नं० १६ का पुत्र).

१८ गोपाल तीसरा (नं० १७ का पुत्र).

१९ मदनपाल (नं० १७ का छोटा भाई)-इस की माता का नाम मदन-देवी, और मुख्य राणी का नाम चित्रमतिका देवी मिलता है.

यहां तक की शृंखलाबद्ध वंशावली मिलती है. इस के पीछे के राजाओं का पूरा पता नहीं चलता. दो लेख पालान्त नाम के राजाओं के और मिले हैं, जिन में से एक महेन्द्रपाल के राज्य के आठवें वर्ष का रामगया से, और दूसरा गोविन्दपला के राज्य के १४ वें वर्ष का वि० सं० १२३२ का गया से मिला है, ये राजा भी पालवंशी होने चाहियें.

बंगाल का बड़ा हिस्सा, और मिथिला ई० सन् की बारहवीं शताब्दी में पालवंशियों से सेनवंशियों ने छीन लिये, जिस से उन का राज्य दक्षिणी बिहार में रह गया था. इस वंश का अन्तिम राजा गोविन्दपाल था, जिस को ई० स० ११९७ (वि० सं० १२५४) के क़रीब बख्तियार खिल्जी ने पराजित कर औदंतपुरी को बर्बाद किया, और चातुर्मास के कारण जितने बौद्धश्रमण (साधु) वहां पर ठहरे हुए थे उन को क़त्ल करवाडाला. गोविन्दपाल इस घटना के बाद भी कुछ समय तक जीवित रहा, परन्तु उस का राज्य नष्ट हो चुका था.

सेनवंश.

पालवंशियों के पीछे बंगाल में सेनवंशी राजाओं का राज्य हुआ. ये राजा अपने को चंद्रवंशी मानते थे, ऐसा उन के शिलालेख, दानपत्र, और अद्भुतसागर नामक ग्रन्थ से पाया जाता है, परन्तु एक लेख में इन को ब्रह्मक्षत्रि (ब्राह्मण जो पीछे से क्षत्रियों में मिल गये वे ब्रह्मक्षत्रि कहलाये) भी लिखा है. बंगाल में ऐसी भी प्रसिद्धि है, कि राजा बल्लालसेन जाति का वैद्य था, और वहां के आधुनिक सेनवंशी वैद्य अपने को बंगाल के प्रसिद्ध राजा बल्लालसेन के वंशज मानते हैं, इतना ही नहीं, किन्तु अपने को एक बड़े राजवंश की सन्तान सिद्ध करने के लिये उन्हों ने बहुत कुछ लिखा है, और जेनरलकनिंघम ने उन का यह दावा स्वीकार भी किया है, परन्तु हम उन से सहमत नहीं हो सकते, क्योंकि बंगाल में बल्लालसेन नाम का वैद्य जाति का एक राजा (बड़ा ज़मींदार) भी हुआ था, जिस के वंशज सेनवैद्य हैं, परन्तु वह सेनवंशी राजा बल्लालसेन (विजयसेन के पुत्र) से भिन्न ही था. उक्त वैद्य बल्लालसेन का बल्लालचरित नामक जीवनचरित भी मिलता है, जो सेनवंशी राजा बल्लालसेन के चारित्रग्रन्थ 'बल्लालचरित' से भिन्न ही पुस्तक है. वैद्य बल्लालसेन के चरित का कर्त्ता अपने चरित्रनायक को जो उस का शिष्य था, वैद्यवंशी लिखता है इस प्रकार एक ही नाम के दो पुरुषों के होने से ही सेनवैद्यों ने राजवंशी होने का दावा भ्रम से किया होगा; और उन्हीं वैद्यों के आधार पर जनरलकनिंघम ने भी सेनवंशियों को वैद्य

लिख दिया हो यह संभव है. इस वंश के राजा पहिले कर्णाटक की तरफ़ रहते थे (उधर के किसी राजा के सामन्त हों), जहां से हार कर सामन्तसेन बंगाल में आकर भागीरथी गंगा के तट पर बसा. इस वंश के राजा स्वतंत्र थे, और उन के राज्य में बौद्धधर्म का उच्छेद हो कर हिन्दूधर्म की उन्नति हुई. इस वंश के राजाओं की वंशावली नीचे लिखी जाती है:—

१ सामन्तसेन—दक्षिण के राजा वीरसेन का वंशज. डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र वीरसेन को शूरसेन मान कर बंगाल में कुलीन ब्राह्मणों को लानेवाला आदिशूर वही हो ऐसा अनुमान करते हैं, और सामन्तसेन को वीरसेन (आदि शूर) का उत्तराधिकारी मानते हैं. परन्तु हम उन के इन दोनों अनुमानों को स्वीकार नहीं कर सकते, क्योंकि आदिशूर सामन्तसेन से बहुत पूर्व बंगाल का एक प्रबल राजा था, और वीरसेन दक्षिण से हार कर आया था. इस का ई० सन् की ११ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में होना अनुमान किया जा सकता है.

२ हेमन्तसेन (नं० १ का पुत्र)—इस की राणी यशोदेवी से विजयसेन उत्पन्न हुआ. सामन्तसेन, और हेमन्तसेन के आधीन बंगाल के पूर्वी हिस्से का ही कुछ प्रदेश होना चाहिये.

३ विजयसेन (नं० २ का पुत्र)—सेनवंश में प्रथम प्रतापी राजा यही हुआ. देवपाड़ा से मिले हुए शिलालेख से पाया जाता है, कि इस ने नान्य (नेपाल का नान्यदेव हो ?) और वीर नामक राजाओं को जीत कर कैद किया, तथा गौड, कामरूप और कालिंग के राजाओं को विजय किया.

४ बल्लालसेन (नं० ३ का पुत्र)—यह राजा प्रसिद्ध विद्वान था, और अपने पिता से भी अधिक पराक्रमी हुआ. इस ने वि० सं० ११७६ (ई० स० १११९) में मिथिला देश विजय किया. उस समय इस के पुत्र लक्ष्मणसेन के जन्म की खबर मिली, जिस पर इस ने वहां उसी समय से 'लक्ष्मणसेन संवत्, चलाया. (इस संवत् के लिये देखो प्राचीन लिपिमाला, पृ० ४२–४५). इस (बल्लाल-

सेन) ने कैवर्तों को अपने आधीन किया, जिन्हों ने पालवंशी राजा महीपाल को कैद किया था. पालवंशियों के समय बंगाल में बौद्धधर्म का प्रचार बहुत बढ़ गया था, और बौद्धों में वर्णव्यवस्था न थी, इसलिये इस राजा ने राजा आदिशूर के लाये हुए कुलीन ब्राह्मणों तथा कायस्थों के बीच कुलीनता का प्रचार किया, और वर्णाश्रम की नई व्यवस्था की. यह राजा स्वयं विद्वान् और विद्वानों का आश्रय दाता था. इस ने शक संवत् १०९१ (वि० सं० १२२६ =ई० स० ११६९) में दानसागर नामक पुस्तक रची, और उस के एक वर्ष पूर्व, अर्थात् वि० सं० १२२५ (ई० सन् ११६८) में अद्भुतसागर नामक बड़े ग्रन्थ को लिखना प्रारंभ किया था. परन्तु उस के समाप्त होने के पूर्व वृद्धावस्था के कारण यह अपनी राणी सहित गंगा यमुना के संगम पर जाकर जलनिमग्न हो कर परलोकगामी हुआ, और लक्ष्मणसेन ने अपने पिता के आज्ञानुसार उस ग्रन्थ को पूर्ण कराया. यह घटना शक सं० ११०० (वि० सं० १२३५=ई० स० ११७८) के करीब होनी चाहिये, क्योंकि बल्लालसेन के पुत्र लक्ष्मणसेन का महामांडलिक श्रीधरदास अपने रचेहुए सदुक्तिकर्णामृत में उक्त पुस्तक की समाप्ति श० सं० ११२७ (वि० सं० १२६२ = ई० स० १२०५) में जो लक्ष्मणसेन के राज्य का २७ वां वर्ष था, होना लिखता है.

५ लक्ष्मणसेन (नं० ४ का पुत्र)—यह राजा भी विद्वान् तथा विद्वानों का सम्मान करनेवाला था. इस के रचे हुए श्लोक सुभाषित के ग्रन्थों में मिलते हैं. हलायुध (ब्राह्मणसर्वस्व आदि का कर्त्ता), उमापतिधर, शरण (बल्लालचरित का कर्त्ता), गोवर्द्धनाचार्य (आर्यासप्तशति का कर्त्ता), धोई, जयदेव (गीतगोविन्द का कर्त्ता), और श्रीधरदास (सदुक्तिकर्णामृत का कर्त्ता) आदि विद्वानों में से कुछ इस के समय, और कुछ इस के पिता के समय में विद्यमान थे. इस ने अपने नाम से लक्ष्मणावतीनगर बसाया, जो लखनौती नाम से प्रसिद्ध हुआ. मुहम्मद बख्तियार खिलजी ने वि० संवत् १२५६ (ई० स० ११९९) में इस की राज-

धानी नदिया पर अचानक हमला कर उसे छीन लिया. फिर लखनौती छीन कर उसे अपनी राजधानी बनाई. लक्ष्मणसेन नदिया से भाग कर जगन्नाथ की तरफ़ गया, जहां से लौट आने पर विक्रमपुर में रहा, ऐसी प्रसिद्धि है. नदिया, और लखनौती छूटने पर भी बल्लालसेन के पुत्रों के आधीन बंगाल का पूर्वी हिस्सा रह गया हो ऐसा प्रतीत होता है. वि० संवत् १२६२ (ई० स० १२०५) के कुछ पीछे इस का देहान्त हुआ होगा इस के तीन पुत्र माधवसेन, केशवसेन और विश्वरूपसेन थे.

लक्ष्मणसेन के बाद माधवसेन का १०, वर्ष और केशवसेन का १५ वर्ष राज्य करना अबुलफ़ज़ल ने लिखा है. (संभव है कि वे लक्ष्मणसेन के बाद कुछ ज़िलों के स्वामी रहे हों). लक्ष्मणसेन के बचे हुए राज्य का स्वामी पीछे से उस का तीसरा पुत्र विश्वरूपसेन हुआ. वह भी मुसल्मानों से लड़ा था. विश्वरूपसेन के दो ताम्र पत्र मिले हैं, जिन में से एक उस के राज्य के तीसरे वर्ष का, और दूसरा १४ वें वर्ष का है. विश्वरूपसेन के बाद दनुजमाधव ने विक्रमपुर छोड़ कर चंद्रद्वीप (बाकला) में अपना राज्य जमाया. जब लखनौती का हाकिम मुग़ीसुद्दीन तुग़रिल बग़ावत कर वहां का स्वतंत्र सुल्तान बन गया तो देहली के बादशाह बल्बन ने उस पर चढ़ाई की, जिस से वह लखनौती छोड़ कर भाग गया. बादशाह उस का पीछा करता हुआ सुनारगांव में पहुंचा, जहां पर दनुजराय (दनुजमाधव) उस से मिला. फिर बादशाह और इस के बीच यह सन्धि हुई, कि यह (दनुजमाधव) [illegible] को जलमार्ग से भागने न देवे. यह सन्धि ई० स० १२८० (वि० सं० १३३७) के करीब हुई थी, अतएव उक्त समय तक दनुजमाधव का जीवित रहना, और स्वतंत्र होना निश्चित है. दनुजमाधव के पीछे रामवल्लभराय, कृष्णवल्लभराय, हरिवल्लभराय और जयदेवराय चंद्रद्वीप के स्वामी हुए. विक्रमपुर की सेनवंशी शाखा की समाप्ति जयदेवराय के साथ हुई.

गंगावंश.

गंगावंशियों के अनेक शिलालेख, और ताम्रपत्र मिले हैं, जिन से उन के दो भिन्न भिन्न राज्यों का होना पाया जाता है, जिन में से एक कलिंगनगर (कलिंगपट्टम—मद्रास इहाते के गंजाम ज़िले में) और दूसरा माइसोर राज्य के गंगवाड़ी प्रदेश पर. गंगावंशी अपने को चंद्रवंशी मानते थे, ऐसे उन के ताम्रपत्रों से पाया जाता है. प्रथम हम कलिंगनगर के गंगावंशियों की वंशावली नीचे देते है. उन के भिन्न भिन्न लेखों की वंशावलियों में कुछ कुछ अंतर है, इसलिये अनंतवर्म चोडगंग तक की वंशावली उसी राजा के शक सं० १०४० (वि० सं० ११७५=ई० स० १११८) के ताम्रपत्र से, जो विज़िगापट्टम से मिला है, उद्धृत की है, और बाक़ी की अनेक ताम्रपत्रों सेः—

गांगेय— चंद्रवंश में पैदा हुआ. इसी के नाम से इस का वंश गंगावंश कहलाया.

कोलाहल (गांगेय का वंशज)-इसने कोलाहलपुर (कोलार, माइसोर राज्य में) गंगवाड़ी में बसाया.

विरोचन (कोलाहल का पुत्र).

विरोचन के पीछे कोलाहलपुर में राज्य करनेवाला ८२ वां राजा वीरसिंह हुआ, जिस से शृंखलाबद्ध वंशावली मिलती है.

१ वीरसिंह—इस के पांच पुत्र कामार्णव, दानार्णव, गुणार्णव, मारसिंह और वज्रहस्त हुए.

२ कामार्णव (नं० १ का पुत्र)—इस ने बालादित्य को परास्त कर उस से कलिंग देश छीन लिया, और जंतावर में ३६ वर्ष राज्य किया.

३ दानार्णव (नं० २ का छोटा भाई)-इस ने ४० वर्ष राज्य किया.

४ कामार्णव दूसरा (नं० ३ का पुत्र)-इस ने ५० वर्ष राज्य किया.

५ रणार्णव (नं० ४ का पुत्र)—इस ने ५ वर्ष राज्य किया.

६ वज्रहस्त (नं० ५ का पुत्र)—इस ने १५ वर्ष राज्य किया.

७ कामार्णव तीसरा (नं० ६ का छोटा भाई)-इस ने १० वर्ष राज्य किया.

८ गुणार्णव (नं० ७ का पुत्र)—इस ने २७ वर्ष राज्य किया.
९ जितांकुश (नं० ८ का पुत्र)—इस ने १५ वर्ष राज्य किया.
१० कलिगलांकुश (नं० ९ का भतीजा)—इस ने १२ वर्ष राज्य किया.
११ गंडम (नं० १० का चचा)—इस ने ७ वर्ष राज्य किया.
१२ कामार्णव चौथा (नं० ११ का छोटा भाई)—इस ने २५ वर्ष राज्य किया.
१३ विनयादित्य (नं० ११ का छोटा भाई)—इस ने ३ वर्ष राज्य किया.
१४ वज्रहस्त दूसरा (नं० १२ का पुत्र)—इस ने ३५ वर्ष राज्य किया.
१५ कामार्णव पांचवां (नं० १४ का पुत्र)—इस ने ६ मास राज्य किया.
१६ गंडम दूसरा (नं० १५ का छोटा भाई)—इस ने ३ वर्ष राज्य किया.
१७ मधुकामार्णव (नं० १६ का छोटा भाई)—इस ने १९ वर्ष राज्य किया.
१८ वज्रहस्त (नं० १७ का पुत्र)—इस ने ३० वर्ष राज्य किया. इस का राज्याभिषेक वि० सं १०९५ (ई० स० १०३८) में हुआ था. ऊपर राजाओं के जो राज्यवर्ष लिखे हैं, वे उक्त ताम्रपत्र के अनुसार लिखे हैं. वे कहां तक ठीक हैं यह नहीं कहा जा सकता (उन की सत्यता में संदेह है) क्योंकि ऊपर के राजाओं में से किसी का लेख अबतक नहीं मिला कि जिस से जांच की जावे.
१९ राजराज (नं० १८ का पुत्र)—इस ने ८ वर्ष राज्य किया. इस का विवाह चोड (चोल) वंशी राजा राजेन्द्रचोड की पुत्री राजसुन्दरी से हुआ था. यह राजा वि० सं ११३२ (ई० स० १०७५) में विद्यमान था.
२० अनंतवर्म चोडगंग (नं० १९ का पुत्र)—इस के समय के तीन ताम्रपत्र शक सं० १००३ (वि० सं० ११३८=ई० स० १०८०) से १०५७ (वि० सं० ११९२=ई० स० १०३५) तक के मिले हैं. इस की गद्दीनशीनी वि० सं ११३५ (ई० स० १०७८) में होना पाया जाता है. जगन्नाथ (जगदीश) का मन्दिर इसी ने बनवाया था.

२१ कामार्णव छठा (नं २० का पुत्र)-इस की गद्दीनशीनी वि० सं० ११९९ (ई० स० ११४२) में होनी चाहिये.

२२ राघव (नं० २१ का छोटा भाई)—इस की माता इंदिरा सूर्य-वंश की थी. इस का १५ वर्ष राज्य करना लिखा है.

२३ राजराज दूसरा (नं० २२ का छोटा भाई)-इस की माता चन्द्रलेखा थी.

२४-अनंगभीम (नं० २३ का छोटा भाई)-इस को अनियंकभीम भी लिखा है.

२५ राजराज तीसरा (नं० २४ का पुत्र)-इस को राजेन्द्र भी कहते थे.

२६ अनंगभीम दूसरा (नं० २५ का पुत्र)—इस की माता गुणदेवी चालुक्य (सोलंकी) वंश की थी.

२७ नरसिंह (नं० २६ का पुत्र).

२८ भानुदेव (नं० २७ का पुत्र)-इस की माता सीतादेवी मालवराज की पुत्री थी.

२९ नरसिंह दूसरा (नं० २८ का पुत्र)-इस की माता जाकल्लदेवी चालुक्यवंश की थी. इस का एक ताम्रपत्र शक सं० १२१७ (वि० सं० १३५२=ई० स० १२९६) का मिला है.

३० भानुदेव (नं० २९ का पुत्र*)—यह राजा गयासुद्दीन तुग़लक़ से लड़ा था.

३१ नरसिंह तीसरा (नं० ३० का पुत्र).

३२ भानुदेव तीसरा (नं० ३१ का पुत्र).

३३ नरसिंह चौथा (नं० ३२ का पुत्र)—इस की माता हीरादेवी चालुक्य (सोलंकी) वंश की थी. इस के तीन ताम्रपत्र मिले हैं, जो शक संवत् १३०५ (वि० सं० १४४०=ई० स० १३८४) से १३१६ (वि० सं० १४५१=ई० स० १३९५) तक के हैं.

इन गंगावंशियों का राज्य उड़ीसा तक फैल गया था, और त्रिक-लिंग (तिलंगाना) देश भी कुछ काल तक इन की हुकूमत में रहा था, गंगावंशियों ने अपना संवत् भी चलाया था, जो गांगेय संवत् कहलाता था (इस संवत् के लिये देखो प्राचीन लिपिमाला, पृ० ३७—३८).

गंगवाड़ी के गंगावंशी

गंगावंशियों का दूसरा राज्य गंगवाड़ी (माइसोरराज्य में) था. वहां के राजाओं का खिताब 'कोलालपुरवराधीश्वर' होने से पाया जाता है, कि वे भी कलिंगनगर के गंगावंशियों की नाई अपना आदि स्थान कोलालपुर (कोलाहलपुर) मानते थे. उन की राजधानी तलक्कद (तलवनपुर) थी, जो कावेरी नदी के तट पर (माइसोर से करीब २८ मील अग्निकोण में है) थी. इन का गोत्र कएवायन था, और कितने-एक लेखों में इन का कएवऋषि के वंश में होना भी लिखा है, परन्तु संभव है कि इन के गोत्र के आधार से ऐसा लिखा गया हो क्षत्रियों का गोत्र उन के उत्पादक का सूचक नहीं, किन्तु उन के पुरोहित का सूचक होता है. इन गंगावंशियों के शिलालेख और ताम्रपत्र दोनों मिलते हैं, परन्तु उन के जो ताम्रपत्र मिले हैं उन में अधिकतर जाली हैं. ताम्रपत्रों में विशेष नाम, और शिलालेखों में कम नाम मिलते हैं, परन्तु ताम्रपत्र विश्वासयोग्य न होने से शिवमार के पहिले के संवत् उद्धृत नहीं किये. शिवमार तक की वंशावली ताम्रपत्रों से ली है, और पिछली शिलालेखों से.

१ कोंगणिवर्म—यह राजा जान्हवेय (गंगा) वंशी और काएवायन गोत्र का था.

२ माधव (नं० १ का पुत्र).

३ हरिवर्मा (नं० २ का पुत्र)—इस को अरिवर्मा भी लिखा है

४ विष्णुगोप (नं० ३ का पुत्र).

५ माधव दूसरा (नं० ४ का पुत्र).

६ अविनीत कोंगणि (नं० ५ का पुत्र)—इस की माता कदंबवंशी राजा कृष्णवर्मा की पुत्री थी.

७ दुर्विनीत कोंगणि रुद्धराज (नं० ६ का पुत्र).

८ मुष्कर कोंगणि रुद्धराज (नं० ७ का पुत्र).

९ श्रीविक्रम कोंगणि (नं० ८ का पुत्र).

१० भूविक्रम कोंगणि (नं० ९ का पुत्र).

११ शिवमार (नं० १० का छोटा भाई)—इस के सिवाय 'पृथ्वी कोंगणि महाराज' और 'नवकाम' मिलते हैं. कहीं इस को नं० १० का पुत्र भी लिखा है. यह श० सं० ६३५ (वि० सं० ७७० = ई० स० ७१३) में विद्यमान था, ऐसा इस के एक ताम्रपत्र से पाया जाता है.

१२ श्रीपुरुष (नं० ११ का पुत्र)—यह राजा श० सं० ६७२ (वि० सं० ८०७ = ई० स० ७५१) में विद्यमान था, ऐसा इस के एक ताम्रपत्र से पाया जाता है.

१३ रणविक्रम (नं० १२ का पुत्र).

१४ राजमल्ल (नं० १३ का पुत्र).

१५ नीतिमार्ग (नं० १४ का पुत्र ताम्रपत्रों के अनुसार)—इस को कोंगणिवर्म, पेर्मांडि, और एडेयंग भी कहते थे.

१६ सत्यवाक्य पेर्मांडि (नं० १५ का पुत्र).

१७ सत्यवाक्य कोंगणिवर्मा—इस को बूतग (भूतार्य) भी कहते थे. इस का विवाह दक्षिण के राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष की पुत्री अब्बलब्बा से हुआ था. इस का शक सं० ८०६ (वि० सं० ९४४ = ई० स० ८८७) में विद्यमान होना एक शिलालेख से पाया जाता है.

१८ एडेयप्प.

१९ राचमल्ल (नं० १८ का पुत्र)—इस को राष्ट्रकूट (राठौड़) कृष्णराज (तीसरे) ने पदच्युत किया था, और यह अपने पुत्र बूतग के हाथ से मारागया था.

२० बूतग दूसरा—इस को भूतार्य भी कहते थे, और इस के सिवाय सत्यवाक्कोंगणि, पेर्मांडि, नन्नियगंग, और जयदुत्तरंग मिलते हैं. इस का विवाह राष्ट्रकूट (राठौड़) वंश के राजा वद्दिग (अमोघवर्ष तीसरे) की पुत्री रेवकनिम्मडि से, जो कृष्णराज तीसरे की बड़ी बहिन थी, हुआ था. इस ने युद्ध में चोलदेश के राजा राजादित्य को मारा था. यह शक सं० ८७२ (वि० सं० १००७ = ई० स० ९५०) में विद्यमान था.

२१ मरुलदेव (नं० २० का पुत्र).

२२ रच्चगंग (नं० २१ का पुत्र).

२३ मारसिंह (नं० २० का पुत्र)—इस के सिवाय सत्यवाक्यकोंगणिवर्मा, पेर्मांडि, चलदुत्तरंग, जगदेकवीर, और नोलंबकुलांतक मिलते हैं. इस ने राठोड़ कृष्णराज के लिये उत्तरी प्रदेश विजय किया, और उक्त राठोड़ राजा के प्रतिपक्षी अल्ल को परास्त किया. और चालुक्य राजादित्य को जीता था. यह शक सं० ८९६ (वि० १०३१ = ई० स० ९७४) तक विद्यमान था.

२४ पंचलदेव—इस का एक लेख श० सं० ८९७ (वि० सं० १०३२ = ई० स० ९७५) का मिला है.

२५ राचमल्ल दूसरा—इस का एक लेख श० सं० ८९९ (वि० सं० १०३४ = ई० स० ९७७) का मिला है.

इस के बाद चोलदेश के राजाओं ने गंगवाड़ी पर अपना अधिकार जमा लिया था. ये गंगावंशी पहिले सोलंकियों के और उन के बाद राठोड़ों के सामन्त रहे थे, और कभी स्वतंत्र भी.

कदंबवंश.

माइसोर राज्य के तालगुंड स्थान से मिले हुए कदंबवंशी राजा शांतिवर्मा के लेख में कदंबवंशियों की उत्पत्ति के विषय में लिखा है, कि 'मानव्यगोत्री ब्राह्मण हारीतिपुत्र अपने निवास स्थान के पास सदा कदंब के वृक्ष लगाया करता था, जिस से उस का वंश कदंब नाम से प्रसिद्ध हुआ, परन्तु संभव है, कि कदंब या कदंबा नामी पुरुष के नाम से उक्त वंश का नाम चला हो. कदंबों के तीन भिन्न भिन्न राज्य होने का पता लगा है, जिन में से एक बनवासी (बंबई इहाते के कानड़ा प्रदेश में) या वैजयन्ती का, दूसरा हांगल, और तीसरा गोवा का. इन की वंशावलियां नीचे लिखी जाती हैं :—

बनवासी (वैजयन्ती) के कदंबवंशी.

१ मयूरवर्मा—यह कांची (कांजीवरम्) के पल्लवों से लड़कर उन के

एक देश का राजा बना, जो पश्चिमी समुद्रतट पर था.

२ गंगवर्मा (नं० १ का पुत्र).

३ भगीरथ (नं० २ का पुत्र).

४ रघु (नं० ३ का पुत्र)—इस ने बहुत सा मुल्क अपने राज्य में मिला लिया.

५ काकुस्थवर्मा (नं० ४ का भाई)—इस ने अपनी पुत्रियों के विवाह गुप्त तथा दूसरे वंशवालों के साथ किये. इस ने स्थान कुंड्डर (ताल-गुंड–माइसोर राज्य के शिमोगा ज़िले में) में एक बड़ा तालाब बनवाया. इस के दो पुत्र शांतिवर्मा, और कृष्णवर्मा थे.

६ शांतिवर्मा (नं० ५ का पुत्र).

७ मृगेशवर्मा (नं० ६ का पुत्र)—इस के पुत्र रविवर्मा, भानुवर्मा, और शिवरथ थे.

८ मांधातृवर्मा (नं० ७ का भाई ?).

९ रविवर्मा (नं० ७ का पुत्र).

१० भानुवर्मा (नं० ९ का भाई).

११ शिवरथ (नं १० का भाई).

१२ हरिवर्मा (नं० ९ का पुत्र).

इन राजाओं के ताम्रपत्रों में राज्यवर्ष दिये हैं, जिन के साथ दूसरा कोई संवत् दिया हुआ न होने से इन का ठीक ठीक समय निश्चय नहीं हो सकता, परन्तु इन के ताम्रपत्रों की लिपि से अनुमान कर सकते हैं कि ये राजा ई० स० की चौथी और छठीं शताब्दी के बीच में हुए होंगे.

ऊपर लिखे हुए काकुस्थवर्मा नं० ५ का छोटा पुत्र कृष्णवर्मा किसी अलग प्रदेश का स्वामी हुआ होगा उस के वंशजों की नामावली इस तरह मिलती है :—

१ कृष्णवर्मा–इस के दो पुत्र विष्णुवर्मा, और देववर्मा थे.

२ विष्णु वर्मा (नं० १ का पुत्र).

३ सिंह वर्मा (नं० २ का पुत्र).

४ कीर्त्ति वर्मा (नं० ३ का पुत्र).

वनवासी कदंबवंशी स्वतंत्र राजा होने चाहियें, ये स्वामिकार्त्तिक के उपासक थे.

हांगल के कदंबवंशी.

कदंबवंशियों का दूसरा राज्य हांगल (बंबई इहाते के धारवाड़ ज़िले में) में था, जहां के कदंबवंशियों का ख़िताब 'वनवासी पुरवराधीश्वर' था, जिस से पाया जाता है, कि ये ऊपर लिखे हुए वनवासी के कदंबों की एक शाखा में होने चाहियें. इन की वंशावली इस प्रकार मिलती है :—

१ मयूर वर्मा (संभव है कि यह राजा वनवासी के राज्यवंश का पहिला राजा हो, और हांगल के कदंबों ने अपने तईं अपने मुख्य वंश से मिलाने का यत्न किया हो).
२ कृष्ण वर्मा (नं० १ का पुत्र).
३ नाग वर्मा (नं० २ का पुत्र).
४ विष्णु वर्मा (नं० ३ का पुत्र).
५ मृग वर्मा (नं० ४ का पुत्र).
६ सत्यवर्मा (नं० ५ का पुत्र).
७ विजय वर्मा (नं० ६ का पुत्र).
८ जय वर्मा (नं० ७ का पुत्र).
९ नाग वर्मा दूसरा (नं० ८ का पुत्र).
१० शांति वर्मा (नं० ९ का पुत्र).
११ कीर्त्तिवर्मा (नं० १० का पुत्र).
१२ आदित्यवर्मा (नं० ११ का पुत्र).
१३ चट्ट (नं० १२ का पुत्र)—इस को चट्टग और चट्टेय भी लिखा है.
१४ जयवर्मा दूसरा (नं० १३ का पुत्र)—इस को जयसिंह भी कहते थे. इस के पांच पुत्र मावलिदेव, तैल (तैलप), शांतिवर्मा, चोकिदेव (जोकिदेव), और विक्रम (विक्रमांक) थे.
१५ मावलिदेव (नं० १४ का पुत्र).

१६ तैल या तैलप (नं० १५ का भाई).

१७ कीर्त्तिवर्मा दूसरा (नं० १६ का पुत्र)—यह पश्चिमी सोलंकी राजा सोमेश्वर का सामन्त था, और शक संवत् ६९० (वि० सं० ११२५ =ई० स० १०६८) में वनवासी प्रदेश का स्वामी था ऐसा एक शिलालेख से पाया जाता है.

१८ शांतिवर्मा दूसरा (नं० १५ का भाई)—यह शक सं० ६९७ (वि० सं० ११३२ = ई० स० १०७५) में विद्यमान था, और इस ने अपने तई महामंडलेश्वर (सामन्त) लिखा है. इस की स्त्री सिरियादेवी पांड्यवंश की थी.

१९ तैलप दूसरा (नं० १८ का पुत्र)—इस की स्त्री राचलदेवी पांड्यवंश की थी. इस के अधिकार में वनवासी, और हांगल दोनों का होना पाया जाता है. श० सं० १०५० (वि० सं० ११८५= ई० स० ११२८) में यह विद्यमान था. इस के तीन पुत्र मयूरवर्मा, मल्लिकार्जुन, और तैलम थे.

२० मयूरवर्मा दूसरा (नं० १९ का पुत्र)—यह वर्त्तमान (गत नहीं) शक सं० १०५४ (वि० सं० ११८८=ई० स० १०३१) में विद्यमान था.

२१ मल्लिकार्जुन (नं २० का भाई)—यह वर्त्तमान श० सं० १०६० वि० सं० ११९४=ई० स० ११३८) तक विद्यमान था, और सोलंकी राजा सोमेश्वर तीसरे का सामन्त था.

२२ तैलम (नं० २१ का भाई)—यह शक संवत् १०६९ (वि० सं० १२०४=ई० स० ११४७) में विद्यमान था. इस के दो पुत्र कीर्तिदेव, और कामदेव थे.

२३ कामदेव (नं० २२ का पुत्र)—इस के समय के लेख शक सं० ११११ और १११८ (वि० सं० १२४६ और १२५३ = ई० स० ११८९ और ११९६) के मिले हैं. (इस के पूर्व इस के बड़े भाई कीर्तिदेव ने भी राज्य किया हो तो आश्चर्य नहीं, परन्तु इस के समय का कोई लेख नहीं मिला).

द्वारसमुद्र के होयशल (यादव) राजा वीरबल्लाल ने इन कदंबों

के आधीन का प्रदेश (कामदेव के अंतिम समय में) अपने राज्य में मिला लिया, जिस से इस वंश के उक्त राज्य की समाप्ति हुई.

गोवा के कदंबवंशी.

गोवा, जो इस समय पुर्तगालवालों के आधीन है, वहां के राज्यकर्त्ता पहिले शिलारावंशी थे, जिस से वह इलाक़ा ईसवी सन् की ग्यारहवीं शताब्दी में कदंबवंशियों ने छीन लिया. इन कदंबों की राजधानी गोवा थी, जिस को उन के लेखों में गोपपट्टन या गोपकपुरी लिखा है. इन का भी ख़िताब 'वनवासी पुरवराधीश्वर' होने से अनुमान होता है, कि ये भी वनवासी के कदंबों की शाखा में थे. इन का इष्टदेव सप्तकोटीश्वर नामक शिव था. इन की वंशावली नीचे लिखे अनुसार मिलती है

१ शुष्टिल्ल–इस का ख़िताब व्याघ्रमारी मिलता है.

२ शष्ठदेव (नं० १ का पुत्र)–इस का ख़िताब महामंडलेश्वर मिलता है, जो इस का सामन्त होना प्रगट करता है. यह पश्चिमी सोलंकियों का सामन्त था. इस के समय का एक शिलालेख शक सं० ९२९ (वि० सं० १०६४=ई० स० १००७) का मिला है.

३ जयकेशी (नं० २ का पुत्र)–यह सोलंकी (पश्चिमी) राजा सोमेश्वर प्रथम का सामन्त था. इस ने गोवा को अपनी राजधानी बनाया था. इस राजा की पुत्री मयणल्लदेवी (मीनलदेवी) का विवाह गुजरात के सोलंकी राजा कर्ण प्रथम से हुआ था इस का एक लेख शक संवत् ९७४) वि० सं० ११०९ =ई० स० १०५२) का मिला है.

४ विजयादित्य (नं० ३ का पुत्र)—इस को विजयार्क भी लिखते थे.

५ जयकेशी दूसरा (नं० ४ का पुत्र)—इस का विवाह पश्चिमी सोलंकी राजा विक्रमादित्य छठे की पुत्री मैलदेवी से हुआ था. इस का एक लेख शक संवत् १०६९ (वि० सं० १२०४ =ई० स० ११४७) का मिला है.

६ शिवचित्त पेर्माडि (नं० ५ का पुत्र)—इस का एक लेख शक सं० १०८० (वि० सं० १२१५ = ई० स० ११५८) का मिला है. इस के समय के राज्यवर्षवाले कईएक लेख मिले हैं, जिन में से सब से पिछला इस के राज्यवर्ष २८ वें का शक सं० १०९६ (वि० सं० १२३१ = ई० स० ११७४) का होना चाहिये. संभव है कि यह राजा स्वतंत्र हो गया हो.

७ विजयादित्य दूसरा (नं० ६ का छोटा भाई)—इस का खिताब विष्णुचित्त मिलता है.

८ जयकेशी तीसरा (नं० ७ का पुत्र)—इस की गद्दीनशीनी शक सं० ११०६ (वि० सं० १२४४ = ई० स० ११८७) में हुई. इस के राज्य के पन्द्रहवें वर्ष तक के लेख मिले हैं.

९ त्रिभुवनमल्ल (नं० ८ का पुत्र).

१० षष्ठदेव दूसरा (नं० ९ का पुत्र)—इस का खिताब शिवचित्त था. इस का एक ताम्रपत्र वर्तमान शक सं० ११७३ (वि० सं० १३०७ = ई० स० १२५०) का मिला है, जो इस के राज्य का पांचवां वर्ष था, इस के साथ गोवा के कदंबों का राज्य अस्त हुआ.

काकतीयवंश.

काकतीय, काकती, या काकत्यवंशी राजाओं के प्राचीन लेखों में उन का सूर्यवंशी, और सगर, भगीरथ, रघु, राम के वंशज होना लिखा है, परन्तु दन्तेवाड़ा (बस्तर राज्य में-सेंट्रल प्रॉविन्सेज़ के) के दन्तेश्वरी के मन्दिर के लेख में, जो वि० सं० १७६० (ई० स० १७०३) का है, उन का चन्द्रवंशी, और पांडव अर्जुन की सन्तान होना लिखा है. इस विरोध का कारण ऐसा अनुमान किया जाता है, कि इस वंश के राजा गणपति के पुत्र न होने से उस की पुत्री रुद्रांबा ने राज्य किया. उस के भी पुत्र न होने से उस का दोहता गोद आकर बस्तर राज्य का मालिक हुआ, जिस का पिता चन्द्रवंशी था, जिस से उस के वंशजों ने अपने को चन्द्रवंशी लिखा होगा, और यह संभव भी है. काकतीय

वंशियों का इस समय केवल एक राज्य बस्तर सेंट्रलप्रॉविन्सेज़ (मध्यप्रदेश) में है. उन की राजधानी पहिले अनंकोंड (निज़ाम राज्य में वरंगल से कुछ दूर उत्तर) नगर था. उन की वंशावली इस प्रकार मिलती है.

१ दुर्जय.

२ बेट (नं०१ का पुत्र)—इस को बेटमराज भी कहते थे, और इस ने 'त्रिभुवनमल्ल' ख़िताब धारण किया था.

३ प्रोल (नं० २ का पुत्र)—इस को प्रोलेराज, और प्रोदराज भी कहते थे. इस ने 'जगति केसरी' ख़िताब धारण किया था. इस ने पश्चिमी सोलंकी राजा तैलप तीसरे को युद्ध में कैद किया था, और गोविन्दराज तथा मंत्रकूट के गुंड को परास्त किया था.

४ रुद्रदेव (नं० ३ का पुत्र)—इस को महामंडलेश्वर लिखा है. जो इस की सामन्त की दशा प्रगट करता है. इस ने मेलिगदेव को जीता था. इस के समय का एक लेख शक संवत् १०८४ (वि० सं० १२१९=ई० स० ११६२) का मिला है.

५ महादेव (नं० ४ का भाई)—इस को माधव भी कहते थे.

६ गणपति (नं० ५ का पुत्र)—यह देवगिरि के यादव राजा सिंघण तथा चोल आदि के राजाओं से लड़ा था. इस के समय के कई लेख मिले हैं, जिन में से पहिला शक संवत् ११३५ (वि० सं० १२७०=ई० स० १२१३) और सब से पिछला श० सं० ११७२ (वि० सं० १३०७=ई० स० १२५०) का है.

७ रुद्रमादेवी (नं० ६ की पुत्री)—ऐसी जनश्रुति है, कि इस ने ३८ वर्ष राज्य किया था. इस को रुद्रांबा भी कहते थे. इटली देश के वेनिस नगर का निवासी प्रसिद्ध यात्री मार्कोपोलो ई० सन् १२९४ के क़रीब दक्षिण में आया उस समय यह राज्य कर रही थी ऐसा उस के लेख से पाया जाता है.

८ प्रतापरुद्रदेव (नं० ७ का दोहता)—यह राजा विद्वानों का क़द्रदान था. इस के समय में विद्यानाथ पंडित ने इस के नाम की यादगार में प्रतापरुद्रयशोभूषण (प्रतापरुद्रीय) नामक अलंकार का ग्रंथ रचा

था. इस के सेनापति मुप्पिडि ने कांची (कांजेवरम्) को विजय किया था. इस का एक शिलालेख शक सं० १२३८ (वि० सं० १३७३ = ई० स० १३१६) का मिला है.

यहां तक की वंशावली काकतीयों के पुराने लेखों से मिलती है. वि० सं० १७६० (ई० स० १७०३) के उपर्युक्त लेख में नीचे लिखे अनुसार बस्तर के काकतीय वंशियों की वंशावली दी है :—

१ अन्नमराज—इस को प्रतापरुद्रदेव का भाई, और बस्तर में आनेवाला लिखा है.
२ हमीरदेव.
३ भैरवदेव.
४ पुरुषोत्तमदेव.
५ जयसिंहदेव.
६ नरसिंहदेव.
७ जगदीशराय देव.
८ वीरनारायण देव.
९ वीरसिंह देव–इस की राणी बदनकुमारी चंदेलवंश की थी.
१० दिग्पाल देव–इस की राणी अजबकुमारी चंदेल वंश की थी. यह राजा बड़ा ही निर्दयी था. इस ने दंतेश्वरी की यात्रा के समय उक्त देवी के आगे कई हज़ार भैंसों और बकरों का बलिदान किया, जिस से शंखिनी नदी का जल पांच दिन तक कुसुम के पुष्प समान लाल रहा. यही इस की निर्दयता का प्रत्यक्ष प्रमाण है.

यहां तक की वंशावली उपर्युक्त लेख में मिलती है, इस वंशावली का अन्नमराज, प्रतापरुद्रदेव (ऊपर नं० ८) का छोटा भाई हो तो यह वंशावली अपूर्ण होनी चाहिये, क्योंकि वि० सं० १३७३ (ई० सन् १३१६) में प्रतापरुद्र, और वि० सं० १७६० (ई० स० १७०३) में दिग्पालदेव विद्यमान था. इन दश राजाओं के लिये करीब ३७५ वर्ष का समय आता है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत अधिक समझा जावेगा. प्रतापरुद्र के पीछे दूसरा उसी नाम का राजा हुआ, जो अह-

मदशाह बहमनी के साथ लड़कर ई० स० १४२४ (वि० सं० १४८१) में मारा गया, और उस का राज्य उक्त बहमनी बादशाह ने छीन लिया था. अतएव संभव है कि अन्नमराज बहमनी बादशाह से लड़नेवाला प्रतापरुद्र का भाई हो, और उस का राज्य मुसल्मानों के आधीन होने के बाद वह बस्तर में आकर नवीन राज्य का संस्थापक हुआ होगा. दिक्पालदेव से लगाकर अब तक के बस्तर के राजाओं की नामावली यह है :—राजपालदेव, दलपतदेव, दरियादेव, महीपालदेव, भूपालदेव, भैरवदेव, और रुद्रप्रतापदेव (वर्त्तमान है).

पल्लववंश.

पल्लववंशी राजा अपने तई ब्राह्मण वंशी होना प्रगट करते थे. उन के ताम्रपत्रों में ब्रह्मा से लगाकर आंगिरस, बृहस्पति, शंयु, भरद्वाज, द्रोण, अश्वत्थामा से पल्लव तक की वंशावली मिलती है. पल्लव उन के वंश का मूल पुरुष हुआ, जिस के नाम से यह वंश प्रसिद्ध हुआ. इस वंश के राजा दक्षिण के सोलंकियों के कुल शत्रु रहे और वे बराबर उन से लड़ते रहे थे. इस वंश के राजाओं की राजधानी कांची (कांजिवरम् मद्रास इहाते में) थी. इन के ताम्रपत्रादि में संवत् नहीं किन्तु राज्यवर्ष बहुधा लिखे मिलते हैं, जिस से इन का समय निर्णय करना अशक्य है. इन की एक से अधिक शाखाएं होना पाया जाता है, परन्तु हम उन के स्थान आदि का ठीक ठीक निर्णय नहीं कर सकते. उन की वंशावली इस प्रकार मिलती है :—

१ विजय स्कन्दवर्मा.

२ विजय बुद्धवर्मा.

३ बुध्यंकुर (नं० २ का पुत्र).

४ शिवस्कंदवर्मा.

५ स्कंदवर्मा.

६ वीरवर्मा (नं० ५ का पुत्र).

७ स्कंदवर्मा दूसरा (नं० ६ का पुत्र).
८ विष्णुगोप वर्मा (नं० ७ का पुत्र).
९ सिंह वर्मा (नं० ८ का पुत्र)

दूसरे ताम्रपत्रों से निम्नलिखित वंशावली मिलती है :—

१ सिंहविष्णु या अवनिसिंह.
२ महेन्द्रवर्मा (नं० १ का पुत्र).
३ नरसिंहवर्मा (नं० २ का पुत्र)—इस को नरसिंहविष्णु भी कहते थे. इस ने पश्चिमी सोलंकी राजा पुलकेशी दूसरे को हरा कर उस की राजधानी वातापी छीन ली थी.
४ महेन्द्रवर्मा दूसरा (नं० ३ का पुत्र).
५ परमेश्वरवर्मा (नं० ४ का पुत्र (—इस को ईश्वरपोतवर्मा भी कहते थे. यह पश्चिमी सोलंकी राजा विक्रमादित्य प्रथम से लड़ा था.
६ नरसिंहवर्मा दूसरा (नं० ५ का पुत्र)—इस को नरसिंहविष्णु और राजसिंह भी कहते थे.
७ महेन्द्र वर्मा तीसरा (नं० ६ का पुत्र).
८ परमेश्वर वर्मा (नं० ७ का भाई).

इन के और और ताम्रपत्रादि से और भी छोटी छोटी वंशावलियां बन सकती हैं, जिन में से मुख्य यह है :—

पल्लव वंश में विमल, कोंकणिकादि राजा हुए, जिन के पीछेः—

१ दंति वर्मा—यह कांची का दंतिवर्मा राजा हो, जिस को राठौड़ गोविन्दराज तीसरे ने पराजित किया था.
२ नंदिवर्मा (नं० १ का पुत्र)—इस को विजयनंदिवर्मा भी कहते थे. इस की राणी शंखा राठौड़ वंश की थी.
३ नृपतुंगदेव (नं० २ का पुत्र).
४ कंपवर्मा (नं० ३ का भाई).
५ स्कंद शिष्य.
६ विजय नरसिंह वर्मा.
७ विजय ईश्वर वर्मा.

बाणवंश.

इस वंश के राजा विक्रमादित्य (दूसरे) के दानपत्र में, जो उद्-येंदिरं (उत्तरी आर्कट प्रदेश के गुडियातम तअल्लुके में) से मिला है, बाणवंशियों का असुरबलि के वंश में होना लिखा है. इस वंश के राजाओं का विशेष वृत्तान्त नहीं मिलता. इन की वंशावली इस प्रकार मिलती है :—

असुरबलि का पुत्र देवताओं का शत्रु बाण हुआ, उस के वंश में बाणाधिराज हुआ जिस के वंश में—

१ जयनंदिवर्मा—यह आंध्र देश के पश्चिमी मुल्क का राजा था.
२ विजयादित्य (नं० १ का पुत्र).
३ मल्लदेव (नं० २ का पुत्र)—इस को जगदेकमल्ल भी कहते थे.
४ बाणविद्याधर (नं० ३ का पुत्र).
५ प्रभुमेरुदेव (नं० ४ का पुत्र).
६ विक्रमादित्य (नं० ५ का पुत्र).
७ विजयादित्य दूसरा (नं० ६ का पुत्र).
८ विक्रमादित्य दूसरा (नं० ७ का पुत्र)—इस को विजयबाहु भी कहते थे. यह राठौड़ कृष्णराज दूसरे का मित्र था.

चोलवंश.

चोलवंशी राजा अपने तई सूर्यवंशी लिखते हैं. वे सूर्यवंशी राजा शिवि की सन्तान होना प्रगट करते हैं. उन का राज्य चोलदेश पर था. उन की वंशावली नीचे लिखे अनुसार मिलती है:—

सूर्यवंशी शिवि के वंश में कोक्किली, चोल (जिस के नाम से उक्त वंश का नाम प्रसिद्ध हुआ हो), करिकाल, कोच्चंगन्न् आदि बहुत से राजा हुए फिर उक्त वंश में—

१ विजयालय या परकेसरीवर्मा.
२ आदित्य या राजकेसरीवर्मा (नं० १ का पुत्र).
३ परांतक (नं० २ का पुत्र)—इस के खिताब वीरनारायण, और संग्रामराघव मिलते हैं. इस ने शक सं० ८२६ (वि० संवत् ६६४

=ई० स० ६०७) के क़रीब राज्य पाया था. इस ने पांड्य राजा राजसिंह को परास्त किया था.

४ राजादित्य (नं० ३ का पुत्र)—शक संवत् ८७१ (वि० सं० १००६ =ई० स० ६४५) में यह विद्यमान था, और राष्ट्रकूट (राठौड़) कृष्णराज तीसरे के साथ की लड़ाई में मारा गया था.

५ गंडरादित्य (नं० ४ का भाई).

६ अरिंजय (नं० ५ का भाई).

७ परांतक दूसरा (नं० ६ का पुत्र).

८ आदित्य दूसरा (नं० ७ का पुत्र)—इस को करिकाल भी कहते थे. यह वीर पांड्य से लड़ा था.

९ मधुरांतक (नं० ५ का पुत्र)—इस को उत्तमचोल भी कहते थे.

१० राजराज (नं० ७ का पुत्र)—इस को राजाश्रय, राजकेसरीवर्मा, और मुम्मुडिचोल भी कहते थे. इस के राज्य का प्रारंभ शक सं० ९०७ (वि० सं० १०४२ = ई० स० ९८५) में हुआ. यह पश्चिमी सोलंकी राजा सत्याश्रय से लड़ा था.

११ राजेन्द्रचोल (नं० १० का पुत्र)—शक सं० ९३४ (वि० संवत् १०६९ = ई० स० १०१२) में इस का राज्याभिषेक हुआ. यह पश्चिमी सोलंकी राजा जयसिंह आदि कई दूसरे राजाओं से लड़ा था.

१२ राजाधिराज (नं० ११ का उत्तराधिकारी)—इस को जयंगोंडचोल भी कहते थे. यह आहवमल्ल आदि सोलंकी राजाओं से, सीलोन के राजाओं से, तथा दूसरे कई राजाओं से लड़ा था. इस के राज्य का प्रारंभ शक सं० ९४० (वि० सं० १०७५=ई० स० १०१८) से हुआ था.

१३ राजेन्द्रदेव (नं० १२ का छोटा भाई)—इस के राज्य का प्रारंभ शक सं० ९७४ (वि० सं० ११०९ = ई० स० १०५२) से हुआ था. इस ने अपने बड़े भाई के साथ रहकर पश्चिमी सोलंकी राजा आहवमल्ल (सोमेश्वर प्रथम) को कोप्पम के युद्ध में हराया था, और सीलोन के राजा मानाभरण के दो पुत्रों को क़ैद किया था.

१४ राजमहेन्द्र.

१५ वीरराजेन्द्र (नं० १३ का उत्तराधिकारी)—इस को वीरचोल, करिकालचोल और राजकेसरीवर्मा भी कहते थे. इस के राज्य का प्रारंभ शक सं० ९८५ (वि० सं० ११२०=ई० स० १०६३) के करीब हुआ था. इस ने कुडलसंगम के युद्ध में पश्चिमी सोलंकी राजा आहवमल्ल (सोमेश्वर प्रथम) को हराया था.

१६ अधिराजेन्द्र (नं० १५ का पुत्र)—इस को मारकर चोलदेश का महाराज्य पूर्वी सोलंकी राजा राजेन्द्र चोड (कुलोत्तुंगदेव) ने शक सं० ९९२ (वि० सं ११२७=ई० स० १०७०) में छीन लिया, तब से चोलदेश पर वेंगी के पूर्वी सोलंकियों का अधिकार हो गया.

पांड्यवंश.

पांड्यवंशी राजा अपने तईं चन्द्रवंशी लिखते थे. उन का मुख्य राज्य पांड्य देश पर था, और समय समय पर उस की सीमा बढ़ती घटती रही थी. इन राजाओं की राजधानी मदुरा नगर थी. इन की वंशावली इस प्रकार मिलती है :—

१ जटावर्म कुलशेखर—इस का खिताब त्रिभुवन चक्रवर्ती मिलता है. इस के राज्य का प्रारंभ शक सं० ११९२ (वि० सं० १२४७= ई० स० ११९०) में हुआ.

२ मारवर्म सुन्दर पांड्य—इस की गद्दीनशीनी शक सं० ११३८ (वि० सं० १२७३=ई० स० १२१६) में हुई.

३ मारवर्म सुन्दर पांड्य दूसरा—इस के राज्य का प्रारंभ शक सं० ११६० (वि० सं० १२९५=ई० स० १२३८) में हुआ.

४ जटावर्म सुन्दर पांड्य—इस ने शक सं० ११७३ (विक्रम संवत् १३०८ =ई० स० १२५१) से राज्य करना शुरू किया. इस ने काकतीय वंशी गणपति को पराजित किया और होयशल (यादव) वंशी राजा सोमेश्वर से श्रीरंग (श्रीरंगपट्टम) छीन लिया.

५ वीरपांड्य—इस के राज्य का मारंभ शक सं० ११७५ (वि० संवत् १३१०=ई० स० १२५३) के करीब हुआ.

६ मारवर्म कुलशेखर—इस के राज्य का मारंभ श० सं० ११९० (वि० सं० १३२५=ई० स० १२६८) में हुआ.

७ जटावर्म सुन्दर पांड्य दूसरा—इस की गद्दीनशीनी शक सं० ११९७ (वि० सं० १३३२=ई० स० १२७५-७६) के क़रीव हुई.

८ मारवर्म कुलशेखर दूसरा—इस ने श० सं १२३६ (वि० सं० १३७१ =ई० स० १३१४) से राज्य करना शुरू किया.

९ मारवर्म पराक्रम पांड्य—इस ने श० सं० १२५७ (वि० सं० १३९२ =ई० सं० १२३५) के क़रीव राज्यगादी प्राप्त की.

१० जटावर्म पराक्रम पांड्य—इस के राज्य का मारंभ श० सं० १२९३ (वि० सं० १४२८=ई० स० १३७१) में हुआ,

११ विक्रम पांड्य—इस की गद्दीनशीनी श० सं० १३२३ (वि० सं० १४५८=ई० स० १४०१) के क़रीव हुई.

१२ जटिलवर्म पराक्रम पांड्य—इस ने शक सं० १३४४ (वि० सं० १४७९=ई० स० १४२२) में राज्य पाया.

१३ मारवर्म वीरपांड्य—इस ने श० सं० १३६५ (वि० सं० १५००= ई० स० १४४३) में राज्य पाया.

१४ जटिलवर्म पराक्रम पांड्य दूसरा—इस के राज्य का मारंभ शक सं० १४०२ (वि० सं० १५३७=ई० स० १४८०) के क़रीव हुआ.

१५ जटिलवर्म—इस के राज्य का मारंभ श० सं० १४५७ (वि० सं० १५९२=ई० स० १५३५) के क़रीव हुआ.

१६ मारवर्म सुन्दरपांड्य तीसरा.

१७ जटिलवर्म दूसरा—इस ने श० सं० १४८४ (वि० संवत् १६१९ =ई० स० १५६२) के क़रीव राज्य पाया.

इन राजाओं के लेखों में वंशावली नहीं मिलती केवल राजा का नाम और उस का राज्यवर्ष मिलता है, और शक संवत् भी बहुत कम लिखा मिलता है. इसलिये इन राजाओं का परस्पर का संबन्ध

बतलाया नहीं गया. उपर्युक्त नामों के बीच कोई कोई नाम रह गया भी हो तो आश्चर्य नहीं, जिन के लेख मिले हैं, उन्हीं के नाम मालूम हुए हैं.

विजयनगर का दूसरा राजवंश.

तुलुवावंश.

विजयगर के यादव राज्य की वंशावली ऊपर पृ० ३३६ से ३४१ तक में दीगई है. उक्त यादववंश के अंतिम राजा विरूपाक्ष के मारेजाने बाद उस के रिश्तेदार तुलुवा (सालुवा) वंशी नरसिंह ने विजयनगर का महाराज्य अपने आधीन किया. अब इस नरसिंह के वंश की वंशावली लिखी जाती है. इस वंश के राजा अपने तई चन्द्रवंशी और प्रसिद्ध राजा यदु के छोटे भाई तुर्वसु के वंश में होना बतलाते हैं. इन की वंशावली इस प्रकार मिलती है. चन्द्रवंश में बुद्ध, पुरुरवा, आयु, नहुष, ययाति, और तुर्वसु हुए और तुर्वसु के वंश में निम्नोक्त राजा हुए:—

१ तिम्म—इस की स्त्री देवकी थी.

२ ईश्वर (नं० १ का पुत्र)—इस की स्त्री बुक्कमा से दो पुत्र नरसिंह, और तिम्मण हुए.

३ नरसिंह (नं० २ का पुत्र)—इस ने विजयनगर का राज्य छीना. अच्युतराजाभ्युदय नामक काव्य में, जो ईसवी सन् की १६ वीं शताब्दी में अरुणगिरिनाथ के पुत्र राजनाथ ने लिखा था, इस राजा के विषय में लिखा है कि—"नरसिंह ने मानवदुर्ग का किला छीन लिया, परन्तु वहां निजाम ने उस से मुआफी मांगी, जिस पर वह किला उस ने पीछे निज़ाम को दे दिया. उस के बाद उस ने श्रीरंगपट्टम को अपने आधीन किया, फिर मारव लोगों को विजय किया, मदूरा छीना, और कोनेतिराज को पराजित किया अन्त में उस ने विजयनगर को अपनी राजधानी बनाया". इस के तीन राणियां थीं, जिन से तीन पुत्र वीर नरसिंह, कृष्णराय, और अच्युतराय हुए.

४ वीरनरसिंह (नं० ३ का पुत्र)—इस की माता तिप्पांबिका थी.
५ कृष्णराय (नं० ४ का छोटा भाई)—इस के समय के कईएक शिलालेख, और ताम्रपत्र मिले हैं, जो शक सं० १४३० (वि० सं० १५६५ =ई० स० १५०८) से १४५१ (वि० सं० १५८६ =ई० स० १५२६) तक के हैं. इस की माता का नाम नागाम्बिका था. इस राजा ने रायचूर पर चढ़ाई की. उस समय इस की सेना में ७०३०० पैदल सिपाही, ३२६०० सवार, और ५५१ हाथी होना विजयनगर का इतिहास लिखनेवाला फर्नाओ नूनीज लिखता है; और जिस समय सुल्तान इस्माईल आदिल शाह ने रायचूर, और मुडकल इस राजा से छुड़ाने को चढ़ाई की उस समय इस की सेना में ५००० सवार होना फ़िरिश्ता लिखता है. यह दक्षिण के मुसल्मान बादशाहों से कई लड़ाई लड़ा था. इस को कृष्णदेवराय भी लिखते हैं.
६ अच्युतराय (नं० ५ का छोटा भाई)—उपर्युक्त अच्युतराजाभ्युदय काव्य में इस राजा का चरित्र है. यह राजा भी कई लड़ाई लड़ा था. इस के समय के शिलालेख, और ताम्रपत्र शक सं० १४५२ (वि० सं० १५८७ =ई० स० १५३०) से १४६३ (वि० सं० १५९८ =ई० स० १५४१) तक के मिले हैं. इस के मरते ही विजयनगर के राज्य की अवनति होने लगी.
७ वेंकटराय (नं० ६ का पुत्र)—यह राज्य पाने के थोड़े ही दिनों बाद मर गया.
८ सदाशिवराय (नं० ५ के पुत्र रंग का बेटा)—इस के समय के लेख श० सं० १४६५ (वि० सं० १६०० =ई० स० १५४३) से १४८८ (वि० सं० १६२३ =ई० स० १५६७) तक के मिलते हैं. यह नाम मात्र का राजा रहा; और इस का मंत्री रामराज जो इस का बहिनोई था, राज्य का मालिक सा बन गया, और सदाशिवराय नज़रक़ैदी की सी दशा में रहा. रामराज के घमंड के मारे दक्षिण के पांचों मुसल्मान राज्यों ने एका कर विजयनगर के हिन्दूराज्य को नष्ट करने का संकल्प किया, और उन का सम्मि-

लित सैन्य तेलिकोटा पर चढ़ आया, जहां ई० स० १५६५ (वि० सं० १६२१) में युद्ध हुआ, जिस में हिन्दुओं की हार हुई, और रामराज मारा गया. यह खबर पहुंचते ही रामराज का छोटा भाई तिरुमल राय राजा सदाशिवराय को लेकर पेनुकांडा के किले में चला गया. जाते समय ५५० हाथी, सोना, हीरे, व जवाहिरात से भर कर अपने साथ ले गया. मुसल्मानों ने फिर विजयनगर पहुंच कर उक्त नगर को लूटा, वहां के लोगों को क़त्ल किया, और महल तथा मन्दिरों को तोड़ कर शहर को बर्बाद और ऊजड़ सा कर दिया. शक संवत् १४८८ (वि० सं० १६२३=ई० स० १५६७) में सदाशिवराय का देहान्त हुआ, और तिरुमलराय विजयनगर के राज्य का मालिक बनबैठा. (कोई ऐसा भी कहते हैं कि वह तिरुमल के हाथ से मारा गया था).

विजयनगर का तीसरा राजवंश.

इस वंश के राजा अपने को चंद्रवंशी होना लिखते हैं. इन के लेखों में रामराज के पहिले की नामावली इस तरह मिलती है:—

१ तातपिन्नम.

२ सोमदेव (नं० १ का पुत्र).

३ राघवदेव (नं० २ का पुत्र).

४ पिन्नम दूसरा (नं० ३ का पुत्र)—आरवेडु स्थान का स्वामी.

५ बुक (नं० ४ का पुत्र)—इस ने सालुवा नरसिंह के राज्य को दृढ़ किया.

६ रामराज (नं० ५ का पुत्र)

७ श्रीरंगराज.

८ रामराज दूसरा—यह कर्णाटक के किसी प्रदेश का स्वामी, और विजयनगर के उपर्युक्त राजा सदाशिवराय (नं० ८) का बहनोई, और मंत्री भी था, (संभव है कि यह सदाशिवराय का सामन्त और सेवक हो) उस को राज्यच्युत सा कर उस के राज्य का कर्ता-हर्ता स्वयम् हो गया.

वि० संवत् १६२१ (ई० स० १५६५) में यह तालिकोटा की लड़ाई में मारा गया.

ऊपर लिखे हुए नामवाले (नं० १ से ८ तक) विजयनगर के राज्य के स्वामी नहीं, किन्तु उक्त राज्य के सामन्त होंगे ऐसा प्रतीत होता है.

९ तिरुमलराय (नं० ८ का छोटा भाई)—सदाशिवराय के मरने पर वि० सं० १६२३ (ई० स० १५६७) में यह विजयनगर के राज्य का मालिक बना. ऐसी दशा में उक्त राज्य के सामन्त स्वतंत्र बनने लगे, और राज्य की दशा बिगड़ने लगी.

१० श्रीरंगराय दूसरा (नं० ९ का पुत्र)—इस के राज्य का प्रारंभ ई० स० १५७५ (वि० सं० १६३२) के करीब हुआ हो ऐसा पाया जाता है.

११ वेंकटपति (नं १० का छोटा भाई)—यह गोलकोंडा के मुहम्मद-शाह से, जो मलिक इब्राहीम का पुत्र था, लड़ा था. इस ने करीब २८ वर्ष के राज्य किया. इस के मरने पर राज्य में बखेड़े और परस्पर लड़ाई चली, जो उस को नष्ट करनेवाली हुई.

वेंकटपति के बाद रामदेव, वेंकटपति दूसरे, और श्रीरंगराय के लेख मिलते हैं; परन्तु उन का विशेष हाल नहीं मिलता. विजयनगर का हिन्दूराज्य मुसल्मानों के आधीन हो गया.

—०—

यहां तक हम ने एतद्देशीय राजाओं की वंशावलियां उद्धृत की हैं, उन में कश्मीर के राजाओं की वंशावली नहीं दी (सिवाय कर्कोटक वंश के), जिस का कारण यह है, कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने अपने "कश्मीरकुसुम" नामक पुस्तक में पूरी वंशावली छाप दी है. हिन्दी भाषा के प्रेमी जो उसे देखना चाहें उक्त पुस्तक में देख लेवें.

अब हम प्राचीन विदेशी राजाओं की वंशावलियां लिखते हैं:—

ग्रीक (यूनानी) राजवंश.

ग्रीकों (यूनानियों) के वास्ते प्राचीन संस्कृत पुस्तकों में 'यवन', और अशोक के लेखों में 'योन' शब्द लिखा मिलता है. 'योन' शब्द भी 'यवन' का ही प्राकृत रूप है. पीछे से यवन शब्द भारतवर्ष के बाहिर के समस्त भिन्न धर्मावलंबियों के लिये प्रयोग होने लगा. ईरान के बादशाह जर्कसिस (Xerxes) वगैरा ने कई बार यूनानियों को परास्त किया था, इसलिये ईरान के महाराज्य को नष्ट करना ही यूनानियों का मनोर्थ था. मकदूनिया (मैसिडोनिया, Macedonia= ग्रीस देश का एक बड़ा ज़िला) के स्वामी फिलिप (Philip) दूसरे ने समस्त यूनानी राज्यों के सम्मिलित सैन्य सहित ईरान पर चढ़ाई करने का प्रबन्ध किया था, परन्तु इतने में उस का देहान्त हो गया, जिस से उस के पुत्र सिकन्दर ने, जो 'अलेग्ज़ैंडर दि ग्रेट' (Alexander the Great) के नाम से प्रसिद्ध हुआ, अपने पिता का यह विचार पूर्ण करने का दृढ़ संकल्प कर सन् ई० से पूर्व ३३४ (वि० संवत् से पूर्व २७७) में ३०००० पैदल और ३५०० सवारों के साथ अपने देश से प्रस्थान कर एशिया खंड में प्रवेश किया, और सीरिया (Syria) देश में ईरान के बादशाह दारा (Darius) से लड़ाई की, जिस में दारा हार कर भागा. फिर अनेक नगरों को विजय करने के पश्चात् उस ने आफ्रिका खंड के प्रसिद्ध देश मिस्र (इजिप्ट Egypt) को अपने आधीन कर अपनी विजय की यादगार में सन् ई० से पूर्व ३३१ (वि० सं० से पूर्व २७४) में नील (नाइल Nile) नदी के मुहाने के पास अपने नाम से अलेग्ज़ैंड्रिया (Alexandria) नामक नगर बसाया. वहां से फिर एशिया में आकर असीरिया (Assyria) देश के प्रसिद्ध अर्बेला नगर से ६० मील के अन्तर पर फिर दारा से लड़ाई की, जिस में ईरानियों की पूरी हार हुई; दारा वहां से भी भागा और मार्ग में मर गया. सिकन्दर ने यहां से आगे बढ़ कर मीडिया (Media), पार्थिया

(Parthia), आरिया (Aria), ड्रांगियाना (Drangiana), अफ़गानिस्तान, बाक्ट्रिया (बल्ख़), सोगडिया (Sogdiana), और सीथिया नामक देशों को विजय किया. सोगडिया से लौटते समय सन् ई० से पूर्व ३२६ (वि० सं० से पूर्व २६६) में उस ने हिन्दुस्तान में प्रवेश किया, और अनेक नगरों को विजय करने के पश्चात् सिन्धुनदी को पार कर प्रसिद्ध तक्षशिला नगर में पहुंचा जहां के राजा ने उस की आधीनता स्वीकार की. तक्षशिला से आगे बढ़ता हुआ वह झेलम नदी को पार कर प्रसिद्ध राजा पोरस (पुरु या पुरुवंशी) से लड़ा, और उस की वीरता से प्रसन्न हो कर उस का राज्य उसे पीछा दे दिया. यहां से आगे बढ़ कर लड़ता भिड़ता चिनाब और रावी नदियों को लांघ कर व्यास नदी के तट पर पहुंचा, परन्तु उस की सेना के सिपाही लगातार लड़ने के कारण बहुत थक गये थे, इसलिये उन्हों ने आगे बढ़ने से इनकार किया. यद्यपि सिकन्दर ने उन को उत्तेजित करने का सब कुछ प्रयत्न किया, परन्तु उस में उस को नाउम्मेद ही होना पड़ा. अन्त में लाचार वहां से लौट कर वह झेलम और चिनाब नदियों के संगम पर पहुंचा. वहां से आगे बढ़ कर मल्लोई (मल्ल जाति) के लोगों से लड़ता हुआ घायल हुआ, और उस के सिपाहियों ने बड़ी कठिनता से उस के प्राण बचाये. फिर उन लोगों को आधीन कर वह सिंधु नदी के संगम पर पहुंचा. वहां से नदी के रास्ते से सिन्ध में होता हुआ पाताल नगर के पास पहुंचा, जहां से सिन्धु नदी की दो धारा अलग अलग हो कर बहती हैं. यहां से सिकन्दर ने अपने एक सेनापति नियार्कस (Nearchos) को समुद्री मार्ग से जहाज़ी सेना के साथ ईरान की तरफ़ जाने की आज्ञा दी, और आप बाकी सेना सहित बलूचिस्तान के रास्ते से चला. किर्मानिया में पहुंचने पर नियार्कस भी उस से आ मिला. वहां से सूसानगर में होता हुआ बाबिलन पहुंचा, और यहीं पर सन् ई० से पूर्व ३२३ (वि० सं० से पूर्व २६६) में प्रतापी सिकन्दर का देहान्त हो गया. सिकन्दर का देहान्त होते ही उस के सेनापतियों ने उस का क़ाइम किया हुआ महाराज्य आपस में बांट लिया, और

आपस की कई लड़ाइयों के बाद तीन राज्य—मक़दूनिया, मिस्र, और सीरिया-क़ाइम हुए. सीरिया के बादशाह सेल्युकस (Seleuchos) के आधीन एशिया का सारा राज्य रहा.

सिकन्दर ने पंजाब का जो हिस्सा अपने आधीन किया था उस पर लौटते समय फ़िलिप (Philip) नामक पुरुष को उस ने शासक नियत किया था, जिस को उस के सिपाहियों ने मार डाला. उस के स्थान पर दूसरा शासक भेजे जाने तक वहां यूडामस (Eudamas) नामी सेनापति नियत किया गया था, जिस ने सिकन्दर के देहान्त की खबर सुन कर स्वतंत्र बनने का विचार किया, और हिन्दू राजा पोरस को विश्वासघात से मार डाला. इस पर पंजाब के हिन्दुओं ने उस का सामना किया. ऐसे में चन्द्रगुप्त ने, जो पीछे से मौर्यवंश का संस्थापक बना, उन का मुखिया बन कर अरट्ट लोगों की सहायता से सन् ई० से पूर्व ३२२ (वि० सं० से पूर्व २६५) के क़रीब यूडामस से पंजाब का कितनाएक हिस्सा छीन लिया. फिर ऐंटिगोनस (Antigonos) के प्रतिपक्षी युमिनस (Eumenes) की सहायता के लिये सन् ई० से पूर्व ३१७ (वि० सं० से पूर्व २६०) के करीब यूडामस अपनी सेना सहित हिन्दुस्तान से चला गया. जिस से उस के आधीन के सारे प्रदेश का स्वामी चन्द्रगुप्त मौर्य बन गया. सिन्ध का जो हिस्सा सिकन्दर ने अपने आधीन किया था उस पर उस ने पीथोन (Peithon) नामक पुरुष को शासक नियत किया था, परन्तु वह उस प्रदेश को अपने आधीन रखने के लिये असमर्थ होने के कारण सन् ई० से पूर्व ३२१ (वि० सं० से पूर्व २६४) के क़रीब उस को छोड़ गया. इस प्रकार महान् सिकन्दर का विजय किया हुआ हिन्दुस्तान का हिस्सा किसी प्रकार क़रीब ६ वर्ष तक ही यूनानियों के अधिकार में रहने पाया.

हिन्दुस्तान का जो प्रदेश सिकन्दर ने आधीन किया था उस पर से तो ६ वर्ष के भीतर ही यूनानियों का अधिकार उठ गया, परन्तु हिन्दूकुश पर्वत के उत्तर के बाख़्ट्रिया (बल्ख़) देश में यूनानी राज्य दृढ़ हो गया था, जहां के यूनानियों ने दूसरी बार हिन्दुस्तान के कई एक हिस्सों पर अपना अधिकार जमालिया, जो कई सौ बरसों तक बना

२श. सन् ई० से पूर्व १६० (वि० सं० से पूर्व १३३) के करीब बाक्ट्रिया के राजा युथिडिमस (Euthydemos) के पुत्र डिमिट्रियस (Demetrios) ने हिन्दुस्तान पर चढ़ाई की, और अफ़ग़ानिस्तान (जो उस समय हिन्दुस्तान का ही एक हिस्सा था) तथा पंजाब वग़ैरा पर फिर यूनानियों का राज्य क़ाइम हुआ. इन यूनानी राजाओं का इतिहास किसी प्राचीन लेखक ने नहीं लिखा जिस से उन की शृंखलाबद्ध वंशावली नहीं मिलती. २५ से अधिक यूनानी राजाओं के सिक्के मिले हैं, जिन के एक तरफ़ प्राचीन यूनानी लिपि का लेख और दूसरी ओर बहुधा खरोष्ठी (गांधार) लिपि में संस्कृतमिश्रित प्राकृत लेख मिलता है. ये सिक्के ही केवल उन के इतिहास के मुख्य साधन हैं. उन सिक्कों में राजा का नाम तथा खिताब मात्र अंकित होने से उन राजाओं का क्रम तथा उन में से प्रत्येक का राजत्वकाल निर्णय करने का प्रयत्न करना सर्वथा असंभव है. इसलिये हम उन की नामावली अकारादि क्रम से देना ही उचित समझते हैं:—

आर्केबियस (Archebios).
आर्टेमिडोरस (Artemidoros).
एपेंडर (Epander).
ऐगेथौक्लिस (Agathokles).
ऐंटिआल्किडस (Antialkidas).
ऐंटिमेकस (Antimachos) प्रथम.
ऐंटिमेकस ,,) दूसरा.
ऐपोलोडॉटस (Apollodotos).
ऐपोलोफ़नस (Apollophanes).
एमिंटस (Amyntas).
ज़ोइलस (Zoilos).
टेलिफ़स (Telephos).
डायानिसियस (Dionysios).
डिमिट्रियस (Demetrios).
डायामीडस (Diomedes).

थियोफ़िलस (Theophilos).
नीकियस (Nikias).
पैंटेलियन (Pantaleon).
फ़िलोग्ज़ीनस (Philoxenos).
मिनैंडर (Menander).
युक्रटाइडस (Eukratides).
लीसियस (Lysias).
स्ट्रैटो (Strato) प्रथम,
स्ट्रैटो (,,) दूसरा,
हर्मियस (Hermaios).
हिपोस्ट्रैटस (Hippostratos).
हेलियोक्लिस (Heliokles).

इन राजाओं में से मिनैंडर और येपोलोडॉटस अधिक प्रतापी हुए, और उन का राज्य मालवा, गुजरात, और राजपूताने तक फैल गया हो ऐसा पाया जाता है, क्योंकि इन के सिक्के इन सब प्रदेशों में बहुत से मिल आते हैं. पतंजलि ने अपने महाभाष्य में यवनों [यूनानियों] का साकेत (अयोध्या), और मध्यमिका (मेवाड़ में चित्तौड़ से क़रीब ८ मील उत्तर का प्राचीन नगर जो इस समय नगरी नाम से प्रसिद्ध है) पर आक्रमण होना लिखा है, और गार्गीसंहिता में साकेत (अयोध्या), मथुरा, पांचाल तथा पुष्पपुर (पटना) तक यवनों (यूनानियों) की विजय होने का उल्लेख मिलता है. महाकवि कालिदास अपने रचे हुए मालविकाग्निमित्र नाटक में शुंगवंश के संस्थापक पुष्यमित्र के अश्वमेध यज्ञ के घोड़े का सिन्धु नदी (राजपूताने की सिन्ध नामक नदी) के दक्षिणी तट पर यवनों (यूनानियों) द्वारा पकड़ा जाना, और वसुमित्र का यवनों से लड़ कर घोड़े को छुड़ाना लिखता है. ये सब उल्लेख शायद मिनैंडर से सम्बन्ध रखते हों, क्योंकि स्ट्रेबो (Strabo) लिखता है कि मिनैंडर ने पातालन (पाताल नगर, सिन्ध में), सुराष्ट्र (सौराष्ट्र=सोरठ), और सगराइस (सागरद्वीप=शायद कच्छ हो) को विजय किया था, और पेरिप्लस का कर्ता मिनैंडर

और ऐपोलोडॉटस के सिक्कों का अपने समय तक भडोंच (गुजरात में) में चलना बतलाता है. मलिन्दपन्हो (मलिंदप्रश्न, मलिन्द = मिनैंडर) नामक पाली भाषा के पुस्तक में मिनैंडर और बौद्ध श्रमण नागसेन के निर्वाण संबन्धी प्रश्नोत्तर है. उक्त पुस्तक से पाया जाता है कि मलिन्द (मिनैंडर) यवन (यूनानी) था, और वह पराक्रमी होने के अतिरिक्त अनेक शास्त्रों का ज्ञाता था. उस का जन्म अलसंद अर्थात् अलैग्जैंड्रिया (हिन्दूकुश पर्वत में) नगर में हुआ था, और उस की राजधानी साकल (पंजाब में) बड़ी समृद्धिवाला नगर था. प्लुटार्क (Plutarch) लिखता है कि वह ऐसा न्यायी और लोकप्रिय था कि उस का देहान्त होने पर अनेक शहरों के लोगों ने उस की राख आपस में बांट ली, और अपने यहां उसे ले जा कर उस पर स्तूप बनवाये. मिनैंडर नागसेन के उपदेश से बौद्ध हो गया था. मिनैंडर का सन् ईस्वी से पूर्व दूसरी शताब्दी के मध्य होना अनुमान किया जाता है. मिनैंडर के बाद ऐपोलो डॉटस होना चाहिये.

इन यूनानियों का हिन्दुस्तान (अफ़गानिस्तान सहित) में एक ही नहीं, किन्तु अधिक राज्यों का रहना अनुमान किया जाता है. इन में अन्तिम राजा हर्मियस हुआ हो ऐसा अनुमान होता है. दो सौ वर्ष से अधिक समय तक इन यूनानियों का अधिकार मुख्य कर हिन्दुस्तान के उत्तरपश्चिमी सीमान्त प्रदेश, पंजाब, अफ़गानिस्तान आदि पर रहा. हिन्दुस्तान में जितने यूनानी थे वे यहीं रहे, और बौद्ध तथा वैष्णव आदि हिन्दूमतों के अनुयायी हो कर हिन्दुओं में मिल गये. दक्षिण में कार्लि, जुन्नर, और नाशिक आदि की बौद्ध गुफाओं के शिलालेखों से कई यवनों (यूनानियों) का बौद्ध होना पाया जाता है. प्रसिद्ध राजा मिनैंडर का बौद्ध होना मलिन्दपन्हो में लिखा मिलता है. पाषाण की कई ऐसी शिलाएं मिल चुकी हैं, जिन में एतद्देशीय बौद्धों के साथ यूनानी भी बुद्धदेव की आराधना करते हुए खुदे हैं, जिन के बदन की गठन, चेहरे, पोशाक और केश आदि से उन का यूनानी होना स्पष्ट पाया जाता है. ग्वालियर राज्य में भेलसा के पास बेस नगर (प्राचीन विदिशा नगर) के एक बड़े पाषाण स्तंभ पर के लेख में लिखा

है कि "राजा ऐंटियाल्किदिस के समय तक्षशिला (पंजाब में) नगर के रहने वाले दिय (Diou) के पुत्र हेलियोदोर (Heliodoros) ने, जो भागवत (वैष्णव) था, देवताओं के देवता वासुदेव (विष्णु) का यह गरुड़ध्वज बनवाया ". यूनानियों के हिन्दुस्तान के संप्रदायों में मिल जाने के ऐसे कई प्रमाण मिल सकते हैं.

यूनानी लोग हिन्दू शैली के नाम भी रखते थे. धर्मरक्षित नामक यवन (यूनानी) अपरान्त (कोंकण) देश में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के निमित्त राजा अशोक की तरफ़ का धर्मप्रचारक बन कर गया था. नाशिक की गुफा के एक लेख में यवन धमदेव (धर्मदेव) के पुत्र का इन्द्राग्निदत्त नाम होना लिखा है. ये नाम हिन्दू शैली के ही हैं.

इन यूनानी राजाओं के राज्य समय में भारतवर्ष के सिक्के, शिल्प, साहित्य, विद्या, रीतिरवाज, पोशाक आदि पर यूनानियों का कुछ कुछ प्रभाव पड़ा, और कई बातों में उन्नति हुई.

—o—

शक वंश.

शक जाति का आदि निवासस्थान तिब्बत का उत्तरी हिस्सा माना जाता है. ईस्वी सन् के आरंभ से कई शताब्दी पूर्व ये लोग उत्तर में बढ़ते हुए मध्य एशिया में जा बसे. ग्रीक लेखक इन को सीथियन तथा ईरान और हिन्दुस्तान वाले शक कहते थे. ये लोग बढ़ते बढ़ते पश्चिमी यूरोप तथा दक्षिणी एशिया में फैल गये. दक्षिणी एशिया के शकों की कई क़ौमें थीं जो राज्य सत्ता के लिये कभी कभी आपस में भी लड़ती थीं. बाक्ट्रिया और पार्थिया के ग्रीक (यूनानी) राज्य को इन्हीं की एक क़ौम ने नष्ट किया, और यूनानियों से ये देश छीनकर इन्हों ने अपने आधीन किये. फिर ये लोग हिन्दुकुश पर्वत को पार कर दक्षिण की तरफ़ बढ़े, और पश्चिम में हिरात से लगा कर सिन्धु नदी तक का प्रदेश इन्हों ने अपने आधीन किया. फिर क्रमशः हिन्दुस्तान के बड़े हिस्से पर इन्हों ने अपना अधिकार जमा लिया. इन लोगों का शृंखलाबद्ध इतिहास नहीं मिलता तथापि सिक्कों आदि से

जो कुछ इन के नाम मिलते हैं उन को यहां दर्ज करना हिन्दीसाहित्य के लिये निरर्थक न होगा. पुराणों में शकों का उल्लेख मिलता है, और इन की गणना क्षत्रियों में की है, परन्तु साथ ही इस के यह भी लिखा है कि ब्राह्मणों का दर्शन न होने के कारण ये लोग वृषल (शूद्र) बनगये.

शकों के मुख्य दो राज्य होना अनुमान किया जाता है, जिन में से एक कन्धार के आसपास के प्रदेश पर और दूसरा तक्षशिला के आसपास के प्रदेश पर. इन के राज्य के विस्तार तथा इन के समय आदि का ठीक ठीक निश्चय अब तक नहीं हुआ.

शकों का पहिला राज्य.

१ वेननस (Venones)—इस का समय निश्चितरूप से मालूम नहीं हुआ. कोई विद्वान् इस का सन् ईसवी से पूर्व की दूसरी शताब्दी के अन्त में होना अनुमान करते हैं, और कोई इस को शक संवत् का प्रचारक मानते हैं. इस के समय में इस का एक भाई स्पलहोर (Spalahora) और उस (स्पलहोर) का पुत्र स्पलगदामा (Spalagadama) इस की आधीनता में इस के राज्य के भिन्न भिन्न विभागों पर शासन करते हों ऐसा उन के सिक्कों से पाया जाता है.

स्पलरिश —यह वेननस का भाई होना चाहिये.

अय (अज़ = Azes) प्रथम—यह राजा पहिले वेननस के आधीन रहा था.

अयिलिश (Azilises).

अय (अज़ = Azes) दूसरा.

मोग (मोअ = Manes)—इस के समय का एक ताम्रलेख तक्षशिला से मिला है, जिस में संवत् ७८ लिखा है, परन्तु यह संवत् किस का है यह निश्चित नहीं है. उक्त संवत् के विषय में विद्वानों में मतभेद है. यदि उस संवत् को शक संवत् मानें तो मोअ का वि० सं० २१३ (ई० स० १५६) में होना अनुमान किया जा सकता है.

है कि "राजा ऐंटियाल्किडिस के समय तक्षशिला (पंजाब में) नगर के रहने वाले दिय (Dion) के पुत्र हेलियोदोर (Heliodoros) ने, जो भागवत (वैष्णव) था, देवताओं के देवता वासुदेव (विष्णु) का यह गरुड़ध्वज बनवाया". यूनानियों के हिन्दुस्तान के संप्रदायों में मिल जाने के ऐसे कई प्रमाण मिल सकते हैं.

यूनानी लोग हिन्दू शैली के नाम भी रखते थे. धर्मरक्षित नामक यवन (यूनानी) अपरान्त (कोंकण) देश में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के निमित्त राजा अशोक की तरफ़ का धर्मप्रचारक बन कर गया था. नाशिक की गुफा के एक लेख में यवन धमदेव (धर्मदेव) के पुत्र का इन्द्राग्निदत्त नाम होना लिखा है. ये नाम हिन्दू शैली के ही हैं.

इन यूनानी राजाओं के राज्य समय में भारतवर्ष के सिक्के, शिल्प, साहित्य, विद्या, रीतिरवाज, पोशाक आदि पर यूनानियों का कुछ कुछ प्रभाव पड़ा, और कई बातों में उन्नति हुई.

शक वंश.

शक जाति का आदि निवासस्थान तिब्बत का उत्तरी हिस्सा माना जाता है. ईस्वी सन् के प्रारंभ से कई शताब्दी पूर्व ये लोग उत्तर में बढ़ते हुए मध्य एशिया में जा बसे. ग्रीक लेखक इन को सीथियन तथा ईरान और हिन्दुस्तान वाले शक कहते थे. ये लोग बढ़ते बढ़ते पश्चिमी यूरोप तथा दक्षिणी एशिया में फैल गये. दक्षिणी एशिया के शकों की कई क़ौमें थीं जो राज्य सत्ता के लिये कभी कभी आपस में भी लड़ती थीं. बाक्ट्रिया और पार्थिया के ग्रीक (यूनानी) राज्य को इन्हीं की एक क़ौम ने नष्ट किया, और यूनानियों से ये देश छीनकर इन्हों ने अपने आधीन किये. फिर ये लोग हिन्दूकुश पर्वत को पार कर दक्षिण की तरफ़ बढ़े, और पश्चिम में हिरात से लगा कर सिन्धु नदी तक का प्रदेश इन्हों ने अपने आधीन किया. फिर क्रमशः हिन्दुस्तान के बड़े हिस्से पर इन्हों ने अपना अधिकार जमा लिया. इन लोगों का शृंखलाबद्ध इतिहास नहीं मिलता तथापि सिक्कों आदि से

जो कुछ इन के नाम मिलते हैं उन को यहां दर्ज करना हिन्दीसाहित्य के लिये निरर्थक न होगा. पुराणों में शकों का उल्लेख मिलता है, और इन की गणना म्लेच्छों में की है, परन्तु साथ ही इस के यह भी लिखा है कि ब्राह्मणों का दर्शन न होने के कारण ये लोग वृषल (शूद्र) बनगये.

शकों के मुख्य दो राज्य होना अनुमान किया जाता है, जिन में से एक कन्धार के आसपास के प्रदेश पर और दूसरा तक्षशिला के आसपास के प्रदेश पर. इन के राज्य के विस्तार तथा इन के समय आदि का ठीक ठीक निश्चय अब तक नहीं हुआ.

शकों का पहिला राज्य.

१ वेननस (Venones)—इस का समय निश्चितरूप से मालूम नहीं हुआ. कोई विद्वान् इस का सन् ईसवी से पूर्व की दूसरी शताब्दी के अन्त में होना अनुमान करते है, और कोई इस को शक संवत् का प्रचारक मानते हैं. इस के समय में इस का एक भाई स्पलहोर (Spalahora) और उस (स्पलहोर) का पुत्र स्पलगदामा (Spalagadama) इस की आधीनता में इस के राज्य के भिन्न भिन्न विभागों पर शासन करते हों ऐसा उन के सिक्कों से पाया जाता है.

स्पलिरिश —यह वेननस का भाई होना चाहिये.

अय (अज़ = Azes) प्रथम—यह राजा पहिले वेननस के [illegible] रहा था.

अयिलिश (Azilises).

अय (अज़ = Azes) दूसरा.

मोग (मोअ = Maues)—इस के समय का एक ताम्रलेख तक्षशिला से मिला है, जिस में संवत् ७८ लिखा है, परन्तु यह संवत् किस का है यह निश्चित नहीं है. उक्त संवत् के विषय में विद्वानों में मतभेद है. यदि उस संवत् को शक संवत् मानें तो मोअ का वि० सं० २१३ (ई० स० १५६) में होना अनुमान किया जा सकता है.

अवन्ति, अनूप, आनर्त, सुराष्ट्र, श्वभ्र, मरु, कच्छ, सिंधु, सौवीर, कुकुर, अपरान्त और निशाद आदि देश थे. इस ने वीरता के अभिमानी यौद्धेयों को नष्ट किया था. दक्षिण के राजा सातकर्णी को दो बार जीता, परन्तु निकट का सम्बन्धी होने के कारण उसे प्राणदंड नहीं दिया. यह विद्वान् तथा शस्त्रविद्या में निपुण था, और अनेक स्वयम्वरों में राजकन्याओं ने इसे वरमाला पहिनाई थी, ऐसा इस के समय के शक सं० ७२ (वि० सं० २०७ =ई० स० १५०) से कुछ पीछे के लेख से, जो जूनागढ़ के पास के एक चट्टान पर खुदा हुआ है, पाया जाता है. इस के दो पुत्र दामजद और रुद्रसिंह थे. इस के समय के ६ शिलालेख मिले हैं.

५ दामजद (नं० ४ का पुत्र)—महाक्षत्रप. इस के दो पुत्र सत्यदामा, और जीवदामा थे.

६ रुद्रसिंह (नं० ५ का छोटा भाई)—इस राजा के शक संवत् १०३ से ११८ (वि० सं० २३८ से २५३ =ई० स० १८१ से १९६) के बीच के सिक्के मिले हैं, जिन में इस को महाक्षत्रप लिखा है. इस के तीन पुत्र रुद्रसेन, संघदामा, और दामसेन थे.

७ जीवदामा (नं० ५ का दूसरा पुत्र)—इस के महाक्षत्रप पदवाले सिक्के शक सं० ११९ और १२० (वि० स० २५४ और २५५= ई० स० १९७ और १९८) के मिले हैं.

८ रुद्रसेन (नं० ६ का पुत्र)—महाक्षत्रप. शक सं. १२२ से १४४ (वि. सं० २५७ से २७९ =ई० स० २०० से २२२) तक के इस के सिक्के मिले हैं. इस के दो पुत्र पृथिवीसेन, और दामजद थे, जो क्षत्रप ही रहे और महाक्षत्रप होने नहीं पाये.

९ संघदामा (नं० ६ का पुत्र)—महाक्षत्रप. इस के सिक्के शक संवत् १४४, और १४५ (वि० सं० २७९ और २८० =ई० स० २२२ और २२३ के) मिले हैं.

दामसेन (नं० ६ का पुत्र)—महाक्षत्रप. इस के सिक्के शक सं. १४५ [से] १५८ (वि०सं०२८० से २९३ =ई०स० २२३ से २३६)

तक के मिले हैं. इस के ४ पुत्र वीरदामा, यशोदामा, विजयसेन, और दामजद थे.

११ यशोदामा (नं० १० का पुत्र)—महाक्षत्रप. इस के सिके शक सं० १६१ (वि०सं०२६६=ई०स० २३६) के मिले हैं.

१२ विजयसेन (नं० १० का पुत्र)—महाक्षत्रप. इस के सिके शक सं० १६३ से १७२ (वि० सं० २९८ से ३०७=ई०स०२४१ से २५०) तक के मिले हैं.

१३ दामजद दूसरा (नं०१० का पुत्र)—महाक्षत्रप. इस के सिके शक सं० १७२ से १७६ (वि० सं० ३०७ से ३११=ई० स० २५० से २५४) तक के मिले हैं.

१४ रुद्रसेन दूसरा (नं० १० के ज्येष्ठ पुत्र वीरदामा का बेटा)—महाक्षत्रप. इस के सिक्के शक सं० १७८ से १९४ (वि० सं० ३१३ से ३२९=ई० स० २५६ से २७२) तक के मिले हैं. इस के दो पुत्र विश्वसिंह, और भर्तृदामा थे.

१५ विश्वसिंह (नं० १४ का पुत्र)—महाक्षत्रप.

१६ भर्तृदामा (नं० १४ का पुत्र)—महाक्षत्रप. इस के सिक्के शक सं० २०३ से २१७ (वि० सं० ३३८ से ३५२=ई० स० २८१ से २९५) तक के मिले हैं. इस का पुत्र विश्वसेन था, जो क्षत्रप ही रहा.

नं० ३ से लगाकर नं० १६ तक के महाक्षत्रपों की वंशावली शृंखलाबद्ध मिलती है. फिर आगे की वंशावली इस तरह पर है:—

१७ स्वामी जीवदामा—क्षत्रप (परतंत्र राजा या ज़िलों का हाकिम).

१८ रुद्रसिंह (नं० १७ का पुत्र)—क्षत्रप. इस का पुत्र यशोदामा था.

१९ स्वामी रुद्रदामा (शायद नं० १७ का पुत्र हो)—यह फिर महाक्षत्रप (स्वतंत्र राजा) बना.

२० स्वामी रुद्रसेन (नं० १९ का पुत्र)—महाक्षत्रप. इस के सिक्के शक सं० २७० से ३०० (वि० सं० ४०५ से ४३५=ई० स० ३४८ से ३७८) तक के मिले हैं.

२१ स्वामी सिंहसेन (नं० १९ का दोहिता)—महाक्षत्रप. शक सं०

३०४ (वि० सं० ४३६=ई० स० ३८२) के इस राजा के सिक्के मिले हैं.

२२ स्वामी रुद्रसेन दूसरा (नं० २१ का पुत्र).

२३ स्वामी सत्यसिंह.

२४ स्वामी रुद्रसिंह (नं० २३ का पुत्र)–इस के सिक्के शक संवत् ३१० वि० सं० ४४५=ई० स० ३८८) तक के मिले हैं. गुप्त वंश के प्रतापी राजा चंद्रगुप्त दूसरे (विक्रमादित्य) ने इस का समस्त राज्य छीन कर क्षत्रप (शक) राज्य की समाप्ति कर दी.

ये क्षत्रप बौद्ध और वैदिक दोनों मतों के अनुयायी थे, और हिन्दुओं में मिल गये थे.

महाक्षत्रप ईश्वरदत्त के राज्य के पहिले व दूसरे वर्ष के सिक्के मिले हैं, परन्तु उन में उस के पिता का नाम न होने से ऊपर की वंशावली में उस को स्थान न दे सके.

इन क्षत्रपों के अतिरिक्त तक्षशिला में उपर्युक्त शक राजा मोग का क्षत्रप लिअक कुसुलक का पुत्र पतिक था, जो छहर और चुख्स (या चुक्स) ज़िलों का हाकिम था. पतिक ने भी पीछे से महाक्षत्रप पद धारण किया था ऐसा एक मथुरा के लेख से पाया जाता है.

तक्षशिला की नाईं मथुरा में क्षत्रपों का अधिकार था. वहाँ के क्षत्रपों में पहिला नाम राजुबल (या राजूल) का मिलता है. उस ने पीछे से महाक्षत्रप पद धारण कर लिया था. राजुवल का पुत्र सोडास हुआ, जिस के समय का एक लेख संवत् ७२ का है. यह संवत् कौन सा संवत् है, इस विषय में शोधकवर्ग में मतभेद है. यदि यह शक संवत् माना जावे तो महाक्षत्रप सोडास का वि० सं० २०७ (ई० स० १५०) में विद्यमान होना मानना पड़ेगा. सोडास के पुत्र का भी एक लेख मिला है, परन्तु उस के टूट जाने के कारण उस का नाम नष्ट हो गया. ये क्षत्रप बौद्ध मतावलंबी थे.

इन क्षत्रपों के अतिरिक्त क्षत्रप मनिगुल के पुत्र क्षत्रप जिहोनिम के तथा क्षत्रप आर्तस के पुत्र क्षत्रप खरमोस्त के सिक्के भी पंजाब की मिले हैं, अतएव उन का अधिकार उधर होगा. क्षत्रप शक्रमित्र

के पुत्र खरप मेवक के सिक्के मथुरा से मिलआते हैं, जो सोडास के सिक्कों की शैली के हैं, अतएव संभव है कि वह सोडास के वंश से संबंध रखता हो.

कुशनवंश.

कुशनवंशी राजा भी मध्य एशिया से आये थे. राजतरंगिणी में उन को तुरुष्क (तुर्क) लिखा है; और सिक्कों पर की उन की तस्वीरों की पोशाक भी तुर्की ही है, जो राजतरंगिणी के लेख को पुष्ट करती है. कुशनवंशियों की वंशावली भी शृंखलाबद्ध नहीं मिलती तथापि उन के लेखों तथा सिक्कों से जो नाम मालूम हुए हैं वे ये हैं:—

कुजुल कडफासिस—यह राजा शायद अंतिम यूनानी राजा हार्मिअस का समकालीन हो.

कुजुलकरकडफासिस.

वेमकडफसिस (हिमकडफासिस).

कनिष्क—यह बड़ाही प्रतापी राजा हुआ. इस का राज्य मध्य एशिया से लगाकर राजपूताने तक होना चाहिये. इस के कईएक लेख मिले हैं. जो संवत् ५ से २८ तक के हैं. यह कौन सा संवत् है यह अब तक अनिश्चित है.

हुविष्क—इस को राजतरंगिणी में हुष्क लिखा है. इस के कईएक लेख मिले हैं, जो संवत् २९ से ६० तक के हैं (संवत् अनिश्चित).

वासुदेव या वासुष्क—इस के कई लेख मिले हैं, जो संवत् ७४ से ९८ तक के हैं (संवत् अनिश्चित).

इन राजाओं के सोने, चांदी और तांबे के सिक्के मिले हैं, जिन के दोनों ओर प्राचीन ग्रीक (यूनानी) लिपि के लेख हैं. ये लोग बुद्ध, शिव, तथा कई यूनानी, ईरानी देवताओं के, जिन की मूर्त्तियां इन के सिक्कों पर मिलती हैं, उपासक होने चाहियें. इन का समय अब तक ठीक ठीक निर्णय नहीं हुआ, परन्तु मथुरा के आसपास से मिले हुए कनिष्क, हुविष्क, और वासुदेव के लेखों की लिपि से अनु-

मान होता है कि ये राजा गुप्तों से थोड़े ही पहिले हुए होंगे. गुप्तों के सिक्कों में इन के सिक्कों का अनुकरण स्पष्ट पाया जाता है. ये लोग भी हिन्दुओं में मिल गये.

ऊपर हम ने मुख्य मुख्य समस्त प्राचीन राजवंशों की वंशावलियां संक्षेप से लिख दी हैं. यहां पर हम उन का इतिहास लिखने का कुछ भी यत्न नहीं कर सके. हिन्दीसाहित्य में प्राचीन इतिहास की कोई पुस्तक न होने से हिन्दीप्रेमियों को टॉडराजस्थान के इस सातवें प्रकरण के टिप्पण में दी हुई इन नामावलियों से ही अभी सन्तोष करना होगा. समस्त प्राचीन राजवंशों का सविस्तर इतिहास हम "भारतीय ऐतिहासिक ग्रन्थमाला" में प्रकट करेंगे. उक्त ग्रन्थमाला की पहिली जिल्द छप चुकी है. उसी शैली से समस्त वंशों का इतिहास प्रकट करने का यत्न किया जावेगा.

प्रकरण आठवां ।

राजपूत जातियों की वर्त्तमान राजनैतिक दशा पर विचार.

इस प्रकार उन जातियों का विवेचन करने के पश्चात्, जो भिन्न भिन्न काल में हिन्दुस्तान में बसती थीं, और अद्यापि बसती हैं, अब यह विषय समाप्त किया जाता है.

ऐसे विस्तीर्ण क्षेत्र (विषय) में धर्म्म और व्यवहार सम्बन्धी भिन्न भिन्न बातों का जितना हाल बताया जा सकता है, उन सब का लिखना असम्भव था, परन्तु इस त्रुटि की पूर्त्ति शासन करनेवाली अत्यन्त प्रसिद्ध जातियों के इतिहास में कर दी जायेगी, जिस से हमें उस विषय को दोहराना भी न पड़ेगा.

इन समस्त जातियों के व्यवस्थापक नियम एक ही धर्म्म के अनुकूल होने से उन के रीति रवाज में वह अन्तर नहीं पड़ने पाता जिस का देश काल के अधिक भेदाभेद से होना स्वाभाविक बात है, यद्यपि ऐसे कारणों से उन के बाहिरी व्यवहार में अवश्य ही बहुत कुछ फर्क आ जाता है. उस ऊंची पहाड़ी श्रेणी को लांघते ही, जो मेवाड़ की उच्च भूमि को मारवाड़ की नीची भूमि से जुदा करती है, साधारण से साधारण देखनेवाले को भी पहराव और व्यवहार का अन्तर स्पष्ट दीख जावेगा, परन्तु यह अन्तर केवल बाहिरी और शरीर

सम्बन्धी हैं, मानसिक गुणों में बहुत कम परिवर्तन हुवा है; क्योंकि वे सब एकही मत और एकही धर्म (जो आचारों का मुख्य कर्त्ता और सुधारक है) के अनुसार चलते हैं.

हम उन में एक ही प्रकार की पौराणिक कहानियां, देवोत्पत्ति विषयक कथाएं, और त्योहार पाते हैं; यद्यपि वे [भिन्न भिन्न स्थानों में] विशेष विशेष भेदों के साथ माने जाते हैं. जैसी बारीकियां उन के पहराव में हैं वैसी ही उन के विचारों में भी हैं, जिन का प्रगट करना यदि संभव हो तोभी वे विशेष मनोरंजक न होंगी; जैसे पगड़ी का बन्धेज, और जामे [दर्बारी पोशाक] की चुन्नट फ़्रीमेसनों के [Masonic] चिन्हों की नाईं जातिभेद के सूचक चिन्ह हैं. परन्तु उन के व्यवहारों का निरीक्षण उन के परिवार वर्ग ही में भली भांति होता है, जहां वे बिना किसी संकोच के निधड़क बात चीत करते हैं, और वाणी की स्वतंत्रता में किसी प्रकार की बाधा नहीं रहती. क्या कोई यूरोपियन इस प्रकार की ख़ानगी जातीय मंडली में बिना अपने चाल चलन का परिचय दिये, और अपने गुण दोषों को भली भांति जताये प्रवेश कर सकता है? परन्तु वह राजपूतों के साथ ऐसा कर सकता है, जिन के स्वतंत्र स्वभाव के कारण उस को किसी प्रकार का संकोच नहीं रहता, और जिन में आतिथ्य भाव और सद्गुणों

की प्रीति होने से उन का उन लोगों के साथ स्वतंत्रता पूर्वक सदैव मेलजोल रह सकता है, जो उन [राजपूतों] की सम्मति और अनिश्चित विचारों का आदर करते हैं, और अपने ही घमंड में रह कर ऐसा ख़याल नहीं करते कि ऐसे मित्रता के व्यवहार से हमारा क्या लाभ हो सकता है. निदान शारीरिक विभिन्नता देश भेद से होती है, और मानसिक समानता किसी बड़े दृढ़ सिद्धान्त के कारण होती है; चाहे उस [सिद्धान्त] में कुछ भी वास्तविक नीति सम्बन्धी त्रुटि क्यों न हो, चाहे वह हमारे [यूरोपियन लोगों के] उच्च विचारों से विपरीत क्यों न हो, तोभी उस [सिद्धान्त] ने इन वंशों को जाति रूप में क़ाइम रक्खा, और अब तक भी उन के प्राचीन रीति रवाजों को प्रचलित रक्खा है. परमेश्वर करे हमारा गर्व पूरित बड़प्पन उन सब बातों में, जिन से मनुष्य अपने सहयोगियों में उच्च पद को पहुंचता है, हम लोगों के पूर्वीय साम्राज्य को अनन्त काल तक क़ाइम रक्खे, और हमारे भाग्योदय के ये विचार हम को सदा इस बात से बचाये रक्खें, कि हम अपना अधिकार बढ़ाने की सामयिक लालसा में पृथ्वी पर के सभ्यता विषयक इन अत्यन्त प्राचीन बचे कुचे चिन्हों को नष्ट न करदें ! क्योंकि हमारे साम्राज्य में उन के राज्यों के मिल जाने का भय उन में व्याप्त हो जायेगा तो ऐसा परिणाम केवल उन लोगों के

सुख का ही बाधक न होगा, किन्तु हमारी स्थिति का भी.

हमारी सन्धियों की वर्त्तमान प्रणाली के कारण, जिन के मूल में इतनी बुराई भरी है, उपर्युक्त हानिकारक परिणाम (जिस को विलायत के व्यवस्थापक अधिकारी गण कभी नहीं चाहते) अन्त में अवश्य ही होगा. यदि अन्त में विरोध उत्पन्न करने की इच्छा से ही सन्धिपत्रों के बनाने में बुद्धिमानी खर्च की गई हो तो ये [सन्धिपत्र] नीति निपुणता के प्रशंसायोग्य नमूने होंगे.

प्रत्येक सन्धिपत्र के भावार्थ, और अक्षरार्थ में सर्वदा अन्तर होता है, और जब कि प्रत्येक राज्य की भीतरी स्वतंत्रता क़ाइम रखना ही [उस का] मुख्य अभिप्राय है, तोभी वह [भीतरी स्वतंत्रता] दूसरी शर्तों द्वारा नष्ट एवं लुप्त कर दी जाती है, और ये विधि निषेध के भाव परस्पर में एक दूसरे का खंडन करते हैं. अन्त में यह स्पष्ट हो जाता है, कि ऐसी शर्तों के साथ स्वतंत्रता क़ाइम नहीं रह सकती. जहां इन आधीन राज्यों की नाईं सैनिक नियमों की पाबन्दी नहीं, और जहां प्रत्येक मातहत सर्दार अपनी जमीअत का मालिक है वहां केवल मिलिटरी कंटिन्जेण्ट [= सहायक सेना] की शर्त ही अकेली वैमनस्य का मूल बन जावेगी, क्योंकि इस से प्रत्येक सर्दार के साथ हस्ताक्षेप करना

पड़ेगा, जिस से ऐसी सहायता निरर्थक नहीं, किन्तु हानिकारक हो जायेगी. परन्तु यह [सैनिक सहायता की] शर्त नक्द ख़िराज की शर्त के मुक़ाबले में कुछ भी नहीं है, क्योंकि ख़िराज सम्बन्धी शर्त के अनिश्चित और अस्थिर रहने से उन के मालगुज़ारी के हिसाबों का भेद लेने का मार्ग खुला रहता है, जो रीति केवल घृणा के योग्यही नहीं, किन्तु सन्धिपत्र (के अभिप्राय) के भी विरुद्ध है, जिस के अनुसार भीतरी शासन हस्ताक्षेप से वंचित रक्खा गया है. बखेड़ों के ये द्वार और उन के शासन की साधारण शिथिलता हम लोगों की नियमानुकूल शासन प्रणाली से उन का काम पड़ने पर हमारे लिये राज्यलोभ विषयक भयानक साधन उपस्थित करते हैं, और कौन ऐसा अन्धा है जो यह नहीं जानता कि नामवरी प्राप्त करने की स्पर्द्धा का प्रभाव पूर्वीय देशों में सर्कार के प्रत्येक प्रतिनिधि पर होता है ? जब कि शस्त्रों से काम लेने और देश को प्राप्त करने की प्रतिष्ठा शिष्टता के गुण की अल्प प्रशंसा से बढ़ कर है, तो समय समय पर इन राज्यों में [हमारा] जाना पूंछल तारे की नाईं "राजाओं को उन की दशा बदलने की भविष्य सूचना करता है."

हम लोगों की अवस्था पूर्वी देशों में ऐसी रही है, और अब तक चली जाती है, कि जिस से विजय लक्ष्मी स्वतः हम को प्राप्त होती है. यद्यपि बहुत समय

वीत चुका है, तथापि [यदि हम चाहें तो] अब भी उस [विजय लक्ष्मी] की आज्ञा की अपेक्षा न कर के रुक जाना हमारे हाथ में है. मिट्टी के एक टीबे के झगड़े में हम को औरिआँकार्सोनेंसस (Aureachersonesus) तक, जो कि टालेमी के भूगोल की सीमा है, अपनी सेना लेजाना पड़ा है. वाईं ओर सिन्धु नदी, दाहिनी ओर ब्रह्मपुत्र, और तातार की उच्च भूमि की रक्षा के लिये हिमालय का आकार एक वड़े देव की नाईं सिर ऊंचा किये खड़ा है, समुद्र और हमारे धूमपोत हमारी पीठ पर हैं, ऐसा हमारा वड़ा भारी वैभव है ! परन्तु यदि हमारी असीम तृष्णा ब्रह्मपुत्र पर न रुके, किन्तु अराकान के साग़ून के जंगलों में जयमाला पहिनने के लिये आगे को प्रवेश करे तो हमारे पास इन हिन्दू राज्यों की कुशलता की तसल्ली के लिये, जो सन्धि द्वारा हम लोगों के निरीक्षणाधीन रक्खे गये हैं, क्या साधन है ? परन्तु यह आशा की जाती है, कि वही उदारता जिस ने वे सम्बन्ध क़ाइम किये, जिन के द्वारा राजपूत लोग अधोगति और तात्कालिक विनाश से बचे, विजय के जोश में की हुई इस प्रतिज्ञा को कि—'उन की स्वतंत्रता में वाधा न डाली जायेगी' क़ाइम रक्खेगी; और उन दोषों को जिन्हें हम क्षमा नहीं कर सकते, घटावेगी, और विनाशकारी विप्लव की मरुस्थली में उन जातियों के प्राचीन शासन के हरे भरे स्थलों को सदा के लिये

बनाये रक्खेगी, जिन में जो सद्‌गुण हैं वे उन्हीं के हैं, और जो अवगुण हैं वे अत्याचार, विजय, और धर्म सम्बन्धी विरोध से उत्पन्न हुए हैं.

कम से कम उन के विषय में जानकारी प्राप्त करना ही उन के साथ सहानुभूति करने के लिये पहिला क़दम उठाना है; क्योंकि हमारे गवर्नरों और सर्कारी एजंटों के बहुत थोड़े थोड़े समय तक शासन कर के चले जाने की प्रणाली का प्रचार रहने पर क्या यह आशा की जा सकती है कि उन (राजपूतों) के इतिहास से अज्ञात रहने, और उन के वीरता के कार्यों, और अद्यापि नशे ठसे की रहन सहन, उदारता, शिष्टता, और निरंतर आतिथ्य के गुणों की जानकारी से दयालुता का विचार उत्पन्न हुए बिना उन पर कोमलता से शासन हो सकेगा? ये राजपूतों के सद्‌गुण हैं जो उन के राज्यों में अनेक परिवर्त्तन होने पर भी अब तक विद्यमान हैं, और मुसल्मानों के दीर्घकालिक धर्म द्वेष और प्रताप के मुक़ाबले में भी बचे रहे. यद्यपि तातार और मुग़ल दोनों वंशों के आठ शताब्दियों में होने वाले बादशाहों में से थोड़े से ऐसे धर्मात्मा और महानुभाव, अर्थात् बड़े ही योग्य, और महात्मा पुरुष हुए हैं, जो अपने समस्त पूर्वाधिकारियों के अत्याचार की क्षति पूर्ण कर देने के लिये समय समय पर प्रगट हुए.

वह उच्च सिद्धान्त जो हम लोगों ने धारण किया

और वे महद् विचारांश जिन के साथ हमने राजपूतों में अपना परिचय बढ़ाया, वे (विचार) जिन में कठिनता से मनुष्य जाति में पाई जाने वाली मनोरथ की शुद्धता, निस्पृहता युक्त भलाई का गर्व झलकता था, और जिन के उदाहरण केवल उन्हीं (हिन्दुओं) के धर्मग्रन्थों में मिलते हैं, ऐसी बातों ने (हमारे विषय में उन के चित्त में) ऐसे बड़े विचार उत्पन्न कराये कि दैवी गुणों, न्याय, और दया को काम में लाना हमारे अधिकार में है, और उन को हमारे कार्यों में सर्वशक्तिमान् की बुद्धि की अपेक्षा कुछ न्यून बुद्धि होने की आशा न थी. परन्तु प्रत्येक राज्य में ऐसे मुआमले उपस्थित हुए कि जिन से वे जानगये कि हम लोग भी मृत्युलोक के मानवी ही हैं, और कवि का यह नीतियुक्त वाक्य कि,—

" दूर से ही सब चीज़ सुहावनी दीख पड़ती है. "

"'Tis distance lends enchantment to the view,"

राजकीय व्यवहारों में सत्य हो गया. इस का परिणाम [यह हुआ कि हमारी तरफ से उन को] शोक, और अविश्वास हो गया. तत्पश्चात् क्रोध का प्रादुर्भाव हुआ; परन्तु [उन में] कृतज्ञता का बोध अद्यापि ऐसा बलवान है कि जिस ने बुरे भावों को दबाये रक्खा है. इन दोषों का सुधार अब भी हो सकता है, और हमारे राजपूत साथी अब भी हमारे हितकारी मित्र बने रह

सकते हैं; यद्यपि उसी अवस्था में ऐसा हो सकता है, जब कि वे अपनी भीतरी स्वतंत्रता, और प्राचीन रीति भांत का पूर्ण रूप से उपभोग करते रहें.

मध्यवर्ती समय (Middle ages) का एक वाक्य विशारद इतिहासवेत्ता कहता है कि "जब तक प्राचीन रीति नीति का सम्मान कर के अथवा स्वीकृत योग्यता से (लोगों को प्रबन्ध की उत्तमता का विश्वास दिला कर) उन के चित्त अपने हाथ में न लिये जावें तब तक कोई राज्य प्रबन्ध काइम नहीं रह सकता. सैनिक जागीरदारी की प्रथा में इस का व्यवहार बहुत कुछ था. परस्पर की सहायता और स्वामिभक्ति के कर्तव्यों को सैनिक सेवा द्वारा पूरा करने से मैत्रीभाव उत्तेजित हो जाते थे, और लौकिक सहानुभूति के बन्धन वास्तविक प्रबन्ध के बन्धनों से भी ज़्यादा बढ़ जाते थे."

ऊपर मानेहुए कारणों में से, जिन से कि राजनैतिक प्रबन्ध दृढ़ होता है, एक (कारण) को हम यहां पर छोड़ देते हैं, अर्थात् "स्वीकृत योग्यता" को, जो रजवाड़े की सैनिक जागीरदारी के ढीले ढाले प्रबन्ध से कभी सम्बन्ध नहीं रखती थी; परन्तु इस का अभाव उस के आवश्यकीय स्थानापन्न 'प्राचीन रीति नीति' को दृढ़ करता है, जिस से अनेक दूषण छिप जाते हैं.

कई एक मुआमलों में हमारे नियम विरुद्ध और

असंगत हस्ताक्षेप करने, और कितनेही में न करने से एक ही प्रकार की वह बर्बादी, जो बहुत समय तक की लूट मार के अत्याचार से समाज के प्रत्येक वर्ग में हुई, पहिले की एकता, और मेल फिर से स्थापन होने के बदले उल्टी बढ़ती है. इस प्रकार की व्यावहारिक प्रथा जारी रहने से केवल बड़ाभारी भय ही नहीं, किन्तु अटल परिणाम उस का यह होगा कि वे (राजपूत) भी हमारे अन्य सहायक राजाओं के समान उसी हीनता की दशा को पहुंच जायेंगे, और अन्त में उन के राज्य हमारे महाराज्य में मिल जायेंगे, जो पहिलेही से अत्यन्त विस्तीर्ण है.

यह कहा जा सकता है कि इन सन्धियों का अभिप्राय और आशय उस समय के लिये जब कि वे की गई थीं, और हमारी सामान्य जानकारी देखते, बिलकुल अयुक्त नहीं था. परन्तु जब कि हम लोगों की जानकारी बढ़ गई तो क्या उस समय उन [सन्धिपत्रों] के दोषों को दूर करने का समय जाता रहा था, जो परस्पर के लाभविषयक इन दो बड़े सिद्धान्तों में फ़र्क डालते थे, जिन पर समस्त सन्धिपत्रों का आधार है, अर्थात् 'उन की भीतरी पूर्ण स्वतंत्रता', और रक्षा करनेवाले साम्राज्य का 'स्वीकृत बड़प्पन'? यह कहा जायगा कि इस बड़े राजनैतिक प्रासाद के मुख्य स्तम्भ उन चिरस्थाई गुणों से सर्वथा रहित हैं, जिन का निरू-

पण सन्धि करनेवाले दोनों पक्ष करते हैं; परन्तु उन के विरुद्ध ये ओर्मुज्दं, और अहरिमन अर्थात् विवाद के भले और बुरे सिद्धान्त हैं. परन्तु जब कि हम ने इन नियमों के साथ अनिश्चित परिमाण से एक द्रव्य सम्बन्धी नियम जो उन की समृद्धि के परिमाणानुसार बढ़ते हैं, और उन की सहायक सेना, अर्थात जमीअत [लेने] के नियम भी मिला दिये हैं, जिन की ढीली ढाली आदतों और व्यवस्था से अवश्य सदा शिकायत रहेगी, तो हम लोग निश्चित रूप से एक ऐसी प्रणाली स्थापित करने के यश के भागी होंगे जो हम को उन के मुआमलों में हस्ताक्षेप करने के लिये वाध्य करेगी, जिस को कि प्रत्येक सन्धिपत्र का मुख्य सिद्धान्त स्पष्ट रूप से वर्जित करता है.

इस का अमिट परिणाम यह है कि जातीयभाव को मिटानेवाला सिद्धान्त सदा के लिये स्थापित होता है, जिस को कि मरहटा लोग भली भांति समझते थे, अर्थात् " फूट फैला कर शासन करना " (*Divide et empera*) हम लोग थोड़े हैं, और पूर्वीय [देशों के] दृष्टान्त के अनुसार हमारे एजंटों को अवश्य दूसरों के नेत्रों से देखना, और दूसरों के कानों से सुनना पड़ेगा. हमारे हस्ताक्षेप करने से आपस का वह विश्वास जो पुनः उत्पन्न हुआ होगा, बिलकुल उठ जायगा. राजा लोग समझ जायेंगे कि वे अपने [आधीन] सर्दारों पर

जुल्म कर सकते हैं, और सर्दारों को ऐसे साधन मिल जायेंगे, जिन से उन के राजा की आज्ञायें निरर्थक हो सकती हैं, और ऐसे मंत्री गणों को जिन की कुछ भी ज़ीम्मेवारी नहीं है, हमारे अनिश्चित ख़िराज सम्बन्धी द्रव्यों को उगाहने के लिये अवश्य हमारी सहायता मिलेगी; और एकता, विश्वास तथा कृतज्ञता—के वे समग्र भाव, जिन के लिये वे हमारे आभारी हैं, और जिस को वे स्वयं स्वीकार करते हैं, जातीय अवनति के साथ धीरे धीरे मुरझा जायेंगे। हमारे सन्धिपत्रों की ऐसी प्रवृत्ति होना निर्विवाद है. उन सन्धिपत्रों के आशय से ही यह बात झलकती है, कि वे प्रत्येक वर्ग की प्रजा की भक्ति को उन के ख़ास राजा पर से उठा कर हमारे प्रधान राज्याधिकारियों, और उन के मातहत एजण्टों की तरफ़ झुका देते हैं. कौन यह कहने का साहस करेगा कि, कोई राज्य जो अपने भीतरी शासन को बाहिरी जासूस मंडली के दख़ल से बचा कर काइम नहीं रख सकता, अपनी प्रतिष्ठा क़ाइम रख सकता है, जो जैसी एक व्यक्ति के प्रत्येक गुण की आधार रूप है वैसी ही एक राज्य के लिये भी है ? इस मुख्य [प्रतिष्ठा विषयक] विचार को ये सन्धिपत्र सम्पूर्णतः नष्ट करते हैं. क्या हम ऐसे जातीयभाव विहीन सहायक गणों पर आवश्यकता के समय [सहायता का] भरोसा कर सकते हैं ? अथवा यदि उन में अपने पुरा-

तन पुस्तैनी गुण की एक चिनगारी भी शेष रह जायेगी तो क्या वह अवसर पाकर हमारे विरुद्ध सुलग कर ज्वाला रूप न बन जावेगी ? वजाय इस के कि कृतज्ञता के प्रवल गुण उत्तेजित हों, जो अद्यापि इन युद्ध-रसिक जातियों में हमारे लिये विद्यमान हैं.

हमारी नाईं वे लोग भी उस लुटेरी प्रणाली के स्वाभाविक शत्रु थे, जिस ने हमारे शासन में इतने समय तक वाधा डाली, और हमारी तथा देशी राज्यों की कुशलता इसी में समझी गई कि उस का नाश किया जावे. जब हम ने उन [राजाओं] से मैत्री करनी चाही तो हम ने [उन से] सर्वहितैषिता पूरित मनोरंजक शब्दों से सम्भाषण किया. हम ने उन को इस राज्यकीय द्वंद्व की बुराइयों से अलग रहने के लिये प्रार्थना की. इन सन्धिपत्रों के महान् प्रवर्तक के उदार आशय में कौन सन्देह कर सकता है और उस की राजनैतिक चाल भी बुद्धिमानी से भरी हुई थी, परन्तु इन सन्धियों का पुनः संशोधन किया जाकर [इन की] वे अनिष्टकारी शर्तें, जिन से झगड़ा उत्पन्न हो, निकाली जा सकती थीं, जिन से खिराज के केवल थोड़ेही लाख रुपयों और थोड़ी सी बादशाही चाकरी की क्षति होती. और अब भी ऐसा करने के लिये समय है. सच्ची राजनीति उन को हमारी सन्धियों में बिलकुल स्वतन्त्र बना देगी; परन्तु जब तक ऐसा न हो तब तक प्रत्येक

भीतरी मुआमलों में हस्ताक्षेप कर के उन का दिल नहीं दुखाना चाहिये. जातीय समृद्धि को नष्ट करने- वाली शिला को हटा दो, अर्थात् उन के इस मर्मवेधी भाव को कि, उन के दीर्घ काल से ऊजड़ पड़े हुए खेतों में उपजे हुए प्रत्येक मन अन्न का कुछ अंश अंग्रेजी अन्न भंडार में अवश्य भेजना पड़ेगा, [उन के चित्त से] दूर कर दो: उन के चित्त को अपनी स्वाभाविक स्थिति पुनः प्राप्त करने दो. जिस से वे लोग फिर से अपनी पूर्वकालिक प्रसिद्धि प्राप्त कर लेंगे. हम को यह अधिकार प्राप्त है, कि उन की इस उन्नति को बढ़ा कर उस से तथा उस के परिणाम से लाभ उठावें, अथवा ऐसा ढंग डालें जिस से वे अवनति* की दशा को पहुंच कर नष्ट हो जावें. जो कि ब्रिटन के लिये अयोग्य है.

---

* इन प्राचीन रियासतों को लूट मार सम्बन्धी लड़ाई झगड़ों की बर्बादी से बचाने में प्रसन्नता रखनेवाले सर्वजनहितैषी लॉर्ड हेस्टिंग्ज़ का ही यदि यह अनुमान था कि चार ही वर्षों में शताब्दी भर की अव्य- वस्था मिट कर सुव्यवस्था हो जायेगी, और जो भीतरी त्रुटि के सब लक्षणों पर जो कि आलस्य, असवधानी एवम् गुप्त द्रोह से उत्पन्न होते हैं, अप्रसन्नता दिखाने को तत्पर थे; यदि उन्हों ने यह प्रगट किया कि सर्कार स्वयम् सुव्यवस्था पुनः स्थापित करने का कार्य अपने ज़िम्मे लेवे, और इस विषय का सब खर्चा ले लिया जावे. एवम् सख्ती के साथ वसूल किया जावे. और अन्त में यह प्रगट किया कि ऐसे प्रबन्ध किये जावें कि जिस से उदार सहनशीलता के भाव से, जिस के अभिप्राय को वे समझने या कद्र करने के अयोग्य थे, अब अधिक

उन के जातीय गुणों पर कभी इतनी आपद नहीं ाई थी जितनी कि उस सुखप्रद शान्ति में जो उस ूफ़ानी उपद्रव के पीछे फैली, जिस में वे इतने काल तक गोते खाते रहे; यह सन्दिग्ध बात है जैसा कि उ्न्हीं की रूपक मय बोली में लिखा जाता है कि हमारे साथ की मित्रता में उन को ज्यादा हानि है, वा हमारे साथ लड़ाई करने में हमारे सैनिकबल का तो वे सामना नहीं कर सकते; तथापि यह बात कभी ध्यान से बिलग न करनी चाहिये कि प्राचीन रोम की नाईं, जब कि उस का प्रताप घटता जाता था, हम भी अपने विजय किये हुए देश की असभ्यों के मुक़ाबले में रक्षा करने के लिये " उन्हीं लोगों की सेना से " काम लेते हैं ! क्या मन कभी स्थिर रहता है ? क्या सद्गुण और ऊंचे विचार मेल जोल और देखा देखी से ही प्राप्त हो सकते हैं ? क्या भारत के तीन इहातों की देशी सेना में १० पाउंड मासिक वेतन पाने वालों की अपेक्षा ऊंचे मन वाला कोई नहीं है ? क्या ओडोसर [Odoacer], और सेवा जी [जैसे पुरुष] फिर न जन्मेंगे ? क्या ज्ञान और सत्यता का ग्रन्थ, जिस को हम मानते हैं, केवल उन को आधीनता सिखाने, और उन की निर्बलता

समय तक असद् व्यवहार करने की शक्ति से वे लोग वंचित किये जावें तो वे उन लोगों से जिन में उन (लॉर्डहेस्टिंग्स) जैसी सहानुभूति नहीं है, क्या आशा कर सकते हैं ?